...पुरुष का

...जीवनचरित्र

कुन्दनलाल आर्य चूनियां वाला

पुस्तक-परिचय

'पूर्णपुरुष का विचित्र जीवन'– अपनी शैली की प्रथम पुस्तक है । ग्रन्थ लेखक बहुत स्वाध्यायशील सज्जन थे । वे लगभग आधी शताब्दी तक पंजाब के उर्दू पत्रों में निरन्तर लिखते रहे । प्रस्तुत पुस्तक उनकी प्रथम व अन्तिम पुस्तक है । पुस्तक का एक एक पृष्ठ लेखक के व्यापक अध्ययन का पता देता है ।

पुस्तक सब प्रकार के पाठकों के लिए लाभप्रद है । रोचक भी है । नई नई विधा से महर्षि के जीवन पर लिखने की आवश्यकता है । इसी दृष्टि से महाशय कुन्दनलाल जी ने यह ग्रन्थ रचा । इस ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रचार होना चाहिए।

वैदिक धर्म में ईश्वर की आज्ञा व सृष्टि-नियमों के अनुसार जीवन बिताने से व्यक्ति बड़ा बनता है । यम-नियम का पालन यहां बड़प्पन का सोपान है । अन्य मतों में प्रभु के सृष्टि-नियमों को तोड़कर (चमत्कार दिखाने से) व्यक्ति महान् व मानवेतर बनता है । ग्रन्थ लेखक ने यम-नियमों को लेकर ऋषि-जीवन की घटनाओं से उनकी महानता को दर्शाने का सफल प्रयास किया है ।

विश्व का कोई भी व्यक्ति–किसी भी मत, पन्थ व देश में इन नियमों को अपनाकर महान् बन सकता है । ये नियम सबके साझे हैं और इनके पालन करने वाले व्यक्ति सबके आदरणीय हैं । ग्रन्थकार ने इसी प्रयोजन से यह ग्रन्थ रचा था ।

॥ ओ३म् ॥

संसार भर में सब से पहला और अनोखा ग्रन्थ

न भूतो न भविष्यति

पूर्णपुरुष का विचित्र जीवनचरित्र

[एक जीवन में १०१ जीवन]

लेखक :

कुन्दनलाल आर्य चूनियां वाला

जालन्धर (पंजाब)

सम्पादक :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर

प्रकाशक :

अनीता आर्ष प्रकाशन

५००/२, हलवाई हट्टा, पानीपत (हरियाणा)

प्रकाशक :
लाला आदित्यप्रकाश आर्य
अनीता आर्ष प्रकाशन
५००/२, हलवाई हट्टा,
पानीपत (हरियाणा)

द्वितीय संस्करण : सन् २००१
दयानन्द १७८–२०५८ वि०
वैदक संवत १९७२९४९१०२

पुस्तक प्राप्ति-स्थान :
१. **गुरु विरजानन्द स्मारक गुरुकुल**
करतापुर, जालन्धर (पंजाब)
२. **विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द**
नई सड़क, दिल्ली–६

मूल्य : १२५.०० रु०

शब्द-संयोजन :
वैदिक प्रेस
कैलाशनगर, दिल्ली–३१
फोन : २२४६६४६

मुद्रक :
राधा प्रेस
गांधीनगर दिल्ली–३१

॥ ओ३म् ॥

दो शब्द

आर्यावर्त के इतिहास में महाभारत के पश्चात् महर्षि दयानन्द सरस्वती का ऊंचा स्थान है । महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों से मनुष्यों को जितना बोध होता है, उतना अन्य ग्रन्थों से नहीं । क्योंकि भारतीय संस्कृति की थाती धरोहर महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में ओत-प्रोत है । जीवन से जीवन को जगाना है तो महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र का अवलोकन करें ।

"पूर्णपुरुष का विचित्र जीवन" एक जीवन में १०१ जीवन–पुस्तक पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है । इसके लेखक कुन्दनलाल आर्य चूनियां वाला पंजाब हैं । प्रथम संस्करण सन् १९६५ में छपा था । प्रस्तुत पुस्तक में परिचय-काण्ड, देवता-काण्ड, रामायण-काण्ड, महाभारत-काण्ड, भाष्य-काण्ड, रिफार्मर-काण्ड, भक्त-काण्ड, राजा-काण्ड, विदेश-काण्ड, कीर्तन-काण्ड, प्रचार-काण्ड, संगठन-काण्ड इत्यादि १८ काण्ड हैं । इन काण्डों में १०१ महापुरुषों के जीवनों का नामोल्लेख मिलता है । प्राचीन काल, वर्तमान काल, या देश विदेश के जितने भी सुधारवादी महापुरुष हुए हैं, 'एक जीवन में १०१ जीवन' अर्थात् महर्षि दयानन्द सरस्वती को एक तुला पर रखा गया है, दूसरे तुला पर १०१ महापुरुषों को । अर्थात् तुलनात्मक दृष्टि से महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवनचरित्र सर्वोपरि स्थान रखता है । "पूर्ण पुरुष का विचित्र जीवन" नामक पुस्तक में महर्षि दयानन्द सरस्वती को पूर्ण पुरुष माना गया है । स्वाध्याय पिपासु एक बार इस पुस्तक का अवश्य अवलोकन करें ।

अनीता आर्ष प्रकाशन, पानीपत के संस्थापक लाला आदित्यप्रकाश जी आर्य द्वारा शीघ्र मुद्रण कराकर पाठकों को प्रस्तुत किया जा रहा है । श्री सुखदेवराज विद्यावाचस्पति अधिष्ठाता गुरुकुल करतारपुर पंजाब ने लाला जी

को प्रेरणा देकर कृतार्थ किया है । जिल्दसाज बुक बाईण्डर श्री रमेशचन्द्र आर्य कैलाशनगर दिल्ली ने पुस्तक को सुन्दर से सुन्दर बनाने का सराहनीय कार्य किया है । पुस्तक का संशोधन विश्वदेवशास्त्री ने व वैदिक प्रेस ने कम्प्यूटर द्वारा आन्तरिक साज-सज्जा से सुन्दर रूप दिया है । इसके लिए इन सब महानुभावों का हृदय से अत्यन्त आभारी हूं । आशा है उपदेशक, प्रचारक, विद्यार्थी इस जीवनचरित्र को अपने हृदय में स्थान देकर जीवन में चरितार्थ करेंगे । ऐसी आकांक्षा है ।

भवदीय :

आचार्य ब्र० नन्दकिशोर
कल्पतरु, नेपाली फार्म,
पो० सत्यनारायण मन्दिर,
जिला देहरादून
(उत्तरांचल)

॥ ओ३म् ॥

प्राक्कथन

गिने जाएं मुमकिन है सैहरा के जर्रे,
समुन्दर के कतरे फ़लक के सितारे।
दयानन्द स्वामी ! मगर तेरे अहसाँ,
न गिनती में आएं, कभी हम से सारे ॥

सन् १९०७ में शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी वा शहीद भगतसिंह जी के चाचा सरदार अजीतसिंह जी दोनों आर्यसमाजी नेताओं को अंग्रेजी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया । और बगैर मुकद्दमा चलाए बर्मा के माण्डले जेल में ले जाकर नजरबन्द कर दिया । उन दिनों आर्यसमाज पर अंग्रेजी सरकार की विशेष कृपा रही, आर्यसमाजी होना जुर्म बन गया था । आर्यसमाज के उपदेशक बिना वजह बताए गिरफ़्तार कर लिये जाते थे । आर्यसमाज के स्कूलों, कालिजों विशेष कर दयानन्द कालिज लाहौर पर सरकार की कड़ी नजर थी, इन्हीं दिनों दैवयोग से हमारे शहर चूनियां जिला लाहौर में श्री देवदत्त जी उपदेशक आर्यसमाज के आए और बाजार में इनके लैक्चर करवाने का प्रबन्ध कुछ नवयुवकों ने किया । अभी दो लैक्चर ही हुए थे कि तीसरे दिन लैक्चर के समय थानेदार ने आकर इनको गिरफ्तरी कर लिया । मैं इस समय सातवीं श्रेणी में पढ़ता था । मैं और मेरे कुछ सहपाठी लैक्चर के वक्त जरूर पहुंचते रहे । गिरफ्तारी के समय भी हम सब जलूस बनाकर पण्डित जी को थाने तक ले गये थे । आर्यसमाज के उन लैक्चरों और पण्डित जी की निर्भयता से हमारे कोमल हृदयों पर बड़ा प्रभाव पड़ा । फिर १९१२ में मुलाज़मत के सिलसले में लाहौर आया तो बाकायदा आर्यसमाज का मैम्बर बन गया । सन् १९१७ के पहले बड़े युद्ध में और मेरे कुछ दफ़तर के साथी डेपूटेशन पर F.C.M.A. के दफ़तर पूना में चले गये । वहां हम चार सज्जन एक ही मकान में रहने लगे, क्योंकि हम चारों आर्यसमाजी विचारों के थे, और उस वक्त

पूना शहर में कोई आर्यसमाज न था । हमने अपने ही मकान में जो पूना शहर सोमवार पेठ में था, आर्यसमाज स्थापित कर दिया । इन्हीं दिनों गढ़वाल में अकाल पढ़ गया । और आर्य गज़ट में महात्मा हंसराज जी की अपील छपी, तब हम ने सलाह मशवरा किया कि पूना शहर से भी कुछ धन इकट्ठा करके भेजना चाहिए । इन दिनों पूना शहर में महर्षि जी के शिष्य महादेव गोविन्द रानाडे की स्मृति में वसन्त व्याख्यानमाला शुरू थी। हमने एक अपील अंग्रेजी में टाईप की परन्तु इतने बड़े जलसे में पढ़ने का किसे साहस था । आखिर सब भाइयों ने मुझे इस जलसे में वह अपील पढ़ने के लिए मजबूर किया। इस जलसे के प्रधान जी से वक्त लेकर मैंने अपील उस भरे जलसे में पढ़ी। यह मेरा सब से पहला साहस था, कि इतने बड़े जलसे में जिसमें उच्च कोटि के विद्वान् और सरकारी कर्मचारी थे, लिखी हुई अपील पढ़ी । इसका परिणाम यह हुआ कि हमने पूना शहर में करीबन सात सौ (७००) रुपया अकाल पीड़ित भाइयों के लिए इकट्ठा कर लिया। १९१८ में माता जी के बीमार हो जाने के कारण मुझ को पूना से वापस आना पड़ा और माता जी के देहान्त के बाद पिता जी इन्फलूऐंजा से बीमार हो गये, तब मैंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया । इन्हीं दिनों हमारे शहर में आर्यसमाज स्थापित हो गया । और मुझे मन्त्री बनाया गया, तब युवावस्था थी, काम करने का जोश था, आर्य युवकसमाज भी स्थापित कर लिया और गर्वनमेण्ट हाई स्कूल के करीबन ४०-५० विद्यार्थी युवक समाज में शामिल हो गये, उत्तरोत्तर प्रचार बढ़ता गया, नौजवान आर्यसमाज के सिद्धान्तों से प्रभावित होते गये, और युवकसमाज अतिबलशाली संस्था बन गई । फिर आर्य-वीर दल भी पूरे जोर शोर से कार्य करने लगा ।

सन् १९२५ में अपने शहर के खुले बाजार में पण्डित लेखराम आर्य मुसाफिर कृत महर्षि ज़ी के जीवन की पूरे छः महीने प्रतिदिन रात्रि के समय कथा की, जिससे छः सात अच्छे खानदानी नवयुवक समाज की ओर आकृष्ट हुए । आर्य युवकसमाज और आर्य-वीर दल से सैकड़ों युवक प्रभावित हुए। जिनमें से कई एक इस समय भी जहां जहां हैं आर्यसमाज में लग्न से काम कर रहे हैं । बंटवारे के बाद बस्ती गुजां जालन्धर में आकर भी आर्यसमाज की सेवा करना आरम्भ कर दिया । और सन् १९५६ में आर्यसमाज बस्ती गुजां में श्री देवेन्द्रनाथ जी के रचित महर्षि के जीवनचरित्र की छः महीने

तक प्रतिदिन कथा की । इस बार कथा करते हुए मुझे यह भान हुआ कि महर्षि का जीवन तो अद्वितीय है, और महर्षि के जीवन में तो अनेक महापुरुषों के जीवन का समावेश है । अतः मैं इस खोज में संलग्न हो गया । और पूरे आठ वर्षों की खोज और निरन्तर दो वर्ष परिश्रम से मैं यह सिद्ध करने में समर्थ हो गया हूं कि महर्षि के जीवन में तीनों देवता यानि विष्णु, ब्रह्मा और शिव महर्षि ब्रह्मा से लेकर जैमनि पर्यन्त सभी ऋषि मुनियों की, संसार के सभी देशों में होने वाले रिफ़ार्मरों, बहादुर राजाओं, जरनैलों सन्तों की जीवन-घटनाओं का समावेश है । और साथ ही ऋषि के प्रचारित सिद्धान्तों में से हर किसी ने अपनी अपनी ताकत और लियाकत के मुताबिक किसी ने एक किसी ने दो किसी ने ज्यादा का समर्थन भी किया है । जिससे यह सिद्धान्त सार्वभौमिक ही सिद्ध होते हैं । वैसे तो महर्षि के गुण और उपकार मेरे जैसे अल्प बुद्धि, अल्प शक्ति, मनुष्य से कैसे वर्णन किये जा सकते हैं, तब भी ऋषि-ऋण से उर्त्रण होने की भावना को लेकर अपने इस सारे अनुभव को पुस्तक का रूप देने का साहस किया है, इस पुस्तक में आदि सृष्टि से लेकर महर्षि जी तक सारे संसार में होने वाले १०१ महापुरुषों की जीवन घटनाओं की तुलना महर्षि के जीवन से की गई है, इसके अतिरिक्त महर्षि के विशेष गुण कीर्तन के लिए अलग शीर्षक कायम करके उनकी जीवन घटनाओं से उनकी पुष्टि व सिद्धि की गई है । उदाहरणार्थ जैसे पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण धर्मात्मा, पूर्ण विद्वान् पूर्ण योगी इत्यादि । इसके अतिरिक्त महर्षि के स्थापित आर्यसमाज रूपी ट्रेनिंग कालिज से शिक्षा प्राप्त कर देश जाति धर्म विद्या के हित जीवन दान देने वाले महानुभाव स्वामी नित्यानन्द जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी, पं० लेखराम जी, पं० गुरुदत्त जी, ला० लाजपतराय जी, शहीद भगतसिंह जी और कई दूसरे विशेष कार्यकर्ताओं, संन्यासियों, पण्डितों, शास्त्रार्थ महारथियों के संक्षिप्त परन्तु प्रभावशाली जीवन वृत्तान्त दिए हैं और महर्षि जी के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का भी जीवन वृत्तान्त दिया गया । अतः इस विचित्र जीवनचरित्र को और भी विचित्र बनाने के लिए इस में चित्र भी विचित्र दिये गये हैं । जो आज तक आपने कहीं देखे न सुने होंगे । और इस पुस्तक की विचित्रता को पूर्ण रूप देने के लिए इसमें च्यवनप्राश का असली वैदिक नुस्खा भी दिया गया है, जिसका प्रयोग करके महर्षि पूर्ण पुरुष बन गये, और जिस पर एक नया पैसा भी खर्च नहीं होता।

इस पुस्तक के लिखने का मेरा अभिप्राय यह है, कि जो भी इसको आदि से अन्त तक पढ़ेगा वह महर्षि के जीवन और उनके सिद्धान्तों से प्रभावित हुए बिना न रह सकेगा। क्योंकि इसमें जहां महर्षि जी के जीवन को विचित्र रूप में प्रकट किया गया है, वहां आर्यसमाज वा आर्यसमाजियों की सर्वतोमुखी Activities को भी उजागर किया गया है., इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन-जिन भाइयों ने सहायता की है और उत्साह दिलाया है, उनका धन्यवाद न करना भी अकृतज्ञता है। इसलिए मैं श्री राधाकृष्ण जी आर्यसमाज वालों का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन्होंने न सिर्फ एक हज़ार रुपये की सहायता सब से पहले देने को कहा, बल्कि हर पत्र में मुझको उत्साह दिलाते रहे। और यह पुस्तक ज्यादातर उन्हीं के उत्साह के परिणाम स्वरूप ही छप सकी है। श्री ओंकार नाथ जी बम्बई वाले और श्री लालचन्द जी चड्ढा गोविन्दपुरी जिला मेरठ वालों ने पांच-पांच सौ रुपये की सहायता प्रदान की है, उनका भी धन्यवाद है, और भी जिन-जिन भाइयों ने पेशगी आर्डर देकर उत्साह बढ़ाया है उन सब भाइयों का धन्यवाद है। इस पुस्तक में कुछ कमियां भी हैं। जो मेरी अपनी हैं, उनके लिए क्षमा का दान मांगता हुआ मैं हर पढ़नेवाले भाई और बहिन से यह आशा करता हूं कि वे इस पुस्तक के सम्बन्ध में अपनी सम्मति मुझ को अवश्य लिखें। ताकि अगले एडीशन में इस पुस्तक को और भी विचित्र बनाया जा सके। अगर कुछ भी पाठक इस पुस्तक से प्रभावित हो सकेंगे तो मैं अपने आठ वर्षों के निरन्तर प्रयत्न को जो मैंने इस पुस्तक की तैयारी में किया है सफल समझूंगा। इतने ही शब्दों के साथ मैं यह पुस्तक जनता जनार्दन को भेंट करता हूं।

आपका शुभचिन्तक
कुन्दनलाल आर्य
२५ जनवरी १९६५

।। ओ३म् ।।

प्रस्तावना

लेखक : **प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'**, वेद सदन, अबोहर-१५२११६

इस पुस्तक के लेखक श्री महाशय कुन्दनलाल जी चूनियाँ वाले अपने समय के पंजाब के एक जाने माने आर्यसमाजी थे । मेरा उनसे बहुत अच्छा परिचय था । वह आर्यसमाज के उर्दू पत्रों में नियमित रूप से लेख दिया करते थे । उनका जन्म लाहौर के निकट चूनियाँ कस्बा में सन् १८९४ में हुआ था। यद्यपि उनके पिता जी महात्मा हंसराज जी के विद्यार्थी व भक्त थे परन्तु कुन्दनलाल जी बाल्यकाल में देवी के पक्के भक्त थे । सन् १९०७ में ला० लाजपतराय के दश से निष्कासन के समय एक आर्योपदेशक का प्रचार सुनकर व पुलिस की धमकियों के सामने उसकी दृढ़ता निर्भीकता देखकर आप भी दृढ़ आर्यसमाजी बन गये ।

आपने पूना, लाहौर व जालन्धर में आर्यसमाज की बहुत सेवा की। शास्त्रार्थ करने की योग्यता भी प्राप्त कर ली । पौराणिकों से ५-६ बार शास्त्रार्थ किया । श्रीयुत कुन्दनलाल जी का स्वाध्याय बहुत विस्तृत था । उनकी इस पुस्तक का एक एक पृष्ठ हमारे इस कथन का ज्वलन्त प्रमाण है ।

उन्होंने महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित को एक नई शैली से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यह पुस्तक जनसाधारण व विद्वानों के लिए एकसमान उपयोगी है । इस एक पुस्तक के पाठ से अनेक महापुरुषों के जीवन की झांकी देखी जा सकती है । व्याख्याता लोग इस पुस्तक में वर्णित घटनाओं के दृष्टान्त देकर अपने भाषण को रोचक बनाकर श्रोताओं को सरलता से अपनी बात हृदयाङ्गम करवा सकते हैं ।

इस पुस्तक का नाम यदि **'एक महामानव का प्रेरक या विचित्र जीवन'** होता तो अधिक उपयुक्त रहता । इसके नामकरण से कई विद्वानों को मतभेद था परन्तु इसमें दो मत नहीं कि यह पुस्तक आबाल वृद्ध, पठित अपठित सबके लिये उपयोगी व पठनीय है । लेखक ने सैकड़ों ग्रन्थों से लाभ उठाकर इसको रचा है । उस काल के आर्यसमाजियों की तीन मुख्य विशेषतायें

थीं—सत्यनिष्ठा, निडरता और स्वाध्यायशीलता । आर्यों की स्वाध्यायशीलता के कारण ही एक बार **इस्लाम के प्रख्यात लेखक, विद्वान् व शास्त्रार्थ महारथी मौलाना सना उल्ला जी ने बदोमल्ली (पश्चिमी पंजाब) के एक शास्त्रार्थ में कहा था कि जब मैं आर्यसमाज में बोलता हूँ तो मुझे ऐसे लगता है कि मैं एक विश्वविद्यालय में बोल रहा हूं ।** श्रीयुत कुन्दनलाल जी आर्य में आर्योचित ये तीनों गुण पाय जाते थे ।

यहां इस पुस्तक के लेखक के जीवन के एक पहलू की चर्चा करना अत्यावश्यक व उपयोगी है । आप १९१७ से १९१९ ई० तक पूना में रहे। तब अपने कुछ आर्य मित्रों को लेकर महर्षि दयानन्द जी व आर्यसमाज विषयक चर्चा के लिये लोकमान्य तिलक, पंडिता रमाबाई, श्री एन०सी० केलकर, कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति साहू जी महाराज व आर्य नेता केशवराव जी हैद्राबाद से भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त किया ।

छत्रपति साहू जी महाराज ने आर्यसमाज मन्दिर पूना के लिए अपना नानापेट वाला एक मकान दान कर दिया । **छत्रपति शिवा जी महाराज का वंश आर्यसमाज से जुड़ा—इसमें कुन्दनलाल जी भी एक कड़ी बन गये। पण्डिता रमाबाई को ऋषि जी ने ब्रह्मचारिणी रहकर प्रचार की प्रेरणा दी थी । यह ऋषि की दिव्य दृष्टि ही थी । पौराणिकों की कृपा से रमाबाई ईसाई बन गई । उसने न्यून अति न्यून ५०००० हिन्दू स्त्रियों को ईसाई बना दिया । यह उसकी लग्न, योग्यता व कार्यक्षमता का फल था । उसने पौराणिकों की दुर्बलताओं का लाभ उठाकर इतनी स्त्रियों को धर्मच्युत कर दिया ।**

जब कुन्दनलाल जी शिष्टमण्डल के साथ पण्डिता रमाबाई से मिले तो उसने अत्यन्त नम्रता से ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धा भक्ति को व्यक्त किया । **ऋषि दयानन्द को एक निष्कलंक महापुरुष बताया । ऋषि के पवित्र जीवन की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।** जब तक रमाबाई जीवित रहीं तब तक किसी शत्रु को महर्षि दयानन्द व रमाबाई की भेंट के बारे में कुछ भी अनापशनाप कहने का दु:साहस न हुआ परन्तु रमाबाई के निधन के पश्चात् एक पतित आत्मा ने 'महर्षि रमा संवाद' रचकर अपनी निर्लज्जता का प्रदर्शन किया । पण्डिता रमाबाई ने विधर्मी होकर भी सदैव ऋषि के निर्मल जीवन की प्रशंसा की । कुन्दनलाल जी रचित इस ऋषि-जीवन के प्राक्कथन में

उनकी रमाबाई से ऐतिहासिक भेंट को दिये बिना यह पुस्तक अधूरी ही रहती।

इस पुस्तक को पढ़ते हुए इतनी सावधानी अवश्य बरती जाय कि दूसरों से महर्षि दयानन्द की तुलना करते समय वक्ता व लेखक कुछ चौकस रहें । इतिहास में महापुरुषों की एक दूसरे से तुलना एक सामान्य परिक्रिया है परन्तु तुलना सर्वांश में नहीं हुआ करती। वक्ता यह ध्यान रखें कि तुलना कथन को कृत्रिम न बना दे । साथ ही पाठक इस में वर्णित ऋषि जीवन की घटनाओं का पं० लेखराम जी व देवेन्द्र बाबू लिखित ग्रन्थों से भी मिलान करेंगे तो विशेष लाभ होगा । भूलचूक न रहेगी ।

एक और बात का ध्यान रहे कि प्रत्येक व्यक्ति को ऋषि जी का शिष्य न बताया जाय । ऐसा कहना व लिखना सचाई का मुंह चिढ़ाने वाली बात है । हर कोई पं० गुरुदत्त, महात्मा मुंशीराम, पं० लेखराम, महात्मा नारायण स्वामी, स्वामी दर्शनानन्द, पं० शिवशङ्कर, पं० आर्यमुनि व पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय की पंक्ति में कैसे खड़ा हो सकता है ? देश सेवक, बलिदानी, क्रान्तिकारी सभी आदरणीय तो हैं परन्तु सब को ऋषि दयानन्द का शिष्य बताना हास्यास्पद लगता है ।

अच्छा होता यदि इसी संस्करण में पुस्तक की भाषा का भी सुधार कर दिया जाता । लेखक मूलतः उर्दू लेखक थे । उनका हिन्दी लेखन का अभ्यास न होने से पुस्तक की सामग्री बढ़िया होने पर भी भाषा दोषयुक्त है । यह कुछ सन्तोष की बात है कि श्री रमेश जी मल्होत्रा व ला० आदित्यप्रकाश के अनुरोध पर श्री आचार्य विश्वदेव जी ने पुस्तक की भाषा में यथासम्भव कुछ सुधार भी कर दिया है । कुछ भी हो लेखक का परिश्रम व श्रद्धा भक्ति प्रशंसनीय है ।

इस पुस्तक के प्रकाशक श्री ला० आदित्यप्रकाश जी आर्य साहित्यानुरागी और धुन के धनी हैं । आपने कई उत्तम पुस्तकों को प्रकाशित करके बड़ा यश कमाया है । आर्य साहित्य के प्रकाशन को एक नई दिशा देने वाले आर्य सेवकों में आप सदा अविस्मरणीय रहेंगे । आपने अपने 'अनीता आर्ष प्रकाशन' द्वारा जो ठोस कार्य किया है व कर रहे हैं, उस पर पं० लेखराम के मानस पुत्र जितना भी अभिमान करें, थोड़ा है । कभी पानीपत के आर्यों ने अपनी लेखनी व वाणी से भारत भर में धूम मचा रखी थी । इन पंक्तियों के लेखक ने शास्त्रार्थ युग की जिस प्रथम पुस्तक का अपने बाल्यकाल में

अध्ययन किया वह पानीपत के श्री ला० अनूपचन्द जी 'आफ़ताब' की कृति 'ऋषि का बोलबाला' थी । ऐसी बीसियों पुस्तकें पानीपत के आर्यों ने लिखीं व छपवाईं ।

हमारे मान्य बन्धु ला० आदित्यप्रकाश जी आर्य ने अतीत को वर्तमान करके दिखला दिया है । 'अनीता आर्ष प्रकाशन' ने आर्य साहित्य की गरिमा को चार चाँद लगा दिये हैं । सौभाग्य का विषय हैं कि इस संस्था को संभालने व पालने में लाला जी को आचार्य नन्दकिशोर जैसा नररत्न मिला हुआ है। ब्र० नन्दकिशोर धर्मसेवा के क्षेत्र में पुरुषार्थ व परमार्थ का एक पुतला है । ऋषि भक्तों का कृतज्ञ हृदय इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए लाला जी व ब्र० नन्दकिशोर जी का आभारी रहेगा ।

धार्मिक पुस्तकों को प्रकाशित करके खपाना एक कठिन कार्य है । यह एक जटिल समस्या है । मेरा आर्य जनता से अनुरोध है कि इस पुस्तक के प्रसार में अनीता आर्ष प्रकाशन को भरपूर सहयोग करें । इन शब्दों के साथ एक बार फिर ला० आदित्य प्रकाश जी को इस शुभ कार्य के लिए बधाई देता हुआ उनका अभिनन्दन करता हूं ।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

रक्षाबन्धन
विक्रम संवत् २०५८

विषय-सूची

(६) भाष्य-काण्ड

(७) रिफ़ारमर काण्ड

(८) भक्त-काण्ड

(९) राजकाण्ड

(१०) विदेश-काण्ड

(१३) संगठन-काण्ड

(१४) बलिदान-काण्ड

(१५) काण्ड

(१६) काण्ड

(१७) महिमा-काण्ड

(१८) काण्ड

पांडीचेरी के योगीराज अरविन्द ने कहा संसार के महापुरुषों को पहाड़ की चोटियां माना जाये तो दयानन्द सबसे ऊँची चोटी हैं ।

॥ ओ३म् ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥

१. परिचय-काण्ड

पूर्णपुरुष का संक्षिप्त परिचय

संवत् १८८१ विक्रमीय की फागुन बदि १० मुताबिक १२।२।१८२५ मूल नक्षत्र में मोरवी राज्य के 'टंकारा' ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर, जो धनाढ्य, जमींदार और राजकर्मचारी था, एक बालक उत्पन्न हुआ । माता पिता ने उसका नाम मूलशंकर रक्खा । पिता का सारा परिवार शैव था । पांच वर्ष की आयु में ही बालक को देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करा के कुलधर्म की विधि के अनुसार श्लोक, मन्त्र स्तोत्रादि कण्ठ कराने आरम्भ कर दिये गये । आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही गायत्री मन्त्र और साथ-साथ सन्ध्यावन्दन की शिक्षा और रुद्राध्याय कण्ठ कराके यजुर्वेद संहिता का अभ्यास कराया गया । पिता ने शिवभक्ति में प्रेम उत्पन्न कराने के लिए पार्थिव-पूजा का उपदेश भी दिया । दश वर्ष की आयु में मूलशंकर ने पार्थिव-पूजा का साधारण व्रत लिया ।

संवत् १८९४, चौदह वर्ष की आयु में पिता ने शिवरात्रि-व्रत के लिए पुत्र को तैयार कर लिया । दिन भर शिवपुराण आदिक से बड़ी रोचक कथाएं सुनाईं, जिन पर बालक इतना मोहित हुआ कि माता के मना करने पर भी उसने २४ घण्टे उपवास करना मान लिया । रात को शिवमन्दिर में सब उपासक एकत्र हुए, शिवपूजन के पश्चात् धीरे-धीरे सब सो गये। सामवेदी पिता भी ऊंघने लगे, परन्तु १४ वर्ष का बालक, श्रद्धा से प्रेरित, आँखों पर छींटे डाल-डाल कर जागता रहा । आधी रात के पीछे कैसा चमत्कार हुआ ? उस नायक के शब्दों में ही वर्णन करना ठीक है-

"मन्दिर के बिल में से एक चूहा निकल कर शिव की पिण्डी के चारों ओर घूमने लगा। फिर कूद कर ऊपर चढ़ गया और अक्षत नैवेद्यादि पर हाथ साफ करने लगा, उस समय चित्त में विविध प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। प्रश्न यह था कि जिसकी हमने कथा सुनी थी वही यह महादेव है या अन्य कोई ?…… महादेव की कथा में जो सुना था, क्या सम्भव है कि वह परब्रह्म हो जिसके सिर पर चूहे दौड़ते फिरते हैं ……जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े-बड़े दैत्यों का संहार करता है क्या उसे एक तुच्छ चूहे के भगाने की भी शक्ति नहीं है ?

१४ वर्ष का बालक उसी समय पिता को जगाता है और व्याकुलतापूर्वक उनके सामने अपने प्रश्न रखता है। पिता पुत्र की तर्कबुद्धि की अप्रतिष्ठा करके उसको अन्धविश्वास में फंसाना चाहते हैं, परन्तु पुत्र को सन्तोष नहीं होता। तब दृढ़ संकल्प करता है कि जब तक उस कल्याणकारी शिव के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लूंगा तब तक ऐसी बाह्यपूजा के समीप नहीं फटकूंगा और जब तक उस बालक ने परम पिता के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लिये तब तक किसी अन्य के आगे शिर नहीं झुकाया[१]। इसी दिन इस विचित्र बालक का आत्मिक जन्म हुआ। इसलिए उसकी जन्मतिथि न जानते हुए भी यही दिवस उसकी वर्षगांठ मनाने के लिए उचित समझा गया है।

विद्योपार्जन में मूलशंकर लग्न से तत्पर हो गया। १६ वर्ष की अवस्था में मूलशंकर से २ वर्ष छोटी बहिन का देहान्त हो गया। हैजा हुआ और कितना ही यत्न करने पर भी देखते देखते, चार घण्टों के अन्दर, प्राणान्त हो गया। बालक चकित हो गया, भगिनी भाई की ओर देखती नहीं है, मानो निष्ठुर होकर भ्रातृप्रेम को बिलकुल भुला दिया है। विस्मित बालक चित्र-लिखित की नाईं खड़ा रह गया, सारा घर रो रहा है और उसके आंसू नहीं निकलते। देखनेवाले उसे पाषाण-हृदय कहते हैं परन्तु

---

१. प्रसिद्ध मुसलमान नेता सर सय्यद अहमद ने संवत् १९३७ में लिखा था—"अगर इलहाम नहीं था तो क्या था जिसने स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिल को मूर्तिपूजन से फेरा ? वेदों के उन मुकामात को देखो जहां ज्योतिः स्वरूप निराकार की वहदानियत और उसकी सिफात को बयान किया है।"

वह मन ही मन में सोच रहा है–

"एक दिन मुझे भी मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, उस समय मृत्यु के दुःख से मुक्ति के लिए औषध कहां ढूंढता फिरूंगा और मुक्ति प्राप्त करने के लिए किस पर भरोसा करूंगा ? तब जिस प्रकार भी हो सके मुक्ति को हस्तगत करना ही चाहिये ।" उसी समय वैराग्य उत्पन्न हो गया और आत्मविचार होने लगा ।

इस घटना से ३ वर्ष पीछे मूलशंकर के गुरु, उसके विद्वान् चाचा को भी उसी रोग ने आ घेरा । मृत्युशय्या पर पड़े चाचा ने भतीजे को प्रेमपूर्वक पास बैठा कर प्रेम भरी आंखों से देखा और वैद्य के हाथ में नाड़ी देकर परलोक का रास्ता पकड़ा । इस बार आंसुओं की तार बंध गई । संसार की असारता का चित्र खिंच गया । और अमर होने के साधंन इष्ट मित्रों से पूछने लगा ।

माता पिता ने वैराग्यवान पुत्र को फंसाने के लिए विवाह की तैयारी कर दी । सिद्धार्थ ने तो गृहस्थ में फंसने के पीछे संसार की असारता के दृश्य देख कर सोई हुई धर्मपत्नी को पुत्र सहित छोड़ दिया था, परन्तु मूलशंकर ने फँसावट से पहले ही घर बार छोड़ने की ठान ली।

२२वें वर्ष के आरम्भ में बिना किसी को सूचना दिये एक दिन सायंकाल मूलशंकर घर से निकल खड़ा हुआ और मतों और सम्प्रदायों के फन्दों से बचता हुआ कार्तिक के मेले में सिद्धपुर जा पहुँचा । पुत्र का समाचार पाकर मूलशंकर के पिता मेले में जा पहुँचे और उसको शारीरिक दण्ड देकर अपने साथ लौटाया । पिता उधर मूलशंकर को लौटा ले जाने में दृढ़ थे और पुत्र बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए दृढ़ संकल्प किये बैठा था । तीसरी रात भाग कर जो पिता से विदा हुआ तो फिर घरवालों के कभी दर्शन नहीं किये ।

ब्रह्मचारी मूलशंकर ने सुन रक्खा था कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती और बिना स्वाध्याय तथा योगसाधन के सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं होता, इसलिए दिन रात शास्त्रों के अध्ययन में लगा रहा । ब्रह्मचारी होते हुए भोजन का बड़ा बखेड़ा था । इसलिए नर्मदा तट पर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से चौथे प्रकार का संन्यास ग्रहण कर लिया और गुरु ने 'दयानन्द सरस्वती' नाम रख दिया । उस समय दयानन्द की आयु २४

वर्ष की थी ।

संन्यास लेकर दयानन्द ने सच्चे योगियों से सत्संग करने के लिए राजपूताना, मालवा, राजस्थान के पहाड़ों और जंगलों में, जहां कहीं किसी योगी का पता सुना वहाँ पहुंच कर सत्संग किया । इस प्रकार संवत् १९०६ से १९११ के अन्त तक भ्रमण करते हुए संवत् १९१२ के आरम्भ में 'कुम्भ' मेले के अवसर पर हरिद्वार पहुंच साधु संन्यासियों से सत्संग किया । फिर जब तक मेला रहा चण्डी पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा । कुम्भ के मेले के पीछे ऋषिकेश, टिहरी, गढ़वाल, श्रीनगर आदि घूमते हुए केदारघाट, रुद्रप्रयाग, गुप्त काशी, गौरीकुण्ड, त्रियुगी नारायण और तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ कर, रमणीय और भयानक प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए कुछ दिन ऊखीमठ में विश्राम किया । केदारनाथ की ऊंची चोटी पर चढ़ कर फिर दूसरी ओर जोशी मठ से होते हुए बदरीनाथ की ऊंची पहाड़ी की खबर ली। जोशीमठ के रावल जी विद्वान् आदमी थे, उनसे पता लगाकर कई महात्माओं के सत्संग के लिए भ्रमण करता रहा । कभी अलखनन्दा का स्रोत ढूंढने चला गया, कभी पाण्डवों के स्वर्गारोहण के मार्ग पर जा खड़ा हुआ, पैर बरफ के ऊपर चलने से कट गए और उनसे रक्त बहने लगा, कहीं से भी अमृतरूपी औषध न पाकर द्रोणासागर में शरद् ऋतु व्यतीत की । चारों ओर से थककर निराश हो एक क्षण के लिए यह संकल्प उठा कि हिमालय पर पहुंच कर देह त्याग देना चाहिए। फिर उसी समय अन्तरात्मा से शब्द उठा कि पहले ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है ।

संवत् १९१३ के आरम्भ में मिरजापुर होते हुए कुछ दिन काशी निवास किया और चैत्र संवत् १९१४ वि० के आरम्भ से मध्य प्रदेश के जंगलों में नर्मदा का स्रोत ढूंढने के लिए चल दिये । जैसे अलखनन्दा का स्रोत ढूंढने में असली लक्ष्य योगी महात्माओं का सत्संग था, उसी प्रकार नर्मदा के स्रोत की तलाश भी उसी उद्देश्य से थी । इसी प्रकार ३ वर्ष जंगलों की खाक छानते और पहाड़ी वृक्षों और झाड़ियों में से बदन छिलवाते हुए संवत् १९१७ में मथुरा पहुंच कर दयानन्द ने गुरु विरजानन्द के सामने सिर झुका दिया और सब आधुनिक ग्रन्थों को यमुना में बहा कर ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया । चेले का

गुण, कर्म गुरु से मिल गया, प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी जिस शिष्य की प्रतीक्षा में वर्षों से बैठे थे वह सेवा में उपस्थित हो गया। गुरु के आशय को समझ कर, कपट छल को छोड़ सरलता से गुरु-आज्ञा का पालन होने लगा। पहर के तड़के यमुना से जल के कलश लाकर गुरु को स्नान कराना, अखण्डित ब्रह्मचर्यव्रत का धारण करना, और गुरु के दण्ड को औषधवत् स्वीकार करना ये सब गुण थे, जिन्होंने गुरु विरजानन्द के अन्दर शिष्य के लिए प्रेम का प्रवाह चला दिया। भक्त कबीर ने सच कहा है—

शिष तो ऐसा चाहिए गुरु को सब कुछ देय।
गुरु तो ऐसा चाहिए शिष से कुछ ना लेय॥

स्वाध्याय का समय समाप्त हुआ, शिष्य ने विदा के लिए आज्ञा मांगी और गुरु के आगे भेंट में लौंग रख दिये। गुरु बोले—"भोले शिष्य! क्या इस भेंट के लिए मैंने परिश्रम किया था ?" उत्तर मिला—'भगवन्! यह तन और मन आपके हवाले हैं। आज्ञा कीजिए, जो कुछ शक्ति में है उसके पालन के लिए यह शिर आगे है।' गुरु विरजानन्द ने अन्तिम आदेश दिया—'देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिक धर्म को जगत् में फैलाओ! दयानन्द ने अपना शिर दण्डी स्वामी के चरणों पर रख दिया। गुरु ने हार्दिक आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक अमूल्य बात यह कह दी—मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषियों की निन्दा है, ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।'

वैशाख संवत् १९२० को मथुरा से चलकर आगरा पहुंचते ही धर्मोपदेश का आरम्भ हो गया। सन्ध्योपासना और योगाभ्यास की विधि सिखाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत को सदाचार का मुख्य अंग बतलाते रहे। इस प्रकार के दौरे में मूलवेद के ग्रन्थों की ढूंढ भी होती रही।

धौलपुर, लश्कर, ग्वालियर, करौली, जयपुर से होते हुए संवत् १९२१ के चैत्रमास में पुष्कर के मेले पर भागवत और मूर्तिपूजा खण्डन की धूम मचाई। पुष्कर से अजमेर आकर बहुत दिनों निवास किया। यहां ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों से प्रेमपूर्वक विचार होता रहा। गोरक्षा के सम्बन्ध में इसी स्थान से लेख निकलने आरम्भ हुए और अंग्रेज

राजकर्मचारियों को गोवध बन्द करने के लिए प्रेरणा की गई।

संवत् १९२४ के हरिद्वार कुम्भ से एक महीना पहले ही सप्तस्रोत पर डेरा जा लगाया और 'पाखण्डखण्डिनी' नाम की झण्डी खड़ी कर दी। इस समय कई संन्यासी ब्रह्मचारी साथ थे और पुस्तक वस्त्र आदि का भी बड़ा सामान था। वेद के लिखित पुस्तक उनको प्राप्त हो चुके थे। मूर्तिपूजादिक कुरीतियों का जोर से खण्डन प्रारम्भ हो गया। सारे मेले में धूम मच गई और समस्त पन्थाई उनके दर्शनों को आने लगे। यति दयानन्द ने मठधारी संन्यासियों को निमन्त्रण दिया कि उनके साथ मिलकर सत्य का प्रचार करें परन्तु उधर से उत्तर मिला कि कहीं उलटी गंगा भी बही है। वर्त्तमान अविद्या को नाश करते हुए देख कोई गृहस्थ लोटा भाङ्ग को भी न पूछेगा। सत्य पर आरूढ़ दयानन्द का हृदय हिल गया। पन्थाइयों के चारों ओर अविद्या के बादल घिरे देखकर उन को छिन्न-भिन्न करने के लिए कमर कस ली। अन्तिम व्याख्यान देते-देते कण्ठ से आर्तनाद निकल पड़ा। और 'सर्वं वै पूर्णं स्वाहा।' कहकर पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी कपड़े, दुशाले, नकदी इत्यादि सब कुछ बांटकर केवल एक मात्र कौपीन धारण कर सत्य के प्रचारार्थ चलने को तैयार हो गये। सारा मेला चकित रह गया। एक परम मित्र विद्वान् के पूछने पर उत्तर दिया—"मैं सत्य को स्पष्ट कहना चाहता हूँ और आवश्यकताएँ उसमें बाधक हैं, उनके त्यागे बिना बेखटके नहीं हो सकता और न अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता हूँ।"

हरिद्वार से सीधे ऋषिकेश पहुंचे। फिर लौट कर गङ्गा के किनारे जो यात्रा आरम्भ की तो उसी अवस्था में ७ वर्ष तक भ्रमण करते रहे। कई बार कई दिनों तक निराहार रहकर प्रचार किया। जाड़ों में भी सिवाय कौपीन और भस्म रमाने के कोई वस्त्र धारण न किया। गङ्गा-रज पर पत्थर का सिराहना रख रातें काटीं। पर्णकुटी में जाड़ा मिटाने के लिए सोये, ब्रह्मचारी वीर को भक्त रजाई उढ़ा जाते परन्तु प्रातःकाल उसे अलग फेंकी हुई पाते। यज्ञोपवीत के अधिकारियों को यज्ञोपवीत दिलाते, जनता को सन्ध्यावन्दन की विधि सिखाते और अविद्याग्रस्त हिन्दुओं को पौराणिक जाल से मुक्त कराते हुए अनूपशहर, बेलोन, रामघाट, अतरौली, छलेसर, सोरों, कासगञ्ज, फर्रुखाबाद, कन्नौज व कानपुर होते हुए काशी

पहुंचे, जहां महाराजा काशीनरेश की संरक्षा में ३२ प्रसिद्ध विद्वानों के साथ अपूर्व शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ की वह धूम मची कि अंग्रेजी समाचारपत्र 'पायोनियर' ने दयानन्द को 'हिन्दुस्तानी लूथर' की उपाधि दी, और काशी के पण्डितों ने माना कि "गृहस्थ ब्राह्मणों में विद्याध्ययन का न्यून अवकाश है। इन लोगों में जो कोई विद्याध्ययन करते हैं बहुधा एक ही शास्त्र पढ़ते हैं...... और कोई पुण्यशाली पुरुष हैं जो वेदशास्त्र सब जानते हों परन्तु संन्यासियों में ऐसे विद्वान् हैं जो वेदों के उपनिषद् भाग भली प्रकार जानते हैं...... और दयानन्द स्वामी प्रतिवादी के वचन में शीघ्र कह देते हैं कि यह वेद में नहीं है अथवा वेदविरुद्ध है, इससे प्रमाण नहीं। इस से जाना जाता है कि दयानन्द स्वामी को वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र बहुत उपस्थित हैं।" (धर्मनिर्णय पृ० २१)

दयानन्द ऋषि थे, क्योंकि तत्त्वदर्शी थे। "ऋषिः दर्शनात्" निरुक्त में है। काशी में ऋषि दयानन्द ६ बार गये और वहीं से वैदिक पाठशालाओं का सिलसिला आरम्भ किया। वेदभाष्य की छपाई भी 'लाजरस' के यन्त्रालय में यहीं शुरू हुई। काशी से निवृत्त हो मुंगेर व भागलपुर होते हुए राजधानी कलकत्ता में पहुंचे, जहां ब्रह्मसमाज के सञ्चालकों से विशेष भेंट हुई। इस समय ऋषि दयानन्द ने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रक्खा था। एक व्याख्यान का अनुवाद पं० महेशचन्द न्यायरत्न ने अशुद्ध किया। उस दिन से दयानन्द ने निश्चय कर लिया कि हिन्दी भाषा द्वारा ही उपदेश दिया करेंगे। कलकत्ता से हुगली में पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति के साथ शास्त्रार्थ करते हुए भागलपुर, पटना, छपरा, आरा और डुमरांव के मार्ग से फिर कानपुर पहुंचे। वहां मूर्तियों को गंगा में प्रवाह करने के भाव को फैलाकर फर्रुखाबाद, छलेसर, अलीगढ़, हाथरस होते हुए मथुरा वृन्दावन में अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द के सिद्धान्तों की धूम मचा दी। फिर प्रयाग में पहुंचकर पहला सत्यार्थप्रकाश लिखाया और जब्बलपुर से नासिक होते हुए संवत् १९३१ के कार्तिक मास में बम्बई पहुंचे।

गुजरात काठियावाड़ की यात्रा से लौटकर चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९३२ शनिवार के दिन बम्बई में 'आर्यसमाज' को स्थापन किया। वहां से पूना जाकर जबर्दस्त १५ व्याख्यान दिये और कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ

करने के पीछे ज्येष्ठ संवत् १९३३ में फर्रुखाबाद, बनारस, जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली व कर्णवास घूमते हुए जनवरी सन् १८७७ ई०(माघ संवत् १९३४) के आरम्भ में लार्ड लिटन वाले देहली दरबार में पहुंच गए। वहां भारत के हिन्दू मुसलिम सब सुधारकों को एकत्र करके संगठित रूप से कार्य करने का विचार किया, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। वहां से मेरठ व सहारनपुर होते हुए पंजाब का दौरा किया और उन्हीं दिनों लाहौर आदि स्थानों में आर्यसमाज की बुनियाद डाली गई। आर्यसमाज लाहौर के स्थापना की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३४ है। पंजाब में ऋषि दयानन्द की शिक्षा को लोगों ने शीघ्र ही ग्रहण किया जिससे आचार्य को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने समझा कि अब वैदिक धर्म के पुनरुद्धार की बुनियाद दृढ़ पड़ गई।

पंजाब की यात्रा से लौटकर संयुक्त प्रान्त के भिन्न-भिन्न नगरों में प्रचार करते हुए अजमेर पधारे जहां से फिर लौट कर विधर्मियों से शास्त्रार्थ करते हुए संयुक्त प्रान्त और बिहार के बहुत से शहरों में प्रचार किया। संवत् १९३६ वि० के कुम्भ मेले पर हरिद्वार में अन्तिम उपदेश हुआ जिसका प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। फिर देशी रियासतों में प्रचार करते हुए उदयपुर में महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में परिवर्तन कर उसी स्थान में अपना इच्छापत्र (Will) रजिस्ट्री कराया। जिसके द्वारा "परोपकारिणी सभा" की बुनियाद पड़ी।

उदयपुर में हिन्दूपति महाराणा सज्जनसिंह जी को शास्त्रीय शिक्षा देकर रियासत शाहपुरा में वहां के श्रद्धालु नरेश श्री नाहरसिंह जी को मनुस्मृति का अध्ययन कराया।

३१ मई सन् १८८३ ईस्वी (ज्येष्ठ १९४० वि०) को महाराजा जोधपुर के निमन्त्रण पर ऋषि दयानन्द वहां पधारे। महाराजा प्रतापसिंह को शारीरिक व्यायाम और सदाचार की शिक्षा दी। विधर्मी मतों के प्रचारकों ने राजवेश्या के साथ संवेदना का भाव प्रकट करते हुए पाचक जगन्नाथ ब्राह्मण द्वारा विष दिला दिया। ऋषि दयानन्द को जब रुग्ण होने पर इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने उदार भाव का कई प्रकार से परिचय दिया। घातक जगन्नाथ को कुछ रुपये देकर फांसी से बचाने के लिए भगा दिया और निरन्तर एक मास तक तीक्ष्ण पीड़ा के समय

भी शान्त रहकर सिद्ध कर दिया कि बाल ब्रह्मचारी में कितनी सहनशक्ति होती है । फिर कार्तिक संवत् १९४० को अमावस्या के सायंकाल ६ बजे, जब कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्ल पक्ष का उदय था, ईश्वर प्रार्थना के पश्चात् हर्ष सहित गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे । फिर प्रफुल्लित वदन समाधि में रहकर आंखें खोलीं और प्रेम भरे शब्दों में कहा–

"हे दयामय ! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर ! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो !! अहा ! तुम ने अच्छी लीला की ।" इतना कह कर करवट ली और श्वास को रोक कर एक बार में ही प्राण त्याग दिये ।

आदर्श पुरुष 'दयानन्द'

अन्य धार्मिक संशोधकों की तरह दयानन्द केवल एक ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं हैं अपितु वे करोड़ों नरनारियों के सामने प्रत्यक्ष कार्य करते रहे हैं परन्तु मैंने इनके अनेक रूप देखे हैं, और इनको अनेकों रूपों में देखा है, जिस से मुझ को इस ग्रन्थ के लिखने की प्रेरणा हुई है, और इस ग्रन्थ को आदि-अन्त पर्यन्त पढ़ने वाले सज्जन भी दयानन्द के अनेक रूपों का दर्शन कर पायेंगे, जिससे मैं अपने पचास साला प्रयत्न को सफल मानूंगा । यूरोपियनों ने उसे 'भारतीय लूथर' कहा, हिन्दुओं ने शंकराचार्य का अवतार लिखा, अमेरिका में बैठे योगी ऐन्ड्रयू जैक्सन डेविड ने परमात्मा का आज्ञापालक पुत्र बतलाया, जिसने जो कुछ समझा उसी रूप में दयानन्द को देखा । दयानन्द के अन्दर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उत्तम शक्तियों का उत्तम रूप में समावेश था । दो गज से ऊंचा कद, तेजोमय उन्नत तथा प्रशस्त ललाट, दुहरा परन्तु गठा हुआ बदन, पक्का न बदलने वाला रंग, आंखों की ज्योति में असीम आकर्षण शक्ति, जिसके तेज के आगे ठहरना कठिन, वाणी में माधुर्य और वीररस का मेल, सारांश यह कि उस विशाल, प्रभावशाली मूर्ति को देखकर यह ज्ञात होता था कि परमेश्वर ने इसे मनुष्यों के हृदयों पर राज्य करने के लिए जन्म दिया है । आधुनिक हिन्दुओं ने योग के साथ शरीर की सूक्ष्मता का सम्बन्ध जोड़ रखा है । दयानन्द ने प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया कि बाल-ब्रह्मचारी योगी के अन्दर शारीरिक शक्ति की

भी पराकाष्ठा होती है । बिहार में एक ब्रह्मचारी को साथ लिये जा रहे हैं, २० मन बोझ से लदे हुए छकड़े को ३ मजबूत बैल खींच रहे हैं, पहिये आधे कीचड़ के अन्दर धंस गये हैं, बीसियों आदमी, प्रयत्न करने पर भी, छकड़े को आगे चला नहीं सकते । दयानन्द अपनी पुस्तकों का बोझ रखकर कीच में उतर जाते हैं, बैल खोल दिये जाते हैं । जुए को बगल में दबाकर बालब्रह्मचारी चल देता है, छकड़ा कीच से निकलकर सड़क पर आ जाता है ।

निर्भीकता का एक ही उदाहरण पर्याप्त है । सत्य सनातन वैदिक मत का मण्डन और असत्य मतों का खण्डन हो रहा है। क्रोध से विवश हो कलियुगी राजपूत म्यान से तलवार निकाल लेता है । पुरुषसिंह की गरज से लरज कर राजपूत की तलवार हाथ से गिर जाती है और ऋषि का गम्भीर नाद सुनाई देता है—"क्षत्रिय का कृपाण अधर्म को देखे बिना म्यान से बाहर नहीं निकलता और जब निकलता है तब बिना दुष्टों को दण्ड दिये म्यान में नहीं जाता ।" कितनी ही बार सांसारिक बड़े से बड़े आक्रमणों के सामने दयानन्द का विशाल वीर हृदय चट्टान की तरह दृढ़ रहा । इसके उदाहरण पर उदाहरण देने के लिए स्थान नहीं है । फिर हृदय की कोमलता का क्या ठिकाना है ! खण्डनरूपी खड्ग से दुःखित ब्राह्मण ने विषयुक्त पेड़े सामने धर दिये, योगी ने परीक्षा करके भांप लिया, ब्राह्मण घबरा गया परन्तु दयालु आचार्य ने उसे उपदेश देकर विदा किया, ऋषिभक्त मुसलमान तहसीलदार ने दुष्ट ब्राह्मण को अन्य अपराध लगा कर ६ महीने का कारावास दिया । तहसीलदार अपनी कारगुजारी की दाद लेने आया, ऋषि ने मुंह फेर लिया । फिर पूछने पर उत्तर दिया—"मैं कैद कराने नहीं आया किन्तु संसार को अविद्यान्धकाररूपी कारावास से छुड़ाने आया हूं ।" दयानन्द की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक योग्यता के इतने उदाहरण ही पर्याप्त हैं । इन सब घटनाओं से इतना ही पता लगता है कि दयानन्द एक उच्चकोटि के मनुष्य थे परन्तु जो शिक्षा उसने अपने समय में फैलाई उसकी दृष्टि से हम उसे 'तत्त्ववेत्ता' कह सकते हैं, क्योंकि हमें वह भारतवर्ष में वर्तमान युग का विधाता दिखाई देता है ।

युगविधाता दयानन्द

एक योरोपियन विचारक ने लिखा है–

"किसी युग का आदर्श मध्यस्थ संशोधक अपने समकालीन पुरुषों की अधिक संख्या की दृष्टि में अवश्यमेव पीछे की ओर ले जाने वाला प्रतीत होता है। इसके कई कारण हैं परन्तु मुख्य कारण एक ही होता है जो विविध दृष्टियों से देखा जाता है। सच्चा संशोधक वह मनुष्य नहीं है जिसमें समय की क्षणिक आवश्यकता को पूरी करने के लिए कोई नई बात गढ़ने की मौलिकता हो। सच्चा संशोधक वह है जो प्राचीन संशोधकों के काम के अन्दर घुसकर उनके विचारों के स्वाध्याय से, उनमें से स्थिर मूल्य और महत्त्व के सिद्धान्तों को चुन लेता है[१]।"

भारत में यह सर्वमान्य सच्चाई है कि आत्मज्ञान के प्रसारक बालब्रह्मचारी स्वामी शंकराचार्य्य के पश्चात् बालब्रह्मचारी दयानन्द ने ही सच्चे संशोधक का आसन ग्रहण किया था। वे अपने प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के अन्त में लिखते हैं–सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसे सदा से मानते आये...... वही सब को मन्तव्य.... अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं...... मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सब को एक सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है।'

संसार में ऐसे विरले ही लोग होते हैं जो सर्वथा किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें। तत्त्ववेत्ता वे नहीं कहाते जो किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें, क्योंकि इन अर्थों में तत्त्ववेत्ताओं की संख्या छंटते-छंटते शायद शून्य तक पहुंच जाये। तत्त्ववेत्ता वे कहाते हैं जो पहले से विद्यमान अनेक सिद्धान्तों की परीक्षा कर एक नवीन रूप तथा अपेक्षया सत्य के अधिक पास विद्यमान सिद्धान्त का प्रकाश तथा व्याख्यान करें। तत्त्ववेत्ता

१. The typical central reformer of any age necessarily appears, to a large majority of his contemporaries. as a retrogade, for several reasons, which however. are probably one. seen under several aspects. The true reformer is not the man who has sufficient originality to present something new, to meet some accidental need of the moment, but he who goes back to the work ancient reformers, carrying to the study of their work sufficient genius to select out, among their data, those of permanent value and importance.

का काम ठीक ठीक चुनाव करना है, नई घड़न्त करना नहीं । इस अनन्त जीर्णाङ्ग संसार में भला नई घड़न्त कैसे सम्भव है । उपस्थित सचाइयों में से चुनाव किया जा सकता है, उनमें से किसी एक का विस्तार भी किया जा सकता है किन्तु किसी नई सचाई का सर्वथा उद्भव करना सर्वथा असम्भव है । कपिल मुनि भारी दार्शनिक थे किन्तु उनका दर्शन "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां" इत्यादि उपनिषद् वाक्य का व्याख्यान मात्र था । योरोप के विकासवादी (Evolutionist) डार्विन, हर्बर्ट स्पेंसर और बीजमैन तत्त्ववेत्ता कहाते हैं, किन्तु वस्तुत: वे भी कपिलमुनि के परिणामवाद के व्याख्याता मात्र ही हैं । तत्त्ववेत्ता सचाई के उद्भावक नहीं होते किन्तु चुनने वाले और व्याख्या करने वाले होते हैं, चुनना तथा व्याख्या करना तत्त्ववेत्ताओं के सम्बन्ध में बहुत बड़े महत्त्व को पा जाता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्त्ववेत्ताओं का कार्य चुनाव तथा व्याख्यान का है । इस दृष्टि से ऋषि दयानन्द ने वेदादि सत्य शास्त्रों में से जिन छिपे रत्नों को चुन कर जनता के सामने रखा उन्हें देख दयानन्द की बुद्धि का चमत्कार प्रतीत होता है ।

युग की आवश्यकता

दयानन्द के कार्यक्षेत्र में आने के समय यद्यपि भारत में कई छोटे बड़े सम्प्रदाय काम कर रहे थे परन्तु सब के सब अपने पुराने आदर्शों से गिर चुके थे । विचार-स्वातन्त्र्य का ऐसा तिरोभाव था मानो उसका कभी प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ । धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक पराधीनता ने भारत सन्तान को मुर्दा बना दिया था । किसी क्षेत्र में भी भारतवासियों को दासता की जंजीरें काटने का साहस नहीं होता था । ऋषि दयानन्द ने अन्य संशोधकों की तरह बाह्य कुरीतियों से जूझने का प्रयत्न ही न किया प्रत्युत गिरावट के कारणों की तह में जाकर मुर्दा जाति में प्राण डालने का साहस किया ।

धार्मिक संशोधन के क्षेत्र में मायावाद, प्रकृतिवाद और नैष्कर्म्यवाद तथा शून्यवाद के एकदेशीय जालों को छिन्नभिन्न कर दयानन्द ने कर्मवाद तथा त्रयीवाद की स्थापना करके समकालीन सम्प्रदायों की सब कमियों को पूरा कर दिया । मूर्तिपूजन, अद्वैतवाद, मृतकश्राद्ध,

पाप की क्षमा, अवतारवाद और इसी तरह के बीसियों अन्धविश्वासों के जाल पर वार करने का उस समय किसे साहस होता था ? दयानन्द ने दृढ़ता से इन सब का मुकाबला किया। पण्डितों, मौलवियों और पादरियों की दासता से जनता को छुड़ाने के लिए तर्क के ऐसे बाण छोड़े कि सारा जाल कट गया। उन्होंने दिव्यदृष्टि से देखा कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीनों प्राचीन हैं। उनके परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान भी अनादि है। सारे संसार के सम्प्रदायों का स्रोत भी वही ज्ञान होना चाहिए। जब नवीन कुछ भी नहीं तो कल्पना से क्या प्रयोजन ? जब सम्पूर्ण मतमतान्तर एक अनादि ज्ञान से ही निकले हैं तो उन में पराया है ही क्या ? जब सब अपने हैं तो उन सब में पीछे से मिली हुई अविद्या को दूर करना भी अपना ही कर्त्तव्य है। इस उदार दृष्टि से दयानन्द ने, किसी मत को पराया न समझते हुए, सब में धार्मिक संशोधन का ही प्रयत्न किया। इस सचाई को न समझ कर साधारण मस्तिष्क वाले पुरुष ऋषि दयानन्द के खण्डन खड्ग की निन्दा करते हैं परन्तु दीर्घदर्शी पुरुष जानते हैं कि दयानन्द ने जो खण्डनात्मक कार्य किया वह उस उदार आत्मा का कर्त्तव्य ही था। अल्पबुद्धि जन उसे समझ नहीं सकते।

सब से पहले वैदिक धर्म से निकले मतों को सीधा रास्ता दिखलाने के लिए वेदार्थ का सरल मार्ग ऋषि ने दिखलाया। पौराणिकों की बुद्धि चकित रह गई। मुसलमानों में सर सय्यद अहमद ने दयानन्द के महत्त्व को समझा और उनसे शिक्षा पाकर कुरान का बुद्धिपूर्वक भाष्य आरम्भ कर दिया। 'बहिश्त' के नये अर्थ किये और कुरानियों को अन्धविश्वास से निकालने का यत्न किया। कादियानी मिरजा ने भी अपने मत को चलाने के लिए उसी स्रोत से शिक्षा लेकर भी कृतघ्नता से स्रोत पर लाञ्छन लगाना आरम्भ किया। खालसा-वीरों ने भी अन्धविश्वास की दासता से निकलने का उसी समय पाठ पढ़ा। ईसाइयों में भी खलबली मच गई और उन्होंने भी उस समय से अपनी धर्म पुस्तक के नये नये भाष्य करने आरम्भ किये।

सामाजिक क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था को क्रियात्मक स्वरूप देकर दयानन्द ने सारे युग को पलटा दे दिया। ब्रह्मचर्य और संन्यास का शुद्ध स्वरूप अपने जीवन में दिखा, गृहस्थों को गुण, कर्मानुसार वर्ण-

व्यवस्था की मर्यादा बतला, जहां एक ओर स्वच्छन्दतारूपी बोलशेविज्म (Bolshevism) से संसार को बचाया वहां दूसरी ओर प्राकृत नियमों के विरुद्ध स्थापित जाति बन्धन की जंजीरों को तोड़ कर सामाजिक स्वतन्त्रता की बुनियाद डाली। शताब्दियों से अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ हिन्दू-समाज स्थिर सड़े हुए छप्पड़ (कच्चे तालाब) की तरह तामस वृत्ति में बेहोश पड़ा था, ऋषि ने तालाब को हिलाकर हिन्दुओं को जागृत किया। जो सड़ांद उठी उससे वे घबरा गए परन्तु जब सम्पूर्ण कीचड़ बाहर निकाल कर समाजरूपी जल को स्वच्छ कर दिया जायेगा तब हिन्दू जनता ऋषि के उपकार को समझेगी।

दयानन्द धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही युग का विधाता नहीं हुए। प्रत्युत–

राजनैतिक क्षेत्र में भी उसने बड़े परिवर्तन कर दिए। आज 'स्वदेशभक्ति', 'स्वराज्य', 'साम्राज्य' और 'प्रजातन्त्र राज्य' की चारों ओर धूम मच रही है, परन्तु ऋषि दयानन्द ने ४२ वर्ष पूर्व राजनैतिक शास्त्र की स्पष्ट बुनियाद डाल दी थी। जिस आर्य शास्त्र को एकसत्तात्मक राज्य का गुलाम समझा जाता था, उसी में से दयानन्द ने सिद्ध किया कि एक-सत्तात्मक राज्य प्राकृतिक नियम के ही विरुद्ध है। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में तीन सभाओं (विद्यार्यसभा, धर्मार्य सभा और राजार्यसभा) की बुनियाद डालकर शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से बतलाया कि एकसत्तात्मक राज्य कभी न होना चाहिए, उससे प्रजा का कभी कल्याण नहीं हो सकता। राजसभा के प्रधान और सभ्यों का परस्पर सम्बन्ध जतला कर राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध स्वदेशी अधिकारियों के ही आधीन करने पर बल दिया। फिर लक्ष ग्रामों की एक राजसभा के प्रबन्ध का वर्णन करके लिखा–

"लक्ष ग्रामों की राजसभा को (कर्मचारीगण) प्रतिदिन का वर्तमान जनाया करें और वे सब राज-सभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौम महाराज चक्रवर्ती राजसभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें।" इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सभा की भी बुनियाद आर्य ग्रन्थों से दिखला दी।

राजनैतिक उन्नति के अभिमानी योरोप का केन्द्र ब्रिटेन (Britain)

समझा जाता है । कहा जाता है कि इंगलैण्ड की भूमि पर पैर रखते ही गुलाम आजाद हो जाता है, ब्रिटेन प्रजातन्त्र राज्य का आदर्श समझा जाता था और उसका नाम राष्ट्रीय सभाओं की माता (Mother of Parliaments) रखा हुआ था परन्तु अन्य देशस्थ मनुष्य समाजों को दास बनाने में उसे कोई संकोच नहीं होता और उस राष्ट्र की पार्लियामेण्ट में भी पहले पहल यह भाव प्रधानामात्य सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैन (Sir henry Campbell Banner man) ने ही प्रकट किया था, कि "प्रजातन्त्र शासन का स्थान उत्तम शासन भी नहीं ले सकता ।" परन्तु उसमें भी बीस वर्ष पहले सच्चे संशोधक दयानन्द ने लिखा था–'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है । अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है ।" इससे बढ़ कर स्वराज्य की महिमा कोई क्या करेगा ? परन्तु साथ ही दीर्घदर्शी ऋषि ने अयोग्य शीघ्रगामी राजनैतिकों को सावधान भी कर दिया । स्वराज्य प्राप्ति के लिए यत्न प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है "परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा, अलग अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है । बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है । इसलिए जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है ।"

यह बड़ी कठिन मंजिल है । इसके लिए वेद शास्त्रों के सिद्धान्तों को समझकर उस पर अमल करना आवश्यक है । जहां धार्मिक और सामाजिक उन्नति क्षेत्र में भारत प्रजा को दयानन्द के पीछे चलकर ही कल्याण मार्ग सूझा है वहां राजनैतिक क्षेत्र में भी ४४ करोड़ भारतनिवासियों व ऋषि दयानन्द के बतलाये मार्ग पर ही चलकर यह सम्भव है कि झूठे अभिमान में फंसकर भारत के वर्त्तमान नेता ऋषि दयानन्द का नाम लेने में आनाकानी करें परन्तु उन सब को वास्तविक सफलता के लिए चलना उसी के निर्दिष्ट मार्ग पर पड़ा ।

आओ ! तत्त्ववेत्ता सच्चे संशोधक, युगविधाता, वर्तमान संसार के भाग्यनिर्माता ऋषि दयानन्द की शिक्षा का गहरी दृष्टि से स्वाध्याय

करें ।

पूर्ण पुरुष का आकार प्रकार

स्वामी जी का कद छह फुट तीन इंच था, शरीर सुडौल वज्र की भांति कठोर, रंग गोरा, मुख मण्डल पर चमक, आंखें बड़ी बड़ी, सर की खोपड़ी उभरी हुई, गुम्मद की तरह गोल । आवाज बहुत गम्भीर घोर गूंजने वाली, ऊंची और मधुर थी । पांच पांच मील तक उनकी आवाज गूंजती सुनाई देती थी और ऐसे समय में जबकि बिजली का इतना प्रयोग न था, और लाउडस्पीकर कोई जानता न था । हजारों की हाजरी वाले बड़े बड़े जलसों में महर्षि के व्याख्यान होते थे तो वह अपनी ऐसी आवाज से ही पचास पचास हजार की हाजरी को कण्ट्रोल करते थे । पांव में संदली खड़ाऊं, भगवे रंग का खुले बाजुओं वाला चोला पहनते थे तो सतयुग के ऋषियों के समान प्रतीत होते थे । उनकी नजर और उनके मुख मण्डल की आभा दुश्मनों के दिलों में खौफ हरास पैदा करती थी । बड़े बड़े ईसाई पादरी, मुसलमान मौलवी, धुरन्धर पण्डित कोई भी दयानन्द के सामने आकर मैदान में खड़ा न रह सका ।

***

२. देवता-काण्ड

एक जीवन में १०१ जीवन

(१) विष्णु आदित्य

सूर्य का नाम ही प्राचीन काल में विष्णु था। अतः विष्णु पुराण प्रथम अंश, श्लोक १३०-१३१ जीवानन्द विद्यासागर प्रेस कलकत्ता १८८२ ई० में सूर्य के १२ नाम गिनाये हैं। अदिति-पुत्र आदित्य के नाम-(१) विष्णु, (२) शुक्र, (३) अर्यमा, (४) धाता, (५) त्वष्टा, (६) पूषा, (७) विवस्वान्, (८) सविता, (९) मित्र, (१०) वरुण, (११) अंशुमान् और (१२) भग। इसी तरह महाभारत आदिपर्व अध्याय १२३ में भी लगभग १२ ही नाम सूर्य के लिखे हैं। जिस में विष्णु नाम भी सूर्य का वर्णित है। शतपथ ब्राह्मण १४।१।१।६ और १४।१।३।२६ में हरि नाम भी सूर्य का लिखा है। निघण्टु (जो वेद का शब्दकोष है) में भी अध्याय (५) खण्ड ६ में सूर्य के आठ नाम गिनाए हैं। (१) त्वष्टा, (२) सविता, (३) भग, (४) सूर्य, (५) पूषा, (६) विष्णु, (७) वैश्वानर, और (८) वरुण। आकाश का एक नाम विष्णुपद भी इसलिए है कि अन्तरिक्ष सूर्य का स्थान है। वेद भगवान् में भी कई स्थानों पर सूर्य का नाम विष्णु आता है। सूर्य का एक शरीरधारी देवता खड़ा करने वालों ने बड़ी चतुरता से काम लिया है और सूर्य से सम्बन्धित सभी घटनाओं को इस मनघड़न्त देवता के साथ जोड़ दिया है। उदाहरणतया-

(१) **विष्णु की सवारी गरुड़**-गरुड़ को संस्कृत में सुपर्ण भी कहते हैं और सुपर्ण नाम वैदिक देववाणी में सूर्य की किरणों का है। निघण्टु प्रथम अध्याय खण्ड ५ में सूर्य की किरण के नामों में सुपर्ण का नाम भी लिखा है अर्थात् सूर्य की किरणें भी सुपर्ण (गरुड़) विष्णु की सवारी हैं। हर कोई आदमी किसी सवारी पर ही चढ़ कर कहीं जाता है। इसी तरह सूर्य भी अपनी किरणों के द्वारा ही संसार को प्रकाशित

करता है । गोया गरुड़ या सुपर्ण किरण ही विष्णु यानी सूर्य की सवारी ठहरती है ।

(२) **विष्णु और समुद्र**–यह उक्ति प्रसिद्ध है कि विष्णु भगवान् क्षीरसागर में निवास करते हैं । निघण्टु में समुद्र नाम आकाश का है और सागर नाम भी आकाश का है । क्योंकि विष्णु नाम सूर्य आकाश में निवास करता है इस का देहधारी देवता बनाने वालों ने चतुर्भुज विष्णु को भी क्षीरसागर में ही सुला दिया है ।

(३) **विष्णु और शेषनाग**–यह भी कहा जाता है कि विष्णु भगवान् शेषनाग पर सोते हैं । गोया उन के सोने का आधार शेषनाग है । यानी जैसे हम चारपाई पर सोते हैं इसी तरह विष्णु भगवान् शेषनाग पर सोते हैं । सूर्य भी तो आकाश यानी सागर में शेष यानी परमात्मा के आधार पर स्थित है । शेष परमात्मा को इसलिए कहते हैं कि इस का कभी नाश नहीं होता वह सदा शेष यानी बाकी रहता है । पौराणिक लोग यह मानते हैं कि पृथ्वी शेषनाग के सिर पर खड़ी है । फिर तो विष्णु और पृथ्वी का एक ही शेषनाग को आधार मानना बुद्धि एवं युक्ति विरुद्ध भी है । इसलिए भी ये सब आलंकारिक वर्णन ही हैं ।

(४) **चतुर्भुज विष्णु**–विष्णु को चतुर्भुज बना दिया गया है।

"चत्वारो भुजा बाहवो यस्य स चतुर्भुजः ।" चारों दिशाएं जिस की भुजाएं हों वह चतुर्भुज है । वैसे लोक में साधारणतया यही देखने में आता है कि जब कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति से कोई रास्ता पूछता है तो बतलाने वाला झट कह देता है कि आप दक्षिण बाहु जावें अथवा उत्तर बाहु जावें और साथ ही हाथ यानी बाहु से संकेत भी करता है। आप स्वयं भी ऐसा ही करते हैं और सब ही ऐसा करते हैं । आप ने यह भी देखा होगा कि सड़क पर चौक आ जाते हैं या दो सड़कों का मेल हो जाता है तो वहां बाहु के समान आकृति वाला संकेत दोनों ओर अथवा चारों ओर के जाने वाले रास्तों का संकेत करता है । अब ऊपर लिखित बातों से यह बात सिद्ध हो गई कि विष्णु जिस को आदित्य भी कहते हैं सूर्य का ही नाम है और जब सूर्य उदय होता है तो अन्धकार का नाश हो जाता है । परन्तु सूर्य एक ही समय में केवल आधी दुनिया को प्रकाशित कर सकता है । जो उसके सामने होती है

दूसरी आधी दुनिया में अन्धेरा छाया रहता है ।

परन्तु

महर्षि दयानन्द रूपी सूर्य में और इस लौकिक विष्णु रूपी सूर्य में एक विशेषता थी कि उसने एक ही समय में सारे संसार को ज्ञानालोक से आलोकित कर दिया । सूर्य रूपी विष्णु के वर्णन में बताया जा चुका है कि सूर्य का नाम आदित्य भी है और लोक में ४२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ब्रह्मचारी को भी आदित्य कहते हैं परन्तु ऋषि दयानन्द तो आजन्म ब्रह्मचारी रहे इसलिए वे भी आदित्य ही थे । महर्षि दयानन्द के समय में प्रचार एवं सूचनाप्रसार के इतने साधन उपलब्ध न थे जितने आजकल हैं । उस समय न तो वायरलैस था, न रेडियो, न ही तार अभी पूर्ण रूप से चालू हुआ था, न इतने समाचार पत्र थे । वर्तमान युग की सूचना-प्रसार (प्रापैगेंडा) कला के अभाव में भी महर्षि दयानन्द रूपी सूर्य का ज्ञानालोक जहां अमेरिका में पहुंचा वहां जर्मन, स्काटलैण्ड, रूस, कम्बरलैण्ड आदि भिन्न भिन्न दिशाओं के देशों में भी पहुंच गया जो निम्नलिखित घटनाओं से भलीभांति स्पष्ट हो जाएगा ।

१. कैम्बरलैण्ड से मिस्टर Mild M.A. ने १७ जून १८७९ में एक पत्र ऋषि दयानन्द जी की सेवा में लिखा था कि "मेरी कामना यही नहीं कि–मैं सत्य को मानूं, प्रत्युत यह है कि जहां तक मेरी आत्मा और शरीर से हो सके यथाशक्ति सत्य का जीवन भी व्यतीत करूँ।

(२) स्काटलैण्ड से मिस्टर डेवीसन ने महर्षि को लिखा था– "मैंने मांसाहार करना छोड़ दिया है और मद्यपान का भी त्याग कर दिया है । यद्यपि मेरा विवाह हो चुका है परन्तु मैं ब्रह्मचारियों का सा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ मुझे धन और संसार के पदार्थों की कामना नहीं है । मेरी जिज्ञासु आत्मा में केवल यही प्रेरणा हो गई है कि इस बात का ज्ञान हो कि मनुष्य वास्तव में क्या है और क्या बन सकता है । साथ ही मैं सदाचार में अपने आप को निपुण करना चाहता हूँ । जिस से मैं इस योग्य हो जाऊं कि ब्रह्म के साथ अपनी आत्मा को मिला सकूं ।

(३) रूस के काउण्ट टालस्टाय जो प्रकृति के सुविख्यात लेखक और विद्वान् थे, ने महर्षि दयानन्द से ज्योति पाकर जब मांस खाना छोड़ दिया तो वहां के लोग कहने लग गये कि काउण्ट पागल हो गया है

परन्तु काउण्ट टालस्टाय तो महर्षि का भक्त बन चुका था उसने किसी की परवाह नहीं की अपितु महर्षि के बतलाये मार्ग पर चल कर गृहस्थ छोड़ वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश कर लिया था ।

(४) जर्मन देश के विद्वान् मिस्टर जी.वाइज जो वीडन कालेज के प्रिंसिपल थे, महर्षि को जो पत्र लिखते थे उन को अपना गुरु मान कर ही लिखते थे । और जर्मन देश में बैठे बैठे ही ऋषिवर की ज्योति से अपने मन को ज्योतिष्मान् कर पाते थे ।

(५) अमेरिका से कर्नल अल्काट ने १४ फरवरी सन् १८७८ को एक पत्र महर्षि की सेवा में लिखा पत्र बहुत लम्बा है, उस में से मैं आदि की, कुछ पंक्तियां सेवा में उपस्थित करता हूं जो मेरे इस शीर्षक से सम्बन्ध रखती हैं । वे इस प्रकार हैं–"सेवा में परम मान्य पण्डित दयानन्द सरस्वती । भारतवर्ष पूजनीय गुरु ?

अमेरिका के कितने ही निवासी और अन्य विद्यार्थी जो सच्चे मन से विद्या की खोज करना चाहते हैं । आप के चरणों में आते हैं और आप से प्रार्थना करते हैं कि हमें ज्ञान-ज्योति दीजिए ।

(६) कर्नल अल्काट का दूसरा पत्र जो उन्होंने ५।६।७८ को महर्षि जी को लिखा वह भी बहुत लम्बा था परन्तु मैं कुछ पंक्तियां आपकी सूचनार्थ देता हूं । वे लिखते हैं–

पूज्यपाद गुरु जी !

जो सद्भावना पूर्ण पत्र आप ने लिखा है वह पहुंच गया है । थियोसोफिकल सोसाइटी के समस्त सदस्यों और अधिकारियों को जो आशीर्वाद आपने दिया है उससे परम प्रसन्नता हुई । उस के प्रत्युत्तर में हम केवल अपनी आशा ही प्रकट कर सकते हैं कि आप की स्थिति संसार में उसी काल तक रहे जब तक आप का उपकारमय उद्देश्य पूर्ण हो और मनुष्य जाति आप के बुद्धि अनुकूल उपदेश को सुनने और उससे लाभ प्राप्त करने के लिए तैयार हों ।

(७) फ्रांस का प्रसिद्ध एवं जगत् विख्यात दार्शनिक और लेखक रोमन रोलैंड महर्षि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखता है–"दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्ति थे, क्योंकि उनके अन्दर कर्मयोगी विचारक और नेता के गुणों का दुर्लभ मिश्रण था । वेदों के शक्तिशाली प्रचारक

के रूप में अकेले ही भारत के आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध का उद्घोष किया। दयानन्द ने ईसाई-मत के विरुद्ध युद्धघोष किया और उसकी सुदृढ़ तलवार ने उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया।

(८)–अमेरिका के महान् योगी डाक्टर इंड्रोजैक्सन डेविस ने अपनी पुस्तक Beyond the Velley के पृष्ठ ३८२–३८३ में महर्षि रूपी सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर लिखा है।

मैं एक आग देखता हूँ जो कि सार्वभौमिक है और अविनाशी प्रेम की अग्नि है जो कि घृणा को भस्मसात् करती है और समस्त वस्तुओं को शुद्ध कर रही है। अमेरिका के मैदानों पर अफ्रीका के रेगिस्तान पर एशिया के बड़े बड़े पर्वतों और योरुप के बड़े बड़े राज्यों में इस शुद्धि करने वाली अग्नि का प्रकाश देख रहा हूँ। इस अविनाशी अग्नि को देख कर जो कि राजनैतिक बुराइयों से भरपूर राज्यों को विनष्ट कर देगी आनन्द की अनुभूति कर रहा हूँ और मैं जीवन में एक आनन्दयुक्त, उत्साह अनुभव करता हूँ। आदि वैदिक धर्म को अपनी पहली सर्वोत्तम अवस्था को पहुंचाने के लिए यह अग्नि आर्यसमाज रूपी भट्टी में जल रही है। जो भारत के महान् सुपूत महर्षि दयानन्द सरस्वती के हृदय में उत्पन्न हुई और इससे यह आग बहुत से महानुभावों के हृदय में प्रकट हुई। हिन्दु मुसलमान और ईसाई मिल कर इस पवित्र अग्नि को बुझाने दौड़े परन्तु यह प्रभु की जलाई हुई अग्नि बढ़ती चली जा रही है।

इतने उदाहरणों से अब भली भांति सिद्ध हो गया है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने विष्णु यानी सूर्य से भी बढ़कर विश्व में प्रकाश फैला कर अविद्यान्धकार का नाश किया। महर्षि दयानन्द विष्णु थे और सूर्य समान चमके इसी बात को बतलाते हुए एक कवि ने ऋषि के देह त्याग के समय लिखा था–

दो आफताब डूबते हैं एक आन में।
मगरिब (पश्चिम) में एक दूसरा हिन्दुस्तान में॥

परन्तु इस विष्णु रूपी सूर्य से एक और भी विशेषता महर्षि में है वह यह कि भौतिक सूर्य सब अस्त होता है तो अन्धकार फैल जाता है परन्तु महर्षि देह त्याग कर जगत् गुरु बन गए और समस्त विश्व में उनका प्रकाशित प्रकाश मानवमात्र का पथ प्रदर्शन कर रहा है। इंग्लिस्तान

के विख्यात कवि लाँगफैलो ने ठीक कहा है–

So when a good man dies
for vears beyond hes Ken
The light he leaves behind him
lies upon the Path of men.

अर्थात् महापुरुष देह त्यागने के उपरान्त भी जो प्रकाश छोड़ जाते हैं, वह मनुष्यमात्र का पथप्रदर्शन करता रहता है । महर्षि के इसी गुण को देख कर एक अन्य कवि ने भी लिखा था ।

दुनिया से भी गए तो दिवाली की रात को ।

अर्थात् महर्षि अपने जीवन का उद्देश्य पूर्ण करके यानी अविद्यान्धकार का नाश कर के घर-घर प्रकाश कराकर ही इस संसार से विदा हुए ।

बोलो विष्णु भगवान् दयानन्द की जय ।

२. त्रिनेत्रधारी शिव

पौराणिक देव माला में जिस तरह विष्णु की चार भुजाएँ ब्रह्मा के चार मुख प्रसिद्ध हैं उसी तरह शिव जी के तीन नेत्र विख्यात हैं और तीन आँखों वाले शिव जी की पूजा को वेदविहित सिद्ध करने वाले यजुर्वेद अध्याय ३० का ६० वां मन्त्र प्रमाण के रूप में सम्मुख लाते हैं । वह मन्त्र यह है–

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । इत्यादि ।

इस मन्त्र में समागत 'अम्बक' शब्द का अर्थ त्रिनेत्रधारी शिव शंकर महादेव अथवा रुद्र करके उसकी पूजा का विधान करते हैं । इसी मन्त्र को मृत्युञ्जय मन्त्र भी कहा जाता है अर्थात् मृत्यु पर विजय दिलाने वाला मन्त्र परन्तु वेदों का आध्यात्मिक महत्त्व बतलाने वाले महर्षि दयानन्द "त्र्यम्बक शब्द का अर्थ ईश्वरपरक करते हुए वेद भाष्य में रुद्र रूप जगदीश्वर तथा सब के अध्यक्ष जगदीश्वर लिखते हैं और उसकी स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना से ही मृत्यु को जीतने और मोक्ष प्राप्ति का साधन बतलाते हैं । और यज्ञ पक्ष में इस "त्र्यम्बक" शब्द का अर्थ करने वाले विद्वान् ऐसा करते हैं कि "त्र्यम्बक" यानी तीन औषधियों जिन के नाम 'अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका हैं ।' से हवन यज्ञ करने वाला

पूर्ण आयु भोग कर अपने शरीर को ऐसे छोड़ देता है जैसे पका हुआ फल अपने आप अपनी बेल से अपना सम्बन्ध अथवा बन्धन बिना किसी कष्ट और क्लेश के तोड़ लेता है। इसी प्रकार मनुष्य मृत्यु समय हंसता-हंसता इस संसार का त्याग कर देता है और मृत्यु में भी आनन्द अनुभव करता हुआ मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है। क्योंकि ये तीनों औषधियां सुगन्धि फैलातीं और शक्ति प्रदान करती हैं। अस्तु इस तरह हमारे भाई शिव जी की तीन आंखें मानते हैं।

और

महर्षि दयानन्द की न केवल तीन ही आँखें थीं अपितु वे त्रिकालदर्शी। (भूत, वर्तमान और भविष्यत् को भाँपने वाले) भी थे। दो आँखें तो सब के पास होती ही हैं परन्तु तीसरी आँख वे होती हैं जिनको गीता में दिव्य चक्षु कहा गया है। जिन दिव्य चक्षुओं (दिव्य दृष्टि) से अर्जुन ने भगवान् का विराट् रूप देखा था। वह दिव्य दृष्टि वास्तविकता को देखने वाली होती है और गहराई तक देखती है। केवल ऊपरली सतह तक तो दो चर्मचक्षु देखती हैं। और कई बार तो ये दोनों आँखें उपरली सतह पर भी ठीक नहीं देख सकतीं अपितु कई बार धोखा खा जाती हैं। रस्सी को साँप, सीप को चाँदी और बालू (रेत) को पानी समझ बैठती हैं। परन्तु यह दिव्य दृष्टि रूपी तीसरी आँख ठीक ठीक देखती है और सच्चाई को पा लेती है। इस बात को महर्षि यास्क मुनि जी ने अपनी पुस्तक निरुक्त में अपने ढंग पर वर्णन करते हुए लिखा है। 'ऋषिः दर्शनात्' अर्थात् जो किसी वस्तु का दर्शन करता है, साक्षात्कार करता है वह ऋषि है और दयानन्द तो महर्षि थे तभी तो मैंने ऋषि को त्रिकालदर्शी लिखा है। उन्होंने वर्तमान को देखा और दिव्यदृष्टि से यानी अपनी तीसरी आँख से अंग्रेजों के राज्य काल में अंग्रेजों के षड्यन्त्र को भली भांति देखा और फिर यह भी देखा कि अंग्रेज लोग भविष्य में इस देश में अपने राज्यशासन को चिर-स्थायी बनाने के लिए ये सब षड्यन्त्र रच रहे हैं। गोया वर्तमान और भविष्य की अच्छी तरह गहराई तक पहुंच कर महर्षि ने अपने अतीत को भी झांका। इस तरह तीनों कालों को देख कर अपने देशवासियों को गाढ़ निद्रा से जगाया।

१. पहली बात ऋषि ने जो देखी वह यह कि अंग्रेजों ने अपने

राज्य को इस देश में सुदृढ़ और चिरस्थायी बनाये रखने के लिए हमारे साहित्य और इतिहास को ऐसा बिगाड़ा कि उसका वास्तविक रूप ही दृष्टि से ओझल हो गया और बड़े-बड़े विद्वान् भी अंग्रेजों की बातों को सत्य मानने लग गए। अंग्रेजों ने Divide & Rule फूट डालो और राज्य करो के नियम पर आचरण करते हुए इतिहास की पुस्तकों में यह लिखा दिया कि आर्य लोग इस देश के रहने वाले नहीं। ये तो मध्य एशिया से आक्रमणकारी के रूप में भारत में आए और यहाँ के आदिवासियों को यानी गोंड, भील, सन्थाल आदि जातियों को पराजित करके इनकी संस्कृति को नष्ट कर दिया और इनको दक्षिण की ओर धकेल कर स्वयं यहां के शासक बन बैठे। इस बात से अंग्रेजों के दो प्रयोजन सिद्ध होते थे। एक तो यह कि भारतवासियों में परस्पर विरोध पैदा होता था और दूसरे जिनको अंग्रेज आदिवासी का नाम देते थे उनको यह जतलाना था कि यदि हम बाहर से आकर राज्य करने लगे हैं तो आर्य भी तो बाहर से ही आकर राज्य करते रहे हैं। क्या हुआ वे पहले आक्रमणकारी थे और हम अब के हैं। आर्यों को आक्रमणकारी सिद्ध करना उनका मुख्य प्रयोजन था। जो उनका यह प्रयोजन भली प्रकार सिद्ध हुआ और इस पारस्परिक विरोध बनाये रखने के लिए। १९०१ की पृथक् जनगणना कर के विधानसभाओं में उनकी सीटें सुरक्षित कर दीं। इस प्रकार हमारा इतिहास बिगाड़ कर अंग्रेजों ने अपना प्रयोजन सिद्ध किया।

२. दूसरी बात महर्षि ने यह देखी कि हमारे साहित्य को भी बिगाड़ना आरम्भ कर दिया। अतः ईसाई पादरियों और मैक्समूलर आदि के द्वारा वेद मन्त्रों के ऊटपटांग अर्थ करवाये और वेदों को गडरियों के गीत प्रसिद्ध कर दिया और यहां तक प्रसिद्ध किया कि वेदों में कोई बात युक्ति और बुद्धि पूर्वक ही नहीं है। अपितु वेदों में गाय, घोड़े, बकरे से लेकर आदमी तक को मार कर यज्ञों में उनकी बलि देने का विधान है और कि प्राचीन आर्य लोग मद्यपान करते, गोमांस इत्यादि भक्षण किया करते थे। और ईंट, पत्थर, नदी, पर्वत, वृक्ष, आग, हवा, पानी, सूर्य, चाँद सब जड़ पदार्थों से भयभीत हो कर उन्हें देवता मानकर उनकी पूजा करते थे। वेदों में कहीं भी ईश्वर-पूजा का वर्णन नहीं है।

३. तीसरी बात ऋषिवर दयानन्द ने यह देखी कि अंग्रेजी शिक्षा

का जो क्रम लार्ड मेकाले की योजना के अनुसार अंग्रेजों ने आरम्भ किया था जिसमें विद्यार्थियों को यह पढ़ाया जाता था कि आर्य लोग या तुम्हारे पूर्वज जंगली असभ्य थे । वे जंगलों में गौ, भैंस चराया करते थे और इस तरह जो गीत वे गाते थे उनको बाद में वेद कह कर लोगों को सुनाया करते थे । नीम वहशी अवस्था में थे । लार्ड मेकाले ने इस शिक्षा-पद्धति को भारत में प्रचलित करके अपने पिता के नाम एक पत्र लिखा था, जिसमें उसने लिखा था कि "हमारे स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त भारतवासी भले ही वे रंग, आकृति और बाह्य रूप से भारतीय दीखेंगे परन्तु वे अन्दर (मन, बुद्धि एवं मस्तिष्क रूप से भारतीय नहीं रह सकेंगे और अपनी संस्कृति एवं सभ्यता पर गर्व करने के स्थान में उससे घृणा करते हुए उसका उपहास तक उड़ायेंगे । इस प्रकार के प्रचार से अंग्रेजों की अभिलाषा भारतवासियों के भीतर (Inferiorty Complex) अर्थात् आत्महीनता के भाव पैदा करना थी । यह बात शत प्रतिशत सत्य है कि जिस देश के वासियों में अन्दर हीनता के भाव दृढ़ हो जावें वह देश तथा जाति कभी उन्नति नहीं कर सकती क्योंकि वह मानसिक दासता की जंजीरों में जकड़ी जाती है । अंग्रेज जाति अपने षड्यन्त्रों से इस देश में ऊपर लिखित तीनों विचार फैलाने में कुछ सीमा तक सफल भी हो रही थी कि परमपिता परमात्मा की अपार दया से त्रिकालदर्शी दयानन्द जी महाराज कार्यक्षेत्र में आ डटे और उन्होंने अपने अतीत काल को भली भाँति देखा और देख कर अंग्रेजों के षड्यन्त्र को तार तार कर दिया।

(१) सर्वप्रथम ऋषिवर ने यह घोषणा की कि आर्य लोग कहीं बाहर से नहीं आए इसी देश के वासी हैं । उन्होंने यह कहा कि हमारे किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ में कहीं पर भी यह नहीं लिखा कि आर्य लोग कहीं बाहर से आकर इस देश में बस गये और यहां के आदिवासियों (अपने से पहले रहने वालों) को परास्त किया । यह सब विदेशियों की मनघड़ंत और कपोलकल्पित बातें हैं । आर्यों से पहले इस देश में कोई भी नहीं बसता था । आर्यों के इस देश में बसने के कारण ही इस देश का नाम आर्यावर्त हुआ है । इससे पहले इस देश का और कोई नाम नहीं था । अत: 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' नामक छोटी सी पुस्तक में महर्षि लिखते हैं । जो श्रेष्ठ स्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यवादी गुणयुक्त और

आर्यावर्त देश में सदा से यानी सब दिन से रहते हैं उनको आर्य कहते हैं ।

इस प्रकार महर्षि ने अंग्रेजों की इस Divide & Rule "फूट डालो और शासन करो" चाल को विफल कर दिया । जो कहते थे कि आर्य लोग आक्रमणकारी की हैसियत से इस देश में आए और इस के आदिवासियों को परास्त कर यहां के राजा बन बैठे । न केवल अपने ग्रन्थों में ही लिखा अपितु व्याख्यानों में भी स्थान-स्थान पर अंग्रेजों की इस चाल का प्रखर रूप से खण्डन करते रहे । जिसके फलस्वरूप भारतीय जनता के मस्तिष्क में ये भाव जमने आरम्भ हो गये और अंग्रेजों के फैलाये हुए जाल को तार-तार कर दिया ।

(२) अंग्रेजों की दूसरी चाल का भी महर्षि ने बड़ा प्रबल खण्डन किया । महर्षि ने यह प्रमाणित कर दिया कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, गड़रियों के गीत नहीं हैं । इस विषय में सारे संसार को आह्वान (चैलेंज) किया परन्तु महर्षि का यह चैलेंज स्वीकार करने का किसी को भी साहस न हुआ । अपितु मैक्समूलर आदि यह मानने पर बाध्य हुए कि महर्षि वेदों के धुरन्धर विद्वान् हैं । और उनकी रची ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़े बिना जो वेद पढ़ेगा वह वेद के मर्म को नहीं समझ पावेगा । महर्षि ने वेद मन्त्रों "इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्" इत्यादि का प्रमाण देकर यह सिद्ध किया कि "अग्नि, इन्द्र, मित्र और वरुण" आदि उस एक परमात्मा के ही गुण, कर्म और स्वभाव अनुसार भिन्न भिन्न नाम हैं और प्राचीन आर्य लोग परमात्मा के इन गौणिक नामों से एक परमात्मा की पूजा, स्तुति, प्रार्थना और उपासना किया करते थे न कि अग्नि, जल, वायु, वन, पर्वत, पत्थर इत्यादि की । फिर ऋषि ने यह भी घोषणा की कि वेदों में कहीं किसी स्थान पर भी आदमी, गौ, घोड़ा, बकरा इत्यादि का वध करके यज्ञों में डालने का विधान नहीं है बल्कि यज्ञ शब्द का अर्थ ही है कि जिसमें किसी प्रकार की भी हिंसा न की जावे वही अध्वर=यज्ञ कहलाता है । ऋषि के इस चैलेंज को स्वीकार कर सम्मुख आने का किसी को साहस न हो सका । इस प्रकार ऋषिवर ने अंग्रेजों की इस चाल को भी विफल बना दिया ।

(३) अंग्रेजों द्वारा भारतवासियों में आत्महीनता के भाव पैदा

करने वाली चाल का तो ऋषि ने इतनी प्रबलता से खण्डन किया, जिससे उनकी यह चाल पंगु बन कर रह गई। अत: सत्यार्थप्रकाश के ग्याहरवें समुल्लास में महर्षि ने सब से पहले मनुस्मृति का यह प्रमाण दे कर कि–

एतद्देश - प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

सारे संसार के लोगों को इस भारत देश के ब्राह्मणों के चरणों में बैठ कर आचार व्यवहार की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। ऐसा मनु भगवान् (जो चक्रवर्ती राजा थे) ने आज्ञा दी और घोषणा की हुई थी कि सारे संसार में जितनी सत्यविद्याएं फैली हैं वे सब भारतवर्ष से ही फैली हैं। और भारतवर्ष के प्राचीन पुरुष न केवल विद्वान् ही थे बल्कि धनवान् भी थे और बलवान् तो इतने थे कि आर्यों का चक्रवर्ती राज्य संसार में करोड़ों वर्षों तक चलता रहा और महर्षि ने इसे ११वें समुल्लास में चक्रवर्ती राजाओं की वंशावलि भी दी है और भारत भूमि को स्वर्ण भूमि का नाम दिया है। अत: महर्षि लिखते हैं–

"यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में कोई दूसरा देश नहीं है। इसलिए इस भूमि का नाम स्वर्णभूमि है क्योंकि यही स्वर्ण आदि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग इस देश में आकर रहे। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इस देश की प्रशंसा करते हैं और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसका लोह रूप दरिद्र देश छूने के साथ ही स्वर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं। सृष्टि से लेकर कलियुग के पांच हजार वर्षों तक आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती राज्य था और अन्य देशों में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव और पाण्डव पर्यन्त यहाँ के राजा और राज्यशासन में सब राजा और प्रजा चलते थे। और महाराजा युधिष्ठिर पर्यन्त राजसूय यज्ञ और महाभारत के युद्ध में सब संसार के माण्डलिक राजा लोग सम्मिलित हुए थे।

वैसे अब महर्षि दयानन्द महाराज की कृपा से सब लोग मनु को सब से पहला विधान बनानेवाला मानने लग गये हैं। यानी Manu was the first Law giver of men.

और सारी दुनिया के अन्दर जितने भी शासन विधान राज्य प्रशासन के लिए प्रचलित हैं उनके मूल में मनु महाराज का विधान ही काम कर रहा है। पुन: इसी समुल्लास में महर्षि लिखते हैं कि जितनी भी विद्याएँ संसार में फैली हैं वे सब आर्यावर्त देश से ही फैली हैं। ऋषिवर की इस बात का भी अब योरुप के विद्वान् समर्थन कर रहे हैं कि सब सत्यविद्याएँ आर्यावर्त देश से ही संसार में फैली हैं। अत: Meterlenk नामी एक विख्यात विद्वान् ने अपनी पुस्तक Secret Heart के पृष्ठ ५ पर महर्षि दयानन्द जी महाराज के इस कथन को अक्षरश: सत्य मानते हुए साफ शब्दों में स्वीकार किया कि आर्यावर्त से मिस्र देश में फिर वहां से ईरान और Chaldia में वहां से यूनान में फिर योरुप चीन और अमेरिका में सब विद्याओं का शनै: शनै: प्रचार होता गया। सच्ची बात तो यह है कि महर्षि दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ लिख कर अपने त्रिकालदर्शी होने की छाप संसार पर लगा रखी है। जो भी इस अपूर्व ग्रन्थ को पढ़ेगा महर्षि की विद्या, तप, योगबल, ब्रह्मचर्य का सिक्का माने बिना न रह सकेगा। इसलिए महर्षि न केवल तीन आँखें रखते थे अपितु त्रिकालदर्शी थे।

५—पाण्डिचेरी का योगी अरविन्द घोष महर्षि की दिव्य दृष्टि के विषय में यूं कहता है—

महर्षि के व्यक्तित्व की व्याख्या यूं की जा सकती है कि वह एक ऐसा मनुष्य था जिसकी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति, आँखों में दिव्य तेज और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति घड़ सके।

६—फ्रांस का सुप्रसिद्ध लेखक रोमन रोलैंड लिखता है—आधुनिक भारत में केवल एक महाविद्वान् दिव्यद्रष्टा ऋषि दयानन्द ही ऐसा महापुरुष हुआ है जिसने तर्क और वैदिक ज्ञान की ऐसी दृढ़ चट्टान खड़ी कर दी है कि जिस से टकरा कर पश्चिमी सभ्यता की लहरें चकनाचूर हो गईं।

७—महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश में ये शब्द कि "विदेशी राज्य चाहे कितना ही अच्छा हो वह स्वराज्य की समानता नहीं कर सकता लिख कर अंग्रेजों के षड्यन्त्र पर वज्रपात कर दिया और फिर कलकत्ता से

बम्बई तक और रावलपिंडी से पूना तक पूरे सोलह वर्ष तक "इडा सरस्वती महि तिस्रो देवीर्मयोभुवः। बर्हिः सीदन्तु अस्रिधः।।" के आधार पर सारे देश में मातृभूमि, मातृभाषा और मातृसभ्यता और संस्कृति के लिए प्रेम की एक अग्नि प्रचण्ड कर दी और इस अग्नि को सदा प्रज्वलित रखने के लिए १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना कर दी। जिस अग्नि की ज्योति को मिस्टर ए०जे० ड्यूसन ने सच्चे रूप में देखा। जिसका वर्णन "विष्णु शीर्षक नामक प्रकरण में किया जा चुका है। जिसका परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज के राज्य में आर्यसमाज को विरोधी संस्था समझा जाने लगा और सत्यार्थप्रकाश जब्त करने के चर्चे आरम्भ हो गये परन्तु आर्यसमाज इतना शक्तिशाली था कि अंग्रेजों को सत्यार्थप्रकाश पर प्रतिबन्ध लगाने का साहस न हुआ।

८-कुछ समय के उपरान्त वर्तानियां की मजदूरपार्टी का नेता मिस्टर रेम्जे मेकडानल्ड भारत के दौरे पर आया तो आर्यसमाजियों का एक शिष्टमण्डल उनको मिलने गया। बातों बातों में आर्यसमाजी शिष्ट-मण्डल ने यह बात कह दी कि अंग्रेजी शासक अकारण ही आर्यसमाज को विद्रोही संस्था समझ रहे हैं। इस पर मेकडानल्ड महोदय ने उस शिष्टमण्डल वालों से निम्नलिखित तीन प्रश्न किये-

(१) क्या आप मातृभाषा का प्रचार चाहते हैं?
(२) क्या आप मातृसभ्यता का प्रचार चाहते हैं?
(३) क्या आप मातृभूमि से प्यार करते हैं?

जब उन तीनों प्रश्नों के उत्तर हां में दिये तो मेकडानल्ड महोदय कहने लगे कि विदेशी राज्य में इन तीनों बातों का प्रचार करना ही तो विद्रोह है और विद्रोह किसका नाम है। गोया जादू वह जो सिर चढ़कर बोले।

९-और आखिर में उस त्रिकालदर्शी महषि दयानन्द के बतलाए हुए मार्ग पर चल कर ही भारतीय जनता ने अंग्रेजों की पराधीनता के जूए को उतार फेंका। और स्वराज्य शब्द जो ऋषिवर ने सर्वप्रथम लिखा था उसे सार्थक सिद्ध करने में सफल हो सके। जब कि महर्षि ने अंग्रेजों के षड्यन्त्र को अपने भरसक प्रयत्न से तार तार कर दिया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है।

अगर देशहितैषी हमें न जगाता तो देश उन्नति का किसे ध्यान आता।

१०–महर्षि दयानन्द जी ने अपने दिव्य दृष्टि से अतीत को झांका था और संसार में खुले आम घोषणा की थी कि कोई समय था कि संसार में आर्यों का चक्रवर्ती राज्य था। वैदिक धर्म का प्रचार सारे संसार में था। और संस्कृत भाषा सारे संसार में बोली जाती थी। महर्षि के इस विचार का अब पश्चिमी विद्वान् भी समर्थन कर रहे हैं। और सब से अधिक आश्चर्य की बात यह है कि अफ्रीका जैसे पिछड़े हुए देश में अब भी ऐसे कबीले मौजूद हैं, जिनकी बोली संस्कृत से मिलती है, और जो नित्य प्रति हवन करते हैं। जिसकी खोज अभी-अभी एक विदेशी अंग्रेज देवी ने वहां जाकर स्वयं की है जो खबर संसार के सारे अखबारों में थोड़े दिन हुए छपी थी–जिसका लेख इस प्रकार है।

सारा लेटन एक नौजवान औरत जो एम० ए० पी० एच० डी० पास थी, उसने अफ्रीका के घने जंगलों में और दलदल वाले इलाकों में ऐसे कबीलों के हालात मालूम किये जो नंग धड़ंग रहते हैं। परन्तु उनकी बोली में संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं। सारा ने संस्कृत में खूब अभ्यास प्राप्त किया हुआ था। एक किताब के पढ़ने से जो एक अंग्रेज प्रोफेसर ने लिखी थी, सारा को ज्ञान हुआ कि भारत की सभ्यता तथा सदाचार भारत तक ही सीमित नहीं था बल्कि अफ्रीका में भी इसका प्रचार था, और यह जानना चाहती थी, कि अफ्रीका में आज भी भारतीय सभ्यता के चिह्न मौजूद हैं या नहीं। वह इंगलिस्तान से वायुयान के द्वारा नैरोबी पहुंची। वहां से एक काफला के साथ उन इलाकों में गई जहां आज भी ऐसे लोग रहते हैं जो देवताओं की पूजा करते हैं। और उनकी बोली में अधिक शब्द संस्कृत के होते हैं। इनके देवता की शक्ल देख कर मालूम होता है कि ये लोग भगवान् कृष्ण के पुजारी हैं। ये लोग प्रतिदिन सायंकाल को एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं। मूर्तिपूजा के बाद नाचते और गाते हैं। और जिस प्रकार भारत में हिन्दू हवन करते हैं, ये लोग भी प्रातःकाल आग जला कर उसमें खुशबूदार बूटियां डालते हैं, जिसकी सुगन्ध से वायु सुगन्धित हो जाती है। इनका विचार है कि इस भांति वर्षा का देवता प्रसन्न होता है। यह विचार भी यज्ञ की पद्धति से मिलता जुलता है"।

३. ब्रह्मा

जिस प्रकार विष्णु की चार भुजा शिव जी की तीन आँखें आलंकारिक हैं, उसी प्रकार ब्रह्मा के चार मुख भी आलंकारिक ही हैं। और इसका यही अभिप्राय समझा जाता है कि ब्रह्मा चारों वेदों के विद्वान् थे इसलिए उनके चार मुख कहे जाते हैं। इसीलिए आज तक भी जो वेदवक्ता हो उसको लोग ब्रह्मा कह देते हैं । यज्ञों में भी यज्ञ के अधिष्ठाता को ब्रह्मा की पदवी दी जाती है । वास्तव में ऐसा कोई मनुष्य संसार में कभी उत्पन्न नहीं हुआ जिसके चार मुख हों । यदि शारीरिक रूप में किसी के चार मुख हों तो वह प्राणी नींद भी नहीं ले सकेगा। क्योंकि सोते समय एक न एक मुख तो नीचे की ओर रहने से वह सो नहीं सकेगा । इसलिए वास्तविक बात यही है कि ब्रह्मा एक पदवी का नाम है जो प्राचीन काल में चारों वेदों के विद्वान् को दी जाया करती थी ।

और

इसी ब्रह्मा की पदवी के अधिकारी महर्षि दयानन्द जी थे । क्योंकि जो जो सिद्धान्त महर्षि ने वेदानुकूल निर्धारित किये, आज तक उनका कोई खण्डन नहीं कर सका और मूर्तिपूजा, अवतारवाद, अद्वैतवाद, मृतकश्राद्ध, छूतछात, ऊँचनीच का भेदभाव आदि का वेद विरुद्ध होने से खण्डन किया, उनका मण्डन आज तक कोई नहीं कर सका । कलकत्ता से बम्बई तक रावलपिंडी से पूना तक महाराज निरन्तर १६ वर्ष वेद-प्रचार करते रहे और किसी को उनके सामने आने का साहस न हो सका ।

(१) जब महर्षि ने काशी में जाकर काशी नरेश को ललकारा कि अपने पण्डितों से मेरा शास्त्रार्थ कराओ और काशी नरेश ने पण्डितों को महर्षि से शास्त्रार्थ करने पर विवश किया तो काशी के पण्डितों ने काशी नरेश को साफ कह दिया कि दयानन्द तो वेद का ही प्रमाण मांगता है परन्तु हम वेद पढ़े नहीं हैं । इस पर जहाँ काशीनरेश बड़ा आश्चर्य चकित हुआ वहाँ पण्डितों के प्रार्थना करने पर उनको पन्द्रह दिनों की मुहलत महर्षि से दिला दी ताकि इतने में पण्डित वेद देख लेंगे । मानो कि काशी के पण्डितों ने स्वयं स्वीकार कर लिया था कि महर्षि वेदों के विद्वान् हैं । इसी को कहते हैं-

जादू वह जो सिर चढ़ बोले क्या मतलब जो गैर पर्दा खोले ।

(२) योरुप और अमेरिका के वेदों के विद्वानों में शिरोमणि प्रोफेसर मैक्समूलर भी महर्षि को ब्रह्मा ही मान कर लिखते हैं ।

"स्वामी दयानन्द एक महान् विद्वान् थे । उनके धर्म, नियमों की नींव ईश्वरकृत वेदों पर थी । उन्हें वेद कण्ठस्थ थे । उनके मन और मस्तिष्क में वेदों ने घर किया हुआ था । वर्तमान समय में संस्कृत का एक ही बड़ा विद्वान् साहित्य का पुतला वेदों के महत्त्व को समझने वाला, प्रबल युक्ति-युक्त विचारक यदि कोई भारत वर्ष में हुआ है तो वह महर्षि दयानन्द सरस्वती था ।"

(३) फ्रांस के संस्कृत के प्रोफेसर "प्राचीन भारत के धर्म" नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ ४५ में लिखते हैं–

"उन्नीसवीं शताब्दी में एक बार फिर महर्षि दयानन्द जैसे विद्वान् की कृपा से वेद सत्यज्ञान के पुस्तक के रूप में उभरे हैं । फिर इसी पुस्तक के पृष्ठ १०७ पर लिखते हैं कि आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने दुनिया के सामने वेद के मन्त्रों से ईश्वर की एकता और धर्म और सदाचार के स्वच्छ सिद्धान्त रखने की कृपा की है।

(४) फ्रांस का विख्यात विद्वान् लेखक रोमन रोलैण्ड लिखता है–महर्षि दयानन्द वेदों और संस्कृत का अद्वितीय विद्वान् था जबकि उसके विरोधी उसके सामने नहीं के बराबर थे ।

देश-विदेश के विद्वानों की ऊपरी लिखित सम्मतियों से महर्षि दयानन्द ब्रह्मा ही सिद्ध होते हैं । इस में किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं है।

देवता काण्ड समाप्त ।

❋ ❋ ❋

३. रामायण-काण्ड

४. भगवान् राम

भगवान् राम राजा दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष वनवास में रहे, परन्तु सती साध्वी सीता और प्राण निछावर करने वाला भाई लक्ष्मण उनके साथ गये थे और साथ रहे ।

और

भगवान् दयानन्द भी राजा दशरथ की आज्ञा से चौदह वर्ष बनवास में रहे पर अकेले ही रहे ।

अथर्ववेद १०।२।३१ में मन्त्र आता है–

अष्टाचक्रा नव द्वारा देवानां पूर् अयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोषः स्वर्गो ज्योतिषा आवृतः ॥

अर्थात् आठ चक्र और नौ द्वारों वाली देवताओं की पुरी अयोध्या है, इस में प्रकाश स्वरूप कोष हैं और स्वर्ग है । क्योंकि वह ज्योति स्वरूप परमात्मा से व्याप्त हो रही है । यह मनुष्य शरीर का ही वर्णन है, जिसमें आठ चक्र और नौ द्वार होते हैं । और इसका राजा आत्मा है, जिसको दशरथ इसलिए कहते हैं कि पांच ज्ञान इन्द्रियां और पांच कर्म इन्द्रियां इसके रथ रूप हैं। इसलिए कहा जाता है–

राम राम सब कोई कहे दशरथ कहे न कोय ।
एक बार दशरथ कहे तो पार उतारा होय ॥

यानि अपनी आत्मा को जान लेना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है । और महर्षि दयानन्द भी अपने आत्मा की आवाज पर सच्चे शिव के दर्शन करने और मृत्यु पर विजय पाने के संकल्प को लेकर भरी जवानी में, ऐश वा आराम से भरे घर और मां बाप के प्यार को ठुकरा कर एकाएकी २१ वर्ष की आयु में जब कि विवाह की तैयारियां हो रही थीं शाम के धुंधले में घर से निकल खड़े हुए । और राम की तरह चौदह साल बनवासी रहे । किसी ने ठीक कहा है–

न सुध बुध की ली, और न मंगल की ली ।
घर से निकल राह जंगल की ली ॥

संवत् १९०३ मुताबिक १८४६ को वे घर से निकले और संवत् १९१७ मुताबिक १८६० को वे मथुरा गुरु विरजानन्द जी के आश्रम में पहुँचे ।

२. भगवान् राम को घर वापस ले जाने के लिए भरत जी उनके पास चित्रकूट पहुँचे और बहुत मिन्नत समाजत करके उन को वापस ले जाना चाहा । लेकिन भगवान् राम वापस जाने पर राजी न हुए और उन्होंने कहा कि हम अपने पिता राजा दशरथ के वचनानुसार चौदह साल पूरे करके ही वापस आएँगे ।

और

भगवान् दयानन्द को भी घर वापस ले जाने के लिए उनके पिता जी ने प्रयत्न किया । घर से निकल कर इस विचार से कि घर वालों को पता न लग सके, भगवान् दयानन्द ने अपना नाम और वेश बदल लिया था नाम रखा था शुद्ध चैतन्य और ब्रह्मचारियों के पीले वस्त्र धारण कर लिये थे और सिद्धपुर के मेले में योगियों की तलाश में आए हुए थे, कि उनके पिता श्री कर्षण जी को कहीं से पता लग गया तो वे भी अपने प्यारे पुत्र की तलाश करने के लिए पांच छः सिपाही साथ लेकर मेला सिद्धपुर में पहुंच गये । और जब इनका अपने पुत्र से मिलाप हुआ तो उस समय की वार्ता महर्षि खुद अपने स्वलिखित जीवन चरित्र में इस तरह लिखते हैं–"पिता के संकल्प" मुझ को वापस ले जाने के समान मेरा संकल्प घर वापस न जाने का अविचलित था, इसलिए मैं सिपाहियों के हाथ से निकलने का मौका ढूँढने की तलाश में था । (क्योंकि महर्षि के पिता जी ने अपने पुत्र पर सिपाहियों का दिन रात कड़ा पहरा लगा रखा था ताकि यह फिर भाग न जाय) घटना वश उसी रात्रि को ही मुझे मौका मिल गया । जब रात्रि के तीन बजे तो मेरे रक्षक मुझ को सोया हुआ समझकर आप भी सो गये, तब मैं अच्छा मौका देख कर धीरे-धीरे उठा और लोटा हाथ में लेकर थोड़ी दूर बैठा बैठा चल कर वहाँ से निकला और मेरे भागने का समाचार पाने से पहले ही मैं एक मील दौड़ गया । मार्ग में जाते जाते मुझे एक बड़ का पेड़ दिखाई

दिया। इस पेड़ के नीचे पहुंच कर देखा कि इस वृक्ष की शाखें एक देव मन्दिर के ऊपर झूल रही हैं तो मैं जल्दी से इसके ऊपर चढ़ गया और इसकी जो घनी शाखें मन्दिर के ऊपर लटक रही थीं उन में छिप कर बैठ गया। और यह प्रतीक्षा करता रहा कि अब भविष्य में क्या होता है। उषा काल होने पर मैंने इस गुम्बद के छिद्र से देखा कि सिपाही लोग मुझे ढूंढते हुए इधर-उधर दौड़ रहे हैं। वे घूमते-घूमते उसी मन्दिर के अन्दर आ पहुंचे, मैं उस वक्त अपने श्वास रोक कर बिल्कुल चुप चाप होकर बैठ गया। जब सिपाही लोग मन्दिर के अन्दर और बाहर अच्छी तरह देख भाल कर मेरा पता न पा सके तो वे वापस चले गये, मैंने यह समझ कर कि कहीं फिर फंस न जाऊं सारा दिन उसी जगह पर बैठ कर काटा। शाम होते ही मैं वृक्ष से नीचे उतरा और प्रसिद्ध रास्ते से न चल कर उल्टे मार्ग पर चलना शुरू कर दिया और रास्ते में किसी से भी रास्ता न पूछा और मैं अहमदाबाद पहुंच गया, वहां तुरन्त ही मैं बड़ौदा की ओर चल दिया।'

जिस तरह भगवान् राम अपने संकल्प पर अविचलित रहे, उसी प्रकार भगवान् दयानन्द भी अपने संकल्प पर अविचलित रहे और "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जायें पर वचन न जाई।। दोनों महापुरुषों के जीवन में एक जैसा ही चरितार्थ होता है, क्योंकि दोनों ने ही दशरथ के साथ किया हुआ वचन पूरा किया।

वनवास में भगवान् राम भी योगियों के दर्शन करते रहे परन्तु उनके साथ सती साध्वी सीता जैसी पतिव्रता धर्म पत्नी और प्राण न्योछावर करने वाले लघु भ्राता लक्ष्मण थे, जिससे उनको वनवास में इतनी तकलीफ बरदाश्त न करनी पड़ी। और इस जमाने में ऋषि मुनि योगी बहुत बड़ी तादाद में वनों में आसानी से मिल जाते थे, और भगवान् राम को उनकी तलाश करने में कोई तकलीफ बरदाश्त नहीं करनी पड़ी थी।

और

महर्षि दयानन्द क्योंकि एकाएकी बनवास में विचरते थे इस लिए उनको घोर कष्ट सहन करने पड़े। जिसके कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं। ताकि आपको पता लग सके कि संसार के कल्याण के लिए भगवान् दयानन्द ने कितनी घोर तपस्या की थी। जहां भगवान् राम को योगी

जन आसानी से मिलते रहे, वहाँ भगवान् दयानन्द को योगियों को तलाश करना पड़ा और इस तलाश में नाकाबिल बयान दुःख उठाने पड़े ।

घर से निकल कर पहले तो गृहस्थ के कपड़े उतार कर ब्रह्मचारी बने और पीले वस्त्र धारण कर अपना नाम शुद्ध चैतन्य रखा । फिर जब ब्रह्मचारी होने के कारण विद्या और योग सीखने में बाधा पड़ती देखी तो संवत् १९०५ में घर से निकले । २ वर्ष के बाद पूरे २३ साल की आयु में स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास ग्रहण करके स्वामी दयानन्द नाम रख कर बिना खटके अब वन वन विचरने लगे तथा योगियों की तलाश में जहाँ जहाँ भी उनको खबर मिलती चले जाते रहे, संवत् १९१२ में हरिद्वार के कुम्भ में भी योगियों की तलाश में आए और कुम्भ की समाप्ति पर बद्रीनारायण तक जाने का संकल्प कर लिया । क्योंकि पता लगा कि इस इलाका में पहाड़ों की कन्दराओं में योगी मिल जाते हैं अर्थात् हरिद्वार से चल कर टीहरी, गढ़वाल श्रीनगर, केदारनाथ, रुद्रप्रयाग, शिवपुरी आदि होते हुए तुंगनाथ जब पहुँचे तो योगियों की तलाश में पहाड़ों में घूमने लगे, इस भ्रमण का वर्णन महर्षि स्वयं लिखते हैं ।

(१) "कि जब मैं पहाड़ से नीचे उतरने लगा तो मैंने अपने सामने दो मार्ग देखे एक मार्ग पश्चिम की ओर और दूसरा दक्षिण पश्चिम की ओर जाता था, मैं यह स्थिर न कर सका कि उन मार्गों में से मुझे किस मार्ग पर जाना चाहिये । अन्त में मैं इस मार्ग की ओर चल दिया जो जंगल की ओर जाता था । कुछ दूर ही बढ़ा था कि मैं एक घने जंगल में घुस गया । जंगल में कहीं कहीं बड़े बड़े ऊँचे नीचे पाषाण खण्ड थे और कहीं जल हीन छोटी छोटी नदियां थीं, थोड़ी दूर और आगे चलने पर मैंने देखा कि वह मार्ग रुका हुआ है । वहां किसी तरफ भी और कोई मार्ग न पाकर मैं सोचने लगा कि ऊपर चढ़ूं या नीचे जाऊँ, यदि ऊपर चढ़ता हूं तो अनेक विघ्न बाधाओं का सामना करना होगा । और सम्भव है कि ऊपर चढ़ते चढ़ते ही रात्रि हो जाय । अतः मैंने नीचे उतरना ही युक्ति युक्त समझा और घास के गुच्छों को दृढ़ता से पकड़ कर धीरे धीरे नीचे उतरने लगा । थोड़ी देर बाद मैं एक सूखी नदी के तट पर जा पहुँचा । इसके बाद मैं एक ऊँची पत्थर की चट्टान पर खड़ा होकर चारों ओर देखने लगा । मैंने देखा कि चारों ओर ऊँची-ऊँची भूमि,

छोटे छोटे पर्वत और मनुष्य के लिए अगम्य और मार्गहीन वन था । इस समय सूर्य भी अस्त होने को तैयार था । इस वक्त मेरे मन में यह आन्दोलन हो गया कि जल्दी अन्धेरा छा जायेगा और अन्धेरे में मुझे इस घोर जंगल में जहां न कोई मनुष्य है न आग जलाने का सामान, यहां अकेले ही रहना पड़ेगा । इस वक्त सिवाय उत्कट पुरुषार्थ का सहारा लेने के और कोई उपाय न था । इसलिए यद्यपि इस दुर्गम वन में मेरे वस्त्र आदि फट गये थे और शरीर बहुत थक गया था और पांव कांटों से छलनी हो गये थे और इस कारण मैं लंगड़ों के समान चलता था तथापि मैं केवल प्रबल पुरुषार्थ के प्रभाव से उसे पार कर गया। अन्त में एक पर्वत के पादमूल में आ कर मैंने एक मार्ग देखा । यद्यपि चारों ओर अन्धकार फैल गया था तथापि मैंने कुछ सोच विचार न करके वही मार्ग पकड़ लिया और धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा । कुछ दूर आगे कुटिया नजर आई । कुटी वालों से पूछने पर पता लगा कि यह मार्ग ओखी मठ को गया है । मैं भी ओखी मठ की ओर चल पड़ा और कुछ देर में वहां पहुँच गया । और ओखी मठ में रात्रि बिता कर प्रातःकाल उठ कर फिर योगियों की तलाश में चल खड़ा हुआ ।

(२) ओखी मठ से जोशी मठ, अलखनन्दा स्रोत, वस्धरा होते हुए बद्री नारायण पहुँच गये, इस वक्त स्वामी जी तीस वर्ष के हो चुके थे, बद्री नारायण के मुख्य पुजारी को रावल जी कहते हैं । स्वामी जी ने उनसे पूछा कि यहां आस पास कोई योगी भी रहते हैं तो उन्होंने कहा कि सुना है एक योगी रहते हैं और कभी कभी मन्दिर में भी आ जाते हैं । यह बात सुन कर स्वामी जी उस योगी की तलाश में निकले जिसका वर्णन वे स्वयं करते हैं ।

"एक दिन सूर्य के निकलते ही मैं बद्रीनारायण के मन्दिर से बाहर निकला और पर्वत के नीचे नीचे चलने लगा तो अन्त में अलखनन्दा के तट पर जा पहुँचा । अलखनन्दा के उस पार बड़ा माना ग्राम दिखाई देने लगा, परन्तु उस पार जाने की मेरी इच्छा न थी, मैं पहाड़ के नीचे नीचे ही चलता रहा और वन की ओर अलखनन्दा के साथ चलने लगा। पर्वत के नीचे का मार्ग सब ही मोटी बर्फ से ढका हुआ था । इस कारण मैंने बहुत ही कठिनता से इस मार्ग का अतिक्रमण किया और अलखनन्दा

के उत्पत्ति स्थान पर पहुंच गया। वहां मैंने देखा कि चारों ओर गगन-भेदी पर्वतमाला खड़ी है। एक तो वह स्थान अपरिचित था, और दूसरी ओर चारों ओर पहाड़ और किसी ओर भी कोई मार्ग न पाकर कुछ देर मैं ऐसे ही घूमता रहा फिर नदी की दूसरी ओर जाकर मार्ग का पता लगाने का निश्चय किया। इस समय मैं साधारण पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत असह्य था। इस पर भूख और प्यास से शरीर क्लान्त हो रहा था। भूख मिटाने के लिए मैंने एक बर्फ का टुकड़ा गले से नीचे उतारा परन्तु इससे कुछ भी न हुआ। इसके बाद मैं नदी को पार करने के लिए नदी में उतर पड़ा। नदी की तली छोटे मोटे बर्फ के टुकड़ों में भरी पड़ी थी, इन नुकीले बर्फ के टुकड़ों से मेरे पांव लहु लुहान हो गये, और लहू बहने लगा। लहू बहने से कमजोरी होने लगी और शिद्दत की सर्दी से बेहोशी होती जा रही थी। मेरे पैर डगमगाने लगे और कई दफा मैं गिरने को हुआ तो मेरे मन में विचार आया कि शायद अलखनन्दा में ही प्राण देने होंगे, मेरा शरीर इस वक्त इतना निर्बल हो गया था कि मैं एक बार भी अलखनन्दा में गिर पड़ता तो मेरा उठना मुश्किल हो जाता। इसलिए भरपूर उत्साह करके मैं नदी के दूसरी पार पहुंच ही गया, इस वक्त मेरी दशा मृतवत् थी, मैंने जल्दी जल्दी अपने शरीर पर से कपड़े उतारे और इनकी पट्टी बना कर तलवों से लेकर घुटनों तक बांधी, इस वक्त मैं बहुत थका हुआ था और भूख भी जोर से लग रही थी और मुझ में चलने की शक्ति भी न थी, परन्तु मैं कुछ देर विश्राम करके चल पड़ा और रात के आठ बजे वापस बद्रीनारायण पहुंच गया, परन्तु कोई भी योगी न मिला। और दूसरे दिन बद्रीनारायण से प्रस्थान कर जंगलों और पहाड़ों को पार करते हुए रामपुर आ पहुंचा।

(३) जब महर्षि योगियों की तलाश में नर्मदा नदी के उत्पत्ति-स्थान की ओर अग्रसर हुए तो उनको बहुत ही घोर घने जंगल से गुजरना पड़ा, तथा वे स्वयं लिखते हैं—"कि जब मैं एक घने जंगल में से गुजर रहा था कि एक बहुत बड़ा काला रीछ मेरे सामने आकर खड़ा हो गया वह गर्ज कर अपनी पिछली टांगों पर खड़ा हो गया और मुझे खाने के लिए अपना मुंह खोला, मैंने अपनी पतली लाठी धीरे धीरे मुख पर मारने के लिए उठाई, इसे देख कर न जाने किस कारण रीछ पीछे हट कर

चला गया। अनेक फूल के वृक्षों और अनेक प्रकार की काँटेदार झाड़ियों से वह जंगल भरा हुआ था, किसी ओर से भी इस जंगल से निकलने का रास्ता नहीं था, कुछ दूर तक बैठे बैठे और कुछ दूर तक घुटनों के बल चलना पड़ा। कुछ दूर इसी तरह चल कर मैं घने जंगल से बाहर तो निकल आया परन्तु मेरे सारे कपड़े फट गये और काँटे लगने से मेरे शरीर के बहुत से भागों से लहू बहने लग पड़ा। भूख के सबब और शरीर से लहू बहने के कारण मेरा शरीर दुर्बल हो रहा था और इधर सूर्य भी अस्त होने को तैयार था पर मैं पूरे उत्साह से काम लेकर नदी किनारे पहुंच गया।"

(४) भगवान् राम लक्ष्मण और सीता बनवास में एक दफा एक ऋषि-आश्रम में पहुंचे तो भीलनी ने बड़े प्रेम से इनका स्वागत किया। और मीठे मीठे बेर इनको अर्पण किये जो भगवान् राम ने भीलनी के छोटी जाति में उत्पन्न होने का विचार न करके उसके प्रेम उपहार को स्वीकार कर वे बेर बड़े प्रेम से खाकर भीलनी को कृतार्थ किया। और इसी तरह भगवान् कृष्ण के सहपाठी सुदामा ब्राह्मण ने जब भगवान् कृष्ण को तन्दुल (चावल) भेंट किये तो उन्होंने भी सुदामा की गरीबी की तरफ न देखकर सुदामा के प्रेम भरे उपहार को बड़े प्रेम से स्वीकार कर वे चावल खा लिये। भगवान् राम और कृष्ण प्रेम के भूखे थे।

और

इसी तरह भगवान् दयानन्द भी प्रेम के भूखे थे। भगवान् राम और भगवान् कृष्ण जी के वक्तों में इतना छूत-छात और ऊंच-नीच का बखेड़ा न था, परन्तु भगवान् दयानन्द के जमाने में ये सब इतना भयंकर रूप में इस देश में था कि यू० पी० के लोग तो चूल्हे में लकड़ियां भी धोकर जलाया करते थे परन्तु भगवान् दयानन्द के जीवन की निम्नलिखित घटनाएं इनके मनुष्य मात्र से प्रेम का दर्शन कराती हैं।

(५) संवत् १९६८ में जब महाराज दूसरी वार फर्रुखाबाद पधारे तो एक दिन सुखवासीलाल साधु स्वामी जी के लिए कढ़ी और भात बनवा कर लाया और महाराज ने उसे खा लिया। इस पर ब्राह्मणों ने कहा कि आप भ्रष्ट हो गये हैं जो साधु के घर का भोजन खा लिया। महाराज ने उत्तर दिया कि भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है। एक तो

अगर किसी को दुःख देकर धन प्राप्त किया जावे, और उससे अन्नादि खरीद कर भोजन बनाया जावे । दूसरे भोजन मलीन हो अथवा उसमें कोई मलीन वस्तु गिर जावे । साधु लोगों का परिश्रम का पैसा है, इससे प्राप्त किया हुआ भोजन उत्तम है । इस पर ब्राह्मण लोग निरुत्तर हो गये।

(६) संवत् १८७० में भगवान् दयानन्द अनूपशहर पधारे तो एक दिन एक नाई अपने घर से महाराज के लिए भोजन बना कर लाया और महाराज से प्रार्थना की कि आज तो मेरी भिक्षा ही स्वीकार कीजिए, महाराज ने बड़े प्रेम से उसको स्वीकार कर लिया और भोजन पा लिया। उपस्थित लोगों ने कहा—महाराज यह तो नाई की रोटी है, परन्तु महाराज ने हंसी में कह दिया कि यह नाई की रोटी नहीं यह तो गेहूं की रोटी है ।

(७) इसी साल जब भगवान् दयानन्द छलेसर पधारे तो महाराज के लिए भोजन ठाकुर मुकन्दसिंह जी के घर से आया करता था । एक दिन महाराज चबूतरे पर विराजमान थे, अभी तक उनके लिए भोजन नहीं आया था, एक किसान मक्की की दो मोटी मोटी रोटियाँ लेकर अपने घर से आ रहा था, जब वह इस चबूतरे के पास पहुंचा जहाँ महाराज विराजमान थे तो इसके मन में रोटियों को महाराज की सेवा में अर्पण करने की इच्छा हुई उसने नम्रता पूर्वक नमस्कार करके निवेदन किया कि महाराज आज मेरी रूखी सूखी रोटियां स्वीकार कीजिए । महाराज ने कृपा पूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसके भोजन को बड़ी प्रसन्नता से पा लिया । किसान महाराज के इस प्रेम के लिए तथा कृपा से गद्‌गद हो गया, सच है महापुरुष सब संसार से प्रेम किया करते हैं किसी कवि के वाक्य मशहूर हैं जिसमें दूसरा मिसरा फिट हो गया—

भीलनी की बेर, सुदामा के तंदुल हंस हंस भोग लगाए ।
नाई की रोटी को स्वामी दयानन्द बड़े प्रेम से खाए ॥

(४) भगवान् राम और लक्ष्मण जब सीता स्वयंवर जीत कर वापस अयोध्या आ रहे थे तो रास्ते में परशुराम जी उनको मिले और दोनों भाइयों से बहुत क्रोध से बातचीत करके लड़ने को तैयार हुए कि भगवान् राम ने अपनी तीव्र बुद्धि से उनकी युद्ध की प्रवृत्ति वाली विचार-शक्ति को हर लिया था और परशुराम जी खिसयाने होकर चुपचाप वापस

चले गये थे ।

और

इस तरह महर्षि दयानन्द के सामने भी जो पण्डित, मौलवी, पादरी, शास्त्रार्थ के लिए आए थे वे भी उनकी विचार-शक्ति को हरण कर लिया करते थे। और कई वार तो मुखालफ महाराज के सामने काँपने लग जाते थे । जुलाई सन् १८७९ में जब महाराज मुरादाबाद पधारे तो एक दिन तीन पण्डित स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने के विचार से उनके पास आए परन्तु शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा, स्वामी जी को देख कर ही काँपने लगे और उनके मुंह से बात तक निकलनी कठिन हो गई ।

(२) पं० खड़कसिंह, पादरी बेरंग के उपदेश से ईसाई हो गये थे और उनको ईसाई हुए बारह वर्ष हो चुके थे । और वे ईसाई धर्म के बड़े भारी प्रचारक बन गये थे अर्थात् पादरी साहब ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को इन्हें बुलाया और वे अमृतसर पहुंच गये । इधर पादरी के पक्षवाले खुश हो रहे थे कि अब पादरी खड़कसिंह आ गये हैं, स्वामी जी से खूब शास्त्रार्थ होगा और यह दयानन्द को परास्त करके ईसाइयों का सिर ऊंचा करेंगे परन्तु Man proposes & God Disposes के अनुसार परमेश्वर की लीला और ही हो रही थी । पादरी खड़कसिंह बाबू संघी के मकान पर बाबू ज्ञानसिंह से मिले और उनसे पूछा कि आप जानते हैं कि वह कौन है कि जिस से शास्त्रार्थ करने को मुझे बुलाया गया है । बाबू ज्ञानसिंह ने कहा कि इनका नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है, और वे सरदार भगवान्सिंह के बाग में ठहरे हुए हैं, आप जरूर उनको मिलिए । एक दिन शाम को चार बजे के करीब बाबू ज्ञानसिंह पादरी खड़कसिंह को स्वामी जी के स्थान पर ले गये। पादरी खड़कसिंह प्रणाम करके स्वामी जी के नजदीक बैठ गये। इसके बाद जो दृश्य बाबू ज्ञानसिंह ने देखा उसको देखकर वह हैरान हो गये। हुआ यह कि स्वामी जी महाराज से एक ब्राह्मण धर्म विषय पर बातचीत कर रहा था । स्वामी जी इसके प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे । परन्तु अब पादरी खड़कसिंह उनको उत्तर देने लग पड़े । तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं तो स्वामी जी से बातें कर रहा हूं आप बीच में क्यों बोलते हैं तो खड़कसिंह जी ने कहा कि यदि मेरे उत्तर से आप की सन्तुष्टि न होगी

तो स्वामी जी से पूछ लेना । उसी वक्त से खड़कसिंह जी ईसाई न रहे थे । महाराज के दर्शन करने से ही इनका पार उतारा हो गया और वैदिक धर्म का प्रचार करने लग गये ।

(३) संवत् १९३६ में स्वामी जी महाराज हरिद्वार में कुम्भ पर लगातार २० फरवरी १८७९ से १६ अप्रैल १८७९ तक रात दिन परिश्रम करने के कारण कुछ रोगी हो गये थे, और उनको दस्त आने लगे थे और कुछ दिन आराम करने के लिए वे देहरादून आ गये और जब रोग का वेग कुछ कम हुआ तो फिर प्रचार आरम्भ कर दिया । एक दिन बाईबल और कुरान की समालोचना कर रहे थे कि पादरी मारसन साहब बड़े क्रोध में आ गये, और व्याख्यान की समाप्ति पर अण्ड बण्ड बोलने लग पड़े, तब उनके ही साथी एक अंग्रेज ने इनको समझाया कि पादरी साहब जिस सभ्यता से स्वामी जी बात कर रहे हैं आप भी वैसे ही बातचीत करें । इस पर पादरी साहब इस अंग्रेज से भी उलझ पड़े और कहने लगे कि मैं ठीक बोल रहा हूं अगर आप स्वामी जी को ठीक समझते हैं तो आप भी इनके साथ मिल जावें । इतना कह कर वह सभा से उठ कर चले गये ।

(४) इसके बाद एक और विचित्र घटना हुई—दो अंग्रेज सज्जनों ने जिनके नाम पारमर और गारटन थे सवामी जी से बातचीत करनी चाही सो महाराज ने स्वीकार कर ली परन्तु बीच में मिशन स्कूल के हैड मास्टर बिपनमोहन बोस ने टांग अड़ा दी और स्वामी जी महाराज के सामने बाईबल का मण्डन करने लगे और स्वामी जी महाराज उनका उत्तर दे ही रहे थे कि गार्टन साहब ने भी बोस साहब का ही खण्डन करना शुरू कर दिया । सब लोगों का इस अद्‌भुत दृश्य को देख कर मनोरंजन भी हुआ और आश्चर्य भी । शाम के आठ बजे से दस बजे तक यह दृश्य चलता रहा ।

यह थी भगवान् राम की तरह महाराज दयानन्द में अद्‌भुत शक्ति। जिससे वे अपने विपक्षियों की विचार-शक्ति को हरण कर लिया करते थे ।

(५) सन् १८७७ में जब महाराज मेरठ में थे तो एक दिन एक निधि नाम के पण्डित स्वामी जी के पास शास्त्रार्थ करने की नीयत से

आए जब वे स्वामी जी के पास पहुँचे तो स्वामी जी ने मुस्कराते हुए पूछा कि पण्डित जी कैसे आए तो उसके उत्तर में जो कुछ पण्डित जी ने कहा वह किसी की समझ में नहीं आया क्योंकि पण्डित जी की घिग्घी बंध गई थी और एक अक्षर भी उनके मुख से स्पष्ट न निकल सका, इस पर पास बैठे हुए सब लोग हँस पड़े और पण्डित जी लज्जित होकर वापस चले गये ।

रावण राक्षस सीता को चुराकर ले गया था और भगवान् राम उसको मार कर सीता को ले आए थे ।

और

पुराणों के अन्दर एक कथा आती है कि शंखासुर वेद चुरा कर ले गया था । और स्वामी जी महाराज शंखासुर राक्षस को मार कर वेद ले आए थे, जिसकी कथा इस तरह से है ।

जब महाराज सन् १८७९ में शाहजहांपुर पधारे थे, तो एक दिन पण्डित लक्ष्मीनारायण एक विज्ञापन देख कर महाराज के पास मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने के लिए आया, महाराज ने इससे कहा कि मूर्तिपूजा के समर्थन में कोई वेद का प्रमाण दीजिए तो शास्त्री जी बोले–महाराज वेद का प्रमाण कहां से दूं, वेद तो शंखासुर ले गया । महाराज ने वेद का पुस्तक उनके सामने रख कर कहा कि हमने आपके आलस्य और प्रमाद के शंखासुर का वध करके वेद जर्मनी से मंगाए हैं, इनमें से खोज कर कोई प्रमाण दीजिए तब पण्डित जी को मौन रहने के सिवाय कोई उपाय न सूझा और सारी सभा हंस पड़ी ।

७–भगवान् राम ने अपने आत्मविश्वास के बल पर अपने भाई भरत से फ़ौजी इमदाद न लेकर लंकापुरी पर चढ़ाई करके रावण को पराजित कर लिया था ।

और

इसी तरह भगवान् दयानन्द ने अपने आत्मविश्वास के बल पर काशीपुरी पर चढ़ाई करके अविद्या-अन्धकार के रावण को पराजय कर लिया था ।

निज धाम को वापसी

८–भगवान् राम रावण पर विजय प्राप्त कर दीवाली को निज

धाम अयोध्यापुरी पधारे थे । और घर-घर दिये जलाए गए थे ।

और

इसी तरह भगवान् दयानन्द भी अविद्या-अन्धकार रूपी रावण पर विजय प्राप्त करके १० अक्तूबर १८८३ को दीवाली की रात को अपने निज धाम तथा मोक्ष धाम को पधारे थे । और घर घर दिये जलाए गए थे ।

पैगाम वेद पाक का दे खास आम को ।
दुनिया से भी गये तो दीवाली शाम को ॥

बोलो भगवान् राम और भगवान् दयानन्द की जय ।

५. लक्ष्मण यति

१-राम के साथ अपनी निज पत्नी को त्याग कर लक्ष्मण का वन को जाना उसके पूर्ण संयमशीलता को प्रकट करता है । परन्तु जिस वक्त रावण ने सीता का हरण किया और सीता की खोज करते हुए मार्ग में पड़े हुए कुछ भूषण मिले तो राम जब लक्ष्मण से पूछने लगे कि हे लक्ष्मण तुम इन भूषणों को पहचानते हो यह सीता के ही हैं तो उत्तर में लक्ष्मण कहता है (वाल्मीकी रामायण किष्किन्धा काण्ड ५-१२)

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाऽभिवन्दनात् ॥

अर्थात् मैं सीता के बाहुभूषण को नहीं जानता और न ही कानों के कुण्डलों की ही पहचान कर सकता हूं । मैं तो सिर्फ पांव के ही भूषण पहचानता हूं । वह भी नित्य सीता के चरणवन्दना करने से।

अहो कितना सदाचार है, चौदह वर्ष साथ रहे और आंख उठाकर सीता को न देखा ।

(२) जब सरूपनखा ने पञ्चवटी में आकर राम के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा और उन्होंने नामंजूर कर दिया तो वह लक्ष्मण के पास गई और उसके सामने भी अपने साथ विवाह करने का प्रस्ताव रखा तो लक्ष्मण ने कहा-

सांच कहुं सुन लेहु निशाचरी, तू जननी मोरी भई तब से ।
काम के भाव धरी मन में, श्री राम के पास गई जब से ॥

अर्थात् जब तू राम के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर गई थी तभी से तू मेरी माता के समान हो गई है, इसलिए मेरे साथ तेरे विवाह का तो कोई प्रश्न ही नहीं पैदा होता।

(३) फिर वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड श्लोक ३३-३५ में लिखा है-कि तारा नाम की बाली पत्नी को देख कर ही उदासीन भाव अर्थात् उपेक्षा से लक्ष्मण औरग मुख यानी दूसरी तरफ मुंह करके खड़ा हो गया। ऐसा सदाचारी होने से लक्ष्मण यति मशहूर हो गया।

और

ऐसे ही महर्षि दयानन्द भी यति थे।

१-जब महाराज मथुरा में गुरु विरजानन्द जी से विद्या प्राप्त कर रहे थे तो एक दिन ऐसी घटना हुई-कि महाराज यमुना की रेत में समाधि लगाए बैठे हुए थे। एक देवी यमुना में स्नान करने आई, और उसने स्नान करके दयानन्द के चरणों में मस्तक रखकर बड़ी श्रद्धा से नमस्कार किया। दयानन्द कभी स्त्री-स्पर्श न करते थे, वे एकदम चौंक पड़े, समाधि खुल गई और माता माता कहते हुए उठकर दूर चले गये। और स्त्री-स्पर्श का प्रायश्चित्त करने के लिए वह गोवर्धन पर्वत की ओर गये और एक निर्जन स्थान में तीन दिन और तीन रात निराहार रहकर समाधि लगाई और प्रायश्चित्त पूरा किया। जब वह गुरुदेव के पास आए तो उन्होंने गैर हाजिरी का कारण पूछा-उन्होंने सब कथा सुनाई तब गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए।

(२) संवत् १८७४ में जब महाराज सूरत पधारे तो वहां के एक मठधारी मोहन बाबा की उन पर बहुत श्रद्धा हो गई, उनके आग्रह करने पर वह उनके स्थान पर गये। मोहन बाबा ने अपने स्थान को ऐसे सजाया हुआ था जैसे लाट साहब का स्वागत करना हो। जब स्वामी जी पण्डित नर्मदाशंकर, दुर्गाराम मोता और पं० कृपाराम को लेकर मोहन बाबा के मठ पर गये तो मोहन बाबा ने बड़े प्रेम और श्रद्धा से इनका स्वागत किया। महाराज को ऊंचे आसन पर बिठाया और फूलमालाओं से लाद दिया, और पुष्प वर्षा तथा चन्दन वर्षा भी की, मोहन बाबा के चेले चेलियां भी महर्षि के दर्शन के लिए पधारे थे परन्तु चेलियों को अलग कमरे में बिठाया गया था। जब मोहन बाबा ने महाराज से आग्रह किया कि

वह उनकी चेलियों को भी दर्शन देवें तो उन्होंने इन्कार कर दिया, तब पण्डित नर्मदाशंकर ने महाराज से कहा कि आप जितेन्द्रिय पुरुष हैं, और वे स्त्रियां आपके दर्शनों की अभिलाषा से आई हैं उन्हें निराश करना उचित नहीं है। तब महाराज उनके अनुरोध की रक्षा करने के लिए उस कमरे में गये, परन्तु स्त्रियों की ओर देखकर भूमि की ओर टकटकी लगाये बैठे रहे, स्त्रियों ने दूर से ही उन पर पुष्प वर्षा की, स्त्रियों ने महाराज के चरण छूने की विनीत प्रार्थना की परन्तु इस बात पर महर्षि किसी प्रकार सहमत न हुए।

(३) दिसम्बर १८७४ में महाराज जब भडोंच पधारे तो एक दिन ऐसा हुआ कि उपदेश श्रवण करने की अभिलाषा से बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियां धर्मशाला में आईं। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामी जी स्त्रियों से वार्तालाप नहीं करना चाहते थे, परन्तु जब उन्होंने विशेष आग्रह और अनुरोध किया तो उनके और अपने बीच में एक पर्दा डाल कर इन्हें उपदेश दिया जिसका सारांश यह है।

'पति सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है और अपने पतियों से उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना जाना और साधु संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना स्त्री जाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्री जाति का मुख्य धर्म पति सेवा और उत्तम रीति से सन्तान का पालन पोषण करना ही है।'

(४) सन् १८७५ में बम्बई निवास के दिनों में हरियाणा जिला होशियारपुर की एक महिला माई भगवती जो जवानी में ही वैराग्यवती हो गई थी। इसके विचार नवीन वेदान्त के थे, परन्तु सत्यार्थप्रकाश पढ़ कर इसके विचारों में परिवर्तन हो गया था। वह स्वामी जी के दर्शनार्थ बम्बई पहुंची, और उनसे उपदेश लेकर कृतार्थ हुई। स्वामी जी ने उसे स्त्री जाति में धर्मप्रचार करने का उपदेश दिया। स्वामी जी ने माई भगवती को पर्दे में बिठा कर उपदेश दिया था।

(५) नवम्बर १८७९ ई० में जब महाराज छठी बार काशी पधारे तो एक दिन एक स्त्री आकर महाराज से बातें करने लगी, महाराज जी नीचे गर्दन किये, इससे बातें करते रहे। थोड़ी देर बाद उसकी तरफ से मुंह फेर कर बैठ गये और वह निराश होकर चली गई।

(६) जुलाई मास १८८३ में महाराज जोधपुर में विराजमान थे, फैजउल्लाह खां के बाग़ में जहां महाराज ठहरे हुए थे उनके दरवाजे के दोनों तरफ़ दो मंजिले मकान थे। इन्हीं दिनों द्वार के ऊपर के कमरों में कई पण्डित ठहरे हुए थे, उनके लिए बड़ी महारानी ने कुछ फल वगैरह ४-५ दासियों के हाथ भेजे थे, जब वे द्वार पर आईं पण्डित जी का पता पूछा तो किसी ने यह समझ करके कि यह स्वामी जी महाराज को पूछ रही हैं उनको कह दिया कि बाग के बीच वाले बंगले में हैं, वहां पहुंच कर उन्होंने पहरेदारों से पूछा, उन मूर्खों ने भी यही समझा कि पण्डित जी से उनकी मुराद स्वामी जी से ही है, और कह दिया कि ऊपर ही हैं। वे बेधड़क ऊपर चली गईं। पहरेदारों ने उन्हें न रोका। उस समय महाराज पलंग पर लेटे हुए थे। उन्होंने करवट ली थी तो बरामदे में वे स्त्रियां खड़ी दिखाई दीं, इन्हें देखकर स्वामी जी सहसा उठ कर बड़े जोर से चिल्लाए। चारण नवलदान साथ के कमरे में लेटा हुआ था, वह शोर सुनकर आया, उसे यह भय हुआ कि कहीं किसी ने महाराज पर कातिलाना हमला न कर दिया हो। वह नंगे पांव और नंगे सिर महाराज के कमरे में भागा भागा आया, महाराज ने रोष प्रकट करते हुए कहा कि कैसा अन्याय है कि हमारे कमरे में स्त्रियां आ गई हैं, यह सब आपके प्रबन्ध की कमी है, इन्हें निकाल दो तुरन्त इन स्त्रियों को निकाल दिया। और कहा कि महाराज यह सब पहरेदारों की गलती से हुआ है, महाराज ने कहा उनको बदलवा दो। अर्थात् उनके बदले नये पहरेदार आए तो उनको ताकीद कर दी गई कि किसी स्त्री या लड़की को बंगले के पास मत आने दो।

बोलो लक्ष्मणयति और दयानन्द यति की जय।

६. प्रतिज्ञापालक भरत

भगवान् राम को वापस लाने पर जब भरत जी असफल हुए तो उन्होंने दो प्रतिज्ञाएँ की थीं।

१. अयोध्या के तख्त पर मैं न बैठूंगा, आप की खड़ाऊं तख्त पर रखी जाएंगी।

२. जब तक आप बनवास से वापस न आएंगे, आप के नाम

पर ही राज्यकाज संभाले रखूंगा ।

और ये दोनों प्रतिज्ञाएँ भरत जी ने १४ वर्ष तक खूब निभाईं और वनवास से राम जी की वापसी पर उनकी अमानत उनके सुपुर्द कर दी।

और प्रतिज्ञापालक दयानन्द

महर्षि विरजानन्द जी ने भी महर्षि दयानन्द जी से दो प्रतिज्ञाएं करवाई थीं ।

१. वैदिक धर्म का प्रचार और अवैदिक मतों का खण्डन ।

२. किसी एक स्थान पर आश्रम बनाकर न बैठना । सदा घूम फिर कर प्रचार करना ।

और ये दोनों प्रतिज्ञाएं महर्षि दयानन्द जी ने सारी आयु पूर्ण रूप से निभाईं । कई बड़े बड़े राजाओं, महाराजाओं के कहने पर भी एक स्थान पर आश्रम बना कर न बैठे बल्कि सर्वत्र घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार और अवैदिक मत खण्डन पूरे बल से करते रहे । पूना में व्याख्यान देते हुए एक दिन महाराज ने स्वयं कहा था कि मैंने जो प्रतिज्ञा अपने गुरु विरजानन्द जी से की है कि स्थान-स्थान पर भ्रमण करके वैदिक धर्म का प्रचार करूं, उस का यथाशक्ति पालन करता हूं। परन्तु संसार सुधार का कार्य इतना महान् है कि मेरे जैसे कई सदोपदेशक हों तभी संसार का सुधार हो सकता है । और उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह जी महर्षि के बड़े श्रद्धालु थे । उन्होंने भी यह प्रस्ताव किया था कि आप यहां रह कर प्रचार करें, परन्तु महर्षि जी नहीं माने अतः महाराणा साहब ने जो अपने हाथ से लिख कर मानपत्र उनकी विदायगी पर दिया है उस में इस बात का इशारा भी किया है–

मानपत्र

चलते समय महाराणा ने एक मानपत्र स्वहस्ताक्षरयुक्त महाराज को दिया । जो इस प्रकार था–

स्वस्ति श्री सर्वोपाकारार्थकारुणिकः परमहंसपरिव्राजकाचार्य-वर्य-श्रीमद्दयानन्द-सरस्वती-यतिवर्येषु इतः महाराणासज्जनसिंहस्य नतिततयः समुल्लसन्तु ।

इदन्तु, आप का अठै मास का निवास सूं चित अत्यन्त आनन्द

में रह्यो, क्योंकि आप की शिक्षा को प्रकार श्रेष्ठ और उन्नतिदायक है, और आप का संयोग सूं ही न्याय धर्मादि शरीरिक कार्य में निस्सन्देह लाभ प्राप्त होना कि म्हां का सभ्य जना सहित दृढ़ आशा हुई । कारण कि शिक्षा और उपदेश वां का श्रेष्ठ पुरुषों का दृढ़ होवै है जो स्वकीय आचरण भी प्रतिकूल नहीं राखै, सो आप में यथार्थ मिल्यो, अब म्हे आप का वियोग का संयोग तो नहीं चाँवाँ हाँ, परन्तु आप का शरीर अनेक पुरुषों के उपकारक है । जी सूं अवरोध करणो अनुचित है । तथापि पुनरागमन सूं आप भी म्हां का चित ने शीघ्र अनुमोदित करेगा इत्यलम्।

संवत् १७३१ फाल्गुन कृष्ण ५ भौमे
हस्ताक्षर महाराणा सज्जनसिंहस्य

७. शत्रुघ्न

काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ये पांच विषय कहलाते हैं जिन को जीतना महाकठिन समझा जाता है । जिस के मुतालिक एक श्लोक है जिस का अर्थ है कि विष और विषय में बहुत अन्तर है । विष तो खाने से ही मनुष्य को मारता है परन्तु विषय तो ध्यान मात्र से ही मनुष्य का सर्वनाश कर देते हैं । इसलिए एक कवि ने भी कहा है–

दुखदायी हैं सब शत्रु हैं, ये विषय हैं जितने दुनिया के ।
वही पार हुआ भवसागर से, जो जाल में इनके फंसा न रहा ॥

सो महर्षि दयानन्द जी ने इन पांचों शत्रुओं को मार कर इन पर विजय पाई हुई थी इसलिए सच्चे अर्थों में शत्रुघ्न थे ।

१. काम

महर्षि दयानन्द जी आजन्म ब्रह्मचारी रहे इसलिए काम को मारना तो स्वतः सिद्ध ही है । इसके अतिरिक्त जब महाराज मेरठ में निवास करते थे तो एक भक्त ने एक दिन सवाल कर ही दिया कि महाराज आप तो हाड़ मांस का शरीर रखते हैं क्या आप को कभी काम ने नहीं सताया । तो महाराज ने हंस कर जवाब दिया प्यारे मेरा कभी इस ओर ध्यान ही नहीं गया और न ही मेरे पास इतना वक्त ही फालतू है जो मैं इसके मुतल्लिक सोच सकूं । अपने जीवन में उन्होंने कभी किसी स्त्री को आंख भर कर भी न देखा था ।

२. क्रोध

क्रोध तो महाराज को अपने बड़े से बड़े अपमान पर भी कभी न आता था । क्रोध करना तो एक तरफ रहा अपने जहर देने वाले और कातिलाना हमले करने वालों को भी माफ कर दिया करते और गालियां देने वालों को तो मिठाइयां भी खिलाते थे ।

१. फर्रुखाबाद में ज्वालाप्रसाद नामक एक शराबी और मांसाहारी ब्राह्मण इन दिनों पोस्ट मास्टर था । एक दिन वह एक वाममार्गी ब्राह्मण को पालकी में बिठा कर ले गया और स्वामी जी के सामने कुर्सी डाल कर बैठ गया और महाराज ने उसे कुछ भी न कहा ।

२. फर्रुखाबाद में ही एक दुष्ट स्वामी जी के पास आया और स्वामी जी से पूछा कि गंगा मुक्ति देती है या नहीं । स्वामी जी ने उत्तर दिया कि नहीं । इस पर उस ने स्वामी जी की तरफ जूता फेंका और भागने लगा परन्तु एक साधु ने उसे पकड़ लिया । फिर भी स्वामी जी ने उसे छुड़ा दिया कि इसने अज्ञानवश ऐसा किया है । निर्बल पर दया करने में बल की प्रशंसा है ।

(३) जो लोग गंगा के यात्रियों के दान से जीविका करते हैं वे गंगा-पुत्र कहलाते हैं । एक गंगा-पुत्र स्वामी जी के स्थान पर ही रहता था, उसने यह नियम बना लिया था कि हर रोज नियत समय पर महाराज को गालियां सुनाया करे । उसे ऐसा करते कई दिन हो गये परन्तु स्वामी जी ने इसकी गालियों की ओर ध्यान न दिया ।

कानपुर निवास के समय श्रद्धालु जनों में से अनेक भक्तजन गुरु जी महाराज के लिए मिठाई, फल आदि लाया करते थे, वह स्वामी जी आने वालों में बांट दिया करते थे, एक दिन ऐसा हुआ कि कुछ मिठाई फल आदि बच रहे, महाराज यह सोच रहे थे कि यह किस को देवें कि इतने में वही गंगापुत्र सामने से जाता हुआ दिखाई दिया । महाराज ने प्रेम भरे शब्दों से उसे बुलाया और उसे वह सब पदार्थ दे दिये और कह दिया कि प्रतिदिन हमारे पास आ जाया करो और खाने की चीजें ले जाया करो । वह कई दिन तक आता रहा और खाद्य वस्तुएं ले जाता रहा । एक दिन इसकी आत्मा ने इस को फटकारा कि ऐसे दयालु महात्मा के प्रति गालियां देकर मैंने बहुत पाप किया । एक दिन वह श्री चरणों

में गिर पड़ा और कहने लगा कि महाराज अगर मेरी दुष्टता का पार नहीं तो आपकी क्षमता की भी कोई सीमा नहीं है । आप मेरा अपराध क्षमा करें । महाराज ने कहा कि तुम्हारी गालियों को हमने अपनी स्मृति में स्थान भी नहीं दिया । तुम्हें इसके कारण दुःखी होने की आवश्यकता नहीं ।

(४) अलीगढ़ निवास के वक्त एक दिन एक भंगी चरसी साधु स्वामी जी के पास आया और असभ्यता पूर्ण कहने लगा, दयानन्द कौन है और कहां है । उस वक्त महाराज के पास एक सौ भद्र पुरुष बैठे थे, लोगों ने संकेत किया कि वे बैठे हैं । स्वामी जी ने इससे पूछा कि तुम ने गले में क्या डाल रखा है ? उसने कहा रुद्राक्ष, स्वामी जी बोले–रुद्र की आंख निकाल लाये हो, इस पर वह क्रोध में आकर महाराज को गालियां देने लग पड़ा परन्तु महाराज ने उसकी कुछ परवाह न की जब वह बक बक करता ही रहा तो स्वामी जी उठकर शौच को चले गये ।

(५) फर्रुखाबाद निवास के समय एक दिन महाराज प्रातः काल भ्रमण करने जा रहे थे कि मार्ग में इन्हें एक हट्टा कट्टा उजड्ड मनुष्य मिला, उसने महाराज को सुबह सवेरे अनेक दुर्वचन कहे, और कहने लगा कि तू ईसाइयों का नौकर है, हिन्दुओं को ईसाई बनाने आया है। महाराज उसकी गालियां सुन कर मुस्कराते रहे और आगे निकल गये।

(६) मुरादाबाद में एक दिन व्याख्यान हो रहा था, कि एक ब्राह्मण ने व्याख्यान में ही उठकर महाराज को गालियां देनी शुरू कर दीं, कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, हम इस का मुंह भी देखना नहीं चाहते । परन्तु महाराज ने इसकी ओर ध्यान न दे कर अपना व्याख्यान जारी रखा ।

(७) एक दिन मुरादाबाद का टीका सुपरिण्टेण्डेण्ट जो ब्राह्मण था, महाराज का व्याख्यान सुनने आया । और मूर्तिपूजा का खण्डन सुन कर वह इतना आवेश में आया कि स्वामी जी को गालियाँ देने लग गया। और यह कह कर कि यह दुष्ट हमारे देवताओं की निन्दा करता है, इसका मुंह नहीं देखना चाहिए चला गया । महाराज ने इसकी गालियों पर लेश मात्र भी ध्यान न दिया ।

(८) गुजरात निवास के समय एक दिन एक मनुष्य ने महाराज को ईंट मारी, पर वह उनको लगी नहीं, पुलिसमैन ने उसको पकड़ लिया। उसने ईंट फैंकने से इन्कार किया । महाराज ने हंस कर टाल दिया और उसको क्षमा-प्रदान कर दी ।

(९) मुन्शी हरगोबिन्द ने मथुरा निवास के समय एक दिन मुट्ठी में धूली भर स्वामी जी पर डाल दी, स्वामी जी ने इस पर भी उसे कुछ नहीं कहा ।

(१०) कानपुर में जहां स्वामी जी के व्याख्यान होते थे, इससे थोड़ी दूर एक और शामियाना खड़ा कर के गोस्वामी नर हरगिरि, स्वामी जी महाराज को गालियां निकाला करते थे और कहते थे कि अंग्रेजों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए इसको भेजा है और एक दिन एक ईंट भी उस तरफ से आ कर स्वामी जी के पास गिरी, परन्तु स्वामी जी महाराज मुस्कराते रहे और उसे क्षमा करते रहे ।

३. लोभ

धन के लोभ को महाराज ने जितना मर्दन किया था उसका वर्णन भीष्मपितामह के प्रकरण में आप पढ़ेंगे ही परन्तु यहाँ एक बहुत ही बड़े लोभ की कथा आप को सुनानी है जिसको महाराज ने विजय कर लिया था । काशी शास्त्रार्थ से पहले जब पण्डितों ने देखा कि अब हमारा कोई बचाव नहीं है और शास्त्रार्थ में हम मूर्तिपूजा वेदानुकूल सिद्ध नहीं कर सकेंगे तो उन्होंने मिल कर खुफिया तौर पर कुछ पण्डित महाराज के पास भेजे कि अगर आप मूर्तिपूजा का खण्डन छोड़ देवें तो हम आप को निष्कलंक अवतार बना देंगे, और हाथी पर आपका जलूस निकाल कर हम सब आपकी जय जयकार करेंगे। अहो ! कितना बड़ा लोभ है । विपक्षी ईश्वर का अवतार मानने को तैयार हैं परन्तु महर्षि जी ने इतने बड़े लोभ की भी तिनके के बराबर परवाह नहीं की । और अपने सत्य पथ पर चल कर मूर्तिपूजा का भरपूर खण्डन करते रहे । किसी ने ठीक कहा है–

दुनिया तजनी सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बड़ाई ईर्ष्या दुर्लभ तजनी एह ।।

सब से बड़ा लोभ या मान जो किसी को दिया जा सकता है

वह महर्षि को दिया गया, परन्तु उसे स्वीकार न करके महाराज ने लोभ पर पूर्ण विजयी होने का प्रमाण दे दिया ।

४. मोह

भला स्वामी दयानन्द जैसा मोह का विजेता भी संसार कभी पैदा कर सकेगा । अपना जन्म नाम न बताया था, जन्म धाम न बताया, माता पिता का नाम न बताया और जो कुछ किया उससे मोह न लगाया, अपने नाम का कुछ न बनाया, अपने काम का मोह न किया अपने शरीर का मोह न किया और जब कभी किसी ने मोह ममता की बात कही तो वे उसका तिरस्कार करते रहे ।

१–राजपूताना में रायपुर के ठाकुर साहब के आग्रह करने पर महाराज उनके यहां पधारे थे और उपदेश शुरू कर दिये । ठाकुर साहब ने एक यज्ञ कराने का निश्चय किया था, परन्तु वह न हो सका। इतने में ठाकुर साहब की ठकुरानी स्वर्गवास हो गई । तब कोठारी चाँदमल और बाबू रूपसिंह ने स्वामी जी से प्रस्ताव किया कि आप ठाकुर साहब से शोक प्रकट करने किला में तशरीफ ले चलें तो महाराज ने उत्तर दिया कि मैंने सारे संसार से सम्बन्ध त्याग दिया है, किसी का मरना और जीना मेरे लिए एक जैसा है, मैं किसी का शोक व हर्ष नहीं करता । मेरे सम्बन्ध तो केवल उपदेश व धर्म से है शेष किसी वस्तु से नहीं है । इस पर वे दोनों चुप हो गए ।

२–जब गंगा के किनारे महाराज एक लंगोटी में नंगे वदन विचरते थे, तो एक जगह के लोग बड़े श्रद्धालु हो गये । और महाराज की बड़ी सेवा करने लगे, जब महाराज को वहाँ रहते तकरीबन एक महीना हो गया तो एक दिन महाराज ने कहा कि अब हम आगे जायेंगे, इस पर श्रद्धालु भक्तों ने कहा कि महाराज हम को बता देना जब आपने जाना होगा; तब स्वामी जी कहने लगे कि हमने घर से निकलते समय अपने माता-पिता को तो बताया ही नहीं तो आपको कैसे बता देंगे । चुनांचे उसी सुबह को एक कोपीन जो स्वामी जी को इन लोगों ने बड़े आग्रह से दी थी और नस्य की डब्बी छोड़ कर बरसते मेंह में आगे चले गये। जब सुबह को भक्त आए तो स्थान खाली पाया ।

३–इसी तरह कानपुर में मुंशी गंगासहाय जी ने कहा कि महाराज

जिस दिन आप ने जाना हो मुझे बता देना, महाराज ने कहा-ऐसा नहीं हो सकता । अगर ऐसा ही करना होता तो घर से ही क्यों निकलता, यह कार्य मोह का है । हम नहीं बतलायेंगे, जब इच्छा होगी चल देंगे।

५. अहंकार

आप में से कई भाइयों ने पहलवानों की कुश्तियाँ देखी होंगी! इसमें यह प्रकार होता है कि छोटे-छोटे पहलवानों की कुश्तियाँ पहले कराई जाती हैं, और जो सब से बड़ा जोड़ पहलवानों का होता है वह सब से आखीर में लड़ाया जाता है, ठीक इसी तरह काम, क्रोध लोभ, मोह, अहंकार इन पांच पहलवानों में भी अहंकार सब से बड़ा पहलवान है । जो पहले एक, दो, तीन या चारों पहलवानों को भी जीत लेता है, वह पाँचवें से तो बड़ी मुश्किल से ही बच सकता है क्योंकि यह सब से बड़ा है–किसी ने कहा भी है–

दुनिया तजनी सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बड़ाई ईर्ष्या, दुर्लभ तजनी एह ॥

अंग्रेजी में भी एक कहावत है–

Fame is the last infirmity of human mind

यानि अहंकार को जीतना सब से मुश्किल काम है परन्तु महर्षि दयानन्द ने अहंकार को भी चकनाचूर कर दिया था । कभी किसी ने पूछा कि आप का क्या धर्म है तो यही जवाब दिया कि मेरा कोई नया मत नहीं है । ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त जो ऋषियों का मन्तव्य है सो मेरा भी वही है ।

१–दानापुर में एक दिन श्रद्धालुओं ने कहा कि महाराज आप तो ऋषि हैं, आप जैसा विद्वान् तो कभी सुना ही नहीं गया तो महाराज हँस कर फरमाने लगे, कि ऋषि मुनियों और विद्वानों के अभाव में आप ऐसी बात कहते हो । यदि मैं ऋषि मुनियों के जमाने में होता तो शायद मेरी गिनती विद्वानों में भी न हो सकती ।

२–एक दिन एक जगह व्याख्यान देते समय इनके मुख से एक शब्द अशुद्ध निकल गया । हाजरीन में से एक ने महाराज की अशुद्धि जतला दी, महाराज ने तुरन्त अपनी अशुद्धि स्वीकार कर ली, परन्तु वह बार-बार यही कहने लग पड़ा कि मैंने आपकी अशुद्धि पकड़ी । कुछ

देर तो महाराज चुप रहे । आखिर महाराज ने कहा आप ने अशुद्धि पकड़ी मैंने स्वीकार कर ली । अगर मैं चाहूं तो इस अशुद्धि को भी शुद्ध सिद्ध कर सकता हूँ परन्तु मैंने जिद नहीं की पर आप बार-बार ऐसा कह कर अपने संकीर्ण हृदय का परिचय दे रहे हो । फिर वह चुप हो गया ।

३-महर्षि पूर्ण विद्वान् होकर और जगद् गुरु की पदवी प्राप्त कर लेने पर भी अपने आपको गुरु न कहलवा कर वे महर्षि स्वामी विरजानन्द जी का शिष्य कहलाने में ही अपना गौरव समझते थे, अपने सब ग्रन्थों की समाप्ति पर उनके यह शब्द उनके अहंकार पर पूर्ण विजय की घोषणा करते रहेंगे ।

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यपरमविदुषां श्री विरजानन्द-सरस्वती-स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः ।

४-एक बार महर्षि से एक सज्जन ने प्रश्न किया कि आप इतने विद्वान् होने पर भी कोई एक शास्त्र रचकर संसार में अपना नाम क्यों नहीं छोड़ते ? तो महर्षि ने उत्तर दिया कि आगे जो शास्त्र रचे हैं, उनमें कौन सी कमी है ? जिसको पूरा करने के लिए अपना नया शास्त्र बनाऊं। और केवल नाम छोड़ने की आशा से पुस्तक बनाने में समय व्यर्थ गंवाऊँ।

८. वीर वजरंगी हनुमान्

पवन सुत अंजनादेवी के दुलारे को वीर वजरंगी हनुमान् कहते हैं । इनके सम्बन्ध में यह बात कही जाती है, कि वे बन्दर थे, परन्तु यह बात युक्ति संगत नहीं । प्रथम तो इनके माता-पिता का नाम ही सिद्ध करता है कि वे मनुष्य थे, क्योंकि किसी बन्दर के माता-पिता का नाम आज तक नहीं सुना जाता । दूसरे वानर शब्द से यह गलत फ़हमी हुई है । वानर शब्द से नर का अर्थ मनुष्य ही है, यानी ऐसे मनुष्य जो नगरों में न रह कर वनों में अथवा जमीन के नीचे गुफ़ाओं में या जमीन के नीचे शहर बना कर रहते हैं । जैसे वे किष्किन्धा नगरी में जो जमीन के नीचे बसी थी रहते थे । जैसे आज कल गोरीला फ़ौज होती है जो पहाड़ों और जंगलों की लड़ाई में निपुण होती है । वैसी ही वह वानर फ़ौज होगी, जो गोरीला जंग में निपुण होगी, आज कल बंगाल में एक बैनरजी नाम की जाति विशेष भी रहती है । और फिर भगवान् राम हनुमान् के मुतल्लिक कहते हैं कि बिना ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद का विद्वान्

हुए ऐसा नहीं बोल सकता, निश्चय ही उसने व्याकरण भी बहुत पढ़ा है। वाल्मीकि रामायण किष्किन्धा काण्ड) और बाकी रहा पूंछ का सवाल तो आज कल भी पुलिस या फ़ौज वाले जब आंसू लाने वाले गोले छोड़ते हैं या गैस वगैरा दुश्मन पर छोड़ने वाले फ़ौजी खास किस्म की पोशाक पहनते हैं, उसको मास्क कहते हैं और उनकी नाक के आगे बहुत लम्बा सूंड की तरह लगा होता है, इस तरह मुमकिन हो सकता है कि वानर सेना ने इस किस्म का कोई हथियार बनाया हो जो पूंछ के समान आकृति वाला हो या बिजली वगैरा के प्रयोग के लिए इसमें बैटरी वगैरह लगाई जाती हो, और इस बैटरी के जोर से आकाश में उछल कूद करना आसान हो जाता हो जैसा कि वाल्मीकी रामायण में लिखा है कि हनुमान् आकाश में उड़ा और हजारों को ऐसे मार दिया जैसे इन्द्र दैत्यों को। फिर लिखा है कि बड़ा वेगवान् हनुमान् राक्षसों पर टूट पड़ा, जैसे पर्वत पर बिजली। वैसे ही रामायण के अन्दर यह बात भी स्पष्ट लिखी है कि हनुमान् और सुग्रीव जब भगवान् राम से मिलने आए तो वे बन्दर रूप छोड़ कर मनुष्य के रूप में मिले, इससे यह बात भी स्पष्ट होती है कि उनका बन्दर रूप बनावटी था और रावण आदि राक्षसों से मुकाबला करने के लिए उन्होंने ऐसी वर्दी बनाई थी जो वे जब चाहते थे उतार सकते थे, आज कल राकेटों में जाने वालों की पोशाक आप देखें तो बिल्कुल बन्दर जैसी ही लगती है। क्योंकि हनुमान् जी का जिस्म सर्दी गर्मी सहन करने के कारण वज्र के समान था, इसलिए वे वीर वजरंगी के नाम से प्रसिद्ध थे।

और

महर्षि दयानन्द ने भी ब्रह्मचर्य, तप योग साधन और चौदह वर्ष तक निरन्तर पर्वतों जंगलों में घूमने से और कुछ साल तक सिर्फ एक लंगोट में रहने से अपने अंग-अंग को वज्र के समान बना लिया था, उनके जीवन की निम्नलिखित घटनाएं उनको वीर वजरंगी सिद्ध करती हैं।

१–जब महर्षि गुरु विरजानन्द जी महाराज के पास पढ़ते थे तो एक दिन गुरु जी ने किसी बात पर नाराज होकर स्वामी जी के जिस्म पर लाठी मारी जिससे दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का हाथ दर्द करने

लग गया। तब महर्षि गुरुदेव का हाथ दबाते हुए कहने लगे। गुरुदेव आप मुझे न मारा करें, मेरा शरीर तो वज्र के समान है, आपके कोमल हाथों को दुःख होगा। जब आपने मुझे सजा देनी हो तो किसी और शिष्य को कह दिया करें। और महर्षि गुरु जी से खाई हुई इस चोट के निशान को देख कर गुरुदेव के उपकारों को याद कर लिया करते थे।

२-संवत् १९२४ में जहांगीराबाद जिला बुलन्दशहर का एक रहीस जो वरजिशी नौजवान भी था, वह गंगा-स्नान को आया और वह स्वामी जी के उपदेश सुनकर उनका श्रद्धालु बन गया। एक दिन स्वामी जी के बल की परीक्षा करने की नीयत से महाराज के पांव दबाने लगा परन्तु उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वे पाँव वज्र के हों। पांव दबाते दबाते वह खुद पसीना-पसीना हो गया परन्तु वह अपनी उंगलियां स्वामी जी के पैर में न घुसेड़ सका।

३-संवत् १९२४ पोह महीने की एक रात्रि के समय महाराज गंगा के तट पर ठंडी रेत पर सिर्फ एक कौपीन धारण किये समाधि लगाये हुए थे, इतने में दो अंग्रेज अफसर शिकार खेलते हुए वहां आ निकले। महर्षि को इस अवस्था में देख कर उन्होंने यकीन कर लिया कि यह मरा हुआ आदमी है, क्योंकि इनके विचार में ऐसे कड़ाके की सर्दी में कोई आदमी नंगे बदन जीवित नहीं रह सकता था, उन्होंने स्वामी जी की देह को हाथ लगा कर हिलाया तो महाराज की समाधि खुल गई, महाराज को जिन्दा देखकर उनकी हैरानी की कोई हद न रही। तब अंग्रेज अफसर ने जो जिला का कलैक्टर था बड़ी हैरानी से स्वामी जी से पूछा कि आप ऐसे कड़ाके की सर्दी में नंगे वदन कैसे जिन्दा रह सके। अभी स्वामी जी उत्तर देने ही वाले थे कि उनके साथ वाले अंग्रेज ने कहा-अण्डे मांस खाता होगा, ब्रांडी पीता होगा। तब स्वामी जी ने हंस कर कहा-कि अण्डे मांस तो आप खाते हैं। हम तो दाल रोटी ही खाने वाले हैं, परन्तु यदि आप को अंडे मांस खाने में यह शक्ति प्रतीत होती है तो जरा अपने कपड़े उतार कर मेरे साथ बैठ जायें तब वे शर्मिन्दा होकर वहां से चल दिये।

४-इन्हीं दिनों का जिकर है कि जहांगीराबाद में जब श्रोतागण

कड़ाके की सर्दी से बचने के लिए लिहाफ और गर्म कम्बल लेकर भी कांपा करते थे तो महाराज नंगे वदन उपदेश दिया करते थे। एक दिन जब भक्तों ने पूछा—महाराज आपको सर्दी नहीं लगती तो अपने दोनों हाथों के अंगूठे दबा कर सारे जिस्म को पसीना पसीना कर लिया। भक्त लोग महाराज की इस अद्‌भुत शक्ति को देख कर हैरान रह गये। लगातार छः साल तक सिर्फ एक लंगोट में विचरने के बाद महर्षि दयानन्द जी का अंग-अंग वज्र के समान हो चुका था।

बोलो वीर वजरंगी दयानन्द महाराज की जय।

९. बाली सुत अंगद

रामायण में बाली सुत अंगद का पार्ट यह है कि वह रामचन्द्र जी का दूत बनकर रावण की सभा में गया। ताकि युद्ध की नौबत न आने पाये। और रावण सीता को रामचन्द्र जी के हवाले कर देवे परन्तु रावण न माना और कुछ लोगों के परामर्श से उसको मरवा डालने की योजना बनाने लगा। जिस पर अंगद ने अपना एक पांव जमीन पर जमा कर रावण को चैलेंज किया कि आपका अगर कोई योद्धा मेरा पांव जमीन से हिला सके तो मेरे सामने आवे परन्तु रावण के जवानों ने बहुत जोर लगाया लेकिन अंगद का जमा हुआ पांव न हिला सके और शर्मिन्दा हो कर बैठ गए। और अंगद सही सलामत वापस आ गया। अंगद को यह विद्या याद थी कि वह अपनी सारी शक्ति को किसी एक अंग में इकट्ठी कर लेता था।

और

१—महर्षि दयानन्द जी भी इस विद्या के पूर्ण विद्वान् थे। महर्षि जी सन् १८७८ में जब मेरठ पधारे तो एक दिन, रात के नौ बजे श्री वेनीप्रसाद शारदा और उनके कई मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित हो कर कहा कि हम आप के चरण दबाना चाहते हैं, महाराज जान गये कि यह मेरे बल की परीक्षा करना चाहते हैं। महाराज़ ने कहा पैर तो पीछे दबाना पहले मेरा पाँव उठाओ तो सही यह कह कर उन्होंने अपने पांव जमीन पर जमा दिए। नौजवान जो वरज़िशी भी थे बहुत जोर लगा-लगा कर थक गये, लेकिन महाराज का जमाया हुआ पांव उठा

नहीं सके ।

२–गुजरांवाला में महाराज ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान देते हुए एक दिन कहने लगे कि ब्रह्मचर्य में बड़ा बल होता है । अतः चैलिंज कर दिया कि मेरी आयु इस समय ५१ साल की है मैं अपना हाथ ऊपर उठाता हूं कोई मेरा हाथ झुका देवे । इस वक्त ५००-६०० पुरुषों की हाजिरी थी । और गुजराँवाला के मशहूर कश्मीरी पहलवान भी मौजूद थे लेकिन किसी में भी स्वामी जी का चैलिंज मंजूर करने की हिम्मत न हुई । और स्वामी जी का खड़ा हुआ हाथ किसी ने नीचा न किया ।

३–उसी गुजरांवाला में स्वामी जी स्नान करके अपनी कौपीन निचोड़ कर आ रहे थे कि रास्ते में कश्मीरी पहलवानों का अखाड़ा आया। स्वामी जी खड़े होकर देखने लगे । फिर कहने लगे कि मैं अपनी कौपीन नहा कर निचोड़ कर लाया हूँ। आप में से कोई पहलवान ऐसा है जो इसमें से एक बूंद पानी की निकाल सके । एक दो पहलवान आगे आये और अपना पूरा जोर लगाकर भी कौपीन से एक बूंद पानी का न निकाल सके ।

महर्षि दूसरी सब विद्याओं की तरह इस विद्या में भी पूर्ण विद्वान थे ।

रामायण-काण्ड समाप्त ।

* * *

४. महाभारत-काण्ड

१०. भगवान् कृष्ण

१-भगवान् कृष्ण की माता जी का नाम यशोदा था, और भगवान् दयानन्द जी की माता का नाम भी यशोदा था ।

२-भगवान् कृष्ण का जीवन उद्देश्य गीता के अ० ४ श्लोक ७-८ में कहा है-

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम् अधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे ॥

अर्थात् जब जब धर्म की ग्लानि यानि धर्म से लोगों को नफरत होने लगती है । अधर्म बढ़ने लगता है, तो धर्मात्माओं की रक्षा, दुष्टों के नाश, और धर्म की स्थापना करना ।

इसी तरह भगवान् दयानन्द का जीवन उद्देश्य भी एक संस्कृत के श्लोक में ऐसा ही लिखा है-

पाखण्डानां विनाशाय वेदानां रक्षणाय च ।
धर्मसंशोधनार्थाय दयानन्दस्य जीवनम् ॥

अर्थात् (१) पाखण्ड का नाश (२) वेदों की रक्षा (३) धर्म का संशोधन लिखा है ।

भगवान् दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में स्वमन्तव्यामन्तव्य में तो अपने नहीं, परन्तु मनुष्य जीवन का बिल्कुल यही उद्देश्य लिखा है जो गीता के उपरोक्त श्लोकों से विदित होता है । वहां लिखा है-

मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख-दुख और हानि-लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे । इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं की, चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुण

रहित क्यों न हों, उनकी रक्षा, उन्नति प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती, सनाथ, महा बलवान्, गुणवान् भी हो तथापि उनका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करें अर्थात् जहां तक हो सके अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वदा किया करे । इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही चले जावें, परन्तु इस मनुष्यपन धर्म से पृथक् कभी न होवे (ये गीता के उपरोक्त दो श्लोकों का अत्यन्त विस्तार पूर्वक अनुवाद ही समझना चाहिए) किसी कवि ने खूब कहा है–

इन्सान है वह जो आप सा जाने जहान को ।
तफरीक जिसके दिल में कभी मैं वा तू न हो ॥

३–गीता अध्याय ३ श्लोक १४, १५ में भगवान् कृष्ण वेद को ईश्वर से उत्पन्न हुआ मानते हैं–(अन्नाद् भवन्तिं भूतानि ।)

और

भगवान् दयानन्द वेद के इस मन्त्र से वेद को ईश्वर कृत मानते हैं–

"यथेमां वाचं कल्याणी०" इत्यादि ।

४–गीता के इस श्लोक के अनुसार भगवान् कृष्ण ईश्वर को सब हृदयों में होना वा निराकार मानते हैं–(अ० १८, श्लोक २०)

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदये तिष्ठति अर्जुन ॥

यजुर्वेद अ० ४०, मन्त्र ८ के अनुसार महर्षि भी ईश्वर को निराकार और सब हृदयों में होना घोषित करते हैं–

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमऽस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

५–भगवान् कृष्ण जब कौरवों ओर पाण्डवों में सुलह कराने की आखिरी कोशिश करने के लिए दूत बनकर हस्तिनापुर गये तो दुर्योधन को अन्यायकारी और दुराचारी समझ कर उसके घर का भोजन स्वीकार न कर विदुर के घर भोजन किया था ।

और

इसी तरह भगवान् दयानन्द जब मुरादाबाद गये तो एक दिन साहू शामसुन्दर ने जो मुरादाबाद के रईस थे, परन्तु वैश्यागमनादि दुर्व्यसनों में ग्रसित थे । महाराज से प्रार्थना की कि आज मेरे घर पधार कर भोजन करें । महाराज ने उसकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी परन्तु उसी समय इसके सामने ही जब एक दूसरे सज्जन ने ऐसी प्रार्थना की तो उसे स्वीकार कर लिया । व्याख्यान के समय इस घटना का वर्णन करते हुए साहूकार साहब को सम्बोधन कर के कहा—कि जब तक तू कुकर्म न छोड़ेगा तेरे घर पर जाकर भोजन नहीं करेंगे । अतः उसने महर्षि के आदेश से सब कुकर्म छोड़ दिये, तब महाराज ने इसका भोजन स्वीकार किया, और शामसुन्दर जी की माता को कहा कि जिस दिन तुम्हारा पुत्र बलिवैश्वदेव यज्ञ न करे इसको भोजन मत देना ।

६—भगवान् कृष्ण ने अपने सहपाठी गरीब ब्राह्मण सुदामा की चावलों की भेंट बड़े प्रेम से स्वीकार की थी ।

और इसी तरह

भगवान् दयानन्द जब अमृतसर में विराजमान थे तो एक दिन महाराज बग्घी पर सवार होकर मलोहबुंगे व्याख्यान देने जा रहे थे तो एक गरीब ब्राह्मण पं० तुलसीराम ने बड़े प्रेम और नम्रता से महाराज को नमस्कार किया और अपनी बैठक में पधारने की प्रार्थना की । महाराज ने कृपापूर्वक यह प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसकी बैठक में पधारे। उसने महाराज को प्रेम पूर्वक दो रुपये और मिश्री के दो कूजे भेंट किये, वह भेंट महाराज ने इस प्रकार स्वीकार कर ली जिस तरह भगवान् कृष्ण ने सुदामा की ।

गोपाल कृष्ण—गोरक्षक दयानन्द

१—भगवान् कृष्ण के जमाने में भारत भर में गोघात न होता था क्योंकि भगवान् कृष्ण गौएं चराया करते थे, इसलिए उनका नाम गोपाल पड़ गया था । ब्रज की भूमि भी गोपालन के लिए विशेष तौर पर रखी गई थी, और इसी गोपालन की वजह से ही इस भूमि का नाम ब्रज पड़ा था । और नन्द जो इस ब्रज रूपी महागोशाला के अध्यक्ष थे और भगवान् कृष्ण जी ने इनके घर ही में बचपन में परवरिश पाई थी। और नन्द जी

की गोपालन में सहायता करना अपना धर्म समझते थे । इसलिए भी गोपाल के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे ।

परन्तु

भगवान् दयानन्द का जन्म जिस समय इस देश में हुआ तो उस वक्त इस देश में मुसलमानों और अंग्रेजों की ओर से गोघात बड़े जोरों पर प्रचलित था । और प्रतिदिन हजारों गौओं के गले पर छुरी चल जाती थी। ऐसी अवस्था देख कर भला दया के स्रोत दयानन्द चुपके कैसे रह सकते थे । इसलिए महाराज ने गोरक्षा के लिए बड़ा जोरदार आन्दोलन शुरू कर दिया । धार्मिक दृष्टिकोण से उन्होंने बड़ी मौके की बात संसार के सामने रखकर उन दुष्टों का मुंह हमेशा के लिए बन्द कर दिया जो यह कहते थे कि यज्ञों में गौ मारी जाती थी । इसलिए महर्षि ने वेद के मन्त्रों से गौ के लिए एक विशेष शब्द निकाल कर दुनिया को चकित कर दिया । जब उन्होंने घोषणा की कि वेद में तो अघ्न्या शब्द गौ के लिए निश्चित किया गया है । और अघ्न्या शब्द के अर्थ हैं "न मारने योग्य" अर्थात् जब वेद में गौ को न मारने योग्य ही घोषित किया गया है तो फिर इसका यज्ञों में मार कर डालना किसी तरह भी सिद्ध नहीं हो सकता है ।

"नाहि मे अस्ति अघ्न्या" इत्यादि । ऋग्वेद १९।१०२।८

परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने गोरक्षा आन्दोलन में इस धार्मिक दृष्टिकोण पर इतना बल नहीं दिया जितना के गौ के आर्थिक दृष्टिकोण से उपयोगी होने पर क्योंकि यह बात तो उन लोगों को भी अपील करती थी, जो मजहबी तौर पर हमारे दृष्टिकोण को न मानते हों । इसलिए महर्षि दयानंन्द जी महाराज ने अपने व्याख्यानों में भी और अपनी बनाई पुस्तक 'गोकरुणानिधि' में इसी पहलू पर जोर दिया है । जिसका नतीजा यह हुआ कि बहुत से अंग्रेज और मुसलमान भी महर्षि के इस दृष्टिकोण से सहमत हो गये और जहां उन्होंने खुद गोहत्या से तोबा की वहां उन्होंने इस बारे में महर्षि की सहायता करने का भी प्रण किया ।

१–सन् १८६६ में महर्षि जी पहली बार अजमेर आए तो कर्नल ब्रुक साहब एजेण्ट गवर्नर जनरल राजपूताना से उनकी बातचीत इस विषय

पर हुई थी, और महर्षि जी ने कर्नल ब्रुक को इस बात का कायल कर लिया था कि गोहत्या से हानि होती है । जब महर्षि ने कहा कि फिर आप गोहत्या बन्द क्यों नहीं करवा देते तो कर्नल साहब ने कहा कि यह मेरे बस की बात नहीं है । आप लाटसाहब से मिलें और उन्होंने एक चिट्ठी स्वामी जी को दी, कि लाटसाहब को मिल कर आप यह बात उनसे कहें । और फिर स्वामी जी की बातचीत इस विषय पर डिप्टी कमिश्नर से भी हुई उन्होंने भी एक चिट्ठी महर्षि को दी थी आप लाट साहब से मिलकर यह बात करें ।

२–सन् १८७९ में फर्रुखाबाद में गोरक्षा पर महाराज का उपदेश हुआ, जिसमें आपने कहा था कि यदि एक मोटी ताजी गौ को मारा जाय तो उसके खाने से केवल २० मनुष्यों का पेट भर सकता है, वह भी तब कि जब इसके मांस में दस सेर अन्न मिलाया जावे । यदि इसकी रक्षा की जाय तो वह दस बार जनेगी। यदि पांच सेर दूध प्रतिदिन एक वर्ष देवे तो १८००० सेर दूर देगी, जिसमें यदि पांच सेर प्रति मन चावल डाल कर खीर बनाई जावे, और एक मनुष्य एक सेर खावे तो २०२५० मनुष्यों का पेट भर सकता है । इसके अतिरिक्त इसकी जो बछियां होंगी, वे गाय बनेंगी और उत्तरोत्तर अधिक से अधिक लाभ होगा । इसके बछड़े बैल बन कर भूमि जोत कर सहस्रों मन अन्न पैदा करेंगे । जिससे सहस्रों मनुष्यों का पेट भरेगा । देश में हजारों गौएं रोज ही मारी जाती हैं । जिससे देश की अत्यन्त हानि हो रही है, इस कारण देश दुर्दशा को प्राप्त हो रहा है । कितने शोक की बात है कि इतनी बड़ी हानि को देखते हुए भी हमारे देश के शासक इस ओर ध्यान नहीं देते परन्तु इसमें केवल शासकों का ही अपराध नहीं है हमारा भी अपराध है । हम में एकता नहीं है, इसी कारण यह क्षति होती चली जा रही है । यदि सब मिलकर सरकार से निवेदन करें तो क्या गोवध बन्द नहीं हो सकता ।

३–संवत् १९३६ के हरद्वार कुम्भ पर प्रचार करते करते एक दिन महर्षि यकायक चुप करके वेदी पर लेट गये । श्रद्धालु सहम गये। महाराज कुछ देर चुपचाप लेटे रहे, फिर उठ बैठे तो श्रद्धालु भक्तों ने कहा कि महाराज कुछ रोग हो तो औषधि लावें । महाराज ने लम्बी सांस लेकर कहा–गौ, विधवाओं की आहों ने इस देश का सत्यानाश कर

दिया है ।

४-जब महाराज ने देखा कि गोरक्षा आर्यावर्त की उन्नति का मूल है और गोवध से देश को भयंकर हानि हो रही है । दूध घी दिन प्रतिदिन महंगा होता जा रहा है, और लोगों को काफी खुराक न मिलने से उनके शरीर दुर्बल होते जा रहे हैं तो सन् १८८१ में बम्बई आकर महर्षि ने बड़े जोर से गोरक्षा-आन्दोलन जारी कर दिया और उन्होंने गोरक्षा को भी अपने सुधार कार्य का एक अंग बना लिया । गोरक्षा पर उन्होंने जगह-जगह पर व्याख्यान दिये, गोकरुणानिधि पुस्तक लिखी, राजपूताने के एजेण्ट कर्नल ब्रुक से और उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर म्योर साहब से गोवध बन्द कराने का अनुरोध किया था, उनके व्याख्यान को सुन कर बीसियों मुसलमान और ईसाइयों ने गोरक्षा का समर्थन शुरू कर दिया था । महाराज ने अन्त को यह विचार किया कि यदि तीन करोड़ आदमियों के हस्ताक्षर करवा कर एक मैमोरियल महारानी विक्टोरिया की सेवा में भेजा जावे तो सम्भव है कि गोवध बन्द हो जावे । इस विचार से उन्होंने चैत्र कृष्णा संवत् १९३८ को एक विज्ञापन बम्बई से गोरक्षा का लाभ और गोवध की हानियां दिखलाते हुए और गोरक्षा के मैमोरियल पर हस्ताक्षर करवाने के लिए प्रचारित किया और उसे सब आर्यसमाजों में और देश के राजों महाराजाओं और सम्भ्रान्त व्यक्तियों के पास भेजा और बड़े जोर से काम शुरू कर दिया, कहते हैं कि महाराज का यह भी विचार था कि वे विलायत जाकर स्वयं उस मैमोरियल को महारानी की सेवा में प्रस्तुत करेंगे और इस कारण उन्होंने अंग्रेजी पढ़ना भी शुरू कर दिया था । इस मैमोरियल के लिए आर्यसामाजिक पुरुषों ने बड़े उत्साह से कार्य किया था । लाखों हस्ताक्षर कराये गये, परन्तु १८८३ में महाराज का देहान्त हो जाने से यह काम पूरा न हो सका और मैमोरियल न भेजा जा सका । जो अभी तक अजमेर में महाराज के पुस्तकालय में लाखों आदमियों के हस्ताक्षर होकर पड़ा हुआ है । महाराज के उपदेश और प्रयत्न से अनेक स्थानों पर गोरक्षिणी सभाएं भी स्थापित हो गई थीं, जिनका काम कुछ दिन तक तो खूब चलता रहा, परन्तु महर्षि की आंखें बन्द होते ही यह कार्य शिथिल हो गया । बम्बई के भाटिया लोग जिनके हाथों में समुद्र यात्रा का प्रबन्ध था । पहले महाराज के खिलाफ

थे परन्तु महाराज के गोरक्षा आन्दोलन में वे भी सहमत हो गये और उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि मैमोरियल लेकर जब महाराज विलायत जायेंगे तो उनसे जहाज का किराया नहीं लिया जायेगा । महर्षि अपने जीवन भर गोवध का विरोध और गोरक्षा का समर्थन करते रहे, इसलिए सच्चे अर्थों में वे गोरक्षक थे ।

बोलो गोरक्षक दयानन्द की जय !

अब आपको इस मैमोरियल से परिचित कराता हूं, जिससे महर्षि के हृदय के महान् उद्गार का परिचय मिलता है ।

गोरक्षा मैमोरियल

जगत् में ऐसा कौन मनुष्य है जो सुख के लाभ होने में प्रसन्न और दुख की प्राप्ति में अप्रसन्न न होता हो । जैसे दूसरे के साथ किये अपने उपकार में स्वयम् आनन्दित होता है । ऐसे ही परोपकार करने में सुख अवश्य होना चाहिए । क्या ऐसा कोई भी विद्वान् भूगोल में था, है या होगा, जो परोपकार रूप धर्म और परहानि स्वरूप अधर्म के सिवा धर्म अधर्म की सिद्धि कर सके। धन्य वह महाशयजन हैं जो अपने तन, मन, धन से संसार का अधिक उपकार सिद्ध करते हैं । निन्दनीय मनुष्य वे हैं जो अपनी अज्ञानता से स्वार्थ वश होकर अपने तन, मन और धन से जगत् में परहानि करके बड़े लाभ का नाश करते हैं । सृष्टि क्रम से ठीक-ठीक यही निश्चय होता है कि परमेश्वर ने जो जो वस्तु बनाई है वह-वह पूर्ण उपकार लेने के लिए है, अल्प लाभ से महान् हानि करने के अर्थ नहीं । विश्व में दो ही जीवन के मूल हैं एक अन्न दूसरा पान, इस अभिप्राय से आर्यवर शिरो राजे महाराजे और प्रजाजन महोपकारक गाय आदि पशुओं को न आप मारते थे, और न किसी को मारने देते थे, अब भी इन गाय बैल और भैंस को मारने और मरवाने देना नहीं चाहिए, क्योंकि अन्न और पान की बहुतायत इन्हीं से होती है । इस से सब का जीवन सुख से हो सकता है । जितना राजा और प्रजा का बड़ा नुकसान इनके मारने और मरवाने से होता है उतना किसी अन्य कर्म से नहीं । इसका निर्णय गोकरुणानिधि पुस्तक में अच्छी प्रकार प्रकट कर दिया है । अर्थात् एक गाय के मारने मरवाने से चार लाख, बीस हजार मनुष्यों के सुख की हानि होती है । इसलिए हम सब लोग स्व

प्रजा की हितैषी राज राजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया की न्यायप्रणाली में जो यह अन्याय रूप बड़े-बड़े उपकारक गाय आदि पशुओं की हत्या होती है, इसको इनके राज्य से छुड़वा के अति प्रसन्न होना चाहते हैं । यह हम को पूरा निश्चय है कि विद्या, धर्म, प्रजाहित प्रिय श्रीमती राजराजेश्वरी क्वीन विक्टोरिया, पार्लियामेण्ट सभा और सर्वोपरि प्रधान आर्यावर्तस्थ श्रीमान् गवर्नर जनरल साहब बहादुर सम्प्रति इस बड़े हानिकारक गाय, बैल तथा भैंस की हत्या को हटा उत्साह और प्रसन्नता पूर्वक शीघ्र बन्द करके हम सब को परम आनन्दित करें । देखिये कि उक्त गुण युक्त गाय आदि पशुओं के मारने और मरवाने से दूध, घी, और किसानों की कितनी बड़ी हानि होकर, राजा और प्रजा की बड़ी हानि हो रही है और नित्य प्रति अधिक-अधिक होती जा रही है । पक्षपात छोड़ के जो कोई देखता है तो वह परोपकार को ही धर्म और परहानि अधर्म निश्चित जानता है । क्या विद्या का यह फल और सिद्धान्त नहीं है कि जिस-जिस से अधिक उपकार हो उस-उस का पालन और वर्धन करना और नाश कभी न करना । परम दयालु न्यायकारी सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, परमात्मा इस जगत् उपकारक काम करने में समस्त राजा प्रजा की एक सम्मति करें ।

हस्ताक्षर

वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्मानुसार है

१-गीता अ० ४ श्लोक १३ में भगवान् कृष्ण वर्णव्यवस्था को गुण कर्मानुसार ही मानते हैं-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

और इसी तरह महर्षि दयानन्द जी भी वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म अनुसार ही मानते थे और इस लुप्तप्राय विधि को फिर से प्रचलित करने का भरपूर प्रयत्न करते रहे और जन्म से वर्ण-व्यवस्था को तो महर्षि मरण व्यवस्था ही कहते और लिखते रहे तथा इतिहास के पन्ने भी जन्म से वर्ण-व्यवस्था को मरण-व्यवस्था ही सिद्ध करके महर्षि के कथन का समर्थन कर रहे हैं । वैसे तो इतिहास में बहुत सी ऐसी घटनाएं मिलती हैं परन्तु मैं आपकी सूचनार्थ दो ही घटनाएँ उपस्थित करता हूं जिससे आप को पता लग जायेगा कि जन्म से वर्णव्यवस्था (जिसको आज कल

जात पांत कहते हैं) के मानने से इस देश में कितने भयंकर परिणाम निकले।

१—जब शेरशाह सूरी ने हुमायूं को यहां से भगा दिया उस वक्त हेमूराय जो रिवाड़ी का रहने वाला जन्म का बनिया था, सूरी की फौज में बतौर सिपाही भर्ती होकर उन्नति करते-करते अपनी योग्यता से कमाण्डर बन गया था। शेरशाह की मौत के बाद वह आगरे के किला पर काबिज हो गया, और इर्द गिर्द का इलाका अपने मातहत कर लिया, इतने में ही हुमायूं के मरने के बाद, अकबर जो नाबालिग ही था हिन्दुस्तान में आ धमका और आगरे को जीतने की तैयारियां करने लगा। हेमूराय जिसने विक्रमाजीत सानी का लकव अख्तियार करके सूरज वंशी झण्डा आगरे के किला पर लहरा रखा था, राजपूताने के समस्त राजपूत राजाओं को निमन्त्रण भेजा कि वह इसके साथ मिलकर मुश्तर्का दुश्मन यानि अकबर को शिकस्त देवें। लेकिन राजपूत राजाओं ने जन्म अभिमान में पड़ कर हेमूराय की यह प्रार्थना इस बिना पर ठुकरा दी, कि हेमूराय जन्म का बनिया है। हम क्षत्री राजपूत इसके साथ कैसे मिल सकते हैं। नतीजा यह हुआ कि हेमूराय अकेला अकबर के मुकाबला में न ठहर सका, और पराजित होकर मारा गया। और अकबर हिन्दुस्तान का शंहन्शाह बन गया। अगर जन्म जात का अभिमान राजपूतों को हेमू का साथ देने से न रोकता तो भारत का इतिहास और ही तरह से लिखा जाता।

वही जन्म अभिमानी राजपूत राजे महाराजे मुसलमान बादशाहों के गुलाम बनकर जीवन व्यतीत करने पर विवश न होते।

जन्म से जात-पात मानने से विनाश

सन् १७०७ ईस्वी में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगलसाम्राज्य निर्बल हो गया था। बाद में मुगल सम्राटों में कोई दम नहीं था कि वे नादिरशाह और अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों का सामना करते। तब अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने रुहेलों और मरहठों से मिलकर सलाह की कि अब की बार मिलकर अहमदशाह अब्दाली का सामना करें। शुजाउद्दौला और रुहेलों के सरदार नजीबखां ने कुरान हाथ में लेकर कसम खाई कि अब हम लोग एक दूसरे से नहीं लड़ेंगे और अहमदशाह के विरुद्ध मराठों का साथ देंगे, लेकिन जब सन् १७६१ ईस्वी में हिन्दुस्तान

के एक मुस्लिम शासक का निमन्त्रण पाकर अब्दाली ने हिन्दुस्तान पर फिर चढ़ाई की तो रुहेले जा मिले और यह कहकर कि मुसलमान को काफिर का साथ देकर मुसलमान के विरुद्ध लड़ना हराम है, उन्होंने शुजाउद्दौला को भी अपनी ओर मिला लिया। शुजाउद्दौला दिखावे के लिए मरहठों से मिला रहा, लेकिन गुप्त रूप से अब्दाली की सहायता करने लगा ।

उधर सदाशिवराव भाऊ (ब्राह्मण), मल्हारराव होल्कर और सूर्यमल जाट में युद्धमन्त्रणा होते समय भाऊ ने कह दिया कि खेती करनेवाले (जाट) और भेड़ बकरी चराने वाले गडरिया (होल्कर) की राय राजसभा में नहीं ली जाती । इससे सूर्यमल और होल्कर दोनों नाराज हो गये । सूर्यमल अपनी फौज लेकर चला गया । उसको जाते देखकर, राजपूत सेना भी चल दी लेकिन ब्राह्मणत्व के अभिमान में सदाशिराव भाऊ ने उन जाते हुओं से यह भी न पूछा कि क्यों वापस जा रहे हो? इस प्रकार मरहठी सेना का पक्ष निर्बल हो गया । उधर शुजाउद्दौला भी अब्दाली से जा मिला । युद्ध में मरहठों की हार हुई । विश्वासराव और सदाशिवराव भाऊ मारे गये । जनकोजी सिन्धिया और मरहठों के तोपखाने का संचालक इब्राहीम गार्डी पकड़े गये । जनकोजी से मुसलमान होने को कहा गया, उसके स्वीकार न करने पर, उसका सिर काट दिया गया।

इब्राहीम गार्डी से अब्दाली ने पूछा कि तुम मुसलमान होकर काफिरों की तरफ से क्यों लड़े ? उसने वीरता से उत्तर दिया कि मैंने उनका नमक खाया था, मैं नमकहरामी नहीं करना चाहता था । अब्दाली ने फिर पूछा–"क्या इस्लाम और कुरान इस बात की आज्ञा देता है?" इब्राहीम ने जवाब दिया–"जिस किताब में नमकहरामी करने की आज्ञा हो मैं उसको खुदा का कलाम नहीं मानता । यदि इस्लाम में अपने मालिक के साथ विश्वासघात और नमकहरामी करने की आज्ञा है तो मैं दूर से ही उसको सलाम करता हूँ ।" इस पर काजी की सलाह से इब्राहीम का सिर काट डाला गया । धन्य है ! मुसलमान होते हुए भी इब्राहीम गार्डी ने अपने प्राणों पर खेल कर अपने स्वामी का साथ दिया और नमकहरामी और विश्वासघात करने वाले रुहेलों और शुजाउद्दौला की तरह अपने नाम को कलंकित नहीं किया, लेकिन मुन्शी करम-इलाही

ने अपनी पुस्तक, "बहादुराने इस्लाम" में इसी वीर स्वामी भक्त और अपने कर्त्तव्य पालन करने वाले इब्राहीम गार्डी को "निर्लज्ज और मजहब का दुश्मन" लिखा है । पाठको ! देखा, आपने मुन्शी करमइलाही की इस मुस्लिम मनोवृत्ति को जो मोहम्मद वारिस और शेख हमीद जैसे नमक-हरामों को तो इस्लाम का बहादुर मानते हैं और सच्चे बहादुर और नमक हलाल इब्राहीम गार्डी को निर्लज्ज कहने में लज्जा नहीं करते ।

पानीपत के इस तीसरे युद्ध में हिन्दुओं की केवल हार ही नहीं हुई, किन्तु वीर शिवा जी द्वारा स्थापित महान् मरहठा साम्राज्य का सूर्य उसी दिन से अस्त हो गया । इसका कारण सदाशिवराव भाऊ की गर्वोक्ति और ब्राह्मणत्व का अभिमान था जो उसे ले डूबा । मरहठों की वह नीति-निपुणता, जो शिवा जी के समय में थी, अब उसमें नहीं रही थी । इसलिए भी वे रुहेलों और शुजाउद्दौला के विश्वासघात के शिकार बन गये, जो उनके पतन का कारण बना । ऐ जाति के भेद ! तेरा नाश हो ।

इतिहास की ये दोनों घटनाएं महर्षि के इस वाक्य की–कि जन्म से वर्ण-व्यवस्था तो मरण व्यवस्था ही है, बिल्कुल स्पष्ट करती है ।

(११) बाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह

कौरवों के प्रसिद्ध वंश में राजा शान्तनु के घर श्रीमती गंगादेवी की कुक्षि से एक बालक उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवदत्त रखा गया। जब छब्बीस वर्ष का हुआ तो उसकी माता का देहान्त हो गया । उनके पिता महाराज शान्तनु ने धीवर राजा की लड़की सत्यवती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की । धीवरराज ने यह शर्त लगाई कि जो लड़का मेरी लड़की के गर्भ से उत्पन्न हो वही राज्य का अधिकारी बने परन्तु यह शर्त महाराज ने न मानी । देवदत्त को इस बात का पता लग गया, और वह खुद धीवरराज के पास गया और कहा कि आप अपनी लड़की की शादी मेरे पिता जी से कर देवें मैं अपने राज्याधिकार का त्याग करता हूं । धीवरराज ने कहा आपने तो अपना अधिकार छोड़ दिया, परन्तु आप की सन्तान इस राज्य पर अपना अधिकार जतायेगी। इस पर देवदत्त ने यह भीष्म प्रतिज्ञा की, कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा, और शादी नहीं करूंगा । पिता के सुख के लिए पुत्र का अद्वितीय त्याग था, इस भीष्म

प्रतिज्ञा के कारण देवदत्त का नाम भीष्म हो गया। वह आजन्म ब्रह्मचारी रहे। इसलिए उनको पितामह भी कहा जाता है। क्योंकि शास्त्रों में ऐसा ही विधान है, परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी और वेद वेदांग की शिक्षा प्राप्त करते हुए भी जब उनसे प्रश्न किया गया की भरी सभा में द्रौपदी का अपमान होते देख कर और पाण्डवों के साथ दगाबाजी देखकर भी आप चुप क्यों रहे और आपने ऐसे अन्याय के खिलाफ आवाज तक क्यों न उठाई तो उनका जवाब महाभारत के इस श्लोक में वर्णन है।

अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराजः बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः॥

मनुष्य अर्थ का दास है। अर्थ किसी का दास नहीं। महाराज यह बात सत्य है, मैं उस समय में कौरवों के अर्थ से बन्धा हुआ था।

और

आज से एक सौ चालीस साल पहले, गुजरात काठियावाड़ के मौरवी राज्य अन्तर्गत टंकारा नगर में कर्षण जी तिवारी के घर एक बालक पैदा हुआ जिसका नाम मूलशंकर अथवा दयाराम रखा गया। जिसने २१ साल की आयु में सच्चे शिव की तलाश और मौत पर विजय प्राप्त करने की भीष्म प्रतिज्ञा की और अपने पिता के सुख के लिए नहीं अपितु संसार मात्र के सुख के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहे, और इस तरह भीष्म और पितामह होकर दयानन्द नाम रखाया। बाल ब्रह्मचारी भीष्म के कहे उपरोक्त की धज्जियां उड़ा कर सारी आयु अर्थ का दास न होकर जिसने अर्थ को हमेशा ही दास बनाये रखा, उसके उदाहरणार्थ कुछ घटनाएं निम्नलिखित हैं—

१—महर्षि दयानन्द के पिता जमींदार थे, और शाहूकारा भी करते थे, और सरकार में भी अच्छे कर्मचारी थे। और इस तरह सुख आराम के लिए उनके घर में सब सामान उपस्थित थे, और उनके विवाह की तैयारियां भी पूरे जोर से हो रही थीं। सिर्फ एक महीना बाकी रह गया था कि पूरे बाईस साल की भरी जवानी में प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के निमित्त बालक मूलशंकर अथवा दयाराम ने माता-पिता की सुख सम्पत्ति से भरे घर को छोड़ दिया। और ऐसी भरी जवानी में भी पितृ-सम्पत्ति उनको अर्थ का दास न बना सकी।

२–योगियों की तलाश में जब महर्षि दयानन्द हिमालय की बर्फानी चोटियों पर घूमते फिरते थे तो कुछ दिन के लिए वे ओखी मठ में भी ठहरे थे । ओखी मठ का मुख्य महन्त स्वामी जी के ज्ञान और गुणों पर मोहित हो गया । और स्वामी जी को अपना चेला बनाने की प्रेरणा करते हुए बोला । "यदि तुम हमारे शिष्य बन जाओ तो इस गद्दी पर महन्त बन जाओगे । लाखों रुपये की सम्पत्ति तुम्हारे हाथ में हो जाएगी, तुम महन्त कहलाओगे और इस तरह मान प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, इस प्रकार स्वच्छन्दता पूर्ण यथेष्ट सुख भोगोगे, इस पर महर्षि जी ने उत्तर दिया, कि मेरे पिता की सम्पत्ति आपके पूजा पाठ या पाखण्ड द्वारा एकत्रित की हुई पूंजी से कई गुणा अधिक थी, जब मैं उसे ही त्याग कर आया हूं तो आपके धन धान्य की ओर कब ध्यान कर सकता हूं । जिस उद्देश्य को लेकर मैंने सांसारिक सुखों से मुंह मोड़ा है और ऐश्वर्यशाली पितृ-गृह को सदा के लिए छोड़ा है मैं देखता हूं कि इस उद्देश्य पर न तो तुम चलते हो और न ही तुम लोगों को इसका कुछ ज्ञान है । इस अवस्था में चेला बनना तो दूर रहा, मेरा तो अब तुम्हारे पास रहना भी असम्भव है । और यह कहकर दूसरे ही दिन ओखी मठ से प्रस्थान करके जोशी मठ चले गये । अब की भी अर्थ इन्हें दास बनाने में असमर्थ ही रहा।

३–जब महाराज काशी पहली बार पधारे और मूर्ति-पूजा का जोरदार खण्डन करते हुए काशी के समस्त पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा तो महाराज रामनगर ने महर्षि को कहलवा भेजा कि यदि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो आपको १००) रुपया माहवार वजीफा मिल जाया करेगा तो महर्षि ने कहला भेजा कि यदि महाराज अपना सारा राजपाट भी दे दें तब भी मैं मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं छोड़ सकता ।

४–जब महाराज बड़ौदा राज्य में थे तो श्री माधोराव दीवान उनके बहुत भक्त बन गये थे, और यह बात बहुत मशहूर हो चुकी थी। चुनांचे एक राज्याधिकारी पर मुकदमा बना हुआ था, उसके दामाद ने एक कर्मचारी पण्डित कृष्णराम को कहा–कि यदि स्वामी जी श्री माधोराव से सिफारिश करके मेरे ससुर को छुड़ा देवें तो मैं बीस हजार रुपया उनको वेदभाष्य के लिए दे दूंगा । पण्डित कृष्णराम ने मौका पाकर यह प्रस्ताव स्वामी जी के सामने रखा, इस पर महाराज ने क्रोध में आकर कहा कि

ऐसे प्रस्ताव मेरे सामने रखते हुए तुम्हें शर्म आनी चाहिए । रुपये का प्रलोभन दिखाकर ऐसे प्रस्ताव हमारे सामने फिर कभी न रखना ।

५–देहली दर्बार के वक्त जब महाराज देहली में थे तो एक सेठ ने दो लाख रुपया नकद गड्डे पर लदवा कर स्वामी जी को भेंट करना चाहा, इस शर्त पर कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन करना छोड़ दें । महाराज ने उसको फटकार देते हुए कहा–कि उठा लो अपना रुपया और चलते बनो।

६–संवत् १८८० में जब महाराज काशी में पांचवीं वार पधारे तो एक दिन वैङ्कट गिरि के महाराज दो तैलंग ब्राह्मणों के साथ महाराज से मिलने के लिए आए । उन्होंने कहा कि क्या प्रमाण है कि वेद ही ईश्वर की वाणी है और बाईबल अथवा कुरान नहीं । महाराज ने उत्तर दिया, कि कुरान आदि में अनेक कथाएं सृष्टि-क्रम और ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध हैं । कुरान में काफरों के विनाश, अथवा स्वर्ग में सुरा, हूर आदि के रहने की बातें हैं, इसलिए वह ईश्वर की वाणी नहीं हो सकती। इसके पश्चात् मूर्तिपूजा की बात चली, स्वामी जी ने कहा आप महाराज होकर किस प्रकार मूर्तिपूजा का पोषण करते हैं । यदि आप इसका पोषण न करें तो आपके लिए ऐसा तो नहीं है कि दरिद्र ब्राह्मण के समान आपका उदर-पोषण न हो सके । राजा ने स्वीकार किया कि आप की बात कई अंशों में ठीक है परन्तु यदि आप अन्य बातों का प्रचार करें और मूर्तिपूजा की बात सबसे पीछे के लिए रखें तो आपके वेद भाष्य के लिए जितने धन की आवश्यकता होगी हम देंगे । महाराज ने यह सुन कर कुछ आवेश में आकर कहा आप इन बातों को नहीं समझते, मैं क्या कोई दुकानदार हूं जो रुपये के कारण अपने कर्त्तव्य को आगे पीछे करूं । अर्थ ने इस बार भी महाराज से पछाड़ खाई ।

७–एक दिन महाराणा उदयपुर ने अत्यन्त नम्र भाव से निवेदन किया कि राजनीति के सिद्धान्तानुसार आप को मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं करना चाहिए, यह तो आप जानते ही हैं कि यह राज्य एकलिंग महादेव के अधीन है । आप एकलिंग के मन्दिर के महन्त बन जावें । कई लाख रुपये पर आपका अधिकार हो जावेगा और एक अर्थ में यह राज्य भी आपके अधीन हो जाएगा । महर्षि बहुत शान्त स्वभाव के थे, और उनको क्रोध बहुत कम आता था, परन्तु महाराणा की यह बात सुन कर उन्हें

आवेश आ गया, और कड़क कर बोले कि आप मुझे लोभ देकर सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की आज्ञा भंग कराना चाहते हैं । ये छोटा सा राज्य और इसके मन्दिर जिससे मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूं । मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा भंग करने पर उतारू नहीं कर सकते । मैं कदापि सत्य को छोड़ तथा छिपा नहीं सकता । आगे से आप विचार कर बात किया करें। महाराणा महर्षि के वचनों को सुन कर स्तम्भित हो गये । उन्हें कभी ऐसे वचन सुनने की आशा न थी, अन्त में महाराणा ने कहा कि अब मुझे ज्ञान हो गया है कि आप अपने विचारों पर कितने दृढ़ हैं । अर्थ अब भी बाल ब्रह्मचारी भीष्म दयानन्द को दास न बना सका । और सारी आयु ही बालब्रह्मचारी भीष्म के श्लोक की धज्जियां उड़ाते रहे ।

ये माया ठगनी भई, ठगत फिरे सब देश ।
जिसने यह ठगनी ठगी तिसको है आदेश ॥

पूर्ण निर्लोभी बालब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द की जय ।

१२. सत्यवादी युधिष्ठिर

धर्म पुत्र युधिष्ठिर सत्यवादी था यह तो जगद् विख्यात ही है और इसलिए दोस्त दुश्मन इसका विश्वास भी करते थे, महाभारत के युद्ध में जब गुरु द्रोणाचार्य सुप्रीम कमाण्डर की हैसियत से युद्ध कर रहे थे तो उन्होंने पाण्डवों का काफिया तंग कर दिया था, तब कृष्ण और अर्जुन ने विचार किया जब तक गुरु द्रोणाचार्य को समाप्त न कर दिया जायेगा युद्ध नहीं जीता जा सकता, द्रोणाचार्य के कान में यह आवाज पहुंचाई जावे कि अश्वत्थामा मारा गया । तब वे निरुत्साह होकर हथियार छोड़ देंगे और उनको मारना सहज हो जायगा, और यह भी उनको मालूम था कि द्रोणाचार्य केवल युधिष्ठिर की ही बात को सत्य मानेंगे किसी और की बात को नहीं । और युधिष्ठिर यह झूठ बात कहने को तैयार न होगा । तब यह सलाह ठहरी कि एक हाथी का नाम अश्वत्थामा रखा जावे, और युधिष्ठिर के सामने उसे मार डाला जावे, ऐसा ही किया गया, और युधिष्ठिर को यह कहा गया कि वह द्रोणाचार्य के सामने जाकर यह कह दे कि अश्वत्थामा मारा गया परन्तु वह इसके लिए भी तैयार

न हुआ । फिर कृष्ण और अर्जुन ने इसको जंग में हार जाने का भय दिखा कर यह कहा कि तुम द्रोण के सामने इतनी बात कह दो कि "अश्वत्थामा हतो-नरो वा कुञ्जरो वा" यानि अश्वत्थामा मारा गया। आदमी या हाथी, बाकी हम संभाल लेंगे, अर्थात् जब द्रोणाचार्य के सामने जाकर युधिष्ठिर ने यह शब्द मुंह से निकाले "अश्वत्थामा हतो" तब उसी वक्त अर्जुन और कृष्ण ने जंगी बाजे बजाने शुरू कर दिये, ताकि युधिष्ठिर के मुंह से निकले हुए दूसरे शब्द जो संदेह पैदा कर सकते थे वह द्रोण के कान तक न पहुंचे और ऐसा ही हुआ । और द्रोणाचार्य पुत्र घात की खबर सुनकर युद्ध से निवृत्त हो गया और धृष्टद्युम्न ने उसको मार डाला और तब ही महाभारत युद्ध में पाण्डवों की जीत हो सकी।

और

इसी तरह महर्षि के सामने भी इसी किस्म की स्थिति आई । जब सन् १८७५ में महर्षि ने बम्बई में अपने प्रचार की धूम मचा रखी थी तब महर्षि के कुछ भगतों के मन में यह विचार पैदा हुआ कि महर्षि की विचारधारा के प्रचार को स्थायी बनाए रखने के लिए यहां आर्यसमाज कायम करना चाहिए । और महर्षि जी ने भी उनको इस कार्य को करने के लिए उत्साह दिलाया था, तो एक सज्जन राजकृष्ण महाराज ने आर्यसमाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की, तो स्वामी जी ने कहा कि नियम हम स्वयं बना देंगे । और नियमावली बना दी । राजकृष्ण महाराज ने कहा कि नियमों में जीव ब्रह्म के एकत्व का समावेश होना चाहिए, पीछे से उसे छोड़ देंगे । ऐसा करने से अनेक लोगों को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट कर सकेंगे। इस पर महाराज ने कहा कि "मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूंगा ।" इस पर राजकृष्ण महाराज इतने चिढ़ गये कि आर्यसमाज के मेम्बर होने वालों की जो सूची बना कर लाये थे उसे लेकर वे स्वामी जी के पास से चले गये, और स्वामी जी का विरोध करने लगे । उनका यह विचार था कि अब आर्यसमाज शायद बन ही न सकेगा लेकिन महर्षि के सत्य पर आरूढ़ रहने से कुछ ही दिनों के बाद चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९३२ तदनुसार १० अप्रैल १८७५ ई० में गुड़गांव रोड पर डाक्टर मानक जी की बागबाड़ी में सायं के साढ़े पांच बजे बम्बई में आर्यसमाज स्थापित हो गया, और एक सौ के करीब

आर्यसमाज के सभासद् बन गये ।

२—लाहौर में ब्रह्मसमाज के सभासदों ने कहा कि यदि आर्यसमाज का तीसरा नियम न रखो तो हम भी आर्यसमाज में सम्मिलित हो सकते हैं, परन्तु स्वामी जी ने इनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया ।

३—लाहौर में ही राय बहादुर मूलराज एम० ए० आर्यसमाज के उपप्रधान ने महाराज को सम्मति दी कि तीसरे नियम में जो वाक्य लिखा है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है । इसमें से यदि सत्य शब्द निकाल दिया जावे तो यह नियम बहुत व्यापक हो जावेगा । और किसी को आर्यसमाज में प्रवेश करने में संकोच न होगा परन्तु स्वामी जी ने इनकी यह बात भी न मानी ।

४—महाराणा उदयपुर ने महाराज से कहा कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें, इससे जन साधारण आपके विरुद्ध हो जाते हैं । आप नीति का अवलम्बन करके अन्य विषयों पर उपदेश करें ताकि लोग शीघ्र आप की बात को मान लें । स्वामी जी ने महाराणा जी को उत्तर दिया कि मैं सत्य को नहीं छोड़ सकता और न छिपा सकता हूं चाहे कोई कितना ही विरोधी क्यों न हो ।

५—बरेली में व्याख्यान देते समय प्रकरण वश महाराज ने कहा कि हिन्दुलोग एक तरफ तो द्रौपदी के पाँच पति बतलाते हैं और दूसरी तरफ इसको पाँच कंवारियों में शुमार करते हैं, इस पर व्याख्यान में आए हुए अंग्रेज कमिश्नर वगैरह मुस्कराने लग पड़े । जिस वक्त महाराज की नजर उन पर पड़ी तो महाराज ने उनकी तरफ रुख करके कहा कि भला हिन्दू लोग तो विद्याहीन हो चुके हैं, जो ऐसी बातें कहते और मानते हैं, लेकिन इन अंग्रेजों को देखो, पढ़े लिखे साईंसदान होते हुए भी कंवारी के लड़का होना मान रहे हैं । (यह हजरत ईसा की तरफ महाराज का इशारा था ।) इस पर सब अंग्रेज अफसरान की तेवरियां चढ़ गईं लेकिन वे चुपचाप व्याख्यान सुनते रहे । दूसरे दिन अंग्रेज कमिश्नर ने खजांची साहब को जिनके बंगले में स्वामी जी उतरे हुए थे, बुलाकर कहा कि वह स्वामी जी को ऐसा तीखा खण्डन करने से मना करे, खजांची जी विचारे गये तो सही लेकिन महाराज को अच्छी तरह कह न सके । इस पर भी महाराज समझ गये । दूसरे दिन आत्मा के अमरपन पर व्याख्यान

दिया, सब अंग्रेज अफसर आए हुए थे तो महाराज ने व्याख्यान में गर्जदार आवाज में कहा–कि लोग कहते हैं सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा, यदि चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हों, हम तो सत्य ही कहेंगे। फिर कहा कि जब तक कोई ऐसा शूरवीर मुझे दिखाई नहीं देता जो मेरे आत्मा का हनन कर सकता हो, तब तक मैं सत्य को प्रकट करने से कभी पृथक् नहीं रह सकता। महर्षि के ऐसे सत्य प्रेम को देख कर अंग्रेज अफसरों ने मुंह में उंगलियां डाल लीं और फिर किसी को महाराज के व्याख्यानों पर एतराज़ करने की जुर्रत न हो सकी।

१३. भीम

युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम का कद काठ बड़ा था, वह विशालकाय था। इसके कद्दावर और बड़े डीलडौल के होने से ही इसका नाम भीम था, क्योंकि भीम शब्द का अर्थ है विशालकाय कि जिसको देख कर डर लगे, उसको भीम कहा जाता है।

और

सन् १८७१ में महर्षि मिर्जापुर पधारे और सेठ रतनलाल चड्ढा के बाग में ठहरे। गंगा तट पर जाने का मार्ग मिस्टर सी बोल्ड एक अंग्रेज के लाख बनाने वाले कारखाने के नीचे होकर था। एक दिन रात्रि के समय ऐसा हुआ कि मिस्टर सी बोल्ड के चौकीदार ने स्वामी जी को कारखाने के नीचे से होकर जाते हुए देखा। अन्धेरे में वह एक विशालकाय मनुष्य को कारखाने के पास देख कर डर गया। उसने मिस्टर सी बोल्ड से जाकर कहा कि कोई बड़ा लम्बा चौड़ा आदमी कारखाने के पास है। वह लालटैन लेकर साथ आये तो उसने देखा स्वामी जी हैं। उसने चौकीदार को कह दिया कि यह चाहे जिस समय आवें इनको मत रोको। इस तरह विशालकाय होने से भीम और महर्षि दयानन्द में समानता है।

१४. अर्जुन

जब पाण्डवों का वनवास समाप्त होने के करीब पहुंचा तो अर्जुन इस भाव से कि शायद अपना हक लेने के लिए युद्ध ही करना पड़े,

कुछ दिनों के लिए अपने भाइयों से अलग होकर एक निर्जन वन में अस्त्र-शस्त्र विद्या का अभ्यास करने चले गये । और वहीं एक झोंपड़ी बना कर रहने लगे । एक शाम को जब वह अपनी कुटिया में बैठे थे तो एक अत्यन्त सुन्दर युवती हार शिंगार लगाकर, इनकी कुटिया में दाखिल होकर इनके सम्मुख बैठ गई । अर्जुन के पूछने पर इस अप्सरा ने कहा–कि मैं आप जैसा पुत्र उत्पन्न करने के लिए अपनी कामना पूरी करने आई हूं । और मुझे विश्वास है कि आप मुझे निराश नहीं करेंगे। अर्जुन ने कहा देवी हो सकता है कि मेरे जैसा पुत्र उत्पन्न न हो सके, इसलिए आज से तू मेरी माता है मुझ को ही तू अपना पुत्र मान ले । इस पर वह अप्सरा उठ कर चली गई । और–

महर्षि दयानन्द जी जब मथुरा में विराजमान थे, तो सब पण्डित इनके सामने शास्त्रार्थ के लिए अपने आप को असमर्थ पाते थे । तब महर्षि को कलंक लगाने की नीयत से मथुरा के पण्डितों ने एक नवयुवती वैश्या को ५००) रुपया लालच देकर महर्षि के पास भेजने के लिए तैयार कर दिया । वह युवती भी हार शिंगार लगा कर महर्षि की कुटिया में पहुंच गई । महर्षि उस समय समाधि अवस्था में थे, समाधि खुली तो उन्होंने अपने सामने बैठी इस सुन्दर युवती से आने का कारण पूछा । तब उस युवती ने भी वही बात कही कि मैं आप जैसे पुत्र लेने की कामना से आपके पास आई हूं । तब महर्षि जी ने भी अर्जुन की तरह जवाब दिया कि देवी आज से तू मेरी माता हुई और मुझको अपना पुत्र समझ ले । महर्षि के यह वचन सुनकर इस दुष्टा का चित्त पिघल उठा। उसके सब पाप आँसू बन कर आंखों की राह से बह गये । और आयन्दा के लिए सचमुच वह देवी बन गई परन्तु जो पण्डित कुटिया के बाहर इस प्रतीक्षा में लाठियां लिये खड़े हुए थे, कि अन्दर से जरा इस वैश्या की आवाज निकले और हम हमला करके महर्षि के महत्त्व का सर्वनाश कर दें । विचारे निराश होकर चले गये ।

महाभारत काण्ड समाप्त

❋ ❋ ❋

५. महर्षि-काण्ड

१५. महर्षि मनु

आचार्य दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास के आरम्भ ही में लिखा है कि मनुस्मृति सृष्टि के आरम्भ ही में लिखी गई थी। उस समय वेद के विषय में भगवान् मनु ने जो कहा वही जगत् गुरु दयानन्द जी ने इस युग में बतलाया। भावसाम्य देखने ही योग्य है।

आर्यसमाज के १० नियमों में तीसरा नियम यह है कि—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

यदि इस नियम के दो भाग पृथक्-पृथक् कर लिये जायें तो इस प्रकार होगा कि—

१—'वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में भी महर्षि लिखते हैं कि 'वेदेषु सर्वा विद्याः सन्ति' अर्थात् वेदों में सारी विद्याएं हैं ।

इस विषय में आदि सृष्टि में भगवान् मनु ने कहा—

(१) सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥१।२१

अर्थात्—उस परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में सब के नाम और कर्म तथा अन्य व्यवस्था पृथक् पृथक् वेदों से निर्माण की ।

अभिप्राय यह है कि नाम कर्म और व्यवस्था सब की सब वेदों में ठीक बताई है ।

(२) वेदोऽखिलो धर्ममूलम् । १२।६

वेद धर्म का मूल है अर्थात् वेद बिना धर्म नहीं ।

(३) सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥

सेनापति बनने, राज्य करने, दण्ड देने, नेता बनने सर्व लोकों का

अधिपति बनने के लिए वही योग्य है जो वेद शास्त्र को जानता है। अर्थात् ये सारी विद्याएं वेद ही से जानी जा सकती हैं, वेद के बिना नहीं। अभिप्राय यह है कि सब विद्याएं भी वेद ही में हैं।

(४) चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् ।
भूतं भव्यं भविष्यत् च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति ॥

चारों वर्ण तीनों लोक चारों पृथक् आश्रम जो हो चुका हो जो हो रहा है और जो कुछ होगा वह वेद ही से प्रसिद्ध होता है। अर्थात् यह सब विद्याओं का पुस्तक है।

नियम का दूसरा भाग यह है 'वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।'

परम धर्म वह है जो अवश्य ही करना चाहिये। जिसके न करने से मनुष्य पाप का भागी बनता है।

चारों वा तीन वा दो वा एक वेद को यथाक्रम अवश्य पढ़ लें तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे अर्थात् वेदों को बिना पढ़े विवाह न करे। कम से कम एक वेद पढ़ कर ही विवाह करना चाहिए।

२–गौ, बकरी, भेड़, द्रव्य और अन्न से बहुत समृद्ध भी हो तो भी इन दश कुलों में विवाह सम्बन्ध न करे। उन दश में तीसरा वह कहा है जो वेद ज्ञान रहित कुल है उससे विवाह सम्बन्ध न करे।

(५) वेदमेवाभ्यसेन्नित्यम् ।

वेद का नित्य अभ्यास करे। मनु० ६।१४७।

(६) अधीत्य विधिवद्वेदान् । मनु० ६।३६।

वेद का विधिवत् अध्ययन करे। आदि वेद की महिमा पर मनुस्मृति में ८०० से अधिक श्लोक हैं। लेख विस्तार भय से अधिक नहीं देते हैं। सार रूप यह समझिये कि–

(७) योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

मनु० २।१६८

जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वेद को न पढ़ कर इधर उधर श्रम करता है वह जीवन में ही सकुटुम्ब शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् जो वेद नहीं पढ़ता वह शूद्र हो जाता है। इसलिए वेद का पढ़ना

पढ़ाना अत्यन्त आवश्यक है ।

(८) **धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः** । मनु० २।१३।

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने ग्रन्थों में जो कुछ भी लिखा है वह वही है जो आरम्भ से सारे ऋषि महर्षि मानते आए हैं । भगवान् करे कि आर्य अपने आचार्य के परम धर्म को समझें और वेद को पढ़ें, पढ़ावें, सुनें, सुनावें ।

१६. महर्षि वाल्मीकि तुलसीदास

तकरीबन १० लाख साल हुए जब त्रेता युग के अन्त में भगवान् राम का जन्म अयोध्या में हुआ और वह अपनी जीवन-लीला से संसार को एक आदर्श मनुष्य और आदर्श राजा का स्वरूप दिखा गए । और उनकी जीवन-लीला को संस्कृत में महर्षि वाल्मीकि ने काव्य का रूप दे कर संसार का महान् उपकार किया । और गुसाईं तुलसीदास जी ने हिन्दी भाषा में रामचरित्रमानस लिख कर आम जनता को भगवान् राम के सत्य स्वरूप का दर्शन कराया । और इन दोनों ग्रन्थों ने लाखों करोड़ों मनुष्यों के लिए ज्योतिःस्तम्भ का काम दिया और जब तक सूर्य चांद हैं । जनता जनार्दन इन ज्योतिः स्तम्भों से प्रकाश प्राप्त करती रहेगी ।

और महर्षि दयानन्द

अपने अपूर्व योगबल से पहले स्वयं राम बने और फिर उनके जीवन से प्रेरणा पाकर १० लाख साल के बाद रामायण का पूरा-पूरा ड्रामा सचमुच जीवन के रंगमंच पर खेला गया । जिसके पात्र सच्चे अर्थों में राम, लक्ष्मण और सीता का रूप बन गए ।

(१) १९ अप्रैल १८६४ की सुबह को हुशियारपुर शहर के नजदीक बिजवाड़ा नामी एक प्रसिद्ध पुराने कस्बा में माता गणेशदेवी की कोख से एक बालक पैदा हुआ जिसका नाम उसके पिता श्री चूनीलाल जी ने हंसराज रखा पर यह बालक बड़ा होनहार और होशियार निकला। और इस ने सन् १८८० में मिशन स्कूल लाहौर से मैट्रिक का इम्तिहान पास कर लिया । सन् १८७८ में पिता जी का देहान्त हो गया था । तब भी उन्होंने अपनी तालीम जारी रखी और सन् १८८५ में पंजाब यूनिवर्सिटी से बी० ए० का इम्तिहान पास कर लिया और यह दोयम रहे । और अव्वल

नम्बर पर पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी आए थे। उस समय बी० ए० पास कर लेने वाले युवक के लिए सरकार का बड़े से बड़ा ओहदा यानी एक्स्ट्रा ऐसिस्टेण्ट कमिश्नरी का पद मिल जाता था और राजा, ऐसे युवकों को अपना वजीर भी बना लेते थे। इनके बी० ए० पास कर लेने पर सब घर वालों को आशा बंधी कि अब धन धान्य की कमी न रहेगी। सन् १८७९ से ही श्री लाला साईंदास जी जो उस समय आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री थे और जो बड़े मर्दमशनास थे, के सत्संग से हंसराज जी पर आर्यसमाज का रंग पक्का चढ़ चुका था। और उन्होंने पं० गुरुदत्त जी से मिलकर सन् १८८२ में रीजनरेटर आर्यावर्त्त (Regenrater of Aryaverta) अंग्रेजी सप्ताहिक अखबार जारी करके आर्यसमाज की सरगर्मियों में पूरा पूरा भाग लेना शुरू कर दिया था। जब सन् १८८३ में दीवाली के दिन महर्षि दयानन्द अपने प्राण परोपकार की वेदी पर न्योछावर कर अपने निज धाम को चले गये तो लाहौर आर्यसमाज ने महर्षि का स्मारक बनाने का निश्चय किया और ९।११।८३ को सर्व-सम्मति से महर्षि की यादगार में दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज और स्कूल खोलने का निश्चय किया गया। और योजना बनाई गई कि कालेज के प्रिंसिपल का वेतन ५०० रु० माहवार और स्कूल के हैडमास्टर का २५० रु० माहवार होगा। और ८ लाख रुपये इकट्ठा करने का भी निश्चय किया गया परन्तु बहुत यत्न करने पर भी १० हजार रु० से अधिक दिसम्बर के अन्त तक न जुट सका। हंसराज जी के मन में किसी रियासत के वजीर बनने की इच्छा थी और घर वाले भी उनसे बहुत सी आशाएं लगाए बैठे थे, कि अब हंसराज जी धन से घर भर देंगे परन्तु जब हंसराज जी ने देखा कि धनाभाव के कारण महर्षि की पुण्य स्मृति में खोला जाने वाला कालेज नहीं खुल रहा तो उनके मन में एकदम त्याग की ज्योति जाग उठी और एक दिन वे अपने भाई श्री मुलखराज जी से कहने लगे कि महर्षि की पुण्य स्मृति में खुलने वाला कालेज धनाभाव के कारण नहीं खुल रहा और मेरा विचार है कि मैं इसके लिए अपना जीवन दान दे दूँ। और बगैर कुछ लिये सेवा करूँ परन्तु इसके लिए आपकी सहायता की आवश्यकता है, उन दिनों लाला मुलखराज की तनख्वाह केवल ८० रुपये माहवार थी। उसमें से भी उन्होंने अपनी आधी तनख्वाह हंसराज

जी के लिए रिजर्व कर देने का वचन दे दिया। जिस तरह राम के वनवास लेने पर लक्ष्मण भाई बनवास में उनकी सेवा के लिए उनके साथ चल पड़े थे। उसी प्रकार मुलखराज जी ने भी लक्ष्मण बनकर राम रूपी हँसराज का राज त्याग कर फकीरी कबूल करने पर साथ देने का निश्चय कर लिया। अब सिर्फ एक मुश्किल हंसराज जी के सामने थी। वह थी सीता की तरह नवव्याहता ठाकरदेवी जी अपनी धर्मपत्नी की, जो बहुत दिनों से आशा लगाये बैठी थी, कि अब पतिदेव ने बी०ए० कर लिया है और किसी बड़े ओहदे पर पहुंच कर धन धान्य की कोई कमी न रहेगी। सो महात्मा हँसराज जी ने अपना यह निश्चय अपनी सती साध्वी ठाकरदेवी नामी, सीता के सामने रख दिया कि मैं अमीरी छोड़ कर फकीरी अख्त्यार करना चाहता हूँ। आपकी क्या राय है तो ठाकरदेवी जी ने भी हंसराज जी को वही जवाब दिया जो सीता जी ने राम को बनवास में साथ जाने के लिए दिया था—कि यदि आप अमीरी छोड़ कर फकीरी करना चाहते हैं तो मैं हर हाल में आप के साथ रहूंगी। और अब रामायण के तीनों पात्र यानि राम लक्ष्मण और सीता इकट्ठे हो गये। और दस साल के बाद एक बार महर्षि दयानन्द की कृपा से रामायण की लीला इस पुण्य धरती पर खेली जानी शुरू हो गई। महात्मा हंसराज जी की आँखें दुखती थीं। श्री मुलखराज जी ने आर्यसमाज लाहौर के प्रधान जी को पत्र लिखा और हंसराज जी ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। "दयानन्द स्कूल खुलने पर मैं अवैतनिक मुख्याध्यापक बनने के लिए तैयार हूं। इस संक्षिप्त से पत्र ने आर्यसमाज के कार्यकर्ताओं में उत्साह फूँक दिया। और ३।११।८५ को यह पत्र आर्यसमाज की अन्तरंग सभा में रखा गया। जहां हंसराज का जीवन-दान धन्यवाद सहित स्वीकार किया गया। महात्मा जी ने कहा था कि जिस दिन मैंने जीवन-दान देने का निश्चय किया था, उस रात देर तक मुझे नींद नहीं आई और मैं आसन लगा कर प्रभु-भजन में लगा रहा। गायत्री का जाप करते करते मेरी मूंदी आंखों ने एक ऐसी ज्योति देखी कि जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैंने अनुभव किया कि मेरा आत्मा ऊपर उठ रहा है।

(२) ३१।१।८६ को आर्यसमाज मन्दिर में सब प्रमुख आर्यसमाजियों की मीटिंग हुई जिसमें दयानन्द कालेज ट्रस्ट और दयानन्द

कालेज मैनेजिंग कमेटी बना दी गई। २० मार्च को चुनाव हो गया और राय बहादुर लालचन्द इसके पहले प्रधान चुने गये। इस समय तक २४८६८) रुपये इकट्ठे हुए थे। और १।६।१८८६ को आर्यसमाज लाहौर के भवन में स्कूल जारी कर दिया गया। पंजाब भर में यह पहला स्कूल था जिसका हैडमास्टर एक हिन्दू नौजवान बना था। मिशन स्कूल के हैडमास्टर हैरान थे कि एक नातजुरबाकार नौजवान जो कल तक हमारे स्कूल में पढ़ता रहा है किस तरह इतनी बड़ी जिम्मेदारी उठा सकता है। सिर्फ पांच दिन के अन्दर स्कूल में ३०० लड़के दाखिल हो गए। १८८९ में कालिज खुल गया और महात्मा जी इस के पहले प्रिंसिपल बनाए गए। १८९० में आर्यसमाज लाहौर के प्रधान बने और १८९१ में आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान चुने गए। १८९३ में अपनों की ओर से घोर अपमान होने पर भी महात्मा जी अपने सेवा के रास्ते पर अग्रसर ही रहे। और अपने गुरु महर्षि दयानन्द की तरह मान अपमान की परवाह न करते हुए अपने कर्तव्य को पूरे तौर पर निभाते चले गए परन्तु महात्मा जी के इस तरह अपमान किए जाने पर स्वामी रामतीर्थ जैसा त्यागी विद्वान् पुरुष जो एम० ए० पास करके दयानन्द कालिज को सिर्फ १०/- p.m. वेतन लेकर जीवन-दान देना चाहते थे, पीछे हट गये। अगर स्वामी रामतीर्थ जैसा महात्मा भी आर्यसमाज में आ जाता तो कितना प्रचार आर्यसमाज का होता लेकिन महात्मा जी के अपमान ने उनको इसलिए आर्यसमाज में आने से रोक दिया कि जिस समाज में अपने सेवकों से बुरा सलूक होता है उसमें काम करना व्यर्थ है। १८९६ में Engineering क्लास कालिज में खोल दी गई। कालिज के प्रिंसिपल आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के प्रधान, कालिज होस्टल के प्रधान सुपरिण्टैण्डैण्ट यह सब जिम्मेदारियां अकेले महात्मा जी ने संभाल रखीं थीं। होस्टल में रहने वाले विद्यार्थियों के धार्मिक जीवन का वे पूरा ध्यान रखते थे। कालिज में धर्मशिक्षा वे स्वयं पढ़ाते थे। और इस मतलब के लिए उन्होंने धर्मशिक्षा की खास पुस्तकें तैयार करवाई थीं। कालिज की पहली बिल्डिंग तंग हो जाने पर २३।४।१९०५ को महर्षि दयानन्द जी के श्रद्धालु महाराजा सर प्रतापसिंह ईडर नरेश के करकमलों से कालिज की आधारशिला रखवाई गई। और ३ वर्ष में महात्मा जी ने पचास हजार

रुपया बिल्डिंग के लिए जमा कर लिया। ये वे दिन थे, जब १९०७ में ला० लाजपत राय जी को अंग्रेजी सरकार ने गिरफ्तार कर लिया था। और हर आर्यसमाजी पर सरकार की कड़ी नजर थी। ऐसे विकट समय में इतना रुपया कालिज के लिए इकट्ठा कर लेना महात्मा जी का ही काम था। अत: कालिज के लिए शानदार बिल्डिंग बन गई। फिर इस कालिज की इतनी बिल्डिंगें बन गईं कि जब १९४७ में विभाजन हुआ तो कालिज की जायदाद की कीमत कई करोड़ रुपयों की थी।

३-महात्मा जी के तप और त्याग से प्रेरणा पाकर बहुत से नौजवान आजीवन सेवा करने के लिए तैयार होना शुरू हो गये तो श्री महात्मा जी ने सन १९०२ में आजीवन सदस्यों की एक योजना बनाई। जिससे प्रभावित होकर ला० साईंदास, ला० दीवानचन्द, भाई परमानन्द, पं० मेहरचन्द, ला० देवीचन्द, ला० रामचन्द, बख्शी रामरत्न, डा० गोवर्धनलाल जी दत्त, कैप्टन अमरनाथ बाली, प्रो० बहादुरमल, पं० दीवान चन्द, पं० विश्वबन्धु, प्रो० श्रीराम, पं० सुरेन्द्रमोहन, डा० आसानन्द, ला० सूर्यभानु, प्रो० भगवान्दास, श्री ज्ञानचन्द महाजन, ला० अमोलकराम, ला० चमनलाल, श्री रामदास, पं० वजीरचन्द, ला० लालचन्द, ला० रामलाल, पं० रलाराम, इन नौजवानों को जो सब के सब M. A. पास थे, निर्वाह के लिए कुछ शुल्क मुकर्रर कर दिया गया और नियम बना दिए गए और इन सज्जनों ने महात्मा जी की देख रेख में डी० ए० वी० कालेज की तहरीक को चार चांद लगा दिये। और आर्यसमाज के विस्तृत विद्या क्षेत्र में हर जगह कामयाबी का झण्डा गाड़ दिया क्योंकि महात्मा जी की कृपा से आर्यसमाज के स्कूलों और कालेजों का एक जाल सा सारे पंजाब में फैल गया था।

(४) १।६।८६ से अपना प्रण शुरू कर के पूरे पचीस वर्ष तक सेवा करकें बगैर एक पैसा लिये महात्मा जी ने २७।११।१९११ कों दयानन्द कालेज के प्रिंसिपल पद से त्यागपत्र दे दिया। जहां महात्मा जी के काम शुरू करने पर केवल २४८६९) रुपया कालेज कोष में जमा थे। वहां उनके त्यागपत्र देते समय लाखों रुपयों की कालेज की इमारंतों के इलावह ८३१०००) रुपये कालेज कोष में जमा थे। १९११ में महात्मा जी की आयु ४८ वर्ष की थी। यह वह उमर है जब लोग प्रिंसिपल

बनते हैं परन्तु महात्मा जी ने स्वयं ही इस पद को त्याग दिया । यहां तक कि कालेज कमेटी इनका त्यागपत्र किसी सूरत में भी स्वीकार करने को तैयार न थी, परन्तु आपने आग्रह करके, अपना त्यागपत्र स्वीकार करवा लिया । महात्मा हंसराज जी भारत भर में पहले भारतीय थे जो किसी कालेज के प्रिंसिपल थे । जब तक उन्होंने अपने तप और त्याग से यह सिद्ध नहीं कर दिया कि भारतीय लोग भी महत्त्वपूर्ण जिम्मेवारी निभा सकते हैं । और अंग्रेजों की मदद के बगैर एशिया की सब से बड़ी संस्था, डी० ए० वी० कालेज लाहौर का संचालन अत्यन्त उत्तमता से कर सकते हैं । तब तक किसी भारतीय को साहस नहीं हुआ था कि वह अपने स्कूल या कालेज खोलें, सिर्फ गवर्नमैण्ट या मिशन स्कूल कालेज ही थे परन्तु महात्मा जी की सफलता से उत्साह पाकर स्थान स्थान पर स्कूल, कालेज, गुरुकुल, ऋषिकुल, कन्या पाठशालाएं स्थापित होने लगीं । इस समय सनातनधर्मियों, सिखों, जैनियों, मुसलमानों, ब्रह्मसमाजियों आदि की जो शिक्षा-संस्थाएँ आप देख रहे हैं, यह कहीं न दिखाई देतीं । अगर महात्मा जी ने अपने बलिदान से आत्मविश्वास और आत्मसम्मान की भावना पैदा न की होती । इसके सम्बन्ध में तीन घटनाएँ उल्लेखनीय हैं ।

(क) अलीगढ़ मुसलिम कालेज के बानी सर सैयद अहमद खां, दयानन्द कालेज देखने आये, सब कुछ देखकर कहा कि मेरे कालेज में सब कुछ दयानन्द कालेज से अधिक है परन्तु मेरे पास कोई हँसराज नहीं है । और यह कमी मैं पूरी नहीं कर सकता ।

(ख) सनातन धर्म कालेज खोलने के लिए लाहौर में एक बड़ा भारी जलसा म्यूनिसिपल बाग में हुआ । महाराजा जम्मू कश्मीर सर प्रतापसिंह जी इसके प्रधान थे । महात्मा हँसराज जी को भी निमन्त्रित किया गया था । महाराजा भाषण करते-करते अनायास रुक गए । और महात्मा हँसराज जी को सम्बोधन करके कहने लगे-"हंसराज जी एक हंसराज इन को भी दे दो ताकि यह कालिज भी सफल हो सके ।" (इस पुस्तक का लेखक इस जलसा में स्वयम् उपस्थित था ।)

(ग) शिकागो मुल्क अमरीका में सकल संसार के विद्या-प्रसारकों का एक बड़ा भरी समारोह किया गया । जिस में सर्वसम्मति से यह निश्चय

करके घोषित किया गया कि विद्या-प्रचार के लिए महात्मा हंसराज जी से बढ़ कर सारे संसार में किसी का बलिदान नहीं है ।

५-स्वराज्य की मांग करने पर अंग्रेजों ने जब यह आक्षेप किया कि अभी हिन्दुस्तानी राज्य संभालने के लायक नहीं हुए तो उसके जवाब में यही उदाहरण दिया गया । जो हिन्दुस्तानी अंग्रेजों की मदद के बगैर ही डी० ए० वी० कालेज और उसके साथ सम्बन्धित सैकड़ों कालिजों और स्कूलों को सुचारु रूप से चला रहे हैं वे देश का शासन भी सुचारु रूप से चला सकते हैं । और इस उदाहरण का अंग्रेजों के पास कोई जवाब नहीं था । और यह उदाहरण भी महात्मा हंसराज जी के बलिदान से ही बना था । महात्मा हंसराज जी के अमूल्य बलिदान ने भारत का कितना ऊँचा सर किया । यह इस उदाहरण से भली भाँति समझा जा सकता है । और फिर स्वराज-प्राप्ति में डी० ए० वी० कालेज के विद्यार्थी नवयुवकों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया । और भगतसिंह जैसे सैकड़ों नौजवान इस कालिज की ही पैदावार थे । जिन्होंने हँसते-हँसते फांसी के रस्सों को चूम कर भारतवर्ष को आजाद कराया ।

६-जब विदेशी भारत में आये तो उन्होंने अपनी इच्छानुसार भारत का इतिहास लिखा । उसका ध्येय भारतीयों को ईसाई बनाना और भारत में अपना राज्य बनाए रखना था । विनसेण्ट स्मिथ नामक इतिहासकार ने लिखा कि "प्राचीन आर्य लोग गोमांस खाते थे ।" वे एक बार लाहौर आए और महात्मा हंसराज जी से मिलने गए । महात्मा जी ने पूछा-क्या आपने वेद पढ़े हैं ?" उन्होंने उत्तर दिया-"नहीं" । महात्मा जी ने कहा, "तो आप ने यह बात बिना पढ़े कैसे लिख दी ?" स्मिथ बहुत लज्जित हुए, और वचन दिया कि पुस्तक के आगामी संस्करण में यह बात नहीं छपेगी ।

७-वैसे तो महात्मा जी कालिज के प्रिंसिपल होते हुए भी आर्यसमाज और इसके प्रचार का सब प्रबन्ध करते ही रहते थे लेकिन कालिज के प्रिंसिपल के पद से त्यागपत्र देकर अब बिल्कुल ही आर्यसमाज के लिए हो गए । अतः १८९५ में जो आर्यसमाज अनारकली दो रुपया माहवार किराया के कमरे में था वह महात्मा जी की कृपा से १९४५ में हजारों रुपये किराये की जायदाद का मालिक बन गया था।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा स्थापित करके वे इसके प्रधान चुने गए और फिर इनको दयानन्द कालिज कमेटी का भी प्रधान बना दिया गया। जिस को उन्होंने निहायत उत्साह से निभाया । उन के साथ ही उनकी धर्मपत्नी ने भी आर्यसमाज के कामों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया और उन्होंने महिलाओं में प्रचार करना शुरू कर दिया । और स्त्री-समाज लाहौर में स्थापित कराया । अतः महात्मा जी और उनकी धर्मपत्नी दोनों ने ही वैदिक धर्म--प्रचार को अब अपना जीवन-ध्येय बना लिया था, और जगह-जगह आर्यसमाजें कायम होने लगीं । और महात्मा जी छोटी से छोटी समाज में प्रचारार्थ जाते रहते थे । अतः पूरी लगन से आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के संगठन को मजबूत कर के और लाखों रुपया वेद प्रचार फण्ड में जमा करके आपने १९३७ में इस सभा के प्रधान पद से भी त्यागपत्र दे दिया । यह त्याग की तीसरी घटना थी । उनका सारे का सारा जीवन त्यागमय ही था ।

८--महारानी सीता रावण की कैद में थी । उनके छुड़ाने के लिए भगवान् राम ने लंका पर चढ़ाई कर दी । युद्ध में प्राणों से प्यारा भाई लक्ष्मण घायल होकर बेहोश हो गया तो भागवान् राम ने घोर विलाप किये । और जब तक लक्ष्मण को होश न आया तब तक गहरे दुःख में डूबे रहे ।

और

इसी तरह का एक वाकया महात्मा जी के जीवन में भी आया परन्तु न तो उन्होंने विलाप किया और न दुःख ही माना । वह इस तरह है कि २०।१।१९१४ को महात्मा जी के सब से बड़े लड़के बलराज जी पर पुलिस ने क्रान्तिकारी दल का मेम्बर होने के कारण मुकद्दमा चला दिया । जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता था कि रासबिहारी बोस ने अंग्रेजों को कत्ल करने के लिए यह दल बनाया है । और ४।३।१९१४ को बलराज जी को अदालत में पेश किया गया । जिन दिनों बलराज जी पर यह मुकदमा चल रहा था उन्हीं दिनों महात्मा जी की सीता साध्वी धर्मपत्नी ठाकरदेवी, रोग रूपी रावण की कैद में थी । अतः ४।७।१९१४ को उनकी हालत नाजुक हो गई । महात्मा जी ने मजिस्ट्रेट को देहली तार दिया कि बलराज की माता मृत्यु-शय्या पर पड़ी है और अपने

पुत्र को आखिरी बार देखना चाहती है। जज साहब ने कहा कि अपराधी केवल पुलिस की हिरासत में ही भेजा जा सकता है। लेकिन पुलिस ने पहले ही जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया। इसलिए बलराज अपनी मरती हुई माता के दर्शन न कर सका और माता भी अपने सुपुत्र के अन्त समय दर्शन करने से वञ्चित रह गई। और ७।७।१९१४ को परलोक सिधार गई। १५ अक्टूबर को सेशन जज ने बलराज जी को उमर कैद की सजा सुनाई और १०।२।१९१५ को हाईकोर्ट में अपील पर सजा घटा कर ७ साल कर दी परन्तु यह सब कुछ होते हुए भी महात्मा हंसराज जी ने न विलाप किया न दुःख मनाया बल्कि पहले की तरह ही आर्यसमाज का काम निःशुल्क करते रहे। और इस साल के आर्यसमाज लाहौर के सालाना जलसे के सम्बन्ध में निकले नगर कीर्तन के साथ पहले की तरह ही शामिल हुए और जलसा पर उसी गम्भीर आवाज और हंसते हुए चेहरे से अपील भी की। और किसी भी मनुष्य ने यह महसूस न किया कि महात्मा जी पर इतनी बड़ी भारी मुसीबत आई हुई है।

वृक्ष फले न आप को, नदी न अचवे नीर।
पर-उपकार के कारणे, सन्तन धरा शरीर॥

९—विद्या-प्रसार और धार्मिक प्रचार में संलग्न रहते हुए भी महात्मा जी दुखियों के दुःख को भी भूल न पाते थे। भारतवर्ष में जहाँ कंहीं भी अकाल, भूकम्प या फिर्का दाराना फसाद के कारण जनता को दुखी देखा उसी समय उनकी सहायता के लिए कमर कस कर तैयार हो गये। और जहां लाखों रुपये स्कूल और कालेज के लिए इकट्ठे किये, वहाँ लाखों ही रुपये दुखियों की सहायता के लिए भी इकट्ठे किये और खर्च किये। अतः १८९५ में बीकानेर में अकाल पड़ा तो महात्मा जी ने झट सहायता भेज दी। १८९९ में बीकानेर में कहर पड़ गया, ईसाई लोग ऐसे अवसरों पर खूब लाभ उठाते हैं, महात्मा जी इस बात से बेखबर न थे। इसलिए उन्होंने फिर सहायता भेज दी और ईसाइयों को अपनी फसल काटने से रोक दिया। १९०५ में काँगड़ा में बड़ा जबरदस्त भूचाल आया, हजारों मनुष्य गिरे मकानों के नीचे दब गये। अतः महात्मा जी ने शीघ्र ही आर्य सेवकों का जत्था भेज दिया, जिन्होंने

जाकर सैकड़ों जानों को बचा लिया । सन् १९०७ वा ८ में अवध में अकाल पड़ गया और महात्मा जी ने तुरन्त सहायता के लिए धन और जन भेज दिये और दीन दुखियों की सहायता की । हजारों आदमियों को काल का ग्रास होने से बचा लिया । १९१८ में गढ़वाल में कहत पड़ गया, वहां भी महात्मा जी ने तुरन्त सहायता पहुंचाई । जहां हजारों जिन्दगियां बचा लीं वहां हजारों को ईसाई होने से भी बचा लिया । १९२० में उड़ीसा में कहर शुरू हो गया, और उन्हीं दिनों छत्तीसगढ़ में भी कहर पड़ गया । महात्मा जी ने हर स्थान पर अपने स्वयंसेवक भेज कर हजारों मनुष्यों की जिन्दगियों को मौत के मुँह से बचा लिया । १९२१ में शिमला, कांगड़ा, जम्मू–भिम्बर, नौशहरा, राजौरी, कोटली, मीरपुर आदि में भी कहत पड़ने से लोग मौत का ग्रास बनने लगे । महात्मा जी ने तुरन्त यहां भी सहायता का प्रबन्ध करके सैकड़ों जानें बचा लीं । १९२१–२२ में मालाबार में मोपले मुसलमानों ने हजारों हिन्दुओं को कत्ल कर दिया। हजारों को जबरदस्ती मुसलमान बना लिया । महात्मा जी को जब बम्बई से एक लम्बा तार आया कि मालाबार में मुसलमान मोपलों ने हिन्दुओं पर घोर अत्याचार किया है । हजारों अनाथ और हजारों विधवाएं बना दी गई हैं । इस तार का पहुंचना था कि हंसराज के हृदय में आग लग गई । तुरन्त ही स्वयंसेवकों का एक जत्था तैयार करके भेज दिया । और अपील करने पर हजारों रुपया महात्मा जी के पास पहुंच गया । जिससे हजारों हिन्दुओं को जो जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए थे । वापस लाया गया । सैकड़ों टूटे हुए मन्दिरों की मरम्मत कराई गई । अतः पं० ऋषिराम B. A., श्री खुशहालचन्द खुर्सन्द, (आनन्द स्वामी सरस्वती) पं० मस्तानचन्द, प्रिंसिपल ज्ञानचन्द महानुभाव महात्मा जी की आज्ञा पाकर मालाबार में निडरता से काम करते रहे । सन् १९२४ में कोहाट में पठानों ने हिन्दुओं पर हमला कर दिया और तलवारों और बन्दूकों से निहत्थे हिन्दुओं को कत्ल करना शुरू कर दिया । और हिन्दुओं की जायदादें लूट ली गईं । और हजारों लोग तबाह वा बरबाद होकर कोहाट से निकल खड़े हुए। इस पर महात्मा जी ने उनकी आर्थिक सहायता के लिए भी भरपूर यत्न किया । उन्हीं दिनों जिला मुजफ्फरगढ़ में सिन्ध दरया की बाढ़ से तबाही मची, इस तरह जिला रोहतक में बाढ़ के कारण तबाही

मच गई थी, महात्मा जी की दूरबीन नजर सब जगह देखती थी। और सभी स्थानों पर यथाशक्ति सहायता भी पहुंच जाती थी। १९३४ में बिहार में भूकम्प से तबाही मची तो वहाँ भी पूरे जोर शोर से सहायता का कार्य किया। १९३५ में कोयटा में भूचाल आया, परन्तु सरकार ने वहाँ आर्यसमाज को सहायता की आज्ञा न दी। फिर भी महात्मा जी के आदेश से, रोहड़ी, सक्खर, अमृतसर और लाहौर में सहायता केन्द्र जारी कर दिये। ताकि भूचाल से पीड़ित लोग जो सरकार वहां से जख्मी या दूसरी हालत में निकाल कर बाहर भेज रही थी उनकी सहायता को जावे, और उनकी सहायता इन चार केन्द्रों में की जाने लगी। अर्थात् महात्मा जी ने अपने जीवन में जहाँ से भी दुःखी जनता की आवाज सुनी, शीघ्र ही उनकी सहायता करने को तैयार हो गये। १९३५ में एबटाबाद में आग से तबाहशुदा लोगों की सहायता की।

१०—इसके इलावा महात्मा जी ने छूतछात निवारण के लिए भी बड़ा काम किया। विधवा विवाह के लिए भी वे यत्नवान् रहे। और देश के बच्चों में ब्रह्मचर्य की प्रथा को जारी करने के लिए उन्होंने स्कूलों में विवाहित लड़कों को दाखिल करने की मनाही कर दी। १९१९ में अखिल भारतीय सुधार सम्मेलन के महात्मा जी प्रधान चुने गये। और प्रधान पद से बड़ा महत्त्व पूर्ण भाषण दिया और शुद्धि के काम में भी उन्होंने खूब योग दिया। अतः मलकाना शुद्धि में १९२३ में जब आल इण्डिया शुद्धि-सभा की स्थापना हुई तो स्वामी श्रद्धानन्द जी प्रधान और महात्मा जी उपप्रधान बन कर इस महान् कार्य को इकट्ठे करते रहे। और तीन महीनों के निरन्तर संघर्ष से १४७ गांव मलकानों के शुद्ध कर लिये। और इस घोर परिश्रम से आपको पहले बुखार हो गया और जब आप फिर इस काम से न हटे तो कारबंकल फोड़ा निकल आया। तब आप लाहौर वापस आए और इसका आपरेशन कराया गया। देश, जाति, धर्म के किसी भी काम में महात्मा जी पीछे न रह कर आगे ही रहे। और पूरी लगन से और मेहनत से हर काम को सम्पन्न किया। १९२७ में आपने ऑल इण्डिया आर्यन कांग्रेस देहली की सदारत की। १९२८ में लाहौर में लड़कियों के लिए महिला महाविद्यालय स्थापित किया। महात्मा जी ने अपने जीवन में इतने काम किये हैं जिनका वर्णन एक

बहुत बड़ी पुस्तक में किया जा सकता है। यहां तो केवल दिग्दर्शन मात्र ही कराया गया है।

अन्त में १५।११।१९३८ को रात के ११ बज कर ५ मिनट पर ७४ वर्ष की आयु में पूरे ५२ साल तक देश, जाति, समाज की अनथक निश्शुल्क सेवा करके इस असार संसार से विदा हो गये। ओं ओं का जाप करते हुए इस भौतिक देह को त्याग दिया। और यह उनका चौथा त्याग था। भगवान् राम ने १४ वर्ष बनवास काटा, परन्तु महात्मा हंसराज ने पूरे ५२ वर्ष वनवास की तरह दिन काटे। जो अपनी शक्ति से सोने के मन्दिर बना सकता था, मरते दम तक किराये के मकान में रहता रहा। जो जड़ी जरबफत के कपड़े पहन सकता था। सारी आयु खद्दर के कपड़े ही पहनता रहा। कदाचित् आपके मन में यह विचार उठे कि राम तो राजा थे परन्तु हंसराज तो रंक थे, इनका आपस में क्या मुकाबला है तो यह आपकी गलतफहमी ही है। नरेन्द्रनाथ जी ने महात्मा जी के साथ ही बी० ए० पास किया और महात्मा जी से कम नम्बर लेकर जब वह अपनी सरकारी नौकरी से रिटायर हुए तो जहां लाखों की सम्पत्ति के मालिक थे। वहां राजा का खिताब भी लेकर राजा नरेन्द्रनाथ बन गये थे तो कोई वजह नहीं कि महात्मा हंसराज भी इन्हीं की तरह नौकरी करते तो उन जैसी दौलत पैदा न कर लेते या राजा न बन जाते परन्तु हंसराज ने राजा बनना कबूल न करके फकीर बनना ही पसन्द किया। और इस फकीर हंसराज पर हजारों राजा बलिदान किये जा सकते हैं। इतना महान् कार्य महात्मा जी ईश्वर-विश्वास पर ही कर पाये थे। और विश्वास के मुतल्लिक उनके जीवन में एक विचित्र घटना आती है, जब इनकी धर्मपत्नी मृत्यु-शय्या पर थी। और पुत्र बलराज को उमर कैद की सज़ा हो गई थी और भाई मुलखराज जो सारी आयु सहायता करता रहा उसकी आर्थिक दशा कुछ मन्दी पड़ गई थी तो उनकी लड़की ने एक दिन कहा—कि पिता जी, "अब भी परमात्मा है ?" तो महात्मा जी ने मुस्कराते हुए कहा बेटा—ऐसी नास्तिकता की बात क्यों करती हो। परमात्मा है और अवश्य है, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। इतनी मुसीबतों, तकलीफों, रुकावटों को पार करते हुए जिस महापुरुष ने २२ वर्ष की भरपूर जवानी में जो प्रतिज्ञा की थी, वह ७४ वर्ष की आयु तक पूर्ण

रूप से निबाही। किसी शायर ने शायद महात्मा जी के जीवन को सम्मुख रख कर ही कहा है।

अगन आँच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन व्यवहार॥

जिस हंसराज ने शायर के शब्दों में-"हंस हंस के हंसराज ने तन मन व धन लुटा दिया" उस हंसराज ने मौत का भी हंसते हंसते स्वागत किया। और १६।११।३८ को जब इनकी अर्थी निकली तो लाखों आंखें आँसुओं से पुरनम थीं। लाहौर के बाजार रोते हुए मनुष्यों और बाजारों के किनारों पर मकानों की छतें रोती हुई देवियों और बालकों से अटी पड़ी थीं परन्तु महात्मा जी अर्थी पर लेटे हुए हंस रहे थे। और शायर के इस शेर की पूरी पूरी ताबीर कर रहे थे।

जब तुम पैदा हुए, जग हंसा तुम रोये।
ऐसी करनी कर चलो तुम हंसो जग रोये॥

अब महात्मा जी का प्यारा गीत पढ़ें, जो वे सारी आयु गाते रहे, क्योंकि उन्होंने अपने बलिदान से इसके गाने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। (पहाड़ी झपताल)

भजन

हे जगत् स्वामी प्रभु जी भेंट धरूं क्या मैं तेरी॥

माल नहीं मेरे सम्पत्ति नाहीं, जिसको कहूं मैं मेरी।
इस जग में हम ऐसे विचरें, जोगी करें ज्यों फेरी॥१॥ भेंट०

धन जन यौवन अपना माने, मूर्ख भूला भारी।
तुझ बिन और सहाई न मेरा, देख लिया मैं विचारी॥२॥ भेंट०

यह तन यह मन होवे न अपना, है सब ही माल तुम्हारा।
जब चाहो तब ही तुम लेवो, न कुछ जोर हमारा॥३॥ भेंट०

तुमरे दर का भिखारी मैं स्वामी, लाज तुम्हें है मेरी।
चरण शरण निज अर्पण करके, भक्ति दो बिन देरी॥४॥ भेंट०

१८. महर्षि शृङ्गी

सूर्यवंशी सम्राट् युवनाश्व के कोई पुत्र न था, ऋषियों ने इसके लिए पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराया तो उसके घर बहुत बड़ा प्रतापी राजकुमार पैदा हुआ, जिसका नाम मान्धाता रखा गया और वह चक्रवर्ती राजा हुआ। उसने अपने जीवन के दो नियम बनाये हुए थे।

१–साम्राज्य भोग के लिए नहीं, सेवा के लिए है।

२–ईश्वर की आराधना से ही ऐश्वर्य और सच्चा सुख मिलता है।

सम्राट् मान्धाता जीवन भर इन नियमों का बड़ी कठोरता से पालन करते रहे।

२–महाराज दशरथ के जब तीन विवाह करने पर भी पुत्र उत्पन्न न हुआ, तो महाराज इस बात से बहुत दुःखी रहते थे, और इसका वर्णन वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड में लिखा है, कि सन्तानार्थ दुखित दशरथ के वंश चलाने वाला पुत्र नहीं था, तो उनका यह दुख दूर करने के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराने का विचार निश्चित हुआ, और उस समय के यज्ञ-प्रक्रिया में प्रसिद्ध महर्षि शृङ्गी जी को जिनका आश्रम आसाम में था निमन्त्रित किया गया। अतः उन्होंने आकर महाराजा दशरथ को आश्वासन दिलाया कि मैं पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराऊँगा जो अवश्य सफल होगा, अतः वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड १५।२ में महर्षि शृङ्गी कहते हैं–

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रायां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः॥

(वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड, १५।२)

अर्थ–महाराज! आपको पुत्र प्राप्ति के लिए अथर्ववेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ करूँगा। वेदोक्त विधि के अनुसार करने पर वह यज्ञ अवश्य सफल होगा।

और उन्होंने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया और राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न चार पुत्र महाराज दशरथ के घर उत्पन्न हुए। पुत्रेष्टि यज्ञ की प्रक्रिया हमारे वेद शास्त्रों के आधार पर प्रचलित थी तथा मान्धाता जैसे शूरवीर चक्रवर्ती सम्राट् और भगवान् राम जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम जन्म ले

सके, और संसार का अब तक भी कल्याण उनके रामचरित्र मानस के पढ़ने सुनने से हो रहा है। महाराज दशरथ की आयु उस समय ४४ वर्ष की थी, जब पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान हो कर उनके गृह में पुत्र-रत्न उत्पन्न हुए। यदि पुत्रेष्टि यज्ञ न होता तो राम, लक्ष्मण, भरत जैसे भाई कैसे पैदा होते ? और राम न होते तो रामायण कैसे बनती, जो लाखों सालों से करोड़ों आदमियों के लिए रोशनी के मीनार का काम दे रहे हैं। ऐसे महान् यज्ञ प्राचीन काल में हुआ करते थे।

और

हजारों लाखों वर्षों से लुप्त प्राय: यज्ञ-प्रक्रिया को फिर से महर्षि दयानन्द जी महाराज ने प्रचलित किया, और महर्षि जी ने भी पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराके इसकी सफलता से संसार को कायल कर दिया। सन् १८७० में जब स्वामी जी महाराज अनूपशहर में विराजमान थे तो कर्णवास के एक ठाकुर ने महाराज से पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान कराया था, जो सफल हुआ, और निश्चित समय पर उस ठाकुर के घर पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। सारे संसार में ऐसी उत्कृष्ट विद्या सिवाय वैदिक याज्ञिकों के कहीं भी नहीं मिल सकती।

वैदिक धर्म और वैदिक सभ्यता का आधार यज्ञ ही है, क्योंकि समस्त वेद यज्ञ का प्रतिपादन करते हैं, सब से पहले स्वयं परमेश्वर ने ही यह सब संसार यज्ञ रूप ही बनाया है, और स्वयं यज्ञ का देवाधिदेव बना हुआ है जैसा कि स्वयम् ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में कहते हैं–

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

यानि अग्नि स्वरूप परमात्मा इस यज्ञ का देव है, पुरोहित है, ऋत्विज है, होता है, सब कुछ वही है, और फिर इस यज्ञ को स्वयं रचा कर भगवान् ने यज्ञ को सार्थक करने का भी उपदेश दे दिया है। यज्ञ शब्द का अर्थ–संगतिकरण, देवपूजा और दान है। ये तीन यज्ञ के आधार हैं। सो आप भगवान् की सृष्टि को देखें तो आप हैरान होंगे कि परम पिता परमात्मा ने इस ब्रह्माण्ड का कैसा संगतिकरण किया है। सूर्य, चांद, सितारे, पृथ्वी सब अरबों वर्षों से एक संगठन में बंधे चल रहे हैं, मजाल है जो कभी किसी में टकराव हुआ हो, इसका कारण यह है कि परमात्मा ने सब में कशिश पैदा कर रखी है, जिस से यह संगठन सही तौर पर चल

रहा है। इससे परमात्मा ने हमें उपदेश दिया है कि अगर तुम किसी संगठन को सुचारु रूप से चलाना चाहते हो तो आपस में कशिश पैदा करो, जब तक संगठित रहने वालों में कशिश रहेगी संगठन कायम रहेगा। और जिस समय बजाय कशिश के कशमकश पैदा हो गई संगठन टूट जायेगा। इसी तरह उसने देवपूजा यानि विद्वानों की भी इज्जत मान का विधान किया। आदि सृष्टि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा ऋषियों को वेद ज्ञान लेने के योग्य समझ कर उनको ज्ञान देकर उनकी पूजा की, जिससे आज तक भी उनकी पूजा हो रही है। और दान तो वह इतना दे रहा है, कि जिसका कोई शुमार नहीं कर सकता, जब से सृष्टि बनी है, सब संसार के प्राणी उसी के दान से परवरिश पा रहे हैं। इस तरह यज्ञ हमारी सभ्यता का आधार ही है। फिर यज्ञ की तीन किस्में हैं—कर्म यज्ञ, ज्ञान यज्ञ, उपासना यज्ञ। और इन तीन किस्मों के यज्ञों में संसार की समस्त विद्याओं का समावेश हो गया है, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इन यज्ञों में से एक पुत्रेष्टि यज्ञ भी है जिसके घर औलाद पैदा न होती हो या केवल लड़कियां ही लड़कियां पैदा होती हों, पुत्रेष्टि यज्ञ के अनुष्ठान से पुत्र उत्पन्न करा सकता है, क्योंकि हमारे धर्म में ऐसा है कि हर मनुष्य जब पैदा होता है तो तीन ऋण इसके सिर पर होते हैं। देव-ऋण, ऋषि-ऋण, और पितृ-ऋण। देव-ऋण और ऋषि-ऋण कर्मयज्ञ और ज्ञानयज्ञ से उऋण होते हैं परन्तु पितृऋण पुत्रेष्टि यज्ञ से उऋण होता है। इसलिए पितृ-ऋण से उऋण होने के लिए हर गृहस्थी के घर पुत्र होना चाहिए, और यदि स्त्री या पुरुष में किसी बीमारी के कारण पुत्र उत्पन्न न होने की सूरत में पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान हमारे ऋषि वेद द्वारा करके पुत्र उत्पन्न करा देते थे। अतः शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है अर्थात् जो पुत्र की इच्छा करता हो, वह पुत्रेष्टि यज्ञ करे यजुर्वेद २।२३ में "आधत्त पितरो गर्भं कुमारम्" में पुत्रेष्टि यज्ञ का वर्णन आया है और गृह्य सूत्रों में इसी मन्त्र को बोलकर बीज का पिण्ड पत्नी खा जावे कहकर पुत्रेष्टि यज्ञ की प्रक्रिया का वर्णन है। मनुस्मृति में भी इसका वर्णन आया है, और प्राचीनकाल में इस यज्ञ का अनुष्ठान भी किया जाता रहा है और फिर महर्षि दयानन्द जी ने भी इस लुप्त प्राय यज्ञ विद्या को पुनर्जीवित कर दिया है। जब कि उपरोक्त दृष्टान्तों से भी भली भांति विदित हो

गया है ।

१९. देव ऋषि नारद

१. छान्दोग्य उपनिषद् में प्रपाठक ७ के २६ खण्ड में देव ऋषि नारद और सनत्कुमार ऋषि की बड़ी रोचक कथा आती है । देव ऋषि नारद बहुत सी विद्या पढ़ कर तृप्त न हुए और पूर्ण तृप्ति और शान्ति के लिए सच्चे गुरु की खोज करते-करते महामुनि सनत्कुमार जी के पास पहुंचे तब सनत्कुमार जी ने नारद से पूछा कि आप क्या कुछ पढ़े हैं । जब नारद जी ने अपने पहले पढ़े हुए का वृत्तान्त बताया तो सनत्कुमार जी ने कहा कि पहले जो कुछ आपने पढ़ा है वह शब्द ब्रह्म ही है, यानि शब्दों तक ही रह गया है । आत्मा नहीं है । इसलिए आप की तृप्ति नहीं हुई है । अब तुम इसको भूल जाओ, और मुझ से आत्मज्ञान को सुनो । अत: देव ऋषि नारद सनत्कुमार महामुनि के उपदेश से तृप्त हो गये और उनके सब संशय निवृत्त होकर वे पूर्ण आत्मज्ञानी बन गये। और पूर्ण तृप्ति प्राप्त करने पर देव ऋषि नारद ने सनत्कुमार महामुनि को स्कन्द कह कर नमस्कार किया । स्कन्द उस विचित्र व्यक्ति को कहते हैं जो विघ्न बाधाओं को ज्ञान के सहारे छलांग मार कर लाँघ सकता हो । और जो भी व्यक्ति इस प्रकार मनुष्यों को ज्ञान अन्धकार से पार ले जावे उसे स्कन्द कहते हैं । इसलिए देव-ऋषि नारद ने महामुनि सनत्कुमार को स्कन्द कहकर नमस्कार किया था ।

और

इसी तरह देव-ऋषि दयानन्द ने भी जब बहुत से योगियों और महात्माओं के संसर्ग से विद्या प्राप्त की । पूर्णानन्द स्वामी जी से संन्यास की दीक्षा ली । ज्वालानन्द और योगानन्द जैसे योगियों से योग-विद्या प्राप्त करके योग-साधन में पूर्णता भी प्राप्त कर ली । महाराष्ट्र, गुजरात, काशी, आदि स्थानों के दिग्गज पण्डितों से विद्या भी प्राप्त कर ली । तब भी देव-ऋषि नारद की तरह उनकी तृप्ति न हुई और वे देव-ऋषि नारद की भांति किसी ऐसे गुरु की खोज करने लगे जो इनके सब संशय निवृत्त करके इनको निहाल कर सके । अत: सन् १८६० में घर से निकलने के पूरे १४ वर्ष बाद ३६ वर्ष की आयु में मथुरा में महर्षि विरजानन्द

जी की ख्याति सुन कर उनके द्वार पर आये। गुरु जी ने भी देवर्षि दयानन्द जी से वही प्रश्न किया जो महामुनि सनत्कुमार जी ने नारद से किया था, और जब देवर्षि दयानन्द जी ने अपनी पिछली विद्या का वर्णन किया तो महर्षि विरजानन्द जी ने कहा–कि इसको भूल जाओ, और अगर आपके पास कोई ऐसे ग्रन्थ हैं तो उसको यमुना में बहा दो, फिर मेरे पास आओ, तुम्हारी झोली भर दूंगा। देवर्षि दयानन्द ने भी ऐसा ही किया, और तीन वर्ष तक गुरु विरजानन्द जी के चरणों में बैठ कर जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया, उससे पूर्ण रूप से तृप्त हो गये। इनके सब संशय गुरु की कृपा से निवृत्त हो गये। इनके सब संशय गुरु की कृपा से छिन्न-भिन्न हो गये। हृदय की सब गांठें खुल गईं, और ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर महर्षि दयानन्द ने अपने गुरु स्कन्द स्वामी को नमस्कार किया। और गुरु दक्षिणा में अपना तन, मन, धन गुरु जी के एक ही इशारे पर उनके समर्पण कर दिया और सारी आयु गुरु आज्ञा का पालन करते हुए ब्रह्मज्ञान का प्रचार और पाखण्ड का खण्डन करते रहे।

देव-ऋषि नारद की भांति देवर्षि दयानन्द भी सच्चे गुरु को पाकर निहाल हो गये।

२०. विश्वजित् अथवा सर्वमेध यज्ञ के कर्ता वाजश्रवस

कठोपनिषत् की कथा का इस तरह आरम्भ होता है, निश्चय से यह ऐतिहासिक कथा है कि मोक्ष की कामना करने वाले वाजश्रवस ने दान में सब कुछ दे दिया। अन्न-दान से जिसकी कीर्ति विशाल थी, उस वाजश्रवा ने ऐसा दान किया कि सर्वस्व अर्पण कर दिया, परन्तु उसका नचिकेता पुत्र था, उसने उसको किसी को न सौंपा। तब इस कुमार ने अपने पिता से पूछा–पिता जी मुझ को किस को दोगे। पुत्र की भोली भाली बात सुनकर कहा तुझे भगवान् के समर्पण करता हूं। पिता का ऐसा वचन सुन कर नचिकेता, वैवस्वत् जो उस समय प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानी था, उस से ब्रह्म-ज्ञान उपार्जन करने के लिए उसके पास चला गया। और बाकी सारी की सारी कठोपनिषत् नचिकेता और वैवस्वत् मुनि के उत्तर प्रश्न से भरी है। जिसमें ब्रह्मज्ञान की बारीकियों को, अत्यन्त उत्तमता

से समझाया गया है। यदि वाजश्रवस सर्वमेध यज्ञ न करता तो कठोपनिषद् न बनता, वाजश्रवस के सर्वमेध यज्ञ करने से ही कठोपनिषत् की रचना हुई, जिससे लाखों व्यक्ति अब तक भी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति करते चले आ रहे हैं ।

और

संवत् १९२४, मुताबिक १८६७ के हरिद्वार कुम्भ के मेले पर स्वामी दयानन्द जी महाराज पहुंचे और सप्त सरोवर पर ठहरे जो हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच में है और हरिद्वार से तीन कोस है । (जहां अब महात्मा हंसराज जी के पुरुषार्थ से मोहन आश्रम बना हुआ है ।) यहां बाड़ा बांध कर और ९-१० छप्पर डालकर उन्होंने डेरा लगा लिया और एक पताका जिस पर पाखण्ड-खण्डनी शब्द लिखे थे अपने डेरे पर लगा दी । इस समय १५-१६ संन्यासी और ब्राह्मण इनके साथ थे। वस्त्र उस वक्त गेरुवे पहनते थे । स्वामी जी ने प्रतिदिन उपदेश देना आरम्भ किया। जिसमें उन्होंने, मूर्तिपूजा, भागवत, तीर्थ, तिलक, छाप, कण्ठी आदि का प्रबल खण्डन किया, जिसकी चर्चा सारे मेले में फैल गई और सैकड़ों मनुष्य इस अद्भुत संन्यासी को जो हिन्दु धर्म के आधार पुराणों, मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि का खण्डन करता था, देखने को आने लगे, और उनके डेरे पर हर वक्त मेला सा लगा रहता था। दर्शकों में सभी प्रकार के लोग होते थे, किन्हीं के मन में उनका उपदेश घर कर जाता था, और उनके चक्षु खुल जाते थे, भ्रम दूर हो जाते थे और उनके अनुयायी हो जाते थे । प्रचलित धर्म के ठेकेदार भी आते परन्तु स्वामी जी की युक्तियों का उत्तर न दे सकते तो खीझ कर उन्हें नास्तिक आदि कह कर अपना मन राजी कर लेते थे। कुछ संस्कृत पढ़े लिखे भी आते परन्तु उत्तर न देकर मौन होकर चले जाते । इस प्रकार महाराज का उपदेश प्रवाह चलता रहा । काशी के प्रसिद्ध पण्डित स्वामी विशुद्धानन्द जी भी मेले पर उपस्थित थे । उन्होंने यजुर्वेद अध्याय ३ के ११वें मन्त्र-'ब्राह्मणो अस्य मुख आसीत्' का यह अर्थ किया, कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से पैदा हुए, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य उरु से और शूद्र पांव से । स्वामी जी ने उसका खण्डन किया और कहा कि यदि इसका यही अर्थ है तो मुख से तो खंखार ही पैदा होता है । इसका शुद्ध अर्थ उन्होंने बतलाया है कि ब्राह्मण

समाज के मुख हैं, क्षत्रिय भुजा हैं, वैश्य उरु, और शूद्र पैरों के समान हैं। इस घटना से स्पष्ट है कि स्वामी जी इस समय भी वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही मानते थे, जन्मगत नहीं। स्वामी जी ने एक पुस्तक भागवत खण्डन लिखी थी, जिसकी हजारों कापियां वह छपवा कर अपने साथ लाए थे, जो मेले में बांटी गईं। बहुत से श्रद्धालु जन फल, मेवा, मिष्टान्न महाराज के लिए लाते थे, और सायंकाल तक अच्छी मात्रा में ये सब वस्तुएं इकट्ठी हो जाती थीं। महाराज वे सब पदार्थ दीन दरिद्री लोगों को बांट देते थे, अपने लिए कुछ भी नहीं रखते थे।

परन्तु जब महाराज ने मेले में यह अनुभव किया कि जनता अन्धकार में फंसी हुई है, संस्कृत के विद्वान् स्वार्थान्ध होकर लोगों को धर्म के नाम पर लूट रहे हैं। जिन लोगों का कार्य गृहस्थियों को धर्मोपदेश करना था। वे स्वयं ही उनको असत्य सिद्धान्तों के कीचड़ में फंसा कर धर्म-विमुख बना रहे हैं। साधु-समाज की भी वैसी ही दीन हीन दशा है, वे अनेक शाखाओं में विभक्त हैं। केवल नाम के ही साधु हैं पर गृहस्थियों से भी गये गुजरे हैं। कौन सा दुर्व्यसन है जो गृहस्थों में है, और इनमें नहीं। दूसरों में शान्ति-स्थापन तो दूर रहा, साधु संन्यासी स्वयं ही आपस में झगड़े बखेड़े पैदा करके अशान्त हो रहे हैं। धर्म केवल आडम्बर का नाम रह गया है। ऐसी दशा में स्वामी जी के मन में देशहित और समाज-कल्याण की तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार दूसरे साधुओं की तरह रहने सहने से काम नहीं चलेगा। इन्हें संसार की मोह-माया से सर्वथा ऊंचा उठना चाहिए। जो ज्ञान उन्होंने गुरु विरजानन्द की कृपा और वेद आदि सत्य शास्त्रों के अनुशीलन और अवगाहन से प्राप्त किया है, उसका निर्भय होकर प्रचार करना चाहिए। जो सामग्री वस्त्र पुस्तक धन आदि उनके पास था, वह भी उनके मार्ग में बाधाजनक प्रतीत होने लगा। इन विचारों का उनके मन में स्फुरण हो ही रहा था, कि एक दिन व्याख्यान देते हुए एक बार ही गद्‌गद हो गये, और "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" कह कर उठ खड़े हुए और उठते के साथ ही जो कुछ भी उनके पास था, उसे लोगों में बांटने लगे, स्वामी कैलाश पर्वत ने उनसे कहा—कि आप ऐसा क्यों करते हैं। तब उन्होंने शायर के शब्दों में कहा—

एहसान नाखुदा के उठाये मेरी बला ।
किश्ती खुदा पै छोड़ दूं लंगर को तोड़ दूं ॥

अर्थात् मैं सब कुछ सत्य और स्पष्ट कहना चाहता हूं और यह तब तक नहीं हो सकता, जब तक मैं अपनी आवश्यकताओं को इतना कम न कर दूं कि मुझे किसी पर निर्भर न होना पड़े। इसलिए मैंने ऐसा किया है–

और अपने पास केवल एक कौपीन रख कर सब कुछ जो पास था बाँट दिया। और कवि के शब्दों में, ईश्वर को सम्बोधन करके यह कहते हुए–

अब सौंप दिया इस जीवन का, सब भार तुम्हारे हाथों में ।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में ॥

गंगा किनारे विचरने के लिए चल दिये। सर्वमेध यज्ञ को ही विश्वजित् यज्ञ कहा गया है, जिसको करने वाला "अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेने ध्यस्व वर्द्धस्व०" कहता हुआ अपने आत्मा को उस सर्व आत्मा के अर्पण कर देता है, और कहता है मैं तेरी महिमा को बढ़ाने चला हूँ, मेरा जो चाहे तू बना दे। मैंने अपना आप तेरे अर्पण कर दिया है। ऐसा करने से ही संसार जीता जाता है। किसी शायर ने क्या अच्छा कहा है–

मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मर्तबा चाहे ।
कि दाना खाक में मिल कर गुले गुलजार होता है ॥

बस महर्षि भी उसी डगर पर चले, और अपने तप से, त्याग से, ब्रह्मचर्य और योगबल से गुले गुलजार बन कर संसार में सुगन्धि फैला गये, अपने आप को स्वाहा करके संसार के प्राणी मात्र के दुःख की दवा बन गये, गुरुवर टैगोर ने भी कहा है–

When the gain is completed by giving up, when love is fullfilled by self-sacrifice when passion is purified by penance of soul then only is heroism born which can save mankind from all defeat and disaster. **—TAGORE**

इसी तरह महर्षि पूरे छः साल तक सिर्फ एक लंगोट में गंगा तट पर विचरते रहे और गर्मी, सर्दी, वर्षा सब ऋतुओं की यातनाएं, नंगे बदन, नंगे पैर, नंगे सिर सहन करते रहे। ताकि संसार का भला कर सकें और इसे इष्टसिद्धि को उन्होंने प्राप्त कर लिया। और न सिर्फ खुद

वाजश्रवस ऋषि की तरह सर्वमेध यज्ञ किया, बल्कि औरों को भी ऐसा करने की प्रेरणा दी, न सिर्फ खुद वाजश्रवस ऋषि बने बल्कि अपने जीवन से दो और वाजश्रवस ऋषि बनाए, उन्होंने भी कठोपनिषत् को अपने जीवन में अपने गुरु की भांति धारण किया।

महात्मा-मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द)

१. फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी संवत् १९१३ को तलवन जिला जालन्धर में श्री नानकचन्द जी के घर पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मुन्शीराम रखा गया। श्री नानकचन्द जी पुलिस इन्सपैक्टर थे। संवत् १९२३ में मुन्शीराम जी का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। संवत् १९३३ में काशी के जय नारायण कालेज से मैट्रिक पास किया। संवत् १९३४ में मुन्शीराम जी का विवाह जालन्धर के राय सालग्राम जी की कन्या शिवदेवी से हो गया। संवत् १९३५ में इलाहाबाद के म्योर सैण्ट्रल कालेज से एफ० ए० पास न कर सके क्योंकि आखरी परचा देने के दिन इनको ज्वर हो गया, और वह परचा न दे सके। पिता जी के साथ मथुरा, काशी आदि स्थानों में हिन्दू मन्दिरों के पाखण्डों को देख कर और अंग्रेजी तालीम के कारण उनके विचार नास्तिकता की तरफ झुक गये थे। इलाहाबाद से मुन्शीराम जी बरेली आ गये जहां उनके पिता जी कोतवाल लगे हुए थे। १४ सावन संवत् १९३६ को महर्षि दयानन्द जी बरेली आए और उनके व्याख्यान आरम्भ हो गये थे, और मुन्शीराम जी के पिता जी बहैसियत कोतवाल उनका प्रबन्ध करते थे। महर्षि के पहले व्याख्यान से ही प्रभावित हो कर अपने नास्तिक पुत्र के सुधार के लिए अपने पुत्र को कहा-

"बेटा मुन्शीराम ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगीराज हैं, उनके उपदेश सुन कर तुम्हारे संशय दूर हो जाएंगे। कल मेरे साथ चलना। पहले तो मुन्शीराम ने समझा कि केवल संस्कृत पढ़ा हुआ साधु बुद्धि की कोई बात कैसे कर सकता है फिर भी पिता जी के आग्रह से उपदेश सुनने चले गये। और महर्षि के पहले ही दर्शन और उपदेश का प्रभाव जो मुन्शीराम जी पर पड़ा वह उनके ही शब्दों में सुनिये। वे स्वयं कहते हैं-

"उस समय उस दिव्य मूर्ति को देख कर कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई,

परन्तु जब पादरी स्काट साहब तथा दो तीन और अंग्रेजों को अत्यन्त श्रद्धा से बैठे देखा तो मेरी श्रद्धा और भी । बढ़ी अभी १० मिनट ही उपदेश सुना था कि मन में विचार आया कि यह बड़ा विचित्र साधु है । केवल संस्कृत का विद्वान् होने पर ऐसी युक्ति युक्त बातें करता है कि विद्वान् दंग रह जाते हैं । उपदेश का विषय परमात्मा के निज नाम "ओं" पर था । यह पहले दिन का आत्मिक प्रसाद जो मुझ को मिला । मैं आज तक भुला नहीं सका महर्षि के उपदेशों के बाद मैंने अपने जीवन में इस किस्म के उपदेश या लैक्चर किसी भी विद्वान् के मुंह से नहीं सुने"।

जब पिता जी ने देखा कि मुन्शीराम अब कालेज की पढ़ाई नहीं करेगा तो उन्होंने कमिश्नर साहब को कह कर कायम मुकाम तहसीलदार बनवा दिया, परन्तु नौकरी में अपना अपमान समझकर नौकरी छोड़ दी । और संवत् १९३६ में कानून पढ़ने के लिए लाहौर आ गये। वकालत पढ़ते समय उनको सत्यार्थप्रकाश पढ़ने का अवसर मिला और सत्यार्थप्रकाश पढ़ कर संवत् १९४१ माघ के महीने में आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर के मैम्बर बन गये और शराब मांस आदि सब दुर्व्यसन छोड़ दिये । और जालन्धर में आकर वकालत शुरू कर दी, और सरदार अर्जुनसिंह जी, सरदार भगतसिंह के दादा उनके मुन्शी बने, और उनके सत्संग से श्री अर्जुनसिंह जी का परिवार वैदिक धर्मी बन गया, और उनके सुपुत्र अजीतसिंह जी ने लाला लाजपतराय जी के साथ स्वतन्त्रता का काम किया, और उनके सुपुत्र हरकिशनसिंह जी के सुपुत्र शहीद भगतसिंह जी ने देशसेवा में फांसी की रस्सी चूम कर वैदिक धर्म की जय बुलाई। संवत् १९४६ में सद्धर्म प्रचारक अखबार निकाला । मुन्शीराम जी स्त्री-शिक्षा के लिए पाठशाला खोलने का विचार कर ही रहे थे कि एक दिन उनकी अपनी पुत्री वेदकुमारी जो मिशन स्कूल में पढ़ती थी, वह गीत जो उनको मिशन स्कूल में सिखाया जाता था, उसके मुँह से सुनकर तुरन्त पाठशाला खोलने का निश्चय कर लिया, और संवत् १९४७ में वह पाठशाला खुल गई जो आज कन्या महाविद्यालय जालन्धर के नाम से सारे भारत में प्रसिद्ध हो चुकी है। वह गीत जो उन दिनों मिशन स्कूलों में लड़के लड़कियों को याद कराये जाते थे और जो वेदकुमारी ने अपने पिता मुन्शीराम जी को सुनाये वे यह थे–"ईसा ईसा बोल तेरा क्या लगेगा

मोल, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया, ईसा मेरा राम रमैया।" ३१ अगस्त १८९५ को मुन्शीराम जी की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। उस समय उनके ४ बच्चे थे, वेदकुमारी आयु १० वर्ष, अमृत कला आयु ६ वर्ष, हरिचन्द्र ४ वर्ष, इन्द्र दो वर्ष, उस समय मुन्शीराम जी की आयु ३२ वर्ष की थी, पुन: विवाह के लिए उन पर दबाव डाला जाने लगा। लेकिन उन्होंने इस दबाव के आगे झुकने से इन्कार कर दिया और फिर विवाह न किया। सन् १८९२ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान चुने गये। और लगातार ४ वर्ष वही प्रधान चुने जाते रहे। २६ नवम्बर १८९८ में आर्य प्रतिनिधि सभा से गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकार कराया और घोषणा कर दी कि जब तक गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपया इकट्ठा न कर लेंगे, घर में पैर नहीं रखेंगे, अत: लखनऊ से पिशावर तक और दक्षिण में मद्रास तक दौरा करके ८ अप्रैल १९०० तक ४०००० हजार रुपया इकट्ठा कर लिया। और तब आर्य प्रतिनिधि सभा ने उनका अभिनन्दन किया और उनका नाम महात्मा मुन्शीराम प्रसिद्ध हुआ। और २१, २२ २३, २४ मार्च १९०२ को मुन्शी अमनसिंह के दान किये गांव काँगड़ी में गुरुकुल स्थापित हो गया। वकालत तो उन्होंने जब उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हुआ था तब ही छोड़ दी थी, और आर्यसमाज का ही दिन रात काम करने लगे, और अब गुरुकुल खुल जाने पर तो आप की जिम्मेदारी और भी बढ़ गई। गुरुकुल स्थापना के साथ ही महात्मा मुन्शीराम जी ने कठोपनिषद् के ऋषि वाजश्रवस और अपने गुरु महर्षि दयानन्द की तरह सर्वमेध यज्ञ करना आरम्भ कर दिया, सब से पहले तो अपने दोनों पुत्रों को गुरुकुल में प्रवेश करवाया। संवत् १९५९ में अपना पुस्तकालय गुरुकुल को भेंट कर दिया और संवत् १९६४ में सत्य धर्म-प्रचारक प्रेस भी गुरुकुल को दे दिया। और लगभग ३० हजार रुपये की लागत की एक कोठी जालन्धर में बच रही थी, जो उन्होंने संवत् १९६८ को गुरुकुल के दसवें सालाना जलसे पर भेंट करके "सर्वं वै पूर्णँ स्वाहा" करके सर्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति दे दी। यत: आर्यसमाजियों को सरकार क्रान्तिकारी समझती थी इसलिए गुरुकुल पर अंग्रेजी सरकार की विशेष कड़ी निगाह रहती थी।

महात्मा मुन्शीराम जी १७ वर्ष गुरुकुल के आचार्य और मुख्य

अधिष्ठाता रहे, और १२ अप्रैल १९१७ को मायापुर वाटिका कनखल में संन्यास-आश्रम में प्रवेश करके स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विख्यात हुए। इस भांति पुत्रैषणा, लोकैषणा, गुरुकुलैषणा, त्याग कर निर्द्वन्द्व होकर लोकसेवा में जुट गये। सन् १९०० से १९१० तक के बारह वर्ष आर्यसमाज के लिए बड़ी परीक्षा के वर्ष थे, अंग्रेज सरकार तो आर्यसमाज को बागी जमायत समझती ही थी, उनकी देखादेखी और अपने स्वामी अंग्रेज को खुश करने के लिए कई देसी राजाओं ने भी आर्यसमाजियों पर जुल्म करने शुरू कर दिये थे, आर्यसमाजियों को नौकरी से निकाला जाने लगा, उनको नोटिस दिये जाने लगे, हर आर्यसमाजी पर खुफिया पुलिस की निगरानी होती थी। इन दिनों जोधपुर रियासत में पुलिस ने आर्यसमाज मन्दिर से ओ३म् का झण्डा उतार दिया। रियासत पटियाला में सन् १९२९ में एक साथ ८४ आर्य सभासदों को गिरफ्तार करके इन पर राजविद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया, उनको गिरफ्तार करके उनके परिवारों को अनेक प्रकार से तंग किया जाना शुरू कर दिया। उस वक्त महात्मा मुन्शीराम जी ने बड़ा काम किया और महात्मा मुन्शीराम जी के प्रयत्न से पटियाला रियासत ने आर्यसमाजियों पर से मुकदमा तो वापस ले लिया, पर उनको रियासत से बाहर निकाल दिया, और उन सब परिवारों को महात्मा जी ने गुरुकुल में आश्रय दिया, और फिर महात्मा जी की कोशिशों से पटियाला राज ने यह हुक्म वापस ले लिया, और वे सब आर्य भाई रियासत में वापस चले गये, महात्मा मुन्शीराम जी के प्रयत्न और पुरुषार्थ से भारत की समस्त आर्य प्रतिनिधि सभाओं का एक संगठन रूप सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के नाम से २५।९।१९०८ को बनाई गई और महात्मा मुन्शीराम जी के इसके पहले प्रधान चुने गये। १८१८ में गढ़वाल के भयंकर दुर्भिक्ष में दुर्भिक्ष पीड़ितों की बड़ी सहायता की। धौलपुर रियासत में आर्यसमाज मन्दिर का एक हिस्सा गिराकर उसमें लोगों के लिए ट्टटी खाना बना दिया गया। वहां के आर्यसमाजियों के प्रोटेस्ट की रियासत ने कुछ परवाह न की, तब स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्याग्रह करने की घोषणा कर दी। जगह जगह से आर्यसमाजियों ने जत्थे धौलपुर भेजने शुरू कर दिये, तब रियासत की सरकार झुक गई और आर्यसमाज मन्दिर को बदस्तूर पहले जैसा बना दिया।

सन् १९१९ में स्वामी श्रद्धानन्द जी राजनीति के क्षेत्र में आए और ७।९।१९१९ को सब से पहला व्याख्यान कांग्रेस की स्टेज से देहली में दिया। ३० मार्च को देहली में बेनजीर हड़ताल हुई और जलूस निकला, जलूस की अगवाई स्वामी श्रद्धानन्द जी कर रहे थे। जब जलूस चांदनी चौक घण्टाघर के करीब पहुंचा तो गोरखा सिपाही जो पहरे पर थे, उन्होंने जलूस रोक लिया। जब स्वामी श्रद्धानन्द जी आगे बढ़ने लगे तो गोरखा सिपाहियों ने उनके सीने पर बन्दूक के आगे लगी हुई किर्च रख दी, पर स्वामी जी ने जब इसकी परवाह न करते हुए आगे कदम बढ़ाया तो सिपाही ने किर्च पीछे हटा ली, और जलूस गुजर गया फिर क्या था स्वामी जी की जय जयकार हो गई, और जामा मस्जिद देहली की तारीख में शायद पहली और आखरी बार गए गैर मुस्लिम को मिम्बर पर चढ़ा कर उपदेश कराया गया, और स्वामी जी ने जामा मस्जिद के मिम्बर पर चढ़ कर "त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता" वाले वेद मन्त्र के द्वारा ईश्वर का स्वरूप वर्णन किया और ओं शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः के साथ अपना भाषण समाप्त किया। जब मार्शल ला की सख्तियों से पंजाब में कांग्रेस का इजलास होना नामुमकिन सा हो गया था, सन् १९१९ में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने साहस करके कांग्रेस का इजलास अमृतसर में कामयाब कराया। और स्वागतकारिणी के अध्यक्ष के रूप में कांग्रेस की तारीख में सब से पहले हिन्दी भाषा में अपना सदारती सम्बोधन पढ़ा।

आप अछूत उद्धार के लिए कांग्रेस कमेटी में रेजूलेशन पास कराने में बहुत प्रयत्न करते रहे, परन्तु जब इसने ध्यान न दिया तो सन् १९२२ में कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। और आप अछूत उद्धार के काम पर लग गये। अमृतसर गुरु के बाग के मोर्चे में भाग लेने के लिए सितम्बर १९२२ को अमृतसर पहुंचे, और अकाल तख्त से भाषण दिया। और गिरफ्तार हुए, और एक वर्ष चार माह की सजा हुई।

सन् १९२४-२५ में मद्रास का दौरा करके छूत-छात के खिलाफ आन्दोलन शुरू किया। और मालाबार के फसाद में मोपला मुसलमानों के हाथों हिन्दुओं का कत्लेआम होने पर वहां खूब काम किया, और जबरदस्ती मुसलमान बनाए गए हिन्दुओं को शुद्ध किया। सन् १९२५ में मथुरा में दयानन्द जन्म शताब्दी को सफल बनाने में इनका बड़ा हाथ

था । सन् १९२१ में मालाबार के मोपला काण्ड की निन्दा का प्रस्ताव अहमदाबाद में कांग्रेस की विषय निर्धारिणी समिति में आने पर मौलाना हसरत मोहानी जैसे कांग्रेसी ने भी जब इसका विरोध किया तब स्वामी श्रद्धानन्द चमक उठे । देहली में सत्याग्रही शहीदों का स्मारक बनाने को स्वामी जी देहली में चन्दा इकट्ठा कर रहे थे तो डाक्टर अन्सारी और हकीम अजमल खां जैसे लीडरों ने एक पाई भी चन्दा न दिया । और मौलाना मुहम्मद अली ने कोकनाडा कांग्रेस के अध्यक्ष पद से भाषण देते हुए अछूतों को लावारिस माल समझ कर आधा हिन्दू और मुसलमानों में बांट लेने की बात कही, तो ये सब बातें स्वामी जी के दिल पर चोट लगाती रहीं और वे कांग्रेस से अलग हो गये ।

२. सन् १९२३ में आगरा में हिन्दू शुद्धि-सभा की स्थापना हुई और स्वामी श्रद्धानन्द जी इसके प्रधान चुने गये । और शुद्धि का काम तेजी से होने लगा । मलकाने राजपूतों की शुद्धि भी इन्हीं दिनों में हुई थी, और देहली में अखिल भारतीय हिन्दू सभा की स्थापना भी हुई, और इस कार्यक्रम के विस्तार के लिए स्वामी जी ने देहली से दो अखबार अर्जुन हिन्दी, और तेज उर्दू में निकालने शुरू कर दिये : और सन् १९२६ में अंग्रेजी में लिबरेटर नाम का अखबार निकाला स्वामी जी के शुद्धि और संगठन के प्रचार से मुसलमान उनके सख्त बरखिलाफ हो गये, और उनको हर रोज कत्ल करने की धमकी देने वाले पत्र आने लगे । एक दिन एक मुसलिम देवी असगरी बेगम अपने बच्चों के साथ आर्यसमाज देहली में आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की, इसकी इच्छानुसार शुद्ध करके इसका नाम शान्तिदेवी रखा गया । और वह देहली के वनिता आश्रम में रहने लगी, पीछे से उसके पिता और पति ढूँढते हुए आए । और उसको फिर मुसलमान हो जाने को कहा, परन्तु उसने इन्कार कर दिया; परन्तु उसके पति ने स्वामी जी और ४-५ आदमियों पर मुकद्दमा दायर कर दिया । मुकदमा खूब जोरों से चला, और इस दरमियान मुसलमान अखबारों ने स्वामी जी के खिलाफ खूब जहर उगला । ८ दिसम्बर १९२६ को सब मुलजिम बरी हो गये, फिर तो स्वामी जी को कत्ल की धमकियों के पत्रों का तांता बंध गया, और ख्वाजा हसन निजामी ने खूब जोर शोर से स्वामी जी का विरोध करना शुरू कर दिया । स्वामी जी का शरीर

रोगी था और वे रोग-शय्या पर लेटे हुए थे । २३ दिसम्बर १९२६ को राजा रामसिंह को पत्र का उत्तर लिखाते हुए उन्होंने लिखवाया कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं । अत: यही २३ दिसम्बर १९२६ को गुरुवार का दिन था, शाम का वक्त था, डाक्टरों ने मुलाकात पर पाबन्दी लगा रखी थी । एक नौजवान सीढ़ियों पर चढ़ आया, सेवक ने रोक दिया, स्वामी जी ने आवाज सुनकर बुला लिया । आने पर उसने कहा कि मैं आपके साथ इस्लाम के विषय में कुछ बातचीत करना चाहता हूं । स्वामी जी ने कहा—भाई मैं बीमार हूं । तुम्हारी दुआ से राजी हो जाऊंगा तो फिर बातचीत करूँगा । इस नौजवान का नाम अब्दुल रशीद था, फिर उसने पानी माँगा, सेवक पानी लाने को गया ही था कि उसने झट पिस्तौल से तीन फायर किये, सेवक धर्मसिंह ने पकड़ना चाहा परन्तु उसके भी एक गोली लगी, कातिल भागना ही चाहता था कि स्वामी जी के सैकेट्री धर्मपाल विद्यालंकार ने इसे दबा लिया, आधे घण्टा बाद पुलिस आई और इस कातिल को गिरफ्तार कर के ले गई, प्रीवी कौंसिल तक मुकदमा चला, परन्तु फांसी की सजा बहाल रही, किसी शायर ने ठीक कहा था कि स्वामी जी को "दरद वतन की जब न कोई दवा मिली । रिवालवर की गोलियाँ खाकर सफा मिली।" स्वामी जी की इस मौत पर तबसरा करते हुए महात्मा गांधी जी ने भी कहा था—"शानदार जिन्दगी का शानदार अन्जाम ।"

आप जानते होंगे । गांधी जी को महात्मा का खिताब सब से पहले महात्मा मुन्शीराम जी ने उस वक्त दिया था, जब मिस्टर गाँधी गुरुकुल देखने आए थे । और तब से मिस्टर गांधी, महात्मा गांधी के नाम से विख्यात हुए ।

२. वाजश्रवा ऋषि ने अपने इकलौते पुत्र नचिकेता को कहा था, "मृत्यवे त्वां ददामीति" यानि तुझे मृत्यु को देता हू और इसी तरह महर्षि दयानन्द के सत्संग और उनके जीवन से प्रेरणा पाकर वाजश्रवस ऋषि की भांति लेखराम ने अपने इकलौते पुत्र को 'मृत्यवे त्वां ददामीति' कहा है, जिसका संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है ।

मेहता तारासिंह के घर ८ चैत संवत् १९१५, शुक्रवार सैदपुर, तहसील चकवाल, जिला जेहलम में पण्डित लेखराम का जन्म हुआ ।

६ वर्ष की आयु में पाठशाला में प्रविष्ट हुए और मिडल तक तालीम पाई। १७ वर्ष की आयु में उनके चाचा गण्डाराम जी ने पिशावर में पुलिस में भर्ती करवा दिया, और तरक्की करके वे सारजेंट बन गये। २१ वर्ष की आयु में इनकी माता जी ने इनकी शादी का आयोजन किया। पर वे नहीं माने, धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने और ईश्वर उपासना करने में वे पुलिस की नौकरी में भी कभी आलस्य नहीं करते थे। उस समय उनके नवीन वेदान्त के विचार थे। जब महर्षि की बाबत उनको मालूम हुआ और सत्यार्थप्रकाश आदि पढ़ा तो तत्काल आर्यसमाजी बन गये। और संवत् १९३७ में पिशावर में माई रंझी की धर्मशाला में आर्यसमाज स्थापित कर दिया, परन्तु इनके मन में महर्षि के दर्शन की बड़ी तीव्र इच्छा उठी। और ५ मई १८८० को एक महीने की छुट्टी लेकर अजमेर चले गये। और महर्षि के दर्शनों से कृतकृत्य हो गये। महर्षि जी से कुछ संशय मिटाने के लिए निम्नलिखित प्रश्न किये। जिसके महर्षि जी ने युक्ति युक्त उत्तर देकर पण्डित लेखराम जी को सन्तुष्ट कर दिया।

प्रश्न—जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइये?

उत्तर—यजुर्वेद का ४०वां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतला रहा है।

प्रश्न—अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं?

उत्तर—अवश्य शुद्ध करना चाहिए।

प्रश्न—बिजली क्या वस्तु है, और कैसे उत्पन्न हुई है?

उत्तर—बिजली सब स्थानों में है और रगड़ से पैदा होती है, बादलों की बिजली भी बादलों और वायु की रगड़ से पैदा होती है।

प्रश्न—आकाश भी व्यापक और ब्रह्म भी व्यापक एक स्थान में इकट्ठे कैसे रह सकते हैं?

उत्तर—जो वस्तु जिससे सूक्ष्म होती है, वही उसमें व्यापक होती है। इस तरह ब्रह्म आकाश से भी सूक्ष्म है, इसलिए ब्रह्म आकाश में भी व्यापक है। महर्षि जी ने पण्डित जी को कहा कि २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना। महर्षि के दर्शन और सत्योपदेश पाकर पण्डित लेखराम निहाल हो गये और वैदिक धर्म में उनकी धारणा दृढ़तर हो गई। अजमेर से लौटते ही इन्हें दिन रात वैदिक धर्म-प्रचार की लगन

लग गई, और उन्होंने आर्यसमाज पिशावर की तरफ से एक माहवारी रिसाला धर्म उपदेश उर्दू में निकालना शुरू कर दिया, और उन्होंने सब मत वालों से शास्त्रार्थ करने भी आरम्भ कर दिये, खास तौर पर मुसलमानों के साथ और वह भी पिशावर जैसे सरहदी शहर में, जहां मुसलमानों की बहुत बड़ी अक्सरीयत थी। इस बात से उनकी निर्भयता का प्रमाण मिलता है। एक मुसलमान अफसर से बहस करने पर उस अफसर ने रिपोर्ट कर दी ओर आपका दर्जा छोटा कर दिया गया, संवत् १८८२ पण्डित जी को दो पत्र महर्षि दयानन्द जी के मिले। एक पर गोरक्षा मैमोरियल पर हस्ताक्षर करवाने थे, और दूसरे पर पंजाब में हिन्दी-प्रचार के लिए शिक्षा-कमीशन को मैमोरियल भेजने की प्रेरणा थी, और दोनों कार्य पण्डित जी ने उत्साह पूर्वक किये। जब पोलीस में उनके धार्मिक विचार असह्य हो गये तो उन्होंने २४ दिसम्बर १८८४ को अपनी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। नौकरी से त्यागपत्र देकर पण्डित जी रावलपिण्डी आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर आए। और फिर गुरदासपुर आए। और मिर्जाकादियाँ को चैलेंज कर दिया और उसके एतराजों का जबाव देने के लिए लैक्चरों का सिलसिला शुरू कर दिया। इसके बाद लाहौर चले आए और स्वाध्याय करते रहे। इन दिनों उन्होंने मिर्जा कादियाँ का एक इश्तिहार पढ़ा, जिसमें उसने अपने आपको खुदा का पैगम्बर सिद्ध करने की प्रतिज्ञा की थी, और एक वर्ष तक किसी भी आदमी को अगर वह अपना चमत्कार न दिखा सके तो २४०० रुपया इनाम देना किया था। पण्डित जी ने १३।४।१८८५ अप्रैल को मिर्जा को एक पत्र लिख दिया, फिर लेखराम जी खुद कादियां गये। और मिर्जा की जाय रिहाइश इस्लामी कोठे पर जाकर उसका नाक में दम कर दिया, और उसकी किताब बुरहाने एहमदिया की खूब कलई खोली और कादियां में आर्यसमाज स्थापित कर दिया। सन् १८८६ तक लेखराम की विद्या की धूम मच गई और उन्होंने मिर्जा कादियानी की तहरीरों का जवाब देने के लिए कलम उठाई और कई किताबें लिख दीं। सन् १८८७ को पं० लेखराम जी आर्यगजट जो इन दिनों फिरोजपुर से निकलता था के सम्पादक बन गये। और यह पत्र उनके हाथों में आकर खूब चमक उठा। १।७।१८८८ में पण्डित जी को महर्षि दयानन्द जी की जीवन सामग्री इकट्ठी करने का काम

सौंपा गया । और आर्य गजट का सम्पादन छोड़ कर अब लेखराम जी आर्य मुसाफिर बन गये। क्योंकि महर्षि के जीवन वृत्तान्त को इकट्ठे करने के लिए इन्हें सारे देश में भ्रमण करना था। राजपूताना में एक बार व्याख्यान देते हुए एक मुसलमान सूबेदार ने पण्डित जी की इस्लाम पर आलोचना सुन कर तलवार मियान से निकाल ली । पण्डित जी ने गर्ज कर कहा तू मुझे तलवार की धमकी देता है । अगर पठान का बच्चा है तो तलवार निकाल कर मजा देख, यह सूबेदार शर्मिन्दा होकर चला गया । जब पण्डित जी की आयु ३५ वर्ष की हुई तो उनका विवाह कुमारी लक्ष्मीदेवी के साथ हो गया। श्री पण्डित जी महर्षि के जीवन-चरित्र की सामग्री इकट्ठी करते रहे । और साथ-साथ अपनी पुस्तकें भी लिखते रहे । और प्रचार भी करते रहे । १८।५।८५ में उनके घर पुत्र ने जन्म लिया। जुलाई १८९६ में शिमला आर्यसमाज में व्याख्यान देते हुए एक मुसलमान नौजवान भभक उठा। और कहने लगा-काटने वाली मुहम्मदी शमशीर को मत भूलो, तो पण्डित जी ने उस तरफ मुंह करके गरज कर कहा-मुझे बुजदिल मुहम्मदी तलवार की धमकी देता है, मैं नहीं डरता । जानते हो मैं सिर हथेली पर लिये फिरता हूं । उनका बच्चा बीमार पड़ा था, और खबर आई कि एक सिख मुसलमान होना चाहता है, बस फिर क्या था अपने बीमार बच्चे को छोड़ कर होने वाले मुसलमान को बचाने के लिए गाड़ी पर सवार होकर चले गये। गाड़ी उस स्टेशन पर न ठहरी तो आप चलती गाड़ी से कूद पड़े, कपड़े फट गये । शरीर जख्मी हो गया परन्तु वक्त पर उस जगह पहुंच गये और उस व्यक्ति से मिले और पूछा कि आप क्यों मुसलमान होते हैं ? इस्लाम में क्या विशेषता है ? तो उसने पूछा कि आपके कपड़े कैसे फट गये, और शरीर घायल क्यों है ? तो उत्तर मिला आपको बचाने के लिए तो उसी व्यक्ति ने पण्डित जी के चरण छूए और कहा कि जिस धर्म को आप मानते हैं, मैं उस धर्म को कैसे त्याग सकता हूं । जाते वक्त उनका इकलौता बच्चा सख्त बीमार था और जिस तरह वाजश्रवस ऋषि ने नचिकेता से कहा था कि-'मृत्यवे त्वां ददामीति' तुझे मृत्यु के यानि भगवान् के हवाले करता हूं । वाजश्रवस ऋषि ने अपनी मोक्ष कामना से सर्वमेध यज्ञ किया परन्तु महर्षि दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, और पण्डित लेखराम जी ने

परोपकार के लिए ही यह यज्ञ किया था । पण्डित लेखराम जी भी अपने इकलौते बेटे को मृत्यु-शय्या पर पड़े को "मृत्यवे त्वां ददामीति" कहकर धर्म-प्रचार में डटे रहे, और उनकी गैर हाजरी में उनका इकलौता बच्चा मृत्यु का ग्रास हो गया इस तरह पण्डित जी ने वाजश्रवस ऋषि के इन शब्दों का सार्थक कर दिया ।

४. अन्त में फरवरी १८९७ को एक मजबूत जिस्म का मुसलमान नौजवान पण्डित जी के पास आकर कहने लगा कि मैं पहले हिन्दू था, दो वर्ष से मुसलमान हो गया हूं । अब फिर हिन्दू धर्म में वापस आना चाहता हूं, आप मुझे शुद्ध कर लें । अतः पण्डित जी ने उसे आश्वासन दिलाया कि आप को शुद्ध कर लिया जावेगा । मिर्जा कादियां की साजिश से ही पण्डित जी को कत्ल करने का षड्यन्त्र रचा गया था । यह नौजवान इसीलिए मुकर्रर किया गया था । ईद के दिन ४ मार्च को पण्डित जी के कत्ल की तारीख मुकर्रर हुई थी, उस दिन पण्डित लेखराम जी प्रचारार्थ लाहौर से बाहर थे, वह ६ मार्च को घर वापस आए तो वही नौजवान कम्बल ओढ़े पं० जी के निवास-स्थान पर आ पहुंचा । शाम के ६ बजे, जब कि पण्डित जी चारपाई पर बैठकर महर्षि के जीवन-चरित्र सम्बन्धी सामग्री को इकट्ठा कर रहे थे, वह नौजवान उनकी बाईं ओर कुर्सी पर बैठ गया । उनकी माता जी रसोई में थीं, धर्मपत्नी दूसरे कमरे में थीं। पण्डित जी ने इस नौजवान को कहा कि अब देर हो गई है आप आराम करें फिर आप की शुद्धि की जायेगी परन्तु वह बैठा रहा । माता जी ने रसोई से आवाज दी, पुत्र लेखराम तेल नहीं है । पण्डित जी उस वक्त महर्षि की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे । पत्र वहीं रख दिये, और चारपाई से उस तरफ को उठे जिस तरफ वह नौजवान बैठा था, और चारपाई से उठ कर आंखें बन्द कर दोनों बाजू ऊंचे उठाकर अंगड़ाई ली । और उस मुसलिम नौजवान ने जो मौके की ताड़ में था, अपने कम्बल में से छुपा हुआ छुरा निकाला और पण्डित जी के पेट में घोंप दिया, पण्डित जी की अंतड़ियां बाहर निकल पड़ीं फिर भी उन्होंने कातिल को पकड़ लिया, लड़ते लड़ते सीढ़ी तक पहुंच गये, और उसके हाथ से छुरा छीन लिया । इतने में लक्ष्मीदेवी बाहर निकल आई और कातिल को दूसरा वार करने से रोका । फिर उनकी माता जी भी

बाहर आ गईं, कातिल ने बेलने से उनको भी दो चोटें लगाईं और हाथ छुड़ा कर भाग गया। यदि पण्डित जी उस समय शोर मचा देते तो लोग इकट्ठे हो जाते और शायद कातल पकड़ लिया जाता। परन्तु पण्डित जी ने शोर तक न मचाया, फिर पण्डित जी को फौरन हस्पताल पहुंचा दिया गया। और यह बात जंगल की आग की भांति लाहौर शहर में फैल गई। पण्डित जी हस्पताल में भी 'गायत्री' मन्त्र और 'विश्वानि देव' मन्त्र का जाप करते रहे रात के डेढ़ बजे, तक सचेत पड़े रहे। और अन्त में आर्यसमाज से लेख का काम बन्द न होना चाहिए। यह कहकर पण्डित जी सदा के लिए शान्ति की नींद सो गये।

धर्म-प्रचार के खातिर जो अपने बीमार पुत्र को भी "मृत्यवे त्वां ददामीति" कह कर प्रचार करने चल पड़े, और परोपकार से मुख न मोड़ा, ऐसे वाजश्रवस ऋषि को प्रणाम। पण्डित जी ने महर्षि दयानन्द जी महाराज के जीवन-चरित्र की जो सामग्री इकट्ठी की, जिसको बाद में स्वामी श्रद्धानन्द जी की प्रेरणा से मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी ने पुस्तकाकार में किया, और आर्य प्रतिनिधि सभा ने छपवाया। इस महाकार्य के अतिरिक्त पण्डित जी ने ३२ ग्रन्थ और रचे, जो कुलियात आर्य मुसाफिर के नाम से इकट्ठे छापे गए हैं, और वह हर जिज्ञासु को पढ़ने चाहिए। पण्डित जी की अपार विद्या और विशाल स्वाध्याय का परिचय इनकी पुस्तकों से भली भांति मिल रहा है।

२१. शुनःशेप ऋषि

ऐतरेय ब्राह्मण में एक कथा आती है इसके अनुसार अजीगर्त का पुत्र शुनःशेप था। हरिश्चन्द्र ने अपने पुत्र रोहिताश्व की जगह शुनःशेप को यज्ञ के यूप में बांध कर वरुण की प्रसन्नता के लिए बलिदान करना चाहा। शुनःशेप को अवश्य होने वाली मृत्यु सामने नाचती हुई दिखाई पड़ी। आत्म-रक्षा का कोई उपाय उसकी समझ में न आया। तब वह अनन्य भाव से सत्यव्रतों का स्मरण करके वरुण की शरण में गया और प्रार्थना करने लगा। इसकी स्तुति से वरुण प्रसन्न हुए, और शुनःशेप के सब बन्धन टूट गए, और वह मृत्यु के पंजे से छूट गया। वास्तव में यह एक आलंकारिक वर्णन है। और ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त का ऋषि मन्त्रद्रष्टा शुनःशेप है। शुनःशेप का अर्थ है प्राणधारी और हर

एक प्राणधारी जन्म के साथ ही सृष्टि नियम में बंध जाता है । मनुष्य तीन गुणों यानि, सत्, रज, तम के बन्धन में बंधा हुआ जन्म-मरण चक्र में पड़ा रहता है । इस जन्म-मरण के चक्र से छूटने और मोक्ष प्राप्ति के लिए वरुण भगवान् का ही आश्रय लेना चाहिए । ऐसा ऋग्वेद १।२४।१५ में उपदेश है कि जो प्राणी पाप रहित हो कर भगवान् की शरण में आता है उसके सब बन्धन टूट जाते हैं और मोक्ष का अधिकारी बन जाता है । शुनःशेप की तो कथा आलंकारिक है परन्तु स्वामी दयानन्द के जीवन में यह असलीयत का रूप धारण कर गई ।

महर्षि दयानन्द को बलिदान करने का यत्न

मेला चांदापुर पर महर्षि दयानन्द ने एक आपबीती कथा सुनाई थी कि 'जिन दिनों मैं अकेला घूमता था, उन दिनों में मेरा एक ऐसे स्थान पर जाना हुआ जहां सभी शाक्त लोग रहते थे । उन्होंने मेरी बड़ी सेवा की, जब कई दिन के निवास के अनन्तर मैं वहां से चलने लगा तो उन लोगों ने अति आग्रह से मुझे ठहरा लिया । मैं समझता रहा कि यह मुझे भक्ति भाव से ठहराते हैं । ऐसे ही बहुत दिन बीत जाने पर उनका पर्व दिन आ गया । उस दिन सारे शाक्त देवी के मन्दिर में इकट्ठे होकर गीत गाने लगे । उस दिन उन्होंने मुझे भी कहा कि आज उनका महोत्सव दिन है । आप वहां अवश्य चलिए । मैंने बहुतेरा समझाया कि मेरा देवीदर्शन में निश्चय नहीं है, परन्तु वे एक न सुनते थे । पांव पकड़ कर कहने लगे कि आज पर्व के दिन यदि आप मन्दिर में न पधारे तो हमारा सारा उत्साह भंग हो जावेगा । आप मूर्ति को नमस्कार आदि कुछ न करना परन्तु हमारे लिए चले तो चलें । वह मन्दिर नगर के बाहिर एक उजाड़ स्थान पर था । उनके विवश करने पर मुझे उस मन्दिर में जाना पड़ा, उस समय वहाँ आँगन में होम हो रहा था और लोग उत्सव मना रहे थे । मुझे वह दुर्गा की मूर्ति दिखाने के बहाने अन्दर ले गये, मुझे सहज स्वभाव से दुर्गा की मूर्ति के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। मूर्ति के पास ही एक बलवान् आदमी तलवार लिये खड़ा था । वहां वे लोग मुझे कहने लगे महात्मा जी माता के आगे झुककर नमस्कार अवश्य कीजिए । मैंने उनको स्पष्ट कहा कि मुझसे ऐसी आशा रखनी दुराशा मात्र है । मेरे वचनों से पुजारी चिढ़ गया, और मेरे पास आ कर मेरी

गर्दन पकड़ कर झुकाने लगा। इसके वर्ताव से मैं चकित हो गया परन्तु ज्यों ही मैंने दृष्टि घुमाई तो क्या देखता हूं कि वह खड्गधारी मेरे पास आ गया है और मेरी गर्दन पर तलवार चलाना चाहता है। इस दृश्य को देखकर मैं सावधान हो गया, और मैंने झपटकर उसके हाथ से तलवार छीन ली। पुजारी तो मेरे बाएं हाथ के एक ही धक्के से दीवार से जा टकराया। मैं तलवार लिए मन्दिर के आंगन में आ गया। इस समय आंगन के सभी लोग कुल्हाड़े, छुरियां, लेकर मुझ पर टूट पड़े। मैंने दरवाजे की ओर देखा तो उसमें ताला लगा हुआ था। अपने आपको बलिदान से बचाने के लिए मैं उछल कर दीवार पर चढ़ गया। और परले पार कूद कर भाग निकला। दिन भर तो मैं वहीं छिप कर बैठा रहा, परन्तु जब रात हो गई तो रातों रात दूसरे ग्राम में चला गया। उस दिन से मैंने शाक्त लोगों का कभी विश्वास न किया।

२२. महर्षि मार्कण्डेय

१. सतयुग में महर्षि मार्कण्डेय के यहां एक बालक पैदा हुआ। जब वह बारह वर्ष का हुआ तो उसके मन में मृत्यु को जीतने का विचार पैदा हुआ। अतः वह योग द्वारा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से घर बार त्याग कर वनों और पर्वतों की ओर निकल पड़ा और योगियों के सत्सङ्ग से योग क्रियाओं को करता हुआ ब्रह्मचर्य पूर्वक अपने जीवन को व्यतीत करके यथासमय गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर लिया। उन की स्त्री का नाम धूमावती था और उनके यहाँ वेदश्रवा नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। जो अपने समय के महान् विद्वान् थे।

और

महर्षि दयानन्द जी भी छोटी आयु में मृत्यु को विजय करने के लिए घर से निकल पड़े, और योगियों की संगति से योग क्रियाओं को करते हुए योग को सिद्ध कर लिया। और ब्रह्मचर्य पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने लगे। परन्तु जहाँ महर्षि मारकण्डेय गृहस्थी बन गए वहां महर्षि आजन्म ब्रह्मचारी रहे। और सचमुच मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली। अगर उनको तेरह चौदह बार जहर न दिया जाता तो वह निश्चय ही बहुत लम्बी आयु भोगते परन्तु मृत्यु पर विजय करने की बात तो

उनके मृत्यु समय के दृश्य से ही पूर्णतः प्रकट होती है । जबकि उन्होंने मृत्यु का हंसते-हंसते स्वागत करते हुए–"ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की ।" कह कर प्राण छोड़ दिये थे । मृत्यु को जीतने का मतलब मृत्यु के भय को जीतना ही होता है, और वह सारी आयु कभी किसी बड़े सङ्कट के आने पर भी भयभीत न हुए थे ।

२३. महर्षि वेदव्यास जी

महर्षि वेदव्यास जी का असली नाम कृष्ण द्वैपायन था, परन्तु वेदवेत्ता और वेद-प्रचारक होने से इनका नाम वेदव्यास पड़ गया था। उन्होंने महाभारत आदि कई ग्रन्थ लिखे हैं । उन्होंने अपने ग्रन्थ विष्णु धर्मसूत्र ४४।२५५।३ में लिखा है–

श्रुयताम् धर्मसर्वस्वम् श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥

अर्थात् धर्म का तत्त्व सुनो, और सुनकर धारण करो, कि जो अपने प्रतिकूल हो, वैसा दूसरों से बर्ताव न करो–Do you with others as you wish to be done by others.

हर चे वा खुद मापसन्दी बा दीगरां मपसन्द ॥

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी ने अपने मन्तव्य में लिखा है कि मनुष्य उसी को कहना कि जो मननशील होकर स्वात्मवत् अन्य मनुष्यों के दुःख-सुख हानि-लाभ को समझे ।

महर्षि ने मुलतान से दानापुर हिन्दु सत्सभा के मन्त्री को आर्यसमाज के नियम और उपनियमों की कापी भेजते हुए १ अप्रैल १८७८ को लिखा था ।

जिसका कुछ अंश निम्नलिखित है ।

"इन नियमों को ठीक-ठीक समझ कर वेद की आज्ञा के अनुसार सब के हित में प्रवृत्त होना चाहिए । विशेष करके अपने आर्यावर्त के देश को सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति सब के परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों के मिटाने में सद्व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ, अपने शरीर के सुख दुःख के समान जानकर सर्वदा यत्न और

उपाय करना चाहिए । सब के साथ हित करने का ही नाम परम धर्म है इस प्रकार वेद में बराबर आज्ञा पाई जाती है । अथवा मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिए वैदिक धर्म का सार, दोनों महापुरुषों ने संसार के सामने रख दिया है ।

२४. महर्षि दधीची

आप अथर्वऋषि और प्रजापति कर्दम की सुपुत्री शान्ति के सुपुत्र थे । आप की गिनती परम तपस्वियों में और निष्ठावान् महापुरुषों में की जाती है, आपने ईश्वर उपासना के सिलसिले में अपने पिता से असन्तोष प्रकट किया। और घर बार छोड़कर जंगल में कुटिया बना कर घोर तपस्या की । देवासुर संग्राम में जब देवताओं को हार मिलने लगी, तब देव गुरु बृहस्पति ने उनसे कहा—कि ऐसा शस्त्र बनाने की आवश्यकता है जिसमें दधीची ऋषि की रीढ़ की हड्डी फरे के तौर पर काम में लाई जाये । ऐसा शस्त्र ही देवताओं को विजय दिला सकता है । देवता दधीची ऋषि के पास गये, और अपने विजय की कामना से उनसे रीढ़ की हड्डी मांगने लगे ।

देवताओं की विजय का अर्थ था, सत्य की विजय । इसलिए दधीची ने अपनी रीढ़ की हड्डी देना स्वीकार कर लिया । हड्डी कट जाने से इनके शरीर का अन्त हो गया, परन्तु परोपकारियों में उनका नाम ऊँचे दर्जे पर लिखा गया ।

और

महर्षि दयानन्द टंकारा निवासी कर्षण जी तिवारी और यशोदा बाई के पुत्र थे, आपने ईश्वर उपासना के विषय में अपने पिता से इखतिलाफ प्रकट किया, और घर बार छोड़ कर जंगलों वा पहाड़ों में घूमते तथा तपस्या करते रहे जब आप अजमेर में विराजमान थे तो राजपूताने के कुछ भाई आपकी सेवा में आए । और राजपूतों में आकर प्रचार करने का निमन्त्रण दिया । महाराज ने स्वीकार कर लिया परन्तु जब उनके भक्तों को पता लगा तो उन सब ने आकर नम्र निवेदन किया, महाराज वह तो असुर भूमि है, वहां आप हरगिज न जायें, वे असुर लोग आप का अनिष्ट करेंगे । इस पर महाराज ने उत्तर दिया । "फिर तो मैं जरूर जाऊंगा । जहां ऐसा अन्धकार है, अगर मेरा पोर पोर जला कर भी असुर

लोग रोशनी प्राप्त कर सकें तो ठीक है । और आप राजपूताना चले गये, हुआ वही कि उस असुर भूमि में उनके शरीर के अन्त करने की लीला रची गई । महर्षि के भक्तों ने कहा—महाराज आपका स्मारक बनना चाहिए। इस पर उन्होंने कहा कि मेरी हड्डियां भी, खेतों में फैंक देना, ताकि खाद का काम दे सकें, एक शायर ने इस पर यूं लिखा है—

जलाना मुझको मगर न मेरी समाधि हरगिज बनाना ।
ये बट्टा आर्यो हरगिज न मेरे नाम पर लगाना ॥
वह ताके बेफायदा न जाये, खाद के बतौर काम आए ।
जो खाक हो मेरी हड्डियों की, वह जाके खेतों में डाल आना ॥

सत्य के प्रचार और सत्य की जय के लिए दधीची ऋषि की तरह हड्डियां तक दे देने वाले महर्षि की जय ।

२५. महर्षि चाणक्य

१. आज से तकरीबन २३ सौ साल पहले इस देश में महापद्म नन्द, राज्य करता था । उस समय देश की यह हालत थी कि भारत स्वतन्त्र था । यहां का व्यापार बढ़ा चढ़ा था । यहां के बने हुए माल से देश विदेश के बाजार पटे पड़े थे । यहां के कारीगरों के हाथ में कुछ ऐसी सफाई थी, कुछ ऐसा जादू था, कि जिस चीज को वे बनाते थे वही लोगों के मन भाती थी। राजा भी यहां के व्यापार और कारीगरी को प्रोत्साहन करते थे । और इस तरह देशवासियों और राजा को खूब लाभ होता था । राजकोष भरा पड़ा था । राजा के पास महापद्म रुपया होने के कारण ही इसका नाम महापद्मनन्द पड़ गया था । महापद्म रुपया भला कितना होता है, जरा हिसाब लगाएं, कि सारी दुनिया के आदमियों को पचास लाख रुपया प्रति मनुष्य को दिया जा सकता है और अगर सिरफ हिन्दुस्तान में ही तकसीम करना हो तो प्रति मनुष्य को पांच करोड़ रु० आवे । अहो ! कितना धन धान्य से पूर्ण यह देश था । इस समय जितनी दौलत अमरीका में है इससे कई गुना अधिक धन उस समय भारत में था । उस समय मगध राजा की राजधानी कुसुमपुर थी। जो बाद में पाटली पुत्र नाम से प्रसिद्ध हुआ । और अब पटना (बिहार) नाम से विख्यात है । महापद्मनन्दों के खानदान में राजा लोग अपने आपको प्रजा का सेवक ही समझते थे । पर इस खानदान का अन्तिम राजा धनानन्द

बड़ा विलासी हो गया, राजकाज में इसका मन बिल्कुल न लगता था, यह अपना सारा समय नाच गाने और रंग रलियां मनाने में खर्च करने लगा । सौभाग्य से इस राजा का मन्त्री कात्यायन बहुत ही योग्य था । इसका उपनाम राक्षस पड़ गया था । वैसे वह बड़ा विद्वान् ब्राह्मण था, नीतिकुशल था और राजा के विलासी होने के बावजूद भी राज्य को संभाले हुए था । परन्तु राजा के पूरे तौर पर राज्यकाज की ओर ध्यान न करने से जनता में राजा के विरुद्ध रोष पैदा होना कुदरती था । और पहले जैसा व्यापार और कारीगरी न रहने से धन की भी कमी होती जा रही थी, और राज्य भी छिन्न भिन्न होकर छोटे-छोटे राज्यों में तकसीम होने लगा था । जहाँ कहीं कोई राज्याधिकारी था राजा बन बैठा और केन्द्रीय सरकार कमजोर हो गई । ऐसे ही समय में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण कर दिया ।

२. और ऐसे ही वक्त में महर्षि चाणक्य का जन्म भी हुआ उनका जन्म नाम विष्णुगुप्त था, और वह तक्षशिला विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था । उस वक्त तक्षशिला का महाविद्यालय बहुत बड़ा था । उसमें दस हजार विद्यार्थी विद्या ग्रहण करते थे । राजा नन्द का वजीर कात्यायन भी उसी विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, और विष्णुगुप्त का सहपाठी भी था । विष्णुगुप्त का रंग तो काला था परन्तु मेधा बुद्धि इसमें भरपूर थी और यही विष्णुगुप्त बाद में चाणक्य और कौटल्य के नाम से प्रसिद्ध हुए । यह अपने को आर्य कहलाते थे । और इन के शिष्य भी इनको आर्य कहकर सम्बोधन किया करते थे । जब इसको पता लगा कि सिकन्दर भारत के अन्दर घुस आया ही नहीं बल्कि उसने राजा पौरस से शिकस्त खाने के बाद इस से सन्धि कर ली है । और उसको भारत का महाराजा बनाने का लालच दे कर सारे भारत को फतह करना चाहता है तो उसके मन में बड़ा खेद हुआ कि एक विदेशी भारतवर्ष की स्वतन्त्रता को मिटा कर अपने अधीन करना चाहता है । दैवयोग से चन्द्रगुप्त नाम का एक युवक जो राजा नन्द के जेलखाने से भाग आया था महर्षि चाणक्य को मिल गया । चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय था । और राजा नन्द की फौज में बतौर सिपाही भर्ती हुआ था लेकिन जब उसने भी यह सुना कि सिकन्दर ने भारत पर हमला कर दिया और फिर पोरस से सन्धि करके अब वह

सारे भारत पर अधिकार जमाना चाहता है तो उसने अपने कुछ फौजी मित्रों से इस बात का जिकर किया, और यह गिला भी किया कि हमारा राजा तो रंग रलियों में मस्त है। सिकन्दर का मुकाबला कैसे किया जावे। अतः इसी सलाह मश्वरा की भनक राजा के वजीर को मिल गई। और इसने उसको कैद कर दिया, जिससे वह किसी तरह छूट कर महर्षि चाणक्य से मिल गया। और अब जैसे कृष्ण और अर्जुन का मेल हो जाने से महाभारत जीता गया था। इस तरह महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त के मेल हो जाने से भारत की स्वतन्त्रता कायम रह सकी। चुनांचे दोनों ने मिलकर ऐसी-ऐसी योजनाएं बनाईं कि जिससे सिकन्दर को पंजाब से ही वापस जाने पर मजबूर होना पड़ा, और जाते-जाते सिकन्दर के जिस्म पर ऐसी चोटें कीं जिससे वह अपने मुलक यूनान भी न पहुंच सका और रास्ते में बाबल में ही मर गया। इसके बाद इसके कमाण्डर सैल्युकस ने जिससे मरते वक्त सिकन्दर ने प्रतिज्ञा ले ली थी कि भारत फतह करना है। भारत पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी। इतने में महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त की मन्त्रणा से सब छोटे छोटे राजा चन्द्रगुप्त की कमान में आ गए। और इस प्रकार चन्द्रगुप्त ने अपनी ताकत बढ़ा कर महर्षि चाणक्य की नीति के कारण मगध के राजा धनानन्द को जो विलासी होने से प्रजा का प्रेम खो चुका था, कत्ल कर दिया। और महर्षि चाणक्य ने चन्द्रगुप्त को मगध का राजा बना दिया। अब इनको पता लगा कि भारत पर सैल्यूकस हमला करने की तैयारी कर चुका है, और हमला करना ही चाहता है। अतः महर्षि चाणक्य की आज्ञा के अनुसार सैल्यूकस का मुकाबला दरया जेहलम पर ही करने का निश्चय हुआ। सिकन्दर के वक्त ही महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त यूनानियों की लड़ाई के ढंग और उनके हथियार और उनकी चालाकियों से अगाह हो चुके थे। इसलिए अब उनको सैल्यूकस का मुकाबला करने में बड़ी आसानी थी।

महर्षि चाणक्य ने सरहद पर ही सैल्यूकस को पराजय देने का पूरा-पूरा इन्तजाम कर रखा था। अतः जिस समय सैल्यूकस पिशावर के पास ही पहुंचा तो मुकाबले में कील कांटे से लैस फौज को देख कर हैरान रह गया, और फौज ने यह हाल देखा तो वह भी हैरान रह

गई । क्योंकि सैल्यूकस ने सेना के अफसरों और सिपाहियों को यह सब्जबाग दिखा कर तैयार किया था कि अब तो मगध जा कर ही थोड़ा सा मुकाबला होगा, जिसको निश्चय ही जीत जाएंगे, वरना सारा रास्ता तो आप भारत को लूटते हुए ही जाएंगे । लेकिन फौज के अफसरों और सिपाहियों ने पिशावर से निकलते ही मुकाबले पर इतना बड़ा लश्कर मय साजो सामान और कील कांटे से लैस तैयार बर तैयार खड़ा देखा तो सिर मुंडाते ही ओले पड़े देख के सब दंग रह गये । और एक ही वार में पराजय मान करके सैल्यूकस ने चन्द्रगुप्त से सन्धि कर ली । और अपनी लड़की हेलन चन्द्रगुप्त से विवाह दी । और दहेज में अफगानिस्तान, वाखतर तक का इलाका भी देकर छुटकारा करवाया, ऐसे थे नीति निपुण महर्षि चाणक्य, जो विदेशियों को अपने देश में देखना भी पसन्द न करते थे । अतः सैल्यूकस को विजय कर लेने के बाद अब महर्षि चाणक्य और चन्द्रगुप्त सारे भारत के राज्य को जो कि अब चन्द्रगुप्त के अधीन था । राम-राज्य बनाने में लग गये, और पांच दस वर्ष के अन्दर ही अन्दर सारे भारत में रामराज्य स्थापित कर दिया । जिसके विषय में मैगस्थनीज जो सैल्यूकस की ओर से ऐलची के तौर पर चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा, उसने लिखा-कि भारत में कोई घर में ताला नहीं लगाता था, मतलब यह कि चोरी नहीं होती थी । और चोरी हो भी कैसे जब कि कानून यह था कि जिसकी चोरी होगी अगर चोर न पकड़ा जाये और माल बरामद न हो तो उसका नुकसान सरकारी खजाने से अदा किया जाये । ऐसी हालत में भला कोई चोरी करने की हिम्मत कर सकता था। पाटलीपुत्र शहर की सुन्दरता का वर्णन करते हुए लिखा है कि वह शहर नौ मील लम्बा, दो मील चौड़ा था, उसके ६४ दरवाजे थे, ६०० बुर्ज और चारों तरफ ५०० फुट चौड़ी पानी की खाई थी । तिजारत योरुप और चीन से बजरिया जहाजरानी होती थी । हर गांव में पंचायत होती थी जो उस गाँव का सब प्रबन्ध करती थी । जोडीशरी और एग्जेक्टिव अलग अलग थी। न्याय की दृष्टि में सब समान थे, यहां तक कि राजपुत्र भी दोषी होने पर सजा पाता था । अतः दक्षिण के एक छोटे से राजा ने इस बात की परीक्षा करने के लिए कि राज्य में चोरी होती है या नहीं, सोने की मोहरों से भरी हुई एक बोरी जंगल में चौरस्ते में रख दी, वह

बोरी पांच वर्ष तक वहीं पड़ी रही किसी ने उठाई नहीं। एक दिन राजकुमार शिकार खेलने गया तो उसके घोड़े की पांव की ठोकर से वह बोरी फट गई तो इस जुरम की सजा में राजकुमार को जिला वतनी की सजा मिली। उस समय मुल्क में दूध की नहरें बहती थीं, पानी मांगने वाले को दूध मिलता था, और (आजकल दूध मांगने वाले को सपरेटा मिलता है।)

शिक्षा के प्रसार के लिए भी बहुत काम किया गया। गांव-गांव में विद्या-परिषदें बनाई गईं और इस तरह न्याय करने के लिए भी गांव-गांव में परिषदें होती थीं। सामाजिक जीवन को उच्चतम करने के लिए राज्य की तरफ से भी कुछ नियम थे। मसलन किसी के घर आग लग जाय तो सब का कर्तव्य होता था, कि उसको बुझाने में सहायता दें, इस कर्तव्य की अवहेलना करने वाले को सख्त सजा दी जाती थी। सड़कों और बाजारों में कोई गन्दगी नहीं बखेर सकता था। सफाई की तरफ विशेष ध्यान रखा जाता था। मतलब यह कि महर्षि चाणक्य की नीति से चन्द्रगुप्त का राज्य वाकई रामराज्य बन गया था, और इसकी सारी तरकीब महर्षि ने अपनी चाणक्य नीति और कौटिल्य अर्थशास्त्र में लिखी है, परन्तु हमारे आजकल के नेता ऐसे अपूर्व ग्रन्थों की ओर ध्यान न देकर मगरब की तरफ ही देखने के आदी हो चुके हैं। वरना जो राज्य पांच वर्ष के बीच में रामराज्य बन गया था, उस नीति का अनुकरण करते तो स्वतन्त्रता के ये १७ वर्ष क्यों व्यर्थ जाते। फिर महर्षि चाणक्य जिसने इतना बड़ा साम्राज्य कायम कर दिया जो इस समय भारत सरकार के राज्य से दुगना था। वह खुद एक फूस की झोंपड़ी में रहता था, और दो चार शिष्यों को पढ़ा कर ही निर्वाह करता था। चन्द्रगुप्त को तख्त पर बिठा कर भी वह वजीर नहीं बना, बल्कि उसी कात्यायन को वजीर की गद्दी पर रहने दिया, और खुद फकीर बना रहा। जिस तरह महर्षि चाणक्य के दिल में विदेशियों के लिए घृणा थी, और जिस तरह वे स्वराज्य की रक्षा करना चाहते थे। इसी तरह महर्षि दयानन्द के मन में भी विदेशियों के लिए तथा विदेशी राज्य के लिए घृणा थी, और यदि उनको भी मौका मिलता तो वह जरूर ही ऐसा यत्न करते, जिससे एक बहुत ही मजबूत और अच्छा राज्य यहां कायम हो सके,

अत: अंग्रेजों के राज्यकाल में और अंग्रेजों की ऐसी सल्तनत के बरखिलाफ जिस पर उस वक्त सूर्य भी गरूब न होता था। महर्षि के दिल में कितने जबरदस्त जजबात थे, जो उनके जीवन के निम्नलिखित वाक्यात से पूर्ण रूप से सिद्ध होते हैं। और अपने ही देश के स्वराज्य की नहीं अपितु संसार भर में चक्रवर्ती आर्य राज्य की स्थापना करने की मन में कामना करते और परमात्मा से प्रार्थना करते थे।

१. सब से पहले तो सन् १८५७ की पहली जंग आज़ादी के ठीक १५ वर्ष बाद जबकि अंग्रेज शासक इस देश पर पूरी तरह अपना कण्ट्रोल जमा चुके थे, महर्षि प्रचार करते हुए कलकत्ता जो उस वक्त भारत की राजधानी थी, पहुंचे। वहां भी हर दूसरी जगह की तरह उनके व्याख्यानों की धूम मच गई, और उनके बाज लैक्चरों की सदारत कलकत्ता का कोई न कोई बड़ा पादरी करता था और यह पादरी महर्षि दयानन्द के वसीह इलम और इस्लाम ईसायत की तालीमात पर उनकी तेज और सख्त नुक्ताचीनी पर हैरान हो जाया करते थे, और विशेषत: इसलिए भी कि महर्षि जी अर्बी या अंग्रेजी नहीं जानते थे। कलकत्ता के किसी बड़े पादरी ने महर्षि के गैर मामूली और खुदादाद लियाकत का ज़िकर उस समय के वायसराय लार्ड नार्थब्रुक से किया। जिसकी वजह से वायसराय ने महर्षि से मुलाकात की इच्छा प्रकट की, अत: वायसराय के निमन्त्रण पर महर्षि उनसे मिले, इस मौका पर उनके दरमियान एक तर्जुमान के जरिये निम्नलिखित वार्तालाप हुआ। जिससे स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि महर्षि के दिल में विदेशी राज्य के प्रति कितनी घृणा थी, और देश-प्रेम की अग्नि उनके हृदय में कितनी प्रचण्ड थी।

वायसराय–मुझे बताया गया है कि दूसरे मज़ाहब पर आप के ज़बरदस्त हमले परेशानकुन हैं, और उनके परिणाम स्वरूप हिन्दु-मुसलमान दोनों में आपकी मुखालफ़त पैदा हो गई है। क्या आप अपनी जान को अपने दुश्मनों से खतरा महसूस नहीं करते। क्या आपको हमारी गवर्नमैंट की तरफ से किसी खास किस्म की रक्षा की आवश्यकता है।

स्वामी–मुझे बर्तानवी राज्य में अपने अकीदां के प्रचार करने की पूरी आजादी है, और मैं अपनी जान के लिए कोई भय प्रतीत नहीं करता।

वायसराय—पण्डित दयानन्द अगर ऐसा है तो क्या आप भारत पर अंग्रेजी राज्य की वरकतों की सराहना करेंगे और आप अपने भाषणों से पहले जो प्रार्थना करते हैं, इसमें यह प्रार्थना भी करेंगे कि भारत पर अंग्रेजी राज्य हमेशा कायम रहे ।

दयानन्द—मैं इस तरह की कोई बात बिल्कुल नहीं मान सकता। क्योंकि मेरा यह पक्का विश्वास है कि मेरे हमवतनों की उन्नति के लिए और दुनिया की कौमों में मेरे मुल्क का लासानी दर्जा हासल करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारतवर्ष पूर्ण स्वतन्त्रता और खुद मुख्त्यारी प्राप्त करे । मैं प्रतिदिन सायं प्रातः परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ, कि वह मेरे देश को विदेशियों से शीघ्र आज़ाद कराये । महर्षि जी की यह बात सुन कर लार्ड नार्थब्रुक हैरान रह गये, क्योंकि उनको किसी भारतीय से ऐसी बात सुनने की बिल्कुल ही उम्मीद नहीं थी । अतः वायसराय ने इण्डिया आफ़िस लण्डन को महर्षि की सरगर्मियों के लिए आगाह कर दिया, और अपनी गवर्नमेण्ट को हिदायत कर दी, कि वह इस बागी फ़कीर पर कड़ी निगाह रखे । अतः उस दिन के बाद स्वामी जी के व्याख्यानों में अंग्रेज अफ़सर बड़ी तादाद में आया करते थे, जो प्रार्थना महर्षि दयानन्द परमात्मा के हजूर में अंग्रेजो छोड़ जाओ की सन् १८७२ में रोज सायं प्रातः किया करते थे, उसी के अनुरूप Quit India का प्रस्ताव पूरे ७० वर्ष बाद कांग्रेस को पास करने की हिम्मत हुई थी, और जिस के पास करने का मैदान भी महर्षि की कृपा से ही भारत में तैयार हुआ था ।

२. फिर सन् १८५७ से १८ वर्ष बाद महर्षि ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में, स्वराज्य महिमा शीर्षक के अधीन जो शब्द लिखे थे, वह तो गोया अंग्रेजी राज्य पर बम बन कर गिरे । महर्षि के पहले तो किसी को क्या हिम्मत होनी थी कि विदेशी राज्य के विषय में कोई शब्द कहता या स्वराज्य शब्द का ही प्रयोग करता परन्तु महर्षि के ऐसा लिखने और प्रचार करने के बाद भी कई वर्षों तक स्वराज्य शब्द भी किसी बड़े से बड़े नेता के मुँह से न निकला था । सब से पहले दादा भाई नौरोजी ने इसे सत्यार्थप्रकाश से पढ़ कर कलकत्ता कांग्रेस की प्रधानगी करते समय सन् १८९९ में स्वराज्य का शब्द अपने

एडरेस में पढ़ा था, और फिर बाल गंगाधर तिलक ने स्वराज्य मेरा पैदायशी हक है Home rule is my birth right का नारा सन् १९०६ में लगाया था, जिसके लिए इनको ६ वर्ष की कैद की सजा हुई थी। सत्यार्थप्रकाश के वे शब्द पढ़ कर आप महर्षि के मन की अन्तर्भावनाओं को जान सकेंगे कि वे स्वराज्य के कितने इच्छुक थे। वे शब्द निम्नलिखित हैं–

स्वराज्य की महिमा

"अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की कथा ही क्या कहना, किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय, राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ भी है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है, कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दु:ख भोगने पड़ते हैं। कोई कितना ही करे किन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु फिर भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा, अलग-अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिए वेद आदि शास्त्रों में जो व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं, उसी का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है।"

यह विदेशियों के राज्य हटाकर, स्वराज्य प्राप्त करने का एक एक सार्वजनिक नियम महाराज ने लिखा है। विदेशियों और विदेशी राज्य के विषय में महर्षि चाणक्य और महर्षि दयानन्द के एक जैसे ही विचार और भावनाएँ थीं। महर्षि जी ने न केवल विदेशियों की पराधीनता को उखाड़ फैंकने का नुस्खा ही बताया, बल्कि उसका निदान भी बताया।

३. अमृतसर में व्याख्यान देते हुए महाराज ने कहा कि लोग कहते हैं कि अंग्रेज दौलतमन्द होते जाते हैं और देशी आदमी गरीब होते जाते हैं, इस बात की चिन्ता न करनी चाहिये। जिस कदर अंग्रेज दौलतमन्द होंगे, आराम तलबी से सुस्त, और सुस्ती से कमजोर हो जायेंगे और देशी

लोग गरीब होने की वजह से मेहनती होंगे, और मेहनती होने से ताकतवर होंगे। इससे देशी लोग फ़ायदा में रहेंगे। इस पर बिहारीलाल जी असिस्टेंट कमिश्नर ने कहा कि आम मौका पर ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए परन्तु स्वामी जी ने कहा, सत्य कहने में मुझे कोई भय नहीं।

४. हकीम, डाक्टर, वैद्य सब से अच्छा वही गिना जाता है, जो न सिर्फ किसी रोग का इलाज करे या करना जानता हो, बल्कि रोग का निदान भी जानता हो। अतः महर्षि ने जहां सत्यार्थप्रकाश के ८वें समुल्लास में स्वराज्य-प्राप्ति का नुस्खा बताया। वहां उन्होंने दसवें समुल्लास में विदेशी पराधीनता के कारण का निदान भी किया है, जो निम्नलिखित है। इससे महर्षि का पूर्ण नीतिवान् यानि Politition होना सिद्ध होता है।" विदेशियों का आर्यावर्त में राज्य होने का कारण—आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना, बाल अवस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषण आदि कुलक्षण, वेद विद्या का प्रचार न होना आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं, तब तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच सहस्र वर्ष पहले हुई थीं उनको भूल गए। आपस की फूट से कौरवों पाण्डवों और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया, परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःखसागर में डुबो मारेगा।

"उस दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में चलकर आर्य लोग अब तक भी दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जावे।

इन शब्दों में महर्षि जी ने अपना दिल खोलकर रख दिया है।

५. जालन्धर में एक दिन कहा कि आजकल के राजाओं की क्या हालत है। अंग्रेज लोग अपने आदमियों का बहुत लिहाज करते हैं। अगर कोई अंग्रेज किसी देशी को कत्ल कर दे तो उसको छोड़ देते हैं। इस तरह अगर यहां यह ज़्यादह जुलम करेंगे तो इनका राज्य ज़्यादह देर न रहेगा। जैसा कि उन्होंने लखनऊ के बलवे में चन्द अंग्रेजों के बदले में सैकड़ों देसी बेगुनाह मार डाले थे।

६. महर्षि जी ने राजपूताने में राजपूत राजाओं में विशेष प्रचार करने का प्रोग्राम भी इसी अभिप्राय से बनाया था कि इनको राजनीति में निपुण करके, और इनका संगठन बना कर देश को आजाद कराने का ढंग बनाया जावे। अतः जब महाराज चित्तौड़ में थे, और गवर्नर जनरल भी चित्तौड़ आये हुए थे तो गवर्नर ज़नरल ने महाराणा सज्जनसिंह से कहा कि चित्तौड़ का किला आप सरकार को दे दें। इस पर महाराणा तो चुप रहे परन्तु जब स्वामी जी को इस बात का पता लगा तो उन्होंने उदयपुर के सब सरदारों को जो वहां इकट्ठे हुए थे बुला कर समझाया कि आप बारी बारी जाकर गवर्नर जनरल से मिलें और कहें कि चित्तौड़ का किला केवल महाराणा का ही नहीं है। इस पर सब राजपूतों का हक है, और सब की सम्मति के बिना महाराणा को कोई हक नहीं है कि इसके विषय में कोई बातचीत करें। तब गवर्नर जनरल समझ गया कि यह हमारी मांग को नहीं मानेंगे तो उन्होंने कहा कि मैंने वैसे ही महाराणा साहब से ज़िकर किया था, हमने किला लेकर क्या करना है। इस तरह नीति कुशलता से उन्होंने चित्तौड़ का किला अंग्रेजों के अधीन जाने से बचा लिया।

७. स्वामी जी ने अपने प्रचार-काल में देश के कोने-कोने में देशहित की भावना को जागृत कर दिया था। मातृभूमि या मातृ-सभ्यता और मातृ-भाषा के लिए देशवासियों को प्रेम करने का पाठ पढ़ा दिया था अतः देशोन्नति के लिए महाराज ने देहली दरबार के मौका पर इकट्ठे हुए, उस समय देश भर के प्रमुख नेताओं की एक सभा, अपने निवास स्थान पर की, जिसमें मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द राय, बाबू केशवचन्द्र सैन, मुन्शी इन्द्रमन, सर सैयद अहमद खां, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि सम्मिलित हुए। स्वामी जी ने प्रस्ताव किया कि यदि हम सब एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आंशा है कि देश शीघ्र ही सुधर सकता है परन्तु उस वक्त तो स्वामी जी को इस बात में सफलता न मिली परन्तु कुछ सालों के बाद इण्डियन नेशनल कांग्रेस की बुनियाद डाली गई, जिसने धीरे-धीरे बहुत से मरहले तय करने के बाद और दूसरे सहायक साधनों के कारण देश को आजाद करा लिया। किसी ने ठीक कहा है—

अगर देशहितैषी हमें न जगाता ।
तो देशोन्नति का किसे ध्यान आता ॥

८. महर्षि ने जब आर्यसमाज को स्थापित किया तो अंग्रेजों की आर्यसमाज पर शुरू से ही तिरछी नजर रही । और आर्यसमाज को बाग़ी जमायत समझा जाता रहा, परन्तु सन् १९०७ में आर्यसमाज के लीडर ला० लाजपतराय जी और सरदार अजीतसिंह जी को अंग्रेजों ने बग़ावत के जुर्म में पकड़ कर माण्डले जेल में भेज दिया तब से आर्यसमाज पर अंग्रेजों की खास नज़रें इनायत हो गईं । आर्यसमाजियों को परेशान किया जाने लगा, सरकारी नौकरियों से जवाब मिल गया, बिना वारण्ट आर्य उपदेशक गिरफ्तार किये जाने लगे, उस समय आर्यसमाजी होना जुर्म समझा जाता था । जिससे यही साबित होता है कि महर्षि दयानन्द ने देश में कितनी पोलिटीकल जागृति भी पैदा कर दी थी । अतः इस विषय में भारत का सब से बड़ा दुश्मन सर बालटायन चिरोल ने अपनी किताब इण्डिया के सफा नं० ६४ में हिन्दुओं के विषय में लिखते हुए निम्नलिखित वाक्य लिखे हैं—They were to be stirred once more by a feircer spirit when Swami Dayanand Sarswati founded the Arya Smaj in 1875 having strong spirit of nationalism. अर्थात् जब सन् १८७५ में स्वामी दयानन्द ने आर्यसमाज को जबरदस्त देशहित की भावना की भित्ति पर स्थापित किया तो एक बार हिन्दुओं में पहले से भी अधिक उत्साह पैदा हो गया ।

९. लुईस ऐनू प्रोफेसर संस्कृत फ्रांस अपनी पुस्तक Religion of Ancient India के सफा १०७ पर लिखते हैं—There was also Dayanand Saraswati Gujrati ascetic who founded the Arya Samaj. He was in favour of returning to an unqualified adherence to the Vedas and claimed that explicit principles of pure monthism and of social and moral reform could be found in the hymns. As well as his work of religion reforms, he was active in urging the hinduism must establish within itself a church militant and should unceasingly work for poltitical and social reform.

१०. अब आखीर में आपके सामने वह अचम्भे वाली बात लिखने लगे हैं जो महर्षि के मन के अन्दर थी और जिसको कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर आफ संस्कृत मिस्टर टोम्स ने देखा और अपनी किताब Hindu

manners & Customs में लिखा है ।

"Dyanand might have founded a mightiest empire for his followers had he been given a chance to live more."

अर्थात् दयानन्द को अगर अधिक जीने का मौका मिलता तो वह अपने श्रद्धालुओं के लिए एक निहायत ज़बरदस्त राज्य की स्थापना कर जाता ।

यह थे महर्षि चाणक्य की तरह महर्षि दयानन्द के हृदय के उद्गार जो अपने देश में विदेशी राज्य देख कर उनके मन में उठते थे; और जिस विदेशी राज्य को मिटाकर अपने देश में स्वराज्य लाने की उनकी जबरदस्त इच्छा को प्रकट करते रहे । राजनीति में महर्षि चाणक्य और महर्षि दयानन्द बिल्कुल मिलते जुलते हैं । जैसा शासन महर्षि चाणक्य ने चलाकर इस देश को स्वर्ग बनाया था, यदि महर्षि दयानन्द को भी चाणक्य की तरह राज्य चलाने का मौका मिलता तो वैसा ही स्वर्ग वह भी इस देश को बना देते । आर्याभिविनय नामी अपनी लघु पुस्तिका में महर्षि ने प्रभु से बार बार यही प्रार्थना की है कि हे प्रभु मेरा देश विदेशियों के चुंगल से निकल जावे । यह विदेशियों के प्रति दोनों महर्षियों के एक जैसे विचार ही थे । अगर महर्षि दयानन्द को भी चन्द्रगुप्त जैसा साथी मिल जाता तो महर्षि अपने जीवन काल में ही अंग्रेजों को भारत से निकाल बाहर करते ।

११. संवत् १९३६ के हरिद्वार के कुम्भ मेले पर प्रचार करते समय एक दिन कुछ अंग्रेज महाराज के पास आए । महाराज ने उनसे कहा कि आप लोग भारत की अवनति और फूट के समय आये हैं, यदि इसकी उन्नति के समय में यहां आते तो देखते यहां कैसे कैसे शूरवीर और योद्धा विद्यमान हैं, और आप उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते, अंग्रेज शासकों के मन पर भारत का गौरव दर्शाने से महर्षि के हृदय के भाव मातृभूमि के प्रति प्रकट हो रहे हैं ।

१२. और एक दिन व्याख्यान देते हुए महाराज जी कहने लगे कि इस देश की वसुन्धरा बड़ी उपजाऊ है । स्वराज्य प्राप्त होने पर थोड़ी ही देर में धन धान्य से पूरित कर देगी ।

१३. और महर्षि जी में एक ऐसा महान् गुण था जो और किसी महापुरुष में शायद ही मिले कि वह न सिर्फ दूसरों के अवगुणों का खण्डन

ही करते थे बल्कि अपने विपक्षियों के गुणों की तारीफ भी करते थे, चुनांचे ११वें समुल्लास में ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज की समीक्षा करते हुए पूर्व पक्ष में यह प्रश्न रख कर "कि देखो योरूपीयन लोग मुण्डे, जूते, कोट, पतलून पहनते, होटलों में सब के हाथ का खाना खाते, इसलिए अपनी बढ़ती करते हैं । इसका उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं । "यह तुम्हारी भूल है, क्योंकि मुसलमान अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती, जो योरूपीयनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे बुरे आदमियों के उपदेश नहीं होता । वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फंसते । जो कुछ करते हैं वह परस्पर विचार करके सभा से निश्चय करा कर करते हैं । अपनी जाति की उन्नति के लिए तन, मन, धन खर्च करते हैं । आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं, देखो अपने देश के बने हुए जूते को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं इस देसी जूते को नहीं । (याद रहे कि स्वामी जी के समय में अंग्रेजों ने ऐसा ही रिवाज कायम कर रखा था कि बूट चाहे दो रुपये का पहना हो, वह दफ्तर, कचहरी में चला जावे, और देशी जूती चाहे २००) रुपये की हो वह नहीं जा सकती । अतः राजा नवाब लोग भी अपनी कीमती से कीमती जूतियां साहब को मिलने के समय बाहर उतार कर जाया करते थे, इस रिवाज से अंग्रेजों का अभिप्राय बूट को यहां प्रचलित करना था, जो उन्होंने अपना अभिप्राय सिद्ध कर लिया) । इतने ही में समझ लो कि अपने देश के बने हुए जूते का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं, उतना अन्य देशवासियों का नहीं करते। देखो कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में यूरोपीयनों को आये हुए हो गए, आज तक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहने हैं, जैसे अपने देश में पहनते थे। उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुत से लोगों ने उनका अनुकरण कर लिया । इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं । अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं है। और जो जिस काम पर रहता है, उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं, अपने देश वालों को व्यापार आदि में सहायता देते हैं। इत्यादि गुणों और अच्छे-अच्छे कर्मों से उनकी उन्नति है ।"

"इस वचन से महर्षि जी ने ब्रह्मसमाजियों को जिनका झुकाव बाबू केशवचन्द्र की कृपा से ईसाइयत की तरफ हो रहा था। चेतावनी देने के साथ-साथ अपने देशवासियों को यूरोपियन लोगों के गुणों को भी जताना था ताकि अपना देश भी उन्नत हो।"

और

१४. फिर इसी ११वें समुल्लास में ही अपने देशी जनों में देश-भक्ति का सूत्रपात करने के लिए कहते हैं–"इसलिए जो उन्नति करना चाहते हो तो आर्यसमाज के साथ मिलकर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए। नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा। क्योंकि हम और आप को अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन पोषण होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिए जैसा आर्यसमाज, आर्यावर्त देश की उन्नति का कारण हो सकता है वैसा दूसरा नहीं हो सकता, यदि इस समाज को यथोचित सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है। क्योंकि समाज के सौभाग्य का बढ़ाना समुदाय का काम है, एक का नहीं"।

किसी शायर ने क्या खूब कहा है–

ऐ मेहर मैंने अक्सर छाना है सब ज़माना।
अपने वतन से बेहतर कोई नहीं ठिकाना॥

२६. महर्षि धन्वन्तरी,
२७. इंग्लैंड का लार्ड विलंगडन

महर्षि धन्वन्तरी

१. जिन्होंने आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ चरक और सुश्रुत को बनाया ये बचपन में बहुत निर्धन घर में पैदा हुए थे। ऐसी निर्धनता थी कि घर में रोशनी के लिए भी सामान न मिलता था परन्तु महर्षि धन्वन्तरी के मन में विद्या ग्रहण की तीव्र इच्छा थी। अतः रात को पढ़ने के लिए अपने पड़ोसी के घर की रोशनी को अपने घर में लाने के लिए अपने घर की दीवार में छेद कर लिया, और पड़ोसी के घर से इस छिद्र के द्वारा आनेवाली रोशनी से विद्या-उपार्जन करते रहे और इतने विद्वान् हुए

कि ऋषि की पदवी को प्राप्त कर संसार का उपकार करने को आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रन्थ बना गए।

२. इंग्लैंड में एक लड़का विलंगडन नाम का निर्धन घराने में पैदा हुआ। घर में रात को पढ़ने का कोई रोशनी का सामान न था वह रात को बाहर गली बाजार में कमेटी की जलती हुई लैम्पों की रोशनी में पढ़ता था। जब रात को पढ़ते वक्त घड़ियाल बजता और वह टन-टन करता तो बालक विलंगडन उसके सुर में सुर मिला कर कहा करते, टन, टन, टन, लार्ड विलंगडन, लार्ड मेयर आफ लण्डन। अतः वह बालक इतना विद्वान् हुआ कि अन्त में लंडन का मेयर बन ही गया।

३. महर्षि दयानन्द ने पितृ-गृह में पांच वर्ष की आयु से बाईस वर्ष की आयु तक जो विद्या पढ़ी, इस पर जिज्ञासु दयानन्द की प्यास न बुझी। माता-पिता को बहुतेरा कहा कि काशी जी विद्या पढ़ने को भेज दो, वे न माने। अन्त में २२ वर्ष की भरपूर जवानी में विद्या की प्यास बुझाने को घर से निकल पड़े और भयानक वनों और बर्फानी पर्वतों में पूरे १४ वर्ष तक घूम-घूम कर जहां भी कोई विद्वान् या योगी मिला विद्या उपार्जन और योगाभ्यास करते रहे परन्तु अब भी उनकी विद्या उपार्जन की प्यास न बुझ सकी थी। हिमालय पर्वत पर एक वार स्वामी जी के दिल में ख्याल आया कि इन्हीं बर्फानी पर्वतों में अपने आप को समाप्त कर देना चाहिए। फिर एकदम ही उनके मन में ज्ञान-उपार्जन की लालसा उत्पन्न हो गई। और उन्होंने शरीर त्यागने का संकल्प छोड़ दिया। इस से भी सिद्ध होता है कि उनको ज्ञान-उपार्जन की कितनी जिज्ञासा थी। अतः अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए जब उन्होंने महर्षि विरजानन्द की ख्याति सुनी तो सन् १८६० में मथुरा उनकी कुटिया में आ विराजे, परन्तु यहाँ स्वामी विरजानन्द जी ने एक और समस्या खड़ी कर दी। विरजानन्द जी कहने लगे कि मैं किसी संन्यासी को नहीं पढ़ाता, क्योंकि जिसके रहन-सहन भोजन आदि का प्रबन्ध न हो वह दत्तचित्त होकर विद्या ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए पहले तुम अपने खाने-पीने, रहने-सहने का प्रबन्ध कर आओ और फिर मेरे पास आकर विद्याभ्यास करो। अब दयानन्द को बड़ी चिन्ता हुई। उधर विद्या-उपार्जन का शौक और इधर कोई व्यवस्था न होने के कारण कूएं पर आ कर भी प्यासा मुड़

जाने की सम्भावना, परन्तु परमेश्वर को भी यही मंजूर था कि ऋषि विरजानन्द का शिष्य ऋषि दयानन्द विद्या उपार्जन करे। और संसार के क्लेशों को दूर करने वाली पवित्र वेदवाणी का प्रसार संसार में करे, सो प्रभु-कृपा से सब प्रबन्ध हो गया। श्री अमृतलाल जोशी ने उनके खाने का भार अपने जिम्मे ले लिया और अमृतलाल दयानन्द की सहायता कर के अमर हो गया। मथुरा के विश्राम घाट पर लक्ष्मीनारायण मन्दिर की निचली मंजिल की एक कोठरी इनको मिल गई। गोविन्द सराफ़ स्वामी जी को चार आना महीना तेल के लिए देते थे। जिस से वे रात को अपना पाठ याद कर लिया करते थे। और हरदेव पत्थर वाला उनको दो रु० मासिक दूध के लिए देता था। इस तरह सब प्रबन्ध ठीक कर दयानन्द गुरु चरणों में विद्या उपार्जन करने लगे। इतनी कठिनाइयों से उपार्जित की हुई ब्रह्मविद्या को महर्षि ने अपनी स्वार्थ सिद्धि न कर के संसार के उपकार में लगा दिया। और महर्षि धन्वन्तरी की तरह अमर हो गए।

पूर्ण फ़िलास्फ़र

सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक मीमांसा तथा वेदान्त भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय के मूर्धन्य ग्रन्थ हैं। इनके रचयिता क्रमशः [२८] कपिल, [२९] पतञ्जलि, [३०] गौतम, [३१] कणाद, [३२] जैमिनी और [३३] बादरायण थे। इन दर्शनों का प्रतिपाद्य विषय भिन्न होते हुए भी ये सब वेद प्रामाण्य को मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं और उसे ईश्वरीय ज्ञान भी मानते हैं। इन शास्त्रों में पृथक्-पृथक् विषयों का प्रतिपादन होने से यह अनुमान करना अनुचित होगा कि ये दर्शन एक दूसरे का विरोध या खण्डन करते हैं। यूरोपीय विद्वान् तथा उनके भारतीय अनुयायी इन ग्रन्थों को परस्पर विरोधी मानते हैं। इसमें केवल उनका दोष नहीं, क्योंकि वे तो प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन करने के अनन्तर ही अपना मत निश्चित करते हैं।

वस्तुतः षट्दर्शनों को विरोधी रूप में प्रस्तुत करने के लिए मध्यकालीन आचार्य भी उतने ही दोषी हैं जितने आज के विद्वान्। शंकराचार्य को ही लीजिये। उन्होंने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि सभी दर्शनों का खण्डन किया और उन्हें अवैदिक सिद्ध करने का दुस्साहस किया। यह परस्पर खण्डन-मण्डन की परम्परा शंकर के परम गुरु गौडपाद से प्रारम्भ हुई। जब वेदान्त

के अनुयायी विद्वान् लोग अन्य शास्त्रों का खण्डन करने लगे तो सांख्य, न्याय, आदि की विचारधाराओं के अनुयायी भी क्यों पीछे रहते । उन्होंने भी नवीन वेदान्त का निरास करने में अपनी सारी प्रतिभा और शक्ति को व्यय करना आरम्भ कर दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि एक ऐसी विकृत परम्परा उत्पन्न हो गई जिसके कारण षट्दर्शनों का समन्वयात्मक रूप लुप्त हो गया और लोग साधारणतः इन दर्शनों को परस्पर विरोधी समझने लगे ।

ऋषि दयानन्द को ही इसका श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने इन दर्शनों का समन्वयात्मक रूप सर्वप्रथम हमारे समक्ष प्रस्तुत किया । उन्होंने बलपूर्वक यह प्रतिपादित किया कि इन दर्शनों की रचना उच्चकोटि के प्रभावशाली और मेधावी ऋषियों के द्वारा हुई है जिन्होंने समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार किया था । और जिन्हें समस्त भौतिक और अध्यात्मिक विद्याएँ हस्तामलकवत् थीं, ऋषियों के ग्रन्थों में परस्पर विरोध कुछ भी नहीं होता है । यह ऋषि दयानन्द का दृढ़ विश्वास था। दूसरी बात यह कि समस्त दर्शनकार एकमत होकर वेद को प्रमाण-ग्रन्थ स्वीकार करते हैं । अब यदि वे परस्पर विरुद्ध मत का प्रतिपादन करें तो उनका वेद को प्रामाणिक मानना कोई महत्त्व नहीं रखता । इसलिए ऋषि ने अपने ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर षड्दर्शनों के समन्वयात्मक रूप को समझाने का प्रयत्न किया है। यह अवश्य है कि ऋषि को अपने अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम के कारण इतना समय नहीं मिला कि इसका प्रतिपादन करने के लिए वे कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ लिख जाते । जब वे अपने वेदभाष्य को ही पूरा नहीं कर सके तो अन्य ग्रन्थों के विषय में तो कहा ही क्या जा सकता है ?

षड्दर्शनों के सम्बन्ध में ऋषि के निम्न शब्द विचारणीय हैं "सृष्टि के भिन्न-भिन्न छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं । जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी विचार संयोगादि का पुरुषार्थ प्रकृति के गुण और कुम्हार करण हैं। वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादानकारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन का व्याख्यान सांख्य में और

निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्त शास्त्र में है, उसमें कुछ भी विरोध नहीं।" ऋषि का अभिप्राय यह है कि छः दर्शनों के प्रतिपाद्य भिन्न-भिन्न हैं अतः विषय और उसके प्रतिपादन की दृष्टि से भिन्नता होने पर भी उन्हें परस्पर विरोधी मानने का कोई कारण नहीं।

सप्तम समुल्लास में ऋषि सभी शास्त्रकारों को ईश्वरवादी बताते हैं। सांख्याचार्य कपिल और उनके दर्शन पर अनीश्वरवादी होने का जो आरोप लगाया जाता है उसका खण्डन करते हुए वे लिखते हैं, 'जो कोई कपिलाचार्य को अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य नहीं।' तथा मीमांसा का धर्म धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी 'आत्मा' शब्द से अनीश्वरवादी नहीं, क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्म युक्त और "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा" जो सर्वज्ञ व्यापक और सर्वज्ञादि धर्म युक्त सब जीवों का आत्मा है उसी को मीमांसा, वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं।"

सृष्टि-उत्पत्ति का विषय ऋषि ने आठवें समुल्लास में लिखा है। यहां भी दर्शन समन्वय के महत्त्वपूर्ण कर्तव्य से वे च्युत नहीं हुए हैं। उनका कथन है, "छः शास्त्रों में अविरोध इस प्रकार है। मीमांसा में ऐसा कोई कार्य जगत् में नहीं होता जिसके बनाने में कर्म चेष्टा न की जाए। वैशेषिक में समय न लगे बिना बने नहीं, न्याय में उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता, योग में विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो कुछ नहीं बन सकता, सांख्य में तत्त्वों के मेल न होने से नहीं बन सकता और वेदान्त में बनाने वाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके, इसलिए सृष्टि ६ कारणों से बनती है। उन ६ कारणों की व्याख्या एक-एक की एक-एक शास्त्र में है। इसलिए उनमें विरोध कुछ भी नहीं है।'

ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त वचनों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ऋषियों के मन्तव्यों और सिद्धान्तों में समन्वय देखने के लिए वे प्रबल प्रयत्नशील थे। और इससे यह भी स्पष्ट होता है कि महर्षि को दर्शन शास्त्र अर्थात् फ़िलासफ़ी पर पूर्ण अधिकार था।

* * *

६. भाष्य-काण्ड

३३-३४. प्राचीन भाष्यकार

१. आस्य वामीय के भाष्यकर्ता स्वामी आत्मानन्द जी, २. मन्यार्थ मञ्जरी के रचयिता श्री राघवेन्द्र यति, ३. ऋग्वेद के ४० सूक्तों के भाष्यकार श्री आनन्द तीर्थ, ४. निरुक्त समुच्चय के कर्ता दुर्गाचार्य, ५. निरुक्तकार यास्क मुनि, ६. छलारी टीकाकार जयतीर्थ नृसिंहयति, ७. मन्त्रार्थ दीपिका के कर्ता शत्रुघ्न आचार्य, ८. निरुक्त भाष्यकार आचार्य स्कन्द स्वामी, ९. आचार्य वररुचि—इन सभी प्राचीन भाष्यकारों ने जो कि सायणाचार्य, महीधर और उव्वट प्रभृति वाममार्गी भाष्यकारों से हजारों वर्ष पहले इस देश में विद्यमान होकर वेदभाष्य जिन सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर किये थे, और जिन वेदभाष्य के मूलभूत सिद्धान्तों को न जानते हुए सायणाचार्य आदि ने वेदों को केवल यज्ञपरक समझ कर मन्त्रों के अर्थों के अनर्थ करके वेदों को कलंकित किया था। इन्हीं प्राचीन ऋषि मुनियों के मूलभूत सिद्धान्तों को जिससे आने वाले, वेद को पढ़ने वाले, और वेद पर लेखनी उठाने वाले, सीधे और सरल मार्ग को अपना सकें। महर्षि ने निम्नलिखित रूप दे दिया है, जो वेदभाष्य करने का रूप है वह जब तक सूरज चांद कायम है। संसार का पथ-प्रदर्शन करके संसार को वेद के सम्बन्ध में हरेक किस्म की ग़लतियों और ग़लतफहमियों से बचाता रहेगा।

१. लौकिक और वैदिक शब्दों का भेद।

२. त्रिविध प्रक्रिया यानी वेदों के तीन प्रकार के अर्थ—आधिदैविक, आध्यात्मिक, आधिभौतिक (अधि यज्ञ)।

३. वेद में इतिहास नहीं है, अर्थात् वेद में जितने शब्दों से विशेष नामों का भान होता है इनमें कोई भी Proper Noun न होकर सब Adjective यानि विशेषण हैं।

४. यौगिक वाद–यानि वेद के हर शब्द का धातु अर्थ लिया जाना चाहिए ।

५. धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं । वेद के सब वाक्य बुद्धि पूर्वक हैं ।

६. पद पाठ को समझ कर वेदभाष्य किया जाए, वेद में कोई बात प्रकृति नियम के विरुद्ध नहीं है ।

७. वत्य ।

८. देवतावाद–वेद के हर मन्त्र पर जो मन्त्र का देवता लिखा होता है वही इस मन्त्र का विषय होता है । ऐसा समझ कर वेद का अर्थ करें ।

वेद के इन्हीं मूलभूत सिद्धान्तों को देख कर पाण्डिचेरी के योगी अरविन्द ने कहा था कि स्वामी दयानन्द वेदार्थ करने की कुञ्जी दे गया है ।

महर्षि दयानन्द इन्हीं मूलभूत सिद्धान्तों पर जो उन्होंने प्राचीन भाष्यकारों के अनुकूल सिद्ध निश्चित किये थे । अपना वेदभाष्य करके सायण, महीधर, उव्वट और उनके विदेशी चेले चांटे मैक्समूलर, ग्रिफ्थ, मैकडाण्ड, टोनी आदि के किये हुए अनर्थों को संसार के सामने खोल गये। ताकि संसार इन अल्प बुद्धि पुरुषों के किये वेदभाष्यों को पढ़ क़र वेदों के प्रति अश्रद्धा के कूप में न गिर जावें ।

सायणाचार्य, महीधर और उव्वट के भाष्यों की, असंगतता और अश्लीलता तो महर्षि ने अपने अमूल्य ग्रन्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में बड़ी उत्तम रीति से दर्शाई है और मैक्समूलर आदि की बुद्धि का अदना सा नमूना निम्न प्रकार है । मैक्समूलर "हिरण्यगर्भ" शब्द का अर्थ सोने का अण्डा करता है । ग्रिफ्थ साहब "अज एकपाद्देवा" का अर्थ एक पांव वाला बकरा करता है और टोनी साहब तो अथर्ववेद को जादू टोना का वेद ही समझते रहे हैं । धन्य है उस महर्षि को जिसने हजारों वर्षों से लुप्त प्राय वेदभाष्य करने की कुञ्जी फिर से ढूंढ निकाल कर संसार के सामने बिना संकोच रख दी । जिससे अल्प बुद्धि पुरुष भी इन वाममार्गी भाष्यकारों और उनके शिष्य विदेशी भाष्यकारों के फैलाये हुए जाल में फंसने से बच गया है । और धन्य है उस महर्षि को जिसने वेदों पर

लगाये इन वाममार्गियों के कलंकों को धोकर वेद का स्वच्छ और पवित्र स्वरूप संसार के सामने रखकर वेदों का अपौरुषेय होना सिद्ध कर दिखाया और परमपिता परमात्मा की इस अमृतवाणी रूपी हीरे को कीचड़ से निकाल कर संसार के विद्वानों का मुकुट शिरोमणि बना दिया। और अब सभी विद्वान् महर्षि के इस साहस की सराहना कर रहे हैं। और महर्षि के कट्टर विरोधी भी इसी रास्ते को अपनाने पर विवश हो रहे हैं।

बोलो वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द की जय।

७. रिफार्मर-काण्ड

४५. भगवान् बुद्ध

१. भगवान् बुद्ध कपिलवस्तु के राजा शुद्धोधन के घर आज से २५ सौ वर्ष पहले पैदा हुए, उनका जन्म नाम सिद्धार्थ था। उनका पालन क्षत्रिय राजकुमारों की भांति हुआ, और शस्त्र-अस्त्र प्रयोग की पूरी शिक्षा दिलाई गई परन्तु उनके मन में शुरू से ही उदासीनता सी छाई रहती थी, बीमार को देखते तो सोचते क्या मैं भी बीमार हो जाऊंगा, और दुख भोग करूंगा। एक दिन बाजार में से एक मृत देह को श्मसान भूमि की ओर ले जाते हुए उसी मृत के सम्बन्धियों को विलाप करते देख कर इनके मन में फिर वही प्रश्न उठा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा, और मौत से बचने के लिए कोई उपाय ढूंढ़ना चाहिए। इस तरह वैराग्य की भावना उनके मन में तीव्र हो उठी। उनके पिता जी को जब पुत्र के ऐसे भाव पता लगे तो उन्होंने उसको गृहस्थ के बन्धन में बाँधना चाहा। अतः १८ वर्ष की छोटी आयु में ही उनका विवाह कर दिया गया। और इस तरह एक बार तो उनके उठते वैराग्य में बन्ध लगा दिया गया परन्तु भिन्न-भिन्न अवसरों पर बुढ़ापा, रोग और मृत्यु के हृदय-विदारक दृश्य उनको देखने को मिलते ही रहे जो उनके वैराग्य को ताजा करते रहते थे। विवाह के दस वर्ष बाद उनके घर एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ जिसका नाम राहुल रखा गया। जब इनको पुत्र होने का समाचार मिला तो उन्होंने कहा-"मेरे बन्धन और भी सुदृढ़ हो रहे हैं।" इस समय उनकी आयु २८ वर्ष की थी। अतः रात के अन्धेरे में राजमहल से निकल आए और वनों को चले गये। बौद्ध लोग इस घटना को महात्याग कहते हैं।

और

इसी तरह अपनी छोटी बहिन और अपने चाचा की मृत्यु हो जाने पर बालक मूलशंकर के मन में भी मृत्यु से बचने का उपाय ढूंढने की तीव्र इच्छा जाग उठी। अतः इन दोनों घटनाओं का अपने स्वलिखित जीवनचरित्र

में महर्षि ने जो वर्णन किया है वह निम्न प्रकार है—"एक दिन रात्रि के समय मैं अपने एक बन्धु के घर किसी उत्सव में सम्मिलित हुआ था कि इसी समय एक नौकर ने घर से आकर कहा-मेरी छोटी बहिन जिसकी आयु १४ वर्ष की थी हैजा रोग से बीमार हो गई है । मैं तुरन्त घर वापस आ गया, बहिन की बीमारी की चिकित्सा की गई परन्तु वह दो तीन घण्टों के अन्दर ही मृत्यु का ग्रास बन गई । सब घर वाले विलाप करने लग गये परन्तु मैं पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़ा रह कर चिन्ता-स्त्रोत में डूब गया और सोचने लगा कि जब सब को ही इस प्रकार मृत्यु का ग्रास बनना है तो मैं भी एक दिन मरूंगा परन्तु कोई ऐसा उपाय भी है जिससे मृत्यु पर विजय पाई जा सके । अतः मैंने वहीं खड़े संकल्प कर लिया कि मृत्यु पर विजय पाने का मार्ग जरूर ही ढूंढ़ निकालने का यत्न करूंगा ।" और इस घटना के थोड़े दिनों बाद उनके चाचा की मृत्यु हो गई, यह चाचा मूल जी को बहुत प्यार करते थे, तब वह वैराग्य जो बहिन की मृत्यु पर पैदा हुआ था परिपक्व हो गया। "कि जब संसार की सारी ही वस्तुएं अस्थिर और चंचल हैं तो ऐसी कौन वस्तु है कि जिसके लिए गृहस्थ में रहकर सांसारिक लोगों की भांति जीवन व्यतीत किया जावे ।" उसी दिन से जो कोई भी मुझ से मिलता उसी से यही पूछता कि मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का कोई उपाय है या नहीं । और जब सब ने ही सर्वसम्मति से यह निश्चय करा दिया कि योग-साधन से ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की जा सकती है, तब उन्होंने गृहस्थ त्याग कर योग-साधन करने का ही निश्चय कर लिया, और जब उनके पिता जी को अपने पुत्र के वैराग्य की बात मालूम हुई तो उन्होंने भी भगवान् बुद्ध के पिता की भांति भगवान् दयानन्द का विवाह कर देने का पक्का निश्चय कर लिया । और उनके विवाह की तैयारियाँ जोर शोर से शुरू कर दी गईं । मूलशंकर को भी ये बातें मालूम हो गईं । और जहां बुद्ध विवाह के बन्धन में बांध दिये गये, वहां बालक मूलशंकर विवाह से एक माह पहले ही पूरे २३ वर्ष की भरी जवानी की आयु में संवत् १९४६ में एक रात को घर त्याग कर जंगल को निकल खड़े हुए, और यह भगवान् दयानन्द का महा त्याग था ।

२. घर से निकल कर सिद्धार्थ ज्ञान की खोज में संन्यासियों, विद्वानों और पण्डितों का सत्संग करते रहे परन्तु उनकी शिक्षा से उनको आत्मिक शान्ति न हुई, फिर उन्होंने ६ वर्ष गया नगर के पास उरुवेला नामक वन में

कठिन तपस्या की और लगातार व्रतों के कारण उनका शरीर सूख कर कांटा हो गया, परन्तु उनके मन को फिर भी शान्ति न हुई। फिर इन्होंने इस मार्ग का भी त्याग कर दिया, और गया के पास एक पीपल के पेड़ के नीचे समाधि लगा कर बैठ गये और ५० दिन इसी तरह समाधि में बैठे रहे। अन्त में इनको समाधि की हालत में सच्चे ज्ञान का प्रकाश मिला, उसी वृक्ष को बोधि वृक्ष कहते हैं, और उसी दिन से इनका नाम "बुद्ध" हो गया। और उन्होंने धर्म-प्रचार आरम्भ कर दिया।

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द भी घर से निकलकर संन्यासियों, विद्वानों, और पण्डितों का सत्संग करते रहे और योगियों के सत्संग से योग-क्रियाओं को करते पूरे १४ वर्ष तक तप करते रहे और अन्त में मथुरा में गुरु विरजानन्द जी के पास आकर उन्हें आत्मिक शान्ति हुई। और विद्या की जो प्यास थी वह बुझ गई और गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने धर्म-प्रचार आरम्भ कर दिया।

३. अपने प्रचार काल में जब भगवान् बुद्ध काशी में पधारे तो काशी के पण्डितों ने उनको शास्त्रार्थ में जीतने का और कोई उपाय न देखकर एक दुष्टा स्त्री उनका सत्य व्रत भंग करने को भेजी परन्तु काशी के पण्डितों की यह चाल भी वृथा गई। और वह दुष्टा स्त्री भगवान् बुद्ध के सत्संग से सचमुच देवी बन गई।

और

४. इसी तरह जब भगवान् दयानन्द काशी में प्रचारार्थ पधारे और काशी में पण्डित शास्त्रार्थ करके हार गये, और विद्या में अपने आप को महर्षि के तुल्य न पाकर उनको भी बदनाम करने के लिए एक दुष्ट स्त्री को उनके पास भेजा और वह दुष्ट स्त्री भी भगवान् दयानन्द के सत्संग में आकर देवी बन गई, अपनी दुष्टता को बिल्कुल त्याग दिया।

५. एक जगह महात्मा बुद्ध प्रचारार्थ गये तो उनके डेरे पर एक व्यक्ति आकर गालियां देने लगा, महात्मा गालियां सुनते रहे और मुस्कराते रहे, जब गालियाँ देकर थक गया, तब उसको प्रेम से अपने पास बिठा लिया, और उपदेश दिया, इस पर वह जन बहुत शर्मिन्दा हुआ और कहने लगा। कि महाराज उस वक्त आपने मुझको गाली देने से रोका क्यों नहीं, तब महात्मा बुद्ध ने कहा—कि जब तक तुम्हारे अन्दर गालियां भरी हुई थीं, तब तक उपदेश

के लिए वहां स्थान भी न था, अब तुम्हारा अन्दर गालियों से खाली हो गया है, और अब उपदेश समाने की जगह बन गई है, इसलिए अब उपदेश दिया है ।

और

महर्षि दयानन्द जी को भी लोग गालियां देते थे । वे भी मुस्करा कर टाल जाया करते थे, परन्तु कानपुर निवास के समय एक गंगा-पुत्र प्रतिदिन उनके डेरे पर आकर सामने खड़ा होकर गालियां दिया करता था । स्वामी जी के पास आने वाले सज्जन स्वामी जी के लिए फल मिठाई वगैरह लाया करते थे, और स्वामी जी सब आने वालों में बांट देते थे, एक दिन कुछ फल मिठाई बच रही, महाराज विचार करने लगे, कि यह किसको दें । तब उसी समय वह गंगा-पुत्र आ गया । और गालियां देने लगा, जब वह गालियां देता रहा, महाराज मुस्कराते रहे जब गालियां देकर थक गया तो महाराज ने बड़े प्रेम से उसको पास बुला कर मिठाई और फल दिये, और कहने लगे कि प्रतिदिन इसी समय यहां आ जाया करो, और मिठाई फल ले जाया करो, महर्षि के ऐसे व्यवहार से इसके अन्तर आत्मा में इतनी ग्लानि उत्पन्न हुई कि वह जार जार रोने लगा, श्री चरणों में गिर पड़ा और क्षमा-प्रार्थना करने लगा, परन्तु महाराज ने कहा कि भाई जब हमने आपकी दी गई गालियां स्वीकार ही नहीं कीं तो क्षमा किस बात की दें ।

५. महात्मा बुद्ध ने अपने ग्रन्थ धम्मपद में अविद्या को सब से बड़ी मलीनता का नाम दिया है । (बौद्धों और जैनों के आदि ग्रन्थ संस्कृत में न होकर पाली जबान में यानि उस वक्त की प्रचलित भाषा में लिखे गये हैं) धम्मपद में लिखा है–

ततो मलामल तरं अवज्ञा परं मलं ।
एतं मलं पलत्वा न नमल होथ भखुओ ॥

अर्थात् जितनी मलीनताएं हैं, उन सब में से अविद्या परम मलीनता है, इसलिए ऐ भिक्षुओ इस मल को छोड़ कर पवित्र बनो ।

और

आर्यसमाज के ८वें नियम में महाराज ने लिखा है कि विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश करना चाहिए ।

महर्षि सारी आयु अविद्या अन्धकार रूपी परम मलीनता का नाश

करते रहे ।

६. भगवान् बुद्ध जन्म से वर्ण नहीं मानते थे, परन्तु कर्म से ही मानते थे । धम्मपद में लिखा है—कोई पुरुष जटाधारी होने से, गोत्र से, ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से ब्राह्मण नहीं बन जाता जिस मनुष्य में सत्य और धर्म पाये जाते हैं, वही पवित्र है, उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

और

महर्षि दयानन्द भी जन्म से वर्ण नहीं मानते थे वर्ण-व्यवस्था को गुण, कर्म, स्वभावानुसार ही मानते मनवाते और प्रचार करते थे, कि जन्म गत वर्ण-व्यवस्था तो मरण-व्यवस्था है इसने देश का विनाश कर दिया है।

७. महात्मा बुद्ध ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया, उनको चार महासत्य कहते हैं । १. यह जीवन दुःखमय है । २. यह संसार दुःख रूप है । ३. इस दुख का कारण वासनाएं हैं । ४. इन वासनाओं के मारने से दुःख दूर हो सकते हैं । और निर्वाण की प्राप्ति होती है, इस प्रचार कार्य के लिए उन्होंने भिक्षुओं के संघ स्थापित किये । इन संघों में प्रवेश करते समय ये तीन वाक्य कहे जाते हैं । १. बुद्धं शरणं गच्छामि । २. धर्म्मं शरणं गच्छामि। ३. संघं शरणं गच्छामि । और पीले वस्त्र पहन कर प्रचार कार्य किया करते थे परन्तु उस प्रचार से क्षात्र धर्म का ह्रास हो गया और आम लोग दुनिया को दुःखों का घर समझ कर त्याग करके भिक्षु बनने लगे, स्त्रियां भिक्षुणियां बन गईं । महाराज अशोक ने बुद्ध धर्म ग्रहण करके इसका बहुत प्रचार किया। उसने अपने लड़के और लड़की को भिक्षुणी बनाकर इस धर्म का प्रचार कराया, और इस धर्म का प्रचार पश्चिम में ईरान, सीरिया, ईराक, खुरासान । दक्षिण में लंका । पूर्व में बरमा, तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया, स्याम, कम्बोडिया आदि में हो गया था । परन्तु क्षात्र धर्म के ह्रास हो जाने से इस्लाम का एक भी हमला सहन न करके ईरान, सीरिया ईराक, खुरासान, अफगानिस्तान सब मुसलमान बन गये । और भारत में भी सिन्ध प्रदेशों में जहाँ बुद्ध धर्म का प्रचार था, मुसलमानों का मुकाबला न हो सका । बुद्ध भगवान् ८० वर्ष की आयु में गोरखपुर जिला के किसी नगर में निर्वाण प्राप्त कर गये ।

और

महर्षि दयानन्द ने वेद के अनुसार यह सिद्धान्त सिद्ध किया कि इस जीवन को, इस संसार को सुखमय या दुःखमय बनाना हमारे अपने बस की

बात है परन्तु परमेश्वर तो स्वयं सुखस्वरूप है । उस सुखस्वरूप परमेश्वर का यह संसार भी सुखस्वरूप ही है । मनुष्य अपने कुकर्मों से इसे दुःखमय बना लेता है इसलिए इसको सुखमय बनाया जा सकता है । और जहां बुद्ध भगवान् ने वेदों को न पढ़ कर वेदों में वर्णित यज्ञों के स्वरूप को न जान कर उनकी मान्यता न की बल्कि उनका खण्डन ही किया । वहाँ महर्षि ने वेदों को पढ़कर इनका सत्य स्वरूप संसार के सामने रख कर वेदों में वर्णित यज्ञों से ही संसार का कल्याण प्रदर्शित किया । और महर्षि ५९ वर्ष की आयु में अजमेर नगर में निर्वाण प्राप्त कर गए । महर्षि ने क्षात्र धर्म का पुनः स्थापन किया । साधु और भिक्षु बनने की प्रवृत्ति का पुरजोर खण्डन किया ।

४६. भगवान् महावीर

१. वर्धमान महावीर जैन मत के संस्थापक और २४वें, तीर्थङ्कर माने जाते हैं । इनका जन्म नाम वर्धमान था । वे क्षत्रिय राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे । उनकी माता का नाम त्रिशला था, इनका जन्म आज से २५६५ वर्ष पहले (गौतम बुद्ध से २५ वर्ष पहले) 'बिहार प्रान्त के कुण्ड ग्राम में हुआ । इनको भी बीमारी, बुढ़ापा, मौत देखकर दुःख हुआ । इनका विवाह बाल-अवस्था में ही हो गया था । ३० वर्ष की आयु में गृहस्थ छोड़कर वनों में तपस्या करने चले गये । इनके समय में वाममार्ग का बहुत जोर था । और वाममार्गी यज्ञों में पशुओं की बलि दिया करते थे । इससे उनके मन में घोर आन्दोलन जाग उठा । और पूरे बारह वर्ष तक तपस्या करके ४२ वर्ष की आयु में उन्होंने अपने सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ कर दिया । और वे महावीर अथवा जिन यानि महाविजेता कहलाने लगे । और उनके सम्प्रदाय का नाम जैन पड़ा, बाकी जीवन उन्होंने मगध और उसके आस पास के इलाके में जैन मत का प्रचार किया । ७४ वर्ष की आयु में जिला पटना के पावर नामी स्थान पर उनका दीवाली के दिन देहान्त हुआ । महावीर स्वामी न तो परमात्मा को मानते थे और न ही वेदों को ही ईश्वरीय ज्ञान मानते थे । वे तप त्याग और प्रायश्चित्त की शिक्षा दिया करते थे । जन्म से जात-पांत छूत-छात के भी विरोधी थे। 'अहिंसा परमो धर्मः' कह कर अहिंसा पर उन्होंने बहुत बल दिया है । इसलिए जैन साधु नंगे पांव चलते हैं और मुँह पर पट्टी बांधते हैं । हाथ में चंवर रखते हैं, उनके दो फिरके हैं । एक दिगम्बर और दूसरा श्वेताम्बर । दिगम्बर लोग

तीर्थङ्करों की नग्न मूर्तियों की पूजा करते हैं। दूसरे सफेद कपड़े पहनते हैं और अपनी मूर्तियों को भी सफेद कपड़े पहनाते हैं। और वे नंगे रहना बिल्कुल अनुचित समझते हैं। महावीर स्वामी के प्रचार से भी क्षात्र धर्म की बहुत हानि हुई थी।

और भगवान् दयानन्द

महर्षि दयानन्द जी ने भी यज्ञों में पशु-बलिदान को वेद-विरुद्ध ठहरा कर उनका जर्बदस्त खण्डन किया। और जहां गौतम बुद्ध और महावीर स्वामी ने वेदों को न पढ़ कर केवल अपने अनुभव से, पशुबलि और जन्म की जात-पांत या छूत-छात का खण्डन किया, वहां महर्षि जी ने वेदों को पढ़कर और वेदों के गलत तरजुमों के आधार पर चली हुई सब बातों का घोर खण्डन किया। और जहां महावीर स्वामी ने अहिंसा को परम धर्म अपनाया, वहां महर्षि जी ने वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म घोषित किया। जिन वेदों में अहिंसा आदि सब ही मुख्य मुख्य कर्तव्यों का विधान पूरी तरह मौजूद है। और सारे संसार के सामने अपने इस सिद्धान्त को अत्यन्त उत्तमता और दिलेरी से रखने में कामयाब हो गये, और महावीर स्वामी की भांति महर्षि दयानन्द जी भी दीवाली के दिन निर्वाण प्राप्त कर गये। स्वामी जी ने वेदों के आधार पर क्षात्र धर्म को उच्च धर्म कह कर प्रचार किया और लोगों को विदेशी गुलामी से आजाद होने के लिए उत्साहित करते रहे। जिससे उत्साह प्राप्त करके देश की स्वतन्त्रता के लिए घोर प्रयत्न हुए और आज देश स्वतन्त्र हो चुका है।

४७. कुमारिल भट्ट

तकरीबन २३०० वर्ष हुए जब कि सारे भारतवर्ष में बुद्ध धर्म फैल चुका था। तमाम राजा महाराजा बुद्ध धर्म स्वीकार कर चुके थे। और बुद्ध धर्म के न मानने वालों पर तरह-तरह की सख्तियां की जा रही थीं। और मामूली अपराधों के बदले गैरबौद्धों को सख्त सजाएं दी जाती थीं, जिससे आम जनता डर के मारे बौद्ध धर्म स्वीकार करती चली जा रही थी, कि कुमारिल भट्ट का जन्म हुआ। विद्या में निपुण होकर एक दिन वे कौशाम्बी के शहर में आये और गंगा-स्नान के लिए प्रातः ही गंगा तट पर पहुंच गये, तो किसी स्त्री की आवाज उनके कानों में पहुंची "किं करोमि कुत्र गच्छामि

को वेदानुद्धरिष्यति ।" क्या करूं कहाँ जाऊँ कौन वेदों की रक्षा करेगा । कुमारिल भट्ट यह शब्द सुनकर खड़े हो गये, इधर-उधर देखा कोई नजर नहीं आया तो ऊँची आवाज में कहने लगे-"ऐ देवी तू मत समझ कि तेरी आवाज नष्ट हो गई है । तेरी आवाज ने मुझे घोर निद्रा से जागृत कर दिया है और मैं अब जी जान से वैदिक धर्म का प्रचार करूंगा । उस दिन से कुमारिल भट्ट मैदान में निकल खड़े हुए और बौद्ध सिद्धान्तों की धज्जियाँ उड़ाने लगे। बौद्ध पण्डितों को जब कुमारिल भट्ट की इन सरगर्मियों का पता चला, तो उन्होंने महाराज हर्षवर्धन के पास उनकी शिकायत की, और कुमारिल भट्ट को गद्दार बना कर उनको संगीन सजा देने की मांग की । परन्तु महाराज हर्षवर्धन बड़े विद्वान् थे, उन्होंने बहुत विचार कर यह फैसला किया कि बात किसी शास्त्रार्थ के द्वारा ही तय होनी चाहिए । अतः महाराज की मन्शा के अनुकूल प्रयागराज में एक बहुत बड़े शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया । यह शास्त्रार्थ महाराज हर्षवर्धन की अध्यक्षता में हुआ । एक तरफ कुमारिल भट्ट अकेले थे, और दूसरी तरफ बौद्ध भिक्षु बहुत बड़ी संख्या में थे । बौद्ध भिक्षुओं ने बड़ा शोर गुल मचा दिया और कुमारिल भट्ट की एक न चलने दी । उसकी दलिलों को हँसी मजाक में उड़ा कर उसको शर्मिन्दा करते रहे। और अन्त में बौद्ध लोगों ने महाराज हर्षवर्धन की मौजूदगी में कुमारिल भट्ट के पराजय की घोषणा कर दी । जिसका कुमारिल भट्ट ने अपना बहुत बड़ा अपमान समझा और इस अपमान के कारण Demorolise हो गया, और इस नित्य प्रति की अपकीर्ति से बचने के लिए दीवाली के रोज चिता बनाकर ओं नाम का जाप करते हुए भस्म हो गये । अचानक उसी दिन स्वामी शंकराचार्य मौके पर पहुंच गये, और उन्होंने कुमारिल भट्ट को आत्महत्या करने से मना भी किया परन्तु कुमारिल भट्ट न माने, उन्होंने शंकर स्वामी से केवल यही कहा कि मुझे प्रसन्नता है कि मेरे बाद बौद्धों के पाखण्ड को समाप्त करने वाला कोई मनुष्य बाकी है । जहां मुझे इस बात पर प्रसन्नता है, वहां मुझे इस बात का दुःख भी है कि हमारे प्राचीन शास्त्रों में इस कदर मिलावट कर दी गई है कि झूठ और सत्य के मध्य अन्तर ही नहीं रहा । और इसके कारण सारे देश में फूट ही फूट है । हर कोई अपना डेढ़ ईंट का मन्दिर अलग बनाने में लगा हुआ है, इसलिए जब तक सारे देश में जागृति नहीं आती और ईश्वर विश्वास पैदा नहीं होता देश का भाग्य कदापि बदल नहीं सकता । मैंने लोगों

को वैदिक धर्म का रास्ता दिखलाने का प्रयत्न किया, मगर अफसोस कि लोगों ने मुझे मिलवर्तन न दिया और अब मैं यही उत्तम समझता हूं कि नित्य प्रति की अपकीर्ति से मुक्ति प्राप्त करने के लिए स्वयं को समाप्त कर दूं। ताकि नित्य प्रति की परेशानी जाती रहे, यह कुमारिल के अन्तिम शब्द थे जो उन्होंने मायूसी की हालत में आत्महत्या करते समय शंकर स्वामी से कहे थे।

और

कुमारिल भट्ट की तरह महर्षि दयानन्द जी को भी यह ज्ञान हो गया था कि हमारे प्राचीन शास्त्रों में इस कदर मिलावट हो चुकी है कि सत्य झूठ की पहचान ही नहीं हो सकती। और वह भी इसी परिणाम पर पहुंचे थे, कि इसी मिलावट के कारण देश में फूट पड़ी हुई थी। अतः उन्होंने एक ऐसा सिद्धान्त कायम कर लिया जिससे सत्य तथा झूठ की आसानी से परख हो सके, उन्होंने घोषणा कर दी कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। और वेद ही स्वतः प्रमाण हैं। वेदानुकूल होने से ही अन्य शास्त्रों का प्रमाण है, जहां और जिस स्थान पर उनमें वेद के प्रतिकूल कोई श्लोक या बात है वह प्रमाणित नहीं है। इसी सिद्धान्त की बिना पर उन्होंने दिग्विजय प्राप्त की। किसी को उनके सामने ठहरने की हिम्मत न हुई। और यह बात काशी शास्त्रार्थ में बिल्कुल सिद्ध हो गई कि जब काशी के राजा ने काशी के पण्डितों को कहा कि एक दण्डी संन्यासी आए हैं, और वे मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं। और आपसे शास्त्रार्थ करना चाहते हैं तो सब पण्डितों ने एक जबां होकर राजा को कहा कि वे तो वेद को ही स्वतः प्रमाण मानते हैं, और हमने वेद को देखा ही नहीं तो राजा बड़ा हैरान होकर उनसे कहने लगा कि फिर इतनी देर आप लोग हमें धोखे में ही रखते रहे कि मूर्तिपूजा वेदानुकूल है। तब राजा ने कहा कि शास्त्रार्थ तो अवश्य होना चाहिए और जिस तरह भी हो उसको शिकस्त देनी चाहिए तो पण्डितों ने कहा कि हम को १५ दिन की मोहलत मिल जाय तो हम वेद को कुछ कुछ देख तो लें। महाराज ने महर्षि दयानन्द को कहा कि शास्त्रार्थ १५ दिन के बाद हो, परन्तु अवश्य हो, महाराज ने कहा अवश्य होगा। और फिर १५ दिन काशी के सब बड़े बड़े पण्डितों ने खूब तैयारी की। उधर अकेला लंगोट बन्द संन्यासी, और इधर सारी काशी के समृद्ध पण्डित। अतः १६ नवम्बर १८६९ मंगलवार सायं चार बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। महाराजा हर्षवर्धन की भांति महाराजा

काशी इसके प्रधान बने, अनुमान से ५०,००० मनुष्यों की हाजरी में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, और काशी के सभी प्रसिद्ध पण्डित जिनमें स्वामी विशुद्धानन्द, बालशास्त्री, ताराचरण राजपण्डित, पं० शिवसहाय, माधव आचार्य आदि प्रमुख थे। अकेले लंगोट बन्द दयानन्द के सामने आए, और दयानन्द के एक एक प्रश्न से निरुत्तर होकर बैठते गये, परन्तु महाराज काशी और सब पण्डित येन केन प्रकारेण स्वामी दयानन्द की पराजय की घोषणा करना चाहते थे। इसलिए जब शास्त्रार्थ करते शाम के सात बज गये, और काफी अन्धेरा हो गया तो काशी के पण्डितों ने एक फटा पुराना पत्रा स्वामी जी के सम्मुख रख कर कहा—कि इस में पुराण पढ़ने की आज्ञा है। गोया अपने मुंह से मूर्तिपूजा को न सिद्ध कर सकने का इकबाल करके अब पुराण की तरफ आये। और जब स्वामी जी अभी वह पत्रा धीमी लालटेन की रोशनी में देखने ही लगे थे, कि स्वामी विशुद्धानन्द और महाराज काशी उठकर खड़े हो गये, और ताली बजा दी, कि दयानन्द हार गये, बस फिर क्या था इतनी बड़ी भीड़ में जिसमें काशी के पण्डित ही नहीं, बल्कि पण्डितों के पालतू गुण्डे भी मौजूद थे, सब ने स्वामी जी पर ईंट, पत्थर, गोबर, जूते फेंकने शुरू कर दिये, और भरपूर अपमान करने लगे, परन्तु कोतवाल जगन्नाथ ने महर्षि के सामने खड़ा होकर उनको बचा लिया, वरना पण्डित और गुण्डे तो उनको ठिकाने लगाने की साजिश करके ही आए थे, कुमारिल भट्ट की तरह ऋषि दयानन्द जी को इस शास्त्रार्थ में घोर अपमान सहन करना पड़ा, परन्तु महर्षि कुमारिल भट्ट की तरह Demoralise न हुए। और इस दिल शकनी और बदनामी के कारण न सिर्फ यह कि कुमारिल भट्ट की तरह आत्महत्या को न तैयार हुए बल्कि इस शास्त्रार्थ के बाद पूरे चार महीने उसी काशी नगरी में रहकर लगातार जोरदार खण्डन, मूर्तिपूजा का करते रहे। और बार बार पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे, परन्तु किसी भी पण्डित के अन्दर महर्षि के सामने आने की हिम्मत न हुई।

स्वामी जी ने अपने इस घोर अपमान को अपमान न समझा था। फिर भी स्वामी जी काशी में इसके बाद छः बार आए। और हर समय पण्डितों को न सिर्फ जबानी बल्कि विज्ञापनों द्वारा जो उनके द्वारों पर लगा दिये जाते थे शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करते रहे परन्तु जब तक महर्षि जीते रहे किसी भी पण्डित की जुर्रत न हुई कि उनके सामने बात भी कर सके। जिस अपमान

को सहन न करके बदनामी के भय से कुमारिल भट्ट ने दीवाली के दिन चिता बनाकर आत्महत्या कर ली । उसी अपमान बल्कि उससे भी अधिक अपमानों को सहन करते हुए महर्षि सारे भारतवर्ष में घूम घूम कर वैदिक धर्म का प्रचार करते रहे, और सन् १८८३ में दीवाली के दिन ही, "ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो तैने अच्छी लीला की और ओ३म् का जाप करते हुए प्राण त्याग दिये ।" अगर महर्षि भी कुमारिल भट्ट की तरह अपमान को सहन न कर पाते और आत्महत्या कर लेते तो इतना महान् कार्य जो महर्षि ने इस शास्त्रार्थ के बाद करके देश के अन्दर जागृति पैदा की । और प्राचीन ग्रन्थों के अन्दर मिलावटों को देखकर जो यह सिद्धान्त सिद्ध किया कि वेद स्वतः प्रमाण हैं । कायम करके देश में एकता की लहर पैदा कर दी, यह कैसे हो सकता था । वैदिक धर्म का उद्धार करने का यत्न कुमारिल भट्ट ने भी किया, और महर्षि दयानन्द जी ने भी परन्तु कुमारिल भट्ट अपमान न सहन कर असफल हुए । और महर्षि अपमान सहन कर अपने मिशन में पूरी तरह सफलता प्राप्त कर पाये और शायर के शब्दों में इस प्रकार है—

पैगाम वेद पाक दे के, खासो आम को ।
दुनिया से भी गये तो दीवाली की शाम को ॥

बोलो वेद उद्धारक महर्षि दयानन्द की जय ।

४८. स्वामी शंकराचार्य

१. अनुमान से २३०० वर्ष का समय हुआ कि केरल प्रान्त के एक छोटे से गांव, कालड़ी में स्वामी शंकराचार्य का जन्म हुआ । उनके पिता का नाम शिब्बो गुरु जी और माता का नाम सुभद्रा था । उनके पिता शिव मन्दिर के पुजारी थे । इसलिए उनका नाम शंकर रखा गया । चार पांच साल की आयु में उनके पिता जी स्वर्गवास हो गए । पांच वर्ष की आयु में उनका यज्ञोपवीत हुआ, और १२-१४ वर्ष की आयु में उन्होंने वेद, शास्त्र, उपनिषद् बहुत से पढ़ लिये और उनकी विद्वत्ता की धूम मच गई । १८-१९ वर्ष की

नोट—स्वामी शंकराचार्य जी का जन्म स्थान कालड़ी का ग्राम सारे का सारा ईसाई मत में प्रवेश कर चुका है । अतः उस ग्राम के ईसाइयों ने स्वामी शंकराचार्य की जन्म शताब्दी मनाने के उत्सव के लिए पण्डाल लगाने की जगह देने से भी इन्कार कर दिया ।

आयु में माता ने उनकी शादी करनी चाही परन्तु उन्होंने माता जी से संन्यास धारण करने की आज्ञा मांगी । जिस पर मां राजी न हुई । एक दिन अपनी माता के साथ नदी स्नान को गए । नदी में उतरे तो मगरमच्छ ने उनका पांव पकड़ लिया । इस पर उन्होंने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया । माँ किनारे पर बैठी जारो जार रो रही थी । और भगवान् से प्रार्थना करने लगी कि अगर मेरा बेटा बच जावे तो मैं उसे संन्यासी बनने की आज्ञा दे दूंगी । दैवकृपा से शंकर मगरमच्छ की पकड़ से छूट कर किनारे आ गए और माता ने संन्यासी बनने की आज्ञा दे दी । लेकिन जाते समय माता से प्रतिज्ञा की कि जब आप मुझे याद करेंगी मैं आ जाऊंगा । अतः जब उनकी माता बहुत बीमार हुई और उसने याद किया तो वह माता जी के पास पहुंच गए और उसका दाह कर्म संस्कार आदि अपने हाथों से कर दिया ।

और

संवत् १८८१ तदनुसार १८२४ को गुजरात प्रान्त के टंकारा नगर में कर्षन जी तिवारी के घर बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मूलशंकर रखा गया । पांच वर्ष की आयु में विद्या आरम्भ की और ८वें वर्ष में यज्ञोपवीत हुआ । उनके पिता जी भी शैव भक्त थे । और १४ वर्ष की आयु में मूल जी ने भी वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि बहुत से ग्रन्थ पढ़ लिये थे । जब उनकी भी आयु २२ वर्ष की हुई तो उनके विवाह का सब सामान तैयार होने लगा। और उनको गृहस्थ के बन्धन में बांधने की पूरी तैयारी हो गई परन्तु उनके अन्दर वैराग्य की तीव्र अग्नि जग उठी । और पूरे २२ वर्ष की पूर्ण यौवन अवस्था में एक रात को घर से निकल खड़े हुए । और शंकर स्वामी की भांति ब्रह्मचर्य आश्रम से ही २४ वर्ष की आयु में दयानन्द संन्यासी बन गए परन्तु जहां शंकर स्वामी माता के मोह में बंधे रह कर माता की बीमारी पर घर आ गए और उसका दाह कर्म संस्कार कराया वहां दयानन्द जी ने घर से निकलने के पश्चात् न केवल यह कि कभी अपने घर की ओर मुंह ही किया बल्कि किसी मनुष्य को भी अपने घर, अपने जन्म गांव का, अपने माता-पिता का नाम का भी पता न दिया था ।

२. जब शंकर स्वामी मैदान में निकले उस समय सारे देश में बुद्ध मत का प्रचार हो चुका था । और कुमारिल भट्ट बुद्ध मत का निराकरण करने में असफल हो कर आत्मघात करके शरीर त्याग चुके थे, स्वामी

शंकराचार्य व्याकरण आदि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन आदि नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है। इनको किसी तरह से हटाना चाहिए, तब उन्होंने विचारा कि उपदेश और शास्त्रार्थ से यह कार्य सिद्ध होगा, ऐसा विचार करके उज्जैन नगरी में आए। वहां उस समय सुधन्वा राजा था। जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था, वहां जा कर वेद का उपदेश करने लगे, और राजा से मिल कर कहा कि आप जैन मत को मानते हैं, इसलिए आप मेरा जैन पण्डितों से शास्त्रार्थ करवाइए। इस प्रतिज्ञा पर कि जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कर लें। यद्यपि सुधन्वा राजा जैनमत स्वीकार कर चुका था फिर भी संस्कृत के ग्रन्थ पढ़ने से अभी उसके अन्दर पक्षपात पैदा न हुआ था। और वह सत्य ग्रहण की इच्छा वाला था। जब शंकराचार्य ने यह प्रस्ताव उनके सामने रखा तो सुधन्वा ने कहा कि मैं अवश्य शास्त्रार्थ कराऊंगा। अतः दूर-दूर से जैनी पण्डितों को बुला कर शास्त्रार्थ कराया और इस शास्त्रार्थ में शंकर स्वामी विजयी हुए। तब सुधन्वा राजा और जैनी पण्डितों ने प्रतिज्ञा के अनुसार शंकर स्वामी का मत स्वीकार कर लिया। और फिर सुधन्वा राजा ने अपने मित्र राजाओं को कह कर स्थान-स्थान पर स्वामी शंकराचार्य के जैनियों से शास्त्रार्थ कराए और हर शास्त्रार्थ में जैनियों को पराजय का ही मुख देखना पड़ा, और इस प्रकार सुधन्वा आदि राजाओं ने शंकर स्वामी के सर्वत्र आर्यावर्त देश में घूमने का प्रबन्ध कर दिया। और उनकी रक्षा के लिए नौकर चाकर भी रख दिए, उसी समय से लोगों के फिर से यज्ञोपवीत भी होने लगे, और वेदों का पठन पाठन भी आरम्भ हो गया। स्वामी शंकराचार्य ने दस वर्ष तक सारे आर्यावर्त में घूम कर जैन धर्म का खण्डन इस जोर से किया कि अनुमानतः सारे भारतवर्ष से इसको निकाल बाहर किया।

और

महर्षि दयानन्द ने भी छोटी आयु में ही संन्यास ले लिया था। स्वामी शंकराचार्य जी को केवल बुद्ध जैन मत से ही शास्त्रार्थ करने पड़े थे, परन्तु महर्षि दयानन्द जी को बुद्ध, जैन, पौराणिक, मूर्तिपूजक, नवीन वेदान्ती, मुसलमान, ईसाई सब से ही शास्त्रार्थ करने पड़े और हर शास्त्रार्थ में शंकर स्वामी की भांति महर्षि जी भी विजय प्राप्त ही करते रहे। महर्षि जी ने भी

काशी के राजा को मिल कर कहा था कि मेरा शास्त्रार्थ पण्डितों से करवाओ। लेकिन काशी का राजा मूर्तिपूजक था । सुधन्वा राजा की भांति सत्य का उत्सुक न हो कर पक्षपाती था । उसने अपने पण्डितों से स्वामी जी का शास्त्रार्थ कराया परन्तु येन केन प्रकारेण स्वामी जी की हार की घोषणा करने का ही इस राजा के मन में विचार था, और उसी विचार से उसने शास्त्रार्थ में ताली बजाकर स्वामी जी की हार की घोषणा करके अपना पक्षपाती होना सिद्ध कर दिखाया था । स्वामी जी इस शास्त्रार्थ के बाद भी तकरीबन ४ महीने काशी में रहकर पण्डितों को पुनः पुनः शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे पर किसी पण्डित के अन्दर हिम्मत न हुई कि स्वामी जी के सामने आकर मूर्तिपूजा वेदानुकूल सिद्ध कर सके ।

२. स्वामी शंकराचार्य का शास्त्रार्थ मण्डन मिश्र के साथ हुआ जिसमें मण्डन की धर्मपत्नी भारती अध्यक्षा बनी । और कई दिन के शास्त्रार्थ के बाद मध्यस्थ ने शंकर स्वामी की विजय की घोषणा कर दी थी, अर्धाङ्गिनी होने के नाते विजय को अपूर्ण बताने और भारती के शास्त्रार्थ करने पर फिर भारती को भी विजय कर लिया । और दोनों बुद्ध मत को छोड़कर शंकराचार्य के बहुत बड़े सहायक बन गये ।

और

१. इसी प्रकार ३१।७।१८६९ कानपुर के स्थान पर महर्षि जी का शास्त्रार्थ पण्डित हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री के साथ मूर्तिपूजा के विषय पर हुआ था, और कानपुर के अंग्रेज कलेक्टर मिस्टर थेन इसके मध्यस्थ बने थे, इस शास्त्रार्थ में २४-२५ हजार मनुष्यों की संख्या थी। जब दोनों पण्डित स्वामी जी के प्रश्नों का उत्तर न दे सके, तो थेन साहब मध्यस्थ उठ खड़े हुए, और महर्षि जी से पूछने लगे कि आप किसको मानते हैं, महर्षि ने कहा मैं केवल एक ईश्वर को मानता हूं । तब साहब ने पूछा फिर आप आग में हवन क्यों करते हैं तो महर्षि ने उत्तर दिया, कि अग्नि सर्वत्र व्यापक है, और जो पदार्थ अग्नि में डाला जाता है, वह सूक्ष्म होकर सर्वत्र फैल जाता है । यह विज्ञान की बात है, हम आग की पूजा नहीं करते, और मध्यस्थ ने स्वामी दयानन्द जी की विजय की घोषणा कर दी ।

२. स्वामी शंकराचार्य के पास दो जैनी, जो ऊपर से आचार्य का मत ग्रहण कर चुके थे परन्तु भीतर से कट्टर जैन थे । अर्थात् कपट मुनि

थे, परन्तु शंकर स्वामी के विश्वस्त बने हुए थे, पास रहते थे। इन दोनों ने मौका पाकर शंकराचार्य को कोई ऐसी विष युक्त वस्तु खिला दी, जिससे उनको भूख मन्द पड़ गई और शरीर पर फोड़े फुंसी होकर ६ महीने के भीतर उनका शरीर छूट गया। उनकी आयु उस समय ३२ वर्ष की थी, और उनको केवल १० वर्ष ही प्रचार कार्य के लिए मिल सके थे।

और महर्षि दयानन्द

महर्षि जी को भी इसी प्रकार एक विश्वासपात्र रसोइये ने दूध में कांच पीसकर पिला दिया था, जिससे न केवल उनकी भूख मन्द पड़ गई, बल्कि बहुत बड़ी संख्या में दस्त भी आने लग गये। और उनके जिस्म में भी जहर के असर से फोड़े फुंसी निकल आये थे, और तीन महीने के भीतर ही भीतर उनका शरीर भी छूट गया था। अहो ! कैसी अनोखी रचना है, कि दोनों महापुरुषों के शरीर त्याग का कारण बिल्कुल एक जैसा ही था। शंकर स्वामी और दयानन्द स्वामी दोनों ही आजन्म ब्रह्मचारी रहे। दोनों ही शास्त्रार्थ में विजयी रहे और दोनों के, शंकर दिग्विजय, और दयानन्द दिग्विजय के नाम से ग्रन्थ प्रकाशित हुए। स्वामी शंकराचार्य ने केवल गीता और वेदान्त का ही भाष्य किया परन्तु स्वामी दयानन्द जी ने वेदों का भाष्य किया। स्वामी शंकराचार्य ने अपने ४ मठ स्थापित किये जो अब तक भी स्थापित हैं। और इन मठों के गद्दीनशीन शंकराचार्य ही कहलाते हैं परन्तु महर्षि दयानन्द जी ने अपने नाम से कोई मठ स्थापित न करके एक सार्वजनिक संगठन आर्य समाज के नाम से स्थापित किया। जो सहूलियतें राजा सुधन्वा और दूसरे राजाओं ने शंकर स्वामी का मत स्वीकार करके उनके प्रचार कार्य को सारे देश में फैलाने के लिए दीं, और हर तरह से मदद की और उनके प्रचार और रक्षा का प्रबन्ध किया और खर्च सहन किया। इनमें से कोई भी सहूलियत स्वामी दयानन्द जी को प्राप्त न थी, बल्कि उनको सारी आयु अकेले अपने आत्मविश्वास पर ही प्रचार कार्य करना पड़ा था, यदि स्वामी दयानन्द जी को ऐसी सहूलियतें प्राप्त हो जातीं, जैसी शंकर स्वामी को प्राप्त हुई थीं, तो महाराज इससे हजार गुना अधिक कार्य कर पाते जितना वह अब १९ वर्ष में कर पाये हैं।

४९. राजा राममोहन राय

सन् १७७४ में राजा राममोहन राय का जन्म बंगाल के एक पुराने विचारों वाले ब्राह्मण परिवार में हुआ था । अभी आप १५ वर्ष के बालक थे, कि आपने सन् १७७९ में मूर्तिपूजा के विरुद्ध एक पुस्तक लिखी इस पर इन्हें समाज से निकाल दिया गया । फिर उन्होंने अपने साथियों का एक जत्था काशी के पण्डितों के पास भेजा कि वेद के पुस्तक वहां से ले आवें, लेकिन काशी के पण्डितों ने इस जत्थे को वेद के बजाये उपनिषद् ही दिये, क्योंकि वेद तो काशी के पण्डित स्वयं नहीं पढ़े थे, देते कहां से । अत: जब वह जत्था वापस आया परन्तु वेद न ला सका तो राजा राममोहन राय को बड़ा खेद हुआ। वह पुराने बुरे रीति रिवाजों के कट्टर विरोधी थे, इसलिए उन्होंने अपने विचारों का प्रचार करने के लिए कलकत्ता में सन् १८२८ में ब्रह्मसमाज का संगठन कायम किया । आपने बड़ी हिम्मत से अपने विचारों का प्रचार करने का यत्न किया । देशवासियों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाने के लिए उन्होंने शिक्षा-प्रचार का पूरा प्रयत्न किया, और सामाजिक सुधारों के लिए भी पूरा यत्न किया । स्त्री-शिक्षा के लिए भी यत्नशील रहे और ब्राह्मणों की मुखालफत के बावजूद उन्होंने हिम्मत न हारी । सन् १८२९ में लार्ड विलियम वेंटिंग गवर्नर जनरल के समय में राजा राममोहन राय के प्रचार और प्रयत्न से एक कानून पास कराया गया जिस से सती होने की प्रथा बन्द हो गई। सन् १८३३ में इंग्लैंड में ५९ साल की उमर में इनकी मृत्यु हो गई ।

और

महर्षि दयानन्द जी भी गुजरात काठियावाड़ के एक पुराने विचार के ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे । और उनको भी १४ वर्ष की आयु में शिवरात्री व्रत के वक्त मूर्तिपूजा से घृणा हो गई थी । जिस कारण उन्होंने अपने प्रचार-काल में मूर्तिपूजा के विरुद्ध जबरदस्त संग्राम जारी रखा और सारे देश में घूम घूम कर और शास्त्रार्थ करके मूर्तिपूजा को अवैदिक सिद्ध किया । स्त्री-शिक्षा के महर्षि भी बहुत बड़े समर्थक थे और जहां राजा राममोहन राय बंगाल के ब्राह्मणों के विरोध में भी बड़ी हिम्मत और दिलेरी से अपनी रिफार्म के काम करते रहे । वहां महर्षि दयानन्द सारे भारतवर्ष के ब्राह्मणों के खिलाफ हिम्मत और दिलेरी से अपना प्रचार कार्य करते रहे । राजा राममोहन राय ने सन् १८२८ में कलकत्ता में ब्रह्मसमाज स्थापित की तो महर्षि दयानन्द ने सन् १८७५ में

आर्यसमाज की स्थापना की, स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए भी दोनों महापुरुषों ने यत्न किया और देशवासियों को स्वतन्त्रता का पाठ पढ़ाया था। राजा राममोहन राय जी को वेद न मिल सके थे, परन्तु महर्षि ने जर्मनी से वेद मंगवा कर वेदों का प्रचार पुनः बड़े जोर से किया। जिस की गूंज से भारत ही नहीं अपितु सारा संसार गूंज उठा। आप ने भी ५९ साल की उमर में शरीर छोड़ा था।

५०. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने सन् १८२० मंगलवार गांव वीरसिंह जिला मिदनापुर बंगाल में एक गरीब ब्राह्मण श्री ठाकुरदास वन्द्योपाध्याय के घर जन्म लिया। इनकी माता जी का नाम भगवती था, अपने गांव की पाठशाला में पढ़ते समय उनके गुरु उनकी मेधाबुद्धि से बड़े प्रभावित हुए। नौ वर्ष की आयु में सन् १८२९ में कलकत्ता संस्कृत कालेज में प्रविष्ट हो गये, बंगाल में छोटी आयु में विवाह करने का रिवाज था, इसलिए उनका विवाह भी १४ वर्ष की आयु में ही हो गया। उनकी बाल्यकाल से ही मूर्तिपूजा में श्रद्धा न थी। वे अपने जीवित माता-पिता की ही श्रद्धा से सेवा पूजा करना धर्म समझते थे। छोटी आयु में विवाह की रीति होने, और एक-एक मनुष्य के बहुत से विवाह होने से, बंगाल में विधवाओं की संख्या नित्य प्रति बढ़ती ही जा रही थी। और हिन्दुओं में विधवा-विवाह न होने से, मुसलमान हिन्दु विधवाओं को बहका फुसला कर मुसलमान बना लेते थे। जिससे हिन्दुओं की संख्या दिन प्रतिदिन घट रही थी और मुसलमानों की बढ़ रही थी। (जिसका परिणाम) अब बंगाल का आधा हिस्सा पाकिस्तान बन जाना प्रत्यक्ष है।) हिन्दु विधवाओं को देखकर विद्यासागर जी का मन व्याकुल हो उठा। २१ वर्ष की आयु में संस्कृत कालेज की सर्वोच्च विद्यासागर की डिगरी प्राप्त कर ली। उन दिनों संस्कृत कालेज में केवल ब्राह्मणों और वैद्यों के बालक ही प्रवेश हो सकते थे। विद्यासागर जी ने सब से पहले इस प्रथा के विपरीत आन्दोलन किया। और कालेज में दाखला सब के लिए खुल गया। फिर विद्यासागर जी के प्रयत्न से कई स्कूल खुल गये। स्त्री-शिक्षा के लिए भी उन्होंने बहुत प्रयत्न किया, और लड़कियों के लिए भी कई स्कूल खुलवाये और अब उनको स्पेशल एजूकेशन इन्स्पैक्टर बना दिया गया। सन् १८५७

में यंग साहब डायरैक्टर तालीम से अनबन होने पर आपने इस्तीफा दे दिया। फिर उन्होंने विधवा-विवाह के हक में आन्दोलन उठाया । कट्टर पन्थी ब्राह्मणों ने उनका बहुत विरोध किया परन्तु वे अपनी धुन के पक्के रहे । और उनके प्रचार से कई विधवाओं के विवाह होने शुरू हो गये । फिर उन्होंने ३० हजार पुरुषों के हस्ताक्षर करवा के एक मैमोरियल सरकार को पेश करके सन् १८५६ में विधवा-विवाह का कानून पास करवा दिया । जिसका नाम था-

The hindu widows re-marrige Act 1856.

विद्यासागर जी के परिश्रम से इस कानून के पास हो जाने पर लाखों विधवाएं मुसलमान होने से बच गईं । यदि यह कानून न बनता तो शायद सारा बंगाल ही पाकिस्तान बन जाता, विद्यासागर जी के जीवन में मनोरंजन भी बहुत था, और वे दूसरों के दुःख में दुःखी होते थे ।

२. जब विद्यासागर जी स्पेशल इन्स्पैक्टर थे तो इनको फर्स्ट क्लास का पास रेलवे का मिला करता था । एक बार दौरे पर जाने के लिए गाड़ी पर सवार हुए और फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठे थे । रंग इनका जरा काला था, दो अंग्रेज भी इस फर्स्ट क्लास के डिब्बे में आ गये । और विद्यासागर जी के दोनों बाजू के सीटों पर बैठ गये । उन्होंने यह समझ कर के यह काला कलूटा आदमी अमीर तो है जो फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बैठा है, परन्तु पढ़ा लिखा नहीं क्योंकि विद्यासागर जी बड़ा सादा लिबास पहना करते थे । इस पर एक अंग्रेज ने उनकी तरफ इशारा करके दूसरे अंग्रेज को कहा-Dog दूसरे ने जबाव दिया, Donkey इस पर विद्यासागर जी हंस पड़े, और एक ही फिकरे में एक को कुत्ता और दूसरे को गधा बना दिया I am glad to know between whom I am sitting यानि मुझे यह जानकर बहुत खुशी हुई है कि मैं किनके दरमियान बैठा हूं । इस हाजिर जवाबी पर दोनों अंग्रेज शर्मिन्दा होकर कमरे से बारह निकल गये ।

और

महर्षि दयानन्द जी जब कलकत्ता गये, विद्यासागर जी भी महाराज से मिले थे । और महर्षि के प्रचार कार्य की बड़ी प्रशंसा की थी । विद्यासागर जी की भांति महर्षि जी ने भी शिक्षा के द्वार सब के लिए खोल दिये थे, और स्त्री-शिक्षा का बड़ा जोर शोर से प्रचार किया था । महर्षि जी न केवल विधवा-विवाह का समर्थन करते थे बल्कि विधवा बनने के जो कारण थे,

उनका भी घोर खण्डन करते थे। छोटी आयु में विवाह, अनमेल विवाह, बहुविवाह, विद्यासागर जी का कार्य क्षेत्र बंगाल तक ही सीमित था परन्तु महर्षि ने सारे देश में घूम घूम कर इन सब कुरीतियों का खण्डन किया। और आप यह पढ़कर हैरान भी होंगे कि महर्षि जी के बाद आर्यसमाज को विधवा-विवाह और स्त्री-शिक्षा आरम्भ करने के लिए कितने ही शास्त्रार्थ करने पड़े थे, और सब से पहले जो कन्या महाविद्यालय जालन्धर में आर्यसमाज ने कायम किया था, उसकी बड़े जोर शोर से मुखालफत की गई थी। विद्यासागर जी की तरह महर्षि जी के वचनों में भी मनोरंजन बहुत बड़ी मात्रा में विद्यमान था। और उन्होंने भी अपने इस स्वभाव से बड़े बड़े अंग्रेजों को शर्मिन्दा कर दिया था।

२. आगरा के लाट पादरी विशप साहब ने महर्षि को कहा कि वैदिक ऋषियों को तो यह भी पता न था कि किसकी पूजा करनी चाहिए। जैसा कि-

"कस्मै दैवाय हविषा विधेम" से प्रकट होता है तो महाराज ने हँस कर उत्तर दिया। विशप साहब अंग्रेजों को वेद-विद्या का क्या पता है। यह गम्भीर विषय है। ब्रह्मचारी और योगी ही वेद-ज्ञान को समझने में समर्थ हो सकते हैं। जिस बात को लेकर आप यह कह रहे हैं कि वैदिक ऋषियों को अपने पूज्य देवता का पता न था, इसी वाक्य में उसका जवाब भी है, कि सुख स्वरूप परमात्मा की पूजा करें। इस पर लाट पादरी साहिब शर्मिन्दा होकर चले गये।

विद्यासागर जी और महर्षि जी में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-उद्धार की भावना प्रबल रूप में थी, और जिस प्रकार विद्यासागर जी विधवाओं के दुःख में दुःखी थे, इसी प्रकार महर्षि भी। अतः जब हरिद्वार कुम्भ पर प्रचार कर रहे थे तो एक दिन प्रचार करते करते लेट गये, और चन्द मिनटों के बाद उठ कर लम्बी सांस खेंच कर कहा-विधवाओं और गौओं की आह ने इस देश का सर्वनाश कर दिया है।

रिफ़ारमर काण्ड समाप्त।

***

८. भक्त-काण्ड

५१. भक्त प्रह्लाद

बन्दे को खुदा मत कहो बन्दा खुदा नहीं ।
लेकिन खुदा के नूर से बन्दा जुदा नहीं ॥

प्रह्लाद भक्त का पिता हिरण्यकश्यप अपने आप को परमात्मा समझता था, और राजा होने के कारण प्रजा से परमात्मा रूप में अपनी पूजा करवाता था । प्रह्लाद भक्त जब बड़ा हुआ तो उसने अपने पुत्र को भी यही आज्ञा दी, परन्तु प्रह्लाद ने मनुष्य को परमात्मा मानने से इन्कार कर दिया । इस पर प्रह्लाद भक्त को अपने पिता को यानी मनुष्य को परमात्मा न मानने के कारण पहाड़ों पर से गिराया गया, परन्तु वह ईश्वर की कृपा से बच गया ।

२. दूसरी बार उसको आग में जलाने का षड्यन्त्र रचा गया । अतः उसकी फूफी होलिका ने अपने भाई को कहा कि मेरे पास एक कपड़ा है, जिसको यह वरदान है कि जिस पर यह कपड़ा होगा, वह आग में नहीं जलेगा, अतः प्रह्लाद भक्त को होलिका के साथ चिता बनाकर बिठा दिया गया, परमात्मा की करनी ऐसा हुआ कि वह कपड़ा होलिका के ऊपर से उड़ कर प्रह्लाद के ऊपर आ गया और इस तरह होलिका जल गई, और प्रह्लाद भक्त बच गया ।

और

प्रह्लाद भक्त की तरह महर्षि दयानन्द भी किसी मनुष्य को परमात्मा नहीं मानते थे । और मनुष्य को परमात्मा न मानने का उपदेश भी देते थे, बल्कि मनुष्य के परमात्मा न होने का बल पूर्वक खण्डन करते थे । जिस कारण बहुत से वैरागी साधु जो राम को ईश्वर का अवतार मानते हैं उनके बरखिलाफ हो गये । उनको जान से मार डालने के दर पे रहने लगे ।

१. एक बार ५, ६ वैरागी साधु महर्षि को पहाड़ी पर से जहां वह एक जगह गंगा के तट पर सो रहे थे, उठा कर नीचे गंगा में फैंकने के इरादे

से पहाड़ी पर चढ़ने लगे, जब वे महर्षि के नजदीक पहुंचे तो उनके पांव की आहट पाकर महाराज जाग उठे और जोर से हुंकार लगाई तो साधु नीचे उतर आये, और वे इस तरह बच गये ।

२. एक बार स्वामी जी एकाएकी घूमते थे तो एक स्थान पर जब वे अवतारवाद का खण्डन कर रहे थे, कि कुछ वैरागी साधु उनकी जान लेने के दर पै हो गये, रात पड़ने पर महर्षि एक खाली पड़ी हुई घास फूस की कुटिया में सो गये, वैरागियों ने मौका पाकर कुटिया के द्वार पर और घास फूस इकट्ठा करके कुटिया को आग लगा दी, आग सारी कुटिया में बहुत जल्द फैल गई, महर्षि आग की गर्मी से जाग पड़े और कुटिया का छप्पर जो अभी आग से बचा हुआ था उठा कर बाहर निकल आए । इस तरह ईश्वर की दया से बच गये, वरना शत्रुओं ने तो प्रह्लाद भक्त की भांति उनको पहाड़ से गिराने और आग में जला देने में कोई कसर उठा न रखी थी ।

जा को राखे साईंयां मार सके न कोय ।
बाल न बांका कर सके जो सब जग वैरी होय ॥

५२. भक्त कबीर

बनारस में भक्त कबीर का जन्म सन् १४५६ में हुआ, उनके पिता का नाम नीरू था, और माता का नाम नेमा था । वे कपड़े बुनने का काम करते थे, संस्कारी पुरुष थे । छोटी आयु से ही ईश्वरभक्ति में रत रहते थे, स्वामी रामानन्द जी के चेले थे, बड़े होकर दोहे बना कर ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे, मूर्तिपूजा, तीर्थ, जन्तर-मन्तर, आदि कुरीतियों का खण्डन करते रहे । मूर्तिपूजा के विषय में उनके दो दोहे निम्नलिखित हैं-

पत्थर घड़के मूरत कीनी देके छातौ पाये ।
जो यह मूर्त सांची होंय तो घड़नहारे को खाये ॥
पत्थर पूजे हरि मिलें तो हम पूजें पहाड़ ।
इस पत्थर से चक्की भली जो पीस खाये संसार ॥

और

"न तस्य प्रतिमा अस्ति" यजुर्वेद और ऐसे ही दूसरे कई वेद मन्त्रों के आधार पर महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने जीवन भर मूर्तिपूजा का बहुत जोर शोर से खण्डन किया । वे तो मूर्तिपूजा को इस देश में फैली हुई

सब बुराइयों का और देश के पतन का सब से बड़ा कारण समझते थे । उनके ९९ प्रतिशत शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा विषय पर ही पण्डितों से हुए और एक भी पण्डित सारे भारतवर्ष में वेद से मूर्तिपूजा का विधान न दिखा सका। महर्षि के प्रचार के प्रभाव से लाखों व्यक्तियों ने मूर्तिपूजा छोड़ दी थी, और अब तक छोड़ते चले जा रहे हैं ।

३. एक दिन भक्त कबीर जी बनारस के दशाश्वमेध घाट पर जा निकले । उस समय एक पण्डित गंगा-माहात्म्य की कथा सुना रहे थे, कि गंगा-स्नान करने वाला, गंगा जलपान करने वाला, बल्कि चार सौ योजन से गंगा-गंगा का नाम स्मरण करने वाले के सब पाप नष्ट हो जाते हैं, और वह शुद्ध पवित्र होकर मुक्ति का अधिकारी होकर स्वर्ग को जाता है । कथा की समाप्ति पर भक्त कबीर खड़े हो गये, और अपने पास का कमण्डल गंगा-जल से भरकर कथा-वाचक पण्डित जी की ओर बढ़ाया कि इस को पी लो, कथा-वाचक पण्डित कहने लगा, कि आप से स्पर्श किया हुआ कमण्डल का गंगा-जल तो भ्रष्ट हो गया, मैं कैसे पी लूं ? इस पर भक्त जी कहने लगे कि फिर गंगा-माहात्म्य की झूठी बात सुना सुना कर ठगबाजी बना रखी है । अगर यह गंगा-जल मेरा कमण्डल शुद्ध नहीं कर सकता बल्कि मेरे कमण्डल में आकर गंगा-जल खुद अशुद्ध हो जाता है तो फिर यह किसी के पाप कैसे नष्ट कर सकता है । इस पर कथा-वाचक शर्मिन्दा हो गया। और श्रोता गणों पर गंगा-माहात्म्य के झूठ का पोल खुल गया ।

और

करनवास में निवास के समय राव कर्णसिंह ने गंगा के विषय में महर्षि जी से प्रश्नोत्तर किये थे ।

१. **प्रश्न**—गंगा कैसी है ? **उत्तर**—जैसी यह दिखाई दे रही है ।

२. **प्रश्न**—गंगा में पापनाशनी शक्ति है या नहीं ? **उत्तर**—जल प्यासे की प्यास बुझा सकता है, इसमें स्नान करने से शरीर को ठण्डक पहुंचाता है । इस पानी से खेत सींचा जाय तो खेत हरा भरा हो सकता है परन्तु किसी मनुष्य के किये हुए पापों के नष्ट करने की शक्ति गंगा-जल में हरगिज नहीं है, और मनुस्मृति का निम्न श्लोक भी पढ़ कर सुना दिया ।

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

अर्थात् पानी से शरीर शुद्ध होता है, सत्याचरण से मन, विद्या और तप से आत्मा और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है ।

२. हरिद्वार में कुम्भ-प्रचार के समय आप हर की पौड़ी को हाड़ की पौड़ी कहा करते थे, क्योंकि लोग वहां मुर्दों की हड्डियां डालते हैं ।

जन्त्र मन्त्र सब झूठ हैं मत भरमो जग कोय ।
सार शब्द जाने बिना कागा हंस न होय ॥ और–

जन्त्र, मन्त्र, जादू, टूने, जिन्न, भूत आदि भरमों का महर्षि पूरे जोर से खण्डन करते थे ।

४. भक्त कबीर के जात-पांत, ऊंच-नीच, और मूर्तिपूजा, तीर्थ-माहात्म्य खण्डन से तंग आ कर काशी के पण्डितों ने एक दुष्टा स्त्री भेज कर इन पर लांछन लगाने की कोशिश की थी, जिस में असफल हुए ।

और

इसी तरह महर्षि के सामने शास्त्रार्थ में पराजित होकर काशी के पण्डितों ने महर्षि के पास भी एक दुष्टा स्त्री इन पर कलंक लगाने को भेजी थी, जिस में इस बार भी पण्डितों को सफलता न मिली ।

५. भक्त कबीर और ऋषि दयानन्द दोनों ही अजर, अमर, निराकार परमात्मा के पुजारी थे । और अवतारवाद का खण्डन करके उसी एक ईश्वर की पूजा का प्रचार करते थे, जहां महर्षि जी ने वेद मन्त्रों से परमेश्वर को अजर अमर निराकार सिद्ध किया । और सारे देश में वेदों के आधार पर इसका प्रचार किया और इसके सम्बन्ध में बड़े बड़े पण्डितों से शास्त्रार्थ करके अपने इस सिद्धान्त को स्थापित किया । वहां भक्त कबीर का निम्नलिखित दोहा भी इस सिद्धान्त का समर्थन करता है ।

कबीरा सब मुर्दन के ग्राम ।
जो कोई आया रह न पाया किस किस का लीजे नाम ।
सूर्य मरेगा, चन्द्र मरेगा, मरेगा धरत आकासा ।
तेतीस करोड़ देवता मरेंगे, जिन की झूठी आसा ।
राजा मरेंगे, रंक मरेंगे, मरेंगे वैद्य और रोगी ।
योगी मरेंगे जंगम मरेंगे, मरेंगे विरक्त और भोगी ।
नौ मरेंगे, ग्यारह मरेंगे, मरेंगे सिद्ध चौरासी ।
कहत कबीर हम उस को पूजें जिसको काल न खासी ॥

फिर कहा–

कंकर पत्थर जोड़ के मसजिद लई बनाय ।
इस पर मुल्लां बांग दे बहरा हुआ खुदाय ॥

ईश्वर के जिस स्वरूप की पूजा महर्षि खुद करते थे, और जिस स्वरूप की पूजा का जनता को उपदेश करते थे, वह आर्यसमाज के दूसरे नियम में वर्णन है ।

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अन्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है । उसी की उपासना करनी योग्य है ।

५३. भक्त रविदास

गुरु रविदास जी का जन्म काशी के पास एक छोटे से गाँव में हुआ था । आप भक्त कबीर के समय ही पैदा हुए थे, तब हिन्दुस्तान में सिकन्दर लोधी की हकूमत थी । आपके पिता का नाम रघु था, और वे जूते बनाने में अपने पिता का हाथ बंटाते थे परन्तु भक्त कबीर की तरह संस्कारी आत्मा थे । उन्होंने भी रामानन्द जी को ही गुरु माना था, छूत-छात ऊंच-नीच के भेद-भाव का घोर खण्डन किया करते थे । इनका सिद्धान्त था कि–

जात पांत पूछे न कोई, हरि को भजे सो हरि का होई ॥

परमात्मा की भक्ति करने का हरेक का एक जैसा हक है । भक्त रविदास ने इस का जोर शोर से प्रचार किया कि सिकन्दर लोधी बादशाह को इनकी ऐसी सरगर्मियां अच्छी न लगीं और उसने उनको कैद कर लिया लेकिन गुरु रविदास के प्रचार से बहुत जागृति पैदा हो चुकी थी और सिकन्दर लोधी ने यह समझ कर कि कहीं इनको कैद में रखने से देश में बगावत न हो जावे । इनको रिहा कर दिया, और फिर वह अपना प्रचार कार्य करते रहे कि सब मनुष्य आपस में भाई भाई हैं किसी से नफरत न करनी चाहिए।

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी छूत-छात, ऊंच-नीच के भेद-भाव को मिटाने के लिए वेदों और शास्त्रों के आधार पर प्रचार किया। और देश में जागृति की एक लहर सी पैदा कर दी । और महर्षि ने–

"अज्येष्ठासो, अकनिष्ठास"

वाले वेद-मन्त्र का खण्डा लेकर छूत-छात और ऊँच-नीच का भूत जो मानवता को चिपटा हुआ था मार भगाया और देश में संगठन की दाग, बेल डाली और हरेक स्त्री पुरुष को न सिर्फ ईश्वर-पूजा का समान अधिकार दिया बल्कि विद्या-मन्दिर के द्वार जो सैकड़ों वर्षों से बन्द पड़े थे और जिन पर "स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्" का ताला लगा हुआ था। उसे तोड़ कर सब को विद्या का समान अधिकार देने की घोषणा कर दी, ताकि कोई भी विद्या के प्रकाश से वंचित न रह जाये, महर्षि की कृपा से छूत-छात नाशक कानून भी बन गया है, और विद्या के द्वार भी सब के लिए खोल दिये गये हैं और सब लोग बेखटके हर किस्म की विद्या ग्रहण कर रहे हैं।

८४. ईश्वर भक्त मीरांबाई

मीरांबाई का जन्म सन् १५७३ में राजपूताना के राजा रत्नसिंह के घर हुआ। राणा सांगा के सुपुत्र भोजराज से ब्याही गई। विवाह के सात वर्ष बाद विधवा हो गई। राणा विक्रमादित्य उस समय मेवाड़ के राणा थे और मीराबाई के देवर थे। मीराबाई के विधवा हो जाने पर उसके मन में ईश्वर-भक्ति की लहर जाग उठी, वह अत्यन्त मस्ती में ईश्वर भजन गाया करती थी। उनके देवर को इनकी यह ईश्वर-भक्ति अपने खानदान की बेइज्जती मालूम हुई। पहले तो उन्होंने मीराबांई को जबानी मना करना शुरू कर दिया परन्तु इसके मन में सच्ची लगन थी, वह न मानी। फिर राणा विक्रमादित्य ने इसको ठिकाने लगाने के लिए पहले तो जहर का प्याला भेजा। जब वह इस से भी बच गई तो एक डिबिया में बन्द करके एक जहरीला सांप उसके मारने को भेजा और कहला भेजा कि यह अंगूठी है, इसको पहन लो परन्तु जब उसने डिबिया खोली तो उसमें सांप निकल आया और वह फिर भी बच गई। फिर वह द्वारिका की ओर चली गई, और १६२० में देह त्याग दिया।

और

महर्षि दयानन्द जी भी ईश्वरभक्त थे, और संसार में विशुद्ध ईश्वर-भक्ति का प्रचार करते थे। उनको भी जान से मार डालने के लिए कई बार जहर दिया गया परन्तु वे बचते ही रहे। अन्त में कांच पीस कर दूध में दिया गया जिससे उनका देहान्त हुआ। जहर देने के इलावा एक बार एक बड़ा

भारी कोबरा सांप भी इनको मार डालने की नियत से फेंका गया । जिसका वर्णन मैडम ब्लेवट्स्की ने अपनी किताब में यों किया है ।

बंगाल के एक ग्राम में स्वामी जी अमृतवर्षा कर रहे थे । शैवमत के अनुयायी ने एक काला जहरीला सांप स्वामी जी की तरफ फेंक कर कहा–"अब यह देवता फैसला कर देगा कि हम में से कौन सच्चा है ?" सांप स्वामी जी की टांग पर लिपट गया । स्वामी जी ने यह कहते हुए–अच्छा तुम्हारा देवता ही मध्यस्थ ठहरा । एक झटके में सांप को अलग कर अपनी एड़ी से कुचल कर कहा–अरे ! आओ देखो-तुम्हारा देवता तो बहुत कमजोर निकला । मैंने ही इसका फैसला कर दिया और फिर जनता को सम्बोधन कर के मरा सांप दिखला कर कहा–"जाओ सब लोगों से कह दो–झूठे देवता आसानी से कुचले जा सकते हैं (From the caves and jungles of Hindustan By Madam Blavatsky) ।

ईश्वरभक्त मीराबाई और ईश्वरभक्त दयानन्द जी को जहर देकर और सांप से डंसवाकर मारने की एक जैसी कोशिशें की गईं।

५५. समर्थ गुरु रामदास जी

१. समर्थ रामदास जी महाराष्ट्र में पैदा हुए थे । उनके पिता जी का नाम सूर्यदेव और उनकी माता का नाम रेणुका देवी था । आपका विवाह होने लगा तो विवाह मण्डप में जब महाराष्ट्र की रीति अनुसार पण्डितों ने शुभ मंगल सावधान के श्लोक का उच्चारण किया । तब सचमुच रामदास जी सावधान हो गये, और वैराग्य जो उत्पन्न हो रहा था, परिपक्व हो गया। और विवाह-मण्डप से सीधे वन को चले गये और संन्यास धारण कर लिया, इस समय भारतवर्ष में औरंगजेब का राज्य था, जिसके राज्य काल में हिन्दू मजहबी तअस्सुब की जुल्म की चक्की में पिस रहे थे, रामदास जी के मन में इस जुल्म के खिलाफ तीव्र अग्नि जल उठी और उन्होंने नंगे पांव महाराष्ट्र में फिर फिर कर इस जुल्म के खिलाफ नौजवानों में बिजली की सी लहर दौड़ा दी, वे रामायण की कथा किया करते थे और जहां से भगवान् राम का महावीर से मिलन होता है, प्रायः वहीं से कथा सुनाया करते थे । और अंगद का मिलना, सीता की तलाश, सेतु पर पुल बांधना, लंका पर चढ़ाई और रावण का परिवार समेत नाश । फिर समझाते थे कि औरंगजेब भी पापी

है, इसका भी रावण की तरह नाश होगा। कथा सुनने वालों से कहा करते थे कि राम की सेना में भर्ती हो जाओ, धर्म युद्ध होने वाला है। समर्थ रामदास जो महावीर के जीवन पर बहुत जोर देते थे। और जब शिवा जी समर्थ रामदास जी के पास साधु बनने की दीक्षा लेने के लिए आया तो उसको भी साधु न बना कर धर्म-युद्ध करने और औरंगजेब के वरखिलाफ युद्ध करने के लिए तैयार कर दिया। और उनके प्रचार से जो नवयुवकों में जागृति पैदा हो गई थी, इससे शिवा जी को बहुत से नवयुवक सेना के लिए मिल गए और समर्थ रामदास जी की शिक्षा और प्रचार से शिवा जी ने औरंगज़ेब की नींद हराम कर दी। और बहुत सा इलाका भी मजहबी तअस्सुब से होने वाले मुजालिम से बचा लिया। और बड़ी शक्तिशाली मरहठा सल्तनत कायम कर ली, जिसने अन्त में मुगल राज्य को समाप्त कर दिया।

और महर्षि दयानन्द

महर्षि जी भी इसी प्रकार जब कि उनके विवाह की तैयारियां पूर्ण हो गई थीं, घर त्याग कर संन्यासी बन गये थे। महर्षि दयानन्द जी के मन में भी विदेशी राज्य और विदेशी शासकों के प्रति वही भाव थे। महाराज राजपूताना के राजाओं को खास कर मनुस्मृति का राज्य प्रकरण जरूर पढ़ाया और समझाया करते थे और अपने भावों को उन राजपूतों के जहन नशीन कराया करते थे। अतः राजपूताना के प्रचार काल में एक दिन एक मुसलमान ने महाराज से कहा कि यदि मुसलमानों का राज्य काल होता तो आपको अवश्य कत्ल करा दिया जाता। इस पर महर्षि जी ने कहा कि तब मैं भी (समर्थ रामदास की भांति) एक दो राजपूतों की पीठ पर थपकी देकर ऐसे जालिम राज्य काल का विनाश कर देता। जुल्म के प्रति खड़े होकर जालिमों के नाश करने की भावना दोनों महापुरुषों में समान ही थी, और महर्षि जी को भी यदि शिवा जी जैसा शिष्य मिल जाता तो वे भी एक शक्तिशाली राज्य कायम कर जाते। जैसा कि महर्षि चाणक्य वाले लेख में आप एक अंग्रेज का लेख पढ़ेंगे।

५६. महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम

सन्त तुकाराम महाराष्ट्र के देहू नामी गांव में सन् १६६५ को पैदा हुए। उनके पिता जी का नाम बोबो जी और माता जी का नाम कनक बाई

था। तुकाराम जी का जन्म शूद्र कुल में हुआ था परन्तु जन्म से ही भक्ति की उनकी रुचि थी, विद्वानों के सत्संग से पढ़ लिख गये, और वेद-मन्त्र भी उच्चारण करने लगे। इस पर ब्राह्मणों को ईर्ष्या हुई कि शूद्र होकर वेद-मन्त्र उच्चारण करता है, परन्तु उन्होंने कुछ परवा न की।

महाराष्ट्र के सन्त तुकाराम प्रतिदिन अपने गाँव से पैदल चल पण्ढरपुर तीर्थ में जाकर पण्ढ्रीनाथ की मूर्ति के दर्शन किए बिना भोजन भी नहीं किया करते थे, किन्तु प्रभु-प्रेरणा से ऐसा समय भी आया जब वही तुकाराम जो पण्ढरपुर तीर्थ में पण्ढ्रीनाथ के सम्मुख नाच-नाच कर उनको रिझाते नहीं अघाते थे, वही स्वयम् अपने मुखारविन्द से कहने लगे-

तीर्थों आहे ढोंडा पानी, व्यर्थ हिंडैं मूर्ख प्राणी।

अर्थात् तीर्थ में तो सिवाय पत्थर और पानी के कुछ भी नहीं है, किन्तु यह मूर्ख प्राणी व्यर्थ में ही वहां जा कर धक्के खाता फिरता है।

और

जो तथ्य सन्त तुकाराम जी ने तीर्थों और मूर्तिपूजा के विषय में अपने निजी अनुभव से प्राप्त किया, वही प्रचार महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने विद्या-बल और योग-बल से समस्त भारतवर्ष में घूम घूम कर किया। कि यह तीर्थ माहात्म्य और मूर्तिपूजा वेद-विरुद्ध है। अतः तीर्थ के विषय में महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के अन्त में अपने मन्तव्यों में यूं लिखा है।

तीर्थ जिससे दुःखसागर से पार उतरें जो कि सत्यभाषण, सत्संग, विद्या, यम आदि शुभ कर्म हैं, इन्हीं को तीर्थ समझता हूं। इसके विपरीत जल, स्थल आदि कोई तीर्थ नहीं हैं। तीर्थों के विषय में अपने भाषणों में महर्षि महाभारत का यह श्लोक भी उद्धृत किया करते थे। जिससे तीर्थों के विषय में उनकी राय का पूर्णतया समर्थन होता है।

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं, तीर्थम् इन्द्रियनिग्रहः,
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थम्, अहिंसातीर्थम् उच्यते।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थम् आर्जवमेव च,
तीर्थानाम् उत्तमं तीर्थं, विशुद्धं मनसः पुनः॥

अर्थात् सत्य तीर्थ है, इन्द्रियों को वश में करना तीर्थ है, ब्रह्मचर्य सब से बड़ा तीर्थ है। अहिंसा तीर्थ है, सब पर दया करना तीर्थ है, और सब से उत्तम तीर्थ मन की शुद्धि है, विचारों को शिव संकल्प बनाना ही

सब से बड़ा तीर्थ है, इसी तरह महर्षि सारी आयु स्वयम् आचरण करते रहे और संसार को आचरण करने का उपदेश और आदेश देते रहे ।

५७. सन्त दादूदयाल

सन्त दादूदयाल जी का अहमदाबाद गुजरात काठियावाड़ में सन् १५४४ में जन्म हुआ । और महर्षि जी का भी गुजरात काठियावाड़ प्रान्त मोरवी राज्य टंकारा में जन्म हुआ । सन्त दादूदयाल जी भी निराकार निरंजन परमात्मा को मानते मनवाते थे, और महर्षि जी भी निरंजन परब्रह्म को मानते थे । सन्त दादूदयाल जी २१ साल की आयु में अहमदाबाद अपने घर से राजस्थान की तरफ अपना प्रचार करने निकल खड़े हुए, और महर्षि जी भी २१ वर्ष की आयु में अपने घर से सत्य की खोज और मौत का दारु ढूंढ़ने के लिए निकल खड़े हुए । सन्त दादूदयाल जी भी मूर्तिपूजा जिसमें कबरपरस्ती आदि भी शामिल हैं, खण्डन करते थे । उन का एक दोहा बड़ा मशहूर है–

दादू दूनियां बावरी मढ़ियां पूजन ऊत ।
जो मौत के मारे मर गये, तिनसे मांगे पूत ॥

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज से बढ़ कर मूर्तिपूजा (जिसमें कबरपरस्ती भी शामिल है)–का दुश्मन संसार ने आज तक नहीं देखा उनकी सारी आयु ही पाखण्ड खण्डन में लगी रही, हरिद्वार के संवत् १९३६ के कुम्भ में एक मुसलमान उमीद खां नामी ने मूला मिस्त्री के पुत्र दुर्गादत्त से कहा कि तुम बुतपरस्त हो तो महर्षि जी ने इस पर उससे कहा कि यह छोटा बुतपरस्त है, परन्तु तुम तो बड़े बुतपरस्त हो, जो तूर के पहाड़ को, आदम के चरन वाले पहाड़ को पूजते हो, संग असवद को चूमते हो, (मालूम हो कि जब मुसलमान हज करने मक्का शरीफ जाते हैं तो वहां मक्का की मसजिद में रखे हुए काले पत्थर को, जिसको संग असवद कहते हैं बोसा देते हैं) ताजिये को मानते हो और कबरों से मुरादें मांगते हो ।

५८. बंगाल के गोरांग देव

बंगाल प्रान्त के प्रांचल विभाग में गोरांगदेव जी का जन्म हुआ था, आपने भक्ति की भावना उत्पन्न करने के लिए नाम जपन और संकीर्तन की लहर चला दी । बंगाल प्रदेश में वाममार्ग जिसको शाक्त मत भी कहते हैं

का बड़ा जोर है । जगन्नाथ का मन्दिर वाममार्गियों का हैडक्वाटर है । और जगन्नाथ के मन्दिर के ऊपर नग्न स्त्री-पुरुष की मूर्तियां अब तक भी बनी हुई हैं । गोरांगदेव के भक्ति भाव के प्रचार से सैकड़ों व्यक्ति वाममार्गी होने से बच गये और कई जो वाममार्गी बन चुके थे, वापस सीधे मार्ग पर आ गये । इस प्रकार गोरांगदेव जी ने अपनी इस नाम जपन और संकीर्तन के प्रचार की शैली से सैकड़ों मनुष्यों को वाममार्ग के गढ़े में गिरने से बचा लिया, यह उनका बड़ा उपकार हुआ । गोरांगदेव ने जगन्नाथ में ही प्राण त्यागे थे।

और

इसी भांति महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने मौखिक तथा लिखित प्रचार से तन्त्रोक्त वाममार्ग और शाक्त विचारधारा का पुरजोर खण्डन किया, जिससे लाखों मनुष्य वाममार्ग के पापमय गढ़े में गिरने से बच गये । और हमेशा ही महर्षि के इस उपकार से बचते रहेंगे । गोरांगदेव जी ने तो जबानी प्रचार का ही काम किया परन्तु महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में वाममार्ग की पूरी पूरी कलई खोल कर रख दी है । जो हमेशा के लिए लाइट हाउस का काम देकर गुमराहों को सीधा मार्ग दिखलाती रहेगी, वाममार्ग वालों के ६४ तन्त्र ग्रन्थ हैं । जो महर्षि को उस समय देखने और पढ़ने का मौका मिला जब वे योगियों की तलाश में हिमालय के पहाड़ों पर घूम रहे थे । अतः अपने स्वयं लिखित जीवनचरित्र में महर्षि लिखते हैं ।

"कि जब में टीहरी पहुँचा तो मैंने एक पण्डित से कुछ ग्रन्थ पढ़ने का विचार प्रकट किया । वह पण्डित शाक्त था, उसने मुझे कुछ तन्त्र ग्रन्थ लाकर दिये । जब मैंने देखा कि इन ग्रन्थों में मातृ-गमन, कन्या-गमन, भगिनी-गमन, चाण्डाली-गमन, चमारी-गमन तक का समर्थन किया गया है । नंगी स्त्रियों की पूजा करनी लिखी है, सब प्राणियों के मांसाहार, मत्स्य आहार और मद्यपान, आदि आदि क्रियाओं को ग्रहण की आज्ञा है । एक शब्द में पंच मकार अन्तर्गत सारे पैशाचिक अनुष्ठानों को ब्राह्मण से लेकर चमार तक के लिए व्यवस्था की गई है । और सब से बढ़ कर इन पैशाचिक अनुष्ठानों को मुक्ति का साधन बताया गया है । यह सब कुछ पढ़ कर मुझ को इतना विस्मय हुआ कि जिसकी कोई सीमा नहीं । इन तन्त्र ग्रन्थों को पढ़कर मैंने अन्तिम रूप से मान लिया कि ऐसे घृणित ग्रन्थों को लिख कर धूर्त और दुष्ट लोगों ने इन्हें धर्मशास्त्र के नाम से प्रचारित किया है ।"

२. फिर जब महर्षि प्रचार-क्षेत्र में निकले तो उन्होंने जगह जगह वाममार्ग का खण्डन शुरू कर दिया । जिससे प्रभावित होकर हजारों मनुष्य वाममार्गी होने से बच गये । परन्तु संसार को निश्चित रूप से इस अन्धेरे गढ़े में गिरने से बचाने के लिए आपने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में लिखा कि वाममार्गी "म" अक्षर से शुरू होने वाले, पांच कर्म मुक्तिदायक मानते हैं । जिनको पांच मकार कहते हैं । १. मदिरा, २. मांस, ३. मत्स्य, ४. मुद्रा, ५. मैथुन । परन्तु आम जनता को धोखा देने की गर्ज से, मदिरा का नाम तीर्थ, मांस का नाम शुद्धि, मदिरा पात्र का नाम-पद्म और प्याज का नाम व्यास, लहसन का नाम शुकदेव, शराब बेचने वाले कलाल का नाम ब्राह्मण, व्यभिचारिणी स्त्री का नाम योगिनी, व्यभिचारी मनुष्य को योगी, मुद्रा का नाम चतुर्थी, मैथुन का नाम पञ्चमी । जो वाममार्गी नहीं, उनको कण्टक, विमुख, शुशक पशु आदि नाम रखते हैं । ये उनके खुफिया कोड हैं । ये वाममार्गी, मारण, उच्चाटन आदि जादू टूना के मन्त्र जन्त्र भी करते कराते हैं । इन वाममार्गी लोगों की ही कृपा से यज्ञ में पशु, नर-बलि, आदि का रिवाज पड़ गया था, जिससे यज्ञ बदनाम हो गया । और आज तक भी इन वाममार्गियों के किये हुए वेद-अर्थों में भी ऐसे ही अनर्थ विद्यमान हैं, जिससे वेद भी उनके कलंक से न बच सके । अतः रावण, सायण, महीधर, उव्वट ये सब वाममार्गी विचारों के थे, जिन्होंने वेदों में से भी यही अनर्थ निकालने की कुचेष्टा करके वेदों को कलंकित किया । महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इन वाममार्गियों की सब लीलाओं का अत्यन्त बलपूर्वक खण्डन करके संसार का बड़ा उपकार किया है । वाममार्ग का कैसी अद्‌भुत रीति से महाराज ने खण्डन किया है । इस को अच्छी प्रकार समझने के लिए सत्यार्थप्रकाश को पढ़ना आवश्यक है । महर्षि दयानन्द जी का इतना तेज था कि सारे भारतवर्ष में एक भी पण्डित वाममार्ग का पक्ष लेकर उनके सामने खड़ा होने का साहस न कर सका । वाममार्ग से आम जनता को बचाने में जहां गोरांगदेव का काम केवल बंगाल तक ही सीमित रहा, वहां महर्षि ने सारे संसार को इस अन्धे कुएं में गिरने से बचाने के लिए भरपूर यत्न किया ।

३. अनूपशहर से स्वामी जी चासी जिला बुलन्दशहर के जंगल में जा विराजे । चासी जाने का विशेष कारण था । करनवास में उन्होंने सुना था कि चासी में नन्दराम नामक ब्राह्मण चक्रांकित सम्प्रदाय में सम्मिलित होने

की प्रेरणा करता है । उसने खण्डोई ग्राम परगना आहार के कुछ जाटों को उक्त सम्प्रदाय में प्रवेश करने के लिए पक्का कर लिया था, चक्रांकित मत के स्वामी जी पहले ही विरोधी थे और यथा अवसर उसका खण्डन करते रहते थे । अत: उन्होंने उन लोगों को चक्रांकित बनने से रोकना अपना कर्तव्य समझा । जब वे चासी पहुंचे और लोगों को उनके आने का समाचार विदित हुआ तो २०-२५ ब्राह्मण और कुछ जाट नन्दराम को साथ लेकर स्वामी जी की सेवा में आए परन्तु अभी एक बात भी न होने पाई थी कि नन्दराम चुपके से खिसक गया और गंगा के परले पार चला गया । उसे बहुतेरा बुलाया गया, वह न आया और आहार चला गया, इस पर उसकी सारी पोल खुल गई और सब लोग चक्रांकित होने से बच गये ।

५९. परमहंस रामकृष्ण

स्वामी रामकृष्ण परम हंस का जन्म ८ फरवरी १८३६ मौजा कामारपुरसी जिला हुगली बंगाल में हुआ, उनके पिता श्री खुदीराम चट्टोपाध्याय श्रद्धालु ब्राह्मण थे । रामकृष्ण बड़े हुए बहुत से मरहलों से गुजर कर जब उन्होंने संन्यास धारण किया, परमहंस की पदवी प्राप्त कर ली तो बहुत से मनुष्य उनके जीवन से प्रभावित हुए । उनके सत्संग में आने वालों में से बंगाल का अंग्रेजी तालीमयाफ्ता, नौजवान नरेन्द्र खास तौर पर काबले जिकर है, जो अंग्रेजी तालीम के असर से नास्तिकपन की ओर झुक रहा था और परमहंस जी के सत्संग में आकर आस्तिक बन गया । संन्यास धारण करके स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुआ और अमरीका आदि विदेशों में जाकर प्रचार की धूम मचा दी ।

और

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी को भी मुंगेर स्टेशन पर जब एक अंग्रेज ने केवल एक कौपीन में देख कर नफरत की थी और महाराज के नाम का पता लगने पर क्षमा मांग कर श्रद्धापूर्वक उनको मान दिया था ।

२. महर्षि दयानन्द जी के संसर्ग में आकर भी कई नास्तिक आस्तिक बन गये थे, नरेन्द्र के जीवन में परमहंस जी के संसर्ग से जो तब्दीली आई थी, वही तब्दीली पं० गुरुदत्त जी में आई । उनका जन्म २६ अप्रैल १८६४ को मुलतान शहर में हुआ था, उनके पिता श्री रामकृष्ण जी फारसी के प्रसिद्ध

विद्वान् थे। गुरुदत्त जी ८ वर्ष की आयु में विद्यालय में दाखिल हुए। विद्यार्थी जीवन में उनको स्वाध्याय की बड़ी लग्न थी, मन को एकाग्र करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास भी कर लिया और इससे शक्ति प्राप्त करके वे बड़ी बड़ी किताबों को शीघ्र याद कर लेते थे।

पं० गुरुदत्त जी २० जून १८८० में आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये, सत्यार्थप्रकाश ने उनके जीवन को ही पलट दिया, गुरुदत्त जी के जीवन में आरम्भ से ही एक आकर्षण था जो उनको मिलता मित्र बन जाता था, आर्यसमाज में उनका बड़ा मान था। उनको लोग yong phillosopher कह कर याद किया करते थे, अब उन्होंने योगाभ्यास करना भी आरम्भ कर दिया था और उन्होंने फ्री डिबेटिंग क्लब बना डाली। सन् १८८१ में लाहौर गवर्नमेण्ट कालेज में आकर दाखिल हुए, उस समय सारे पंजाब में सिर्फ यही एक कालेज था, डिबेटिंग क्लब के जरिये गुरुदत्त जी ने कितने ही नवयुवक विद्यार्थियों को आर्यसमाज की ओर आकृष्ट किया। फिर गुरुदत्त जी, महात्मा हंसराज जी, लाला लाजपतराय जी ने मिल कर अंग्रेजी में The Regenarator of Aryavarta अखबार निकाला। १८८३ में अंग्रेजी की बहुत सी किताबें पढ़ने से उनका झुकाव नास्तिकता की ओर होने लग गया परन्तु इसी साल अचानक सूचना मिली कि महर्षि जी अजमेर में बीमार पड़े हैं तो लाहौर समाज की ओर से श्री जीवनदास जी व पं० गुरुदत्त जी को स्वामी जी की सेवा के लिए भेजा गया। महर्षि जी का इलाज होता रहा परन्तु आराम न आया, सारा शरीर छालों से भरा पड़ा था। और शरीर बहुत दुर्बल हो चुका था, हरेक सांस के साथ सख्त दर्द भी होता था, इतना भारी कष्ट होने पर भी महर्षि के मुँह से आह तक नहीं निकलती थी, सचमुच आश्चर्य ही तो था गुरुदत्त जी हैरान हो रहे थे, बड़े ध्यान से महर्षि की ओर देखते थे, और उनकी समझ में न आता था कि यह अद्भुत महा व्यक्ति किस प्रकार शान्त है। इतना कष्ट है फिर भी शान्त है, परन्तु महर्षि के प्राण त्यागते समय जो दृश्य गुरुदत्त जी ने देखा वह उनकी नास्तिकता की मैल को धो कर उनको दृढ़ आस्तिक बना गया। जब महर्षि ने प्राण त्यागते समय ये शब्द कहे-"हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो" अहा! तैने अच्छी लीला की"। बस महर्षि के ये अन्तिम शब्द सुनकर पं० गुरुदत्त जी मन्त्रमुग्ध हो गये और उनका ईश्वर पर दृढ़ विश्वास हो गया। बी० ए० की परीक्षा

में पं० गुरुदत्त जी अव्वल आए और महात्मा हँसराज जी दोयम रहे । सन् १८८६ में पण्डित जी ने एम० ए० की परीक्षा फिजिक्स के मजमून में पास करके रिकार्ड कायम किया । इसके साथ साथ वह वैदिक धर्म का प्रचार और डी० ए० वी० कालेज के लिए काम करते रहे । एम० ए० पास करने के बाद पण्डित गुरुदत्त जी गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर में साईंस के प्रोफेसर बनाये गये । तीन वर्ष प्रोफेसर रहने के बाद जब उन्होंने देखा कि इस काम से आर्यसमाज के प्रचार और योगाभ्यास में रुकावट पड़ती है तो यह भी छोड़ दिया । गवर्नमेण्ट कालेज से इस्तीफा देने के बाद समाज के सदस्यों ने गुरुदत्त जी के निर्वाह के लिए प्रबन्ध करना चाहा, परन्तु उन्होंने साफ इन्कार कर दिया, क्योंकि वह अपने उपदेश को बेचना नहीं चाहते थे । फिर महर्षि का वेदभाष्य पढ़ना आरम्भ कर दिया, और उन्होंने अपने घर पर ही एक उपदेशक श्रेणी खोल दी, बहुत से नौजवान इस में आकर पढ़ने लगे । पण्डित गुरुदत्त जी बड़े सफल वक्ता थे, केवल अंग्रेजी और हिन्दी के नहीं अपितु संस्कृत के भी सफल वक्ता थे, फिर उन्होंने वैदिक मैगजीन नाम का एक अंग्रेजी अखबार निकालना शुरू कर दिया और पण्डित जी के युक्ति युक्त लेखों से इस पत्र की धूम न सिर्फ भारतवर्ष में बल्कि विदेशों में भी मच गई । आर्यसमाज के काम और वैदिक धर्म की प्रचार की लग्न में उन्होंने अपने शरीर की परवाह न की और वे बीमार पड़ गये । वह इतना काम करते थे कि ४८ घण्टे तक एक मिनट भी न सोते थे, अतः उनको टी० बी० हो गया, उनके मित्रों ने बहुत इलाज कराया, पहाड़ों पर भी ले गये, इतने दुर्बल होने पर भी आप पिशावर आर्यसमाज के जलसे पर चले गये, परिणाम यह हुआ कि लाहौर पहुँच कर चारपाई पर लेट गये, और बहुत इलाज कराने पर भी १९ मार्च १८९० को इस भौतिक शरीर को त्याग दिया । केवल ३६ वर्ष की भरपूर जवानी में इस असार संसार से चल दिये । उन्होंने अंग्रेजी में बड़े मार्के की पुस्तकें लिखीं, जिनको पढ़ कर अंग्रेजी पढ़े लिखे अपने धर्म पर दृढ़ रह पाये। उनकी सब किताबों को इकट्ठा करके छपवा कर उनका नाम रखा गया "Works of pt. Guru Datta" ।

२. परमहंस रामकृष्ण जी ईश्वर-भक्त अवश्य थे, परन्तु किसी विद्या के विद्वान् न थे, बल्कि यहां तक कि वह अपना नाम भी नहीं लिख सकते थे, जैसा कि स्वयम् उनके परमशिष्य स्वामी विवेकानन्द जी ने एक जगह लिखा है-"He Was without any book learning whatsoever with his

great Itellect never Could he write his own Name".

और

महर्षि दयानन्द जी जहां परमहंस की तरह ईश्वरभक्त थे, उसके साथ ही पूर्ण विद्वान् भी थे और संसार भर के विद्वानों को चैलेंज करते रहे क्या संस्कृत में, क्या फिलासफी में, क्या साईंस में । संसार में किसी भी पुरुष को उनका चैलेंज स्वीकार करने की हिम्मत न हुई । अगर किसी ने किया भी तो मुँह की खाई । महर्षि जब कलकत्ता गये थे तो परमहंस रामकृष्ण जी और नरेन्द्र जी ने महर्षि का सत्संग भी किया था, नरेन्द्र जी महर्षि के दर्शन और सत्संग से भी बहुत प्रभावित हुए थे, और उनको महर्षि के दर्शन से ही संन्यास धारण करने की प्रेरणा मिली थी ।

६०. गुरु नानकदेव जी

तकरीबन ५०० वर्ष हुए तलवण्डी नाम के छोटे ग्राम में (जिसका नाम अब ननकाना साहब है जो इस वक्त पाकिस्तान के जिला शेखूपुरह में है) मेहता कालूराम वेदी के घर गुरु नानकदेव जी का जन्म हुआ । जिस समय नानकदेव जी पैदा हुए, उस वक्त इस देश में मुगल राज्य स्थापित हो चुका था और बाबर का राज्य काल था । उस समय पंजाब के हिन्दुओं की क्या हालत थी, उसका जिकर नानकप्रकाश नामी पुस्तक में निम्नलिखित शब्दों में वर्णन है ।

सैयद, शेख, मुगल, पठान वगैरह जितने भी मुसलमान थे । वे सब हकूमत के जोर पर जालिम बन चुके थे । वे सब लोग हिन्दुओं पर बड़े बड़े जुल्म ढाते थे । उनको बहुत दुःख देते थे, मन्दिरों को गिराते थे । घोरनाथ जैसे औघड़ साधु और पं० दत्त जैसे विद्वान् पण्डितों को मरवा डाला गया । और उनका माँस चीलों के आगे फेंक दिया गया । कई हिन्दुओं को दीवारों के साथ कील ठोक कर लटका दिया जाता । और ऐसी हालत में उनका खून माँस सब सूख जाता । कइयों को कच्चे चमड़े में मढ़ दिया गया । अनेकों को कुत्तों से फड़वा दिया गया । जिन्होंने मुसलमान बनना स्वीकार न किया उनको असह्य दुःख दिये और मरवा डाला गया । यज्ञ हवन करने की मनाही कर दी गई । जो फिर भी हवन यज्ञ करता उसको कड़ी सजा दी जाती । जिसकी लड़की या औरत सुन्दर नजर आती मुसलमान उसको पकड़ कर ले जाते और जबरदस्ती उससे विवाह कर लेते थे । काजी लोग जिनके हाथ

में न्याय की बागडोर थी । वे रिश्वत लेकर सच को झूठ और झूठ को सच बना डालते थे ।"

ऐसे समय गुरु नानकदेव जी का जन्म हुआ । और गुरु नानकदेव जी ने वैदिक धर्म का प्रचार ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया । इसलिए भाई गुरदास जी ने गुरु साहब के जीवन का उद्देश्य लिखते हुए कहा है, गुरु जी का जन्म पूर्णमासी को हुआ था ।

सत् गुरु नानक प्रगटया, मिटी धुन्ध जग चानन होया ।
ज्यों कर सूरज निकलया, तारे छिपे अन्धरा खोया ॥

गुरुनानक जी ने बाला और मरदाना नामक दो रवाबियों को साथ लेकर पदयात्रा करते हुए अपना प्रचार आरम्भ किया । और दूर दूर तक प्रचारार्थ गये । गुरु नानकदेव जी और दूसरे गुरु साहबान ने जिन सिद्धान्तों का प्रचार किया वे निम्नलिखित हैं । पहला सिद्धान्त वेद ईश्वरकृत हैं और वेद सत्य ज्ञान का भण्डार है ।

१. ओंकार वेद निर्मये । अर्थात् ओं नाम वाले परमात्मा ने वेदों का निर्माण किया ।

(२) असंख्य ग्रन्थ मुख वेद पाठ । (जपजी साहब)
(३) पातालां पाताल लख आगासां अगास ।
ओड़क ओड़क भाल थके वेद कहन इक बात ।

अर्थात् प्रभु की रचना अनन्त है । बेशुमार ब्रह्माण्ड आकाश और पाताल हैं । ईश्वर की रचना का पार पाने के लिए दुनिया ने बड़ा जोर लगाया। तलाश कर कर के थक गये, परन्तु उस अनन्त का पता न लगा सके । अतः वेद ही एक बात कहते हैं । (जिससे अनन्त का ज्ञान हो सकता है) ।

(४) गावन तुध नूं पण्डित पढ़न रखेश्वर जुग जुग वेदां नाले । (जपजीसाहब)

अर्थात् हे प्रभु बड़े-बड़े विद्वान् पण्डित ज्ञानी और योगी तेरी महिमा का गान करते हैं, और बड़े बड़े ऋषि मुनि हर युग और हर जमाने में वेदों द्वारा तेरी सत्यविद्या का गान करते हैं ।

६१. गुरु अर्जुनदेव

गुरु अर्जुनदेव जी पांचवें गुरु फरमाते हैं–

वेद व्याख्यान करत साधु जन ।
भाग हीन समझत नहीं खल ॥

अर्थात् संसार के महापुरुष सन्त महात्मा साधु जन वेद का व्याख्यान करते हैं। और संसार के कल्याण के लिए वेदोपदेश करते हैं। परन्तु अभागे मूर्ख लोग अपनी मूर्खता के कारण कुछ समझ नहीं पाते।

६२. भाई गुरुदास जी

भाई गुरुदास जी जिन्होंने ग्रन्थ साहब लिखा था, उसने अपनी वारों में बड़े बड़े सुन्दर शब्दों में कहा–

युग गर्दी जब होय है, उल्टे जग का होय वरतारा ।
उठे ग्लानि जगत् विच, वरते पाप भ्रष्ट संसारा ॥
वर्ण आवर्ण न भावनी, खै खै जलन बाँस अँगयारा ।
निन्दया चाले वेद की, समझन नहीं अज्ञान गुबारा ॥
वेद ज्ञान गुरु हट है, जिस लग भवजल पार उतारा ॥

अर्थात् जब उल्टे दिन आते हैं जब जमाना बदलता है, जब देश और जाति में गिरावट शुरू होती है तो उस समय लोगों की बुद्धि उल्टी हो जाया करती है, समाज में नफरत फैल जाया करती है। फूट घर घर में डेरा जमा लिया करती है, मन में पाप और खोट भर जाया करते हैं। संसार आचार भ्रष्ट हो जाया करता है, दुनिया सत्य मार्ग से भटक कर कुमारग पर चलने लग जाया करती है। वर्णाश्रम मर्यादा टूट जाया करती है। लोगों की धर्मभावना मिट जाया करती है। आपस में ईर्ष्या द्वेष इतना बढ़ जाता है कि लोग आपस में बाँसों की तरह एक दूसरे के साथ रगड़ कर जलने लग जाया करते हैं। द्वेष की आग में जलकर कोयला हो जाते हैं। फिर ईश्वर ज्ञान वेद की निन्दा शुरू हो जाती है। अज्ञानी लोग अविद्या और अन्धकार में पड़कर बुद्धिहीन हो जाते हैं। वरना वेद ज्ञान तो गुरु हट या ईश्वर का सत् ज्ञान है। जिस को प्राप्त कर जिस के अनुकूल आचरण बना कर मनुष्य भवसागर से पार हो जाया करते हैं।

दूसरा सिद्धान्त ईश्वर का स्वरूप और उसका ओ३म् नाम–

१. जन्मे न मरे आवे न जाए, नानक का प्रभु रहा समाय ।
२. एको सिमरो नानका जो जल थल रहा समाय ।
दूजा काहे सिमरिए, जो जम्मे ते मर जाए ॥

जप जी साहब की पहली पौढ़ी–

एक ओंकार सत्नाम कर्त्ता पुरख निर्भो, निर्वैर, अकाल,
अमूर्त अजूनी से भंग, गुर प्रसाद आद सच्च ।
जुगाद सच्च, है वो सच्च, नानक होसी वी सच्च ॥

६३. गुरु अमरदास जी

गुरु अमरदास जी तीसरे गुरु का कथन–

१. वेदों में नाम उत्तम सो सुने नाहिं,
फिरे जियों वेतालया, कहे नानक जिन सच्च तजया ।
कूढ़ लगे तिन जनम जूए हारिया ।

(आनन्द वाणी महल्ला ३)

अर्थात् वेदों में प्रभु नाम की महिमा उत्तम प्रकार से कही गई है । उसको तो ध्यान से कोई सुनता नहीं । वेतालों और पागलों की तरह इधर उधर भटक रहा है । जो सच्च को त्याग कर झूठे सिद्धान्तों को मान रहे हैं उनका जन्म मानो जूए में हार गया ।

२. दीवा बले अंधेरा जाए, वेद पाठ मत पापां खाए ।
उगवे सूर न जावे चंद, जेहा ज्ञान अज्ञान मिटन्त ॥

(राग सोनी महल्ला ३)

अर्थात् जिस तरह दीपक जलने से अंधेरा दूर हो जाता है, इसी तरह वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना, बुद्धि के पापों को नष्ट कर देता है । सूर्य का प्रकाश होने से जैसे चन्द्रमा दिखाई नहीं देता ऐसे ही जहां वेद ज्ञान का प्रकाश होता है वहाँ से अज्ञान अन्धकार नष्ट हो जाता है ।

गुरु नानकदेव जी एक बार भ्रमण करते हुए हरिद्वार पहुंचे तब गंगा में नहाते हुए लोगों को देखा कि वह हाथों में पानी ले कर सूर्य को दिखा कर फिर पानी में फैंक रहे हैं । तब गुरु साहब ने गंगा में से जल उठा-उठा बाहर फैंकना शुरू कर दिया । तब लोग हैरान हो कर पूछने लगे आप यह क्या करते हैं, तब गुरु जी ने उत्तर-दिया कि करतारपुर में मेरे खेत हैं, मैं यह पानी वहाँ पहुंचा रहा हूँ । तब सब लोग हंस कर कहने लगे महाराज यह कैसे हो सकता है कि यहाँ का फैंका हुआ पानी करतारपुर पहुँच जावे। तब गुरु जी ने कहा–यदि मेरा डाला हुआ पानी करतारपुर नहीं पहुँच सकता

तो आप का यहाँ डाला हुआ पानी आप के मित्रों को परलोक में कैसे पहुंच सकता है । इस पर सब लोग शर्मिन्दा हो गए ।

और महर्षि दयानन्द

महर्षि जी भी गंगा के किनारे विचरते हुए जब सोरों ठहरे हुए थे तो एक दिन उन्होंने यह देखा कि लोग चुल्लू भर-भर कर पानी उठाते हैं और फिर गंगा में फैंक देते हैं तो उन्होंने लोगों से पूछा–कि यह कौतुक तुम क्या करते हो तो उन्होंने कहा परलोक गत पितरों को पानी देते हैं । महाराज ने हंस कर कहा कि मूर्खो यदि यही पानी किसी पेड़ की जड़ में डालो तो वह हरा हो जाए । पानी में पानी फैंकने से क्या लाभ, और फिर यह परलोक गत पितरों को न पहुंच कर गंगा में ही मिल रहा है ।

इन उपरोक्त प्रमाणों से स्पष्ट हो गया कि वैदिक धर्म के जिन सिद्धान्तों का अर्थात् एक ईश्वरवाद, ईश्वर का ओं नाम, ईश्वर का जन्म मरण से रहित होना और वेद का अपौरुषेय और सर्वश्रेष्ठ ज्ञान होने का मान्य और प्रचार, गुरु नानकदेव जी, गुरु अमरदास जी, गुरु रामदास जी, गुरु अर्जुनदेव जी और गुरु ग्रन्थ साहिब के लेखक भाई गुरदास जी ने किया था उन्हीं वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार वेद के आधार पर महर्षि दयानन्द जी महाराज ने अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया था और सैकड़ों मुसीबतें और कष्ट सहन करते हुए एकाएकी निर्भय हो कर सारी आयु प्रचार करते रहे जो इस पुस्तक के पाठक भली प्रकार पढ़ेंगे ।

६४. गुरु तेग बहादुर

औरंगजेब बादशाह के जमाने में खुले आम गोघात होता था । हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता और उनके तिलक और जंजु यानि यज्ञोपवीत जबरदस्ती उतरवाये जाते थे । उस वक्त बहुत बड़ी तादाद में हिन्दु इकट्ठे होकर गुरु तेग बहादुर साहिब के पास आनन्दपुर साहिब में गये । और प्रार्थना की कि आप धर्म की रक्षा करें ।

"और फिर गुरु तेगबहादुर जी ने देहली जाकर धर्म की खातिर सीस दे दिया ।"

गुरु गोविन्दसिंह जी ने विचित्र नाटक में कहा है–

तिलक जंजू राखा प्रभु ताका ।
कीन्हेउ बड़ो कलू में साका ॥

अर्थात् परमात्मा ने, गुरु तेगबहादुर जी के तिलक और जंजू की रक्षा की, इस तरह सब हिन्दुओं का और अपना यज्ञोपवीत जो वैदिक धर्म का प्रसिद्ध चिह्न है, उसको बचाने के लिए गुरु तेग बहादुर जी को बलिदान होना पड़ा ।

स्वामी दयानन्द जी महाराज जब कलकत्ता गये तो वहां उनके व्याख्यान आरम्भ होने से हलचल सी मच गई । और शहर के सब मान्यवर और प्रतिष्ठित सज्जन पढ़े लिखे विद्वान्, उनके व्याख्यानों को सुनने आते थे। ब्रह्मसमाज का कलकत्ता शहर में काफी जोर था और उन दिनों ब्रह्मसमाज के नेता श्री केशवचन्द्र सेन अंग्रेजी के बड़े विद्वान् और वक्ता थे । लेकिन उनका झुकाव बहुधा ईसाई मत की ओर था । और वे ब्रह्मसमाज के मैम्बरों को ईसाइयत की तरफ झुकाने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे थे ।

औरंगजेब के जमाने में तो मजहबी तअस्सुब के बाईस जबरदस्ती यज्ञोपवीत उतारे जाते थे । लेकिन अंग्रेजी राजकाल में तो युक्ति के बल से यज्ञोपवीत उतरवाने का आन्दोलन चल रहा था । अतः उन्होंने उन दिनों यज्ञोपवीत के खिलाफ बड़ा भारी आन्दोलन जारी कर रखा था । और उनके जेर असर कई लोग यज्ञोपवीत उतारने की बातें सोच ही रहे थे कि स्वामी जी कलकत्ता जा पहुंचे और उनके व्याख्यानों को सुनकर कलकत्ता के बड़े प्रसिद्ध विद्वान् चक्रवर्ती बाबू ने स्वामी जी से पूछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए या उतार देना चाहिए जैसा कि केशव बाबू कहते हैं तो स्वामी जी ने कहा कि हरगिज नहीं उतारना चाहिए । यज्ञोपवीत अवश्य ही पहनना चाहिए । अतः स्वामी जी महाराज के ऐसे उपदेशों से सैकड़ों लोगों के यज्ञोपवीत उतरने से बच गये। इस तरह महर्षि भी अपनी जिन्दगी में यज्ञोपवीत की रक्षा करते रहे । बल्कि जो लोग यज्ञोपवीत नहीं पहनते थे । ऐसे हजारों लोगों को उन्होंने यज्ञोपवीत पहना दिये । यू० पी० के बड़े से बड़े जमींदारों और ठाकुरों को भी जिनके पहले यज्ञोपवीत न थे उनके यज्ञोपवीत संस्कार कराते रहे । जिस तरह गुरु तेगबहादुर जी ने यज्ञोपवीत की रक्षा की ऐसे ही महर्षि जी ने भी यज्ञोपवीत की रक्षा की ।

भक्त काण्ड समाप्त ।

****

९. राज-काण्ड

६५. राजा हरिश्चन्द्र

सतयुग में रघुकुल में राजा हरिश्चन्द्र जी हुए हैं, जिन्होंने अपने प्रतिज्ञा पालन रूपी धर्म पर अपना सर्वस्व दान कर दिया । राजपाट दान करने के बाद अपने आप और अपनी महारानी तारा को भी संकट में डाल दिया परन्तु धर्म से मुख न मोड़ा । इसलिए लाखों वर्षों व्यतीत हो जाने पर भी इनका नाम सूरज की तरह चमक रहा है । किसी शायर ने भी कहा है–

राजा हरिश्चन्द्र दानी, धर्म जिन बड़ी चीज जानी ।

और

दान की महिमा बताते हुए मनु भगवान् मनुस्मृति में लिखते हैं–

सर्वेषाम् एव दानानाम् ब्रह्मदानं विशिष्यते ।

अर्थात्–अन्न, जल, गौ, भूमि, कपड़ा, तिल, सोना, घी, इन सब दानों से बढ़ कर ब्रह्म का दान है । और उपनिषत्कार कहते हैं–

"सत्यं नाम ब्रह्म" अर्थात् सत्य का नाम ही ब्रह्म है । अर्बी जबान में भी सत्य का वाचक 'हक' शब्द परमेश्वर के लिए इस्तेमाल किया गया है। सत्य को पाने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है, और उसको पाने का क्या तरीका है । यह यजुर्वेद के मन्त्र में बताया गया है–

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति, श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

अर्थात्–सत्य को प्राप्त करने के लिए पहले व्रत धारण करना पड़ता है, तब वह इस मार्ग में दीक्षित होता है । दीक्षित होने पर जिज्ञासु के अन्दर श्रद्धा उत्पन्न होती है और श्रद्धा से फिर सत्य का दर्शन होता है । फिर यजुर्वेद ४०वें अध्याय का मन्त्र सत्य के जिज्ञासु के लिए एक मार्ग और बताता है–

हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

अर्थात् सत्य सुनहरी पात्र में ढका हुआ है, इस सुनहरी पात्र के ढकने को उठाने से सत्य के दर्शन होते हैं । ऐसे ही शब्दों में मशहूर फिलास्फर रसकन कहता है–"बगैर मेहनत से सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता । न ही सत्य का विषय पुस्तकों में लिखा जा सकता है । सत्य कहीं बिकता भी नहीं । सत्य को पाने के लिए प्रत्येक मनुष्य को स्वयं परिश्रम तथा तप करके इसको कूट कर छिलकों से निकालना चाहिए बिना स्वयं तप तथा परिश्रम किये सत्य नहीं मिलता ।

रस्कन से सैकड़ों वर्ष पहले यूनान के मशहूर फिलास्फर अफलातून ने कहा था–"सत्य को सीखने के लिए मनुष्य को सात वर्ष चुपचाप अन्वेषण में खर्च करने चाहिए परन्तु १४ वर्ष यह बात सीखने की आवश्यकता है। कि वह सत्य किस प्रकार अत्यन्त ही सुन्दरता से भली भांति दूसरों के मस्तिष्क में बिठाया जा सकता है । सत्य की खोज अत्यन्त कठिन है। वह कठिन तपस्या और परिश्रम चाहता है । मनुष्य स्वाभाविक आराम पसन्द है, और आसानी पसन्द है । इसलिए सत्य को तलाश करने की मेहनत से कतराता है और मनुष्य के अन्दर सत्य को पाने की जबरदस्त इच्छा भी रहती है । क्योंकि यह इन्सानियत का धर्म ही है ।

किसी अंग्रेज फिलास्फर ने भी कहा है–Search after truth is the moblest Profession of mankind its Puplication a duty.

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जिस सत्य को १४ वर्ष कठिन तपस्या करके योगसाधन करके फिर तीन वर्ष तक गुरु विरजानन्द जी के चरणों में बैठ कर प्राप्त किया । और फिर एक वर्ष उसी सत्य के प्रचार के लिए अपने आप को तैयार करते रहे । अफलातून के हिसाब से भी अधिक समय २६ वर्ष तक मेहनत करके जिस सत्य को पाया । उस सत्य को सर्वसाधारण को बिना संकोच निष्पक्ष और निष्कपट होकर दिन रात दान करते रहे । ऐसे महान् सत्य को जिस कठिनता से प्राप्त किया था । इससे बढ़ कर तकलीफें, मुसीबतें, उठा कर ईंट पत्थर खाकर, जहर पीकर, अपमानित होकर भी संसार के प्राणी मात्र के लिए दान करके भर्तृहरि के इस श्लोक को चरितार्थ कर गये ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अर्थात् कोई निन्दा करे या स्तुति, लक्ष्मी आवे या चली जावे, आज ही मौत आ जावे या युगान्तर की आयु मिल जावे, धीर पुरुष का कदम सत्य पथ से विचलित नहीं होता ।

६६. महाराज कुमार कौत्स

हमारे प्राचीन इतिहास में एक कथा आती है, कि वरतन्तु आचार्य के पास महाराज कुमार कौत्स विद्या ग्रहण करते थे, समावर्तन संस्कार के समय वरतन्तु आचार्य ने राजकुमार से १४ करोड़ सोने की मोहरें दक्षिणा में मांगीं । वरतन्तु आचार्य भी गृहस्थी थे और राजकुमार भी गृहस्थी बनने जा रहा था । अतः उसने गुरु को मुहमांगी दक्षिणा दे दी थी, परन्तु इस दक्षिणा में कुछ स्वार्थ भाव छिपा हुआ था ।

और

दयानन्द की गुरु दक्षिणा अपूर्व थी, मांगने वाला अपने लिए कच्ची कौड़ी नहीं मांगता, और देनेवाला प्राण अर्पण कर देता है। मांगने वाले के त्याग को सराहें कि देने वाले के गुण गायें ।

१—दयानन्द ने अनेक गुरुओं से शिक्षा प्राप्त की थी, परन्तु समावर्तन कहीं भी नहीं करवाया था, कराते भी कैसे जब कि वह तत्त्व न मिला जिसके लिए गुरु की उपासना की थी, विरजानन्द के यहां से विद्या प्राप्ति कर विधिपूर्वक गुरु दक्षिणा देकर इनके पास से जाने की आज्ञा लेते हैं । दयानन्द का यह समावर्तन संस्कार संसार के इतिहास में एक बहुत बड़ा महत्त्वशाली स्थान रखता है । जब दयानन्द ने दण्डी जी के सामने उनके प्रिय लौंग रखे। तब कभी दक्षिणा में दी जाने वाली चीज का विचार न रखने वाले निर्विकार प्रज्ञाचक्षु जी ने पूछ ही लिया "दयानन्द क्या लाये हो" इस प्रश्न ने दयानन्द के अतिरिक्त सब शिष्यों को विचलित कर दिया। गुरु के व्यवहार में इन्हें यह विकार प्रतीत हुआ । उन्हें अपनी अपनी चिन्ता सताने लगी, परन्तु दयानन्द अविचलित थे निष्कम्प, किन्तु अत्यन्त विनय पूर्वक बोले—"महाराज यह थोड़े लौंग कहीं से भिक्षा करके लाया हूँ ।" प्रज्ञाचक्षु जी बोले—" क्या हमारे विद्यादान का यही प्रतिदान है ।" "दयानन्द के अतिरिक्त शिष्य समुदाय थर्रा उठा,

सब का मस्तक चकरा गया, अपनी वारी समीप आते देख वे सब छात्र मन ही मन सोचने लगे–"आज गुरु जी को क्या हो गया, क्या जाने किसी से क्या मांग बैठें।" क्षण भर सन्नाटा रहा। तब दयानन्द ने गुरु-चरणों में सिर रख दिया और विनय पूर्वक भक्ति भरे स्वर में कहा–"महाराज यह तन यह मन आपके अर्पण है।" सब विद्यार्थी इस दक्षिणा से चकरा गये, घबरा गये। पुराने ऋषियों के प्रतिनिधि ऋषि निर्माता विरजानन्द जी अत्यन्त प्रेम भरी वाणी से बोले–"दयानन्द वेद विद्या का लोप हो गया है, ऋषि कृत ग्रन्थों का स्थान मनुष्य कृत ग्रन्थों ने ले लिया है, धर्म को धक्का देकर पन्थ पन्थाइयों ने अपनी महन्ती जमा रखी है, जाओ जाओ इस मिथ्यावाद का विनाश कर वेदविद्या का पुनरुद्धार करो। गुरु-चरणों को स्पर्श करते हुए पूर्ण गुरु के पूर्ण शिष्य ने कहा–"गुरुदेव तथास्तु" ऐसा ही होगा।

२. दयानन्द ने गुरु-आज्ञा के सामने सिर झुका दिया, कोई बहाना नहीं बनाया, कोई आपत्ति खड़ी नहीं की, उत्तर देने के लिए समय नहीं मांगा। गुरु ने सर मांगा, उसी वक्त वगैर किसी आनाकानी के सिर गुरु के चरणों में रख दिया, किसी ने ठीक ही कहा है–

जै तैनूं प्रेम लेखन दा चा, ते सर धर तली गली मोरी आ।

हमें कहीं दो पैसे देने होते हैं तो सौ दफा सोचते हैं, कई किस्म के बहाने बनाते हैं, कभी कभी समय भी मांग लेते हैं। परन्तु गुरु विरजानन्द शिष्य दयानन्द से जीवन मांगता है, और शिष्य निस्संकोच होकर उसी समय अर्पण कर देता है, कितनी उच्चकोटि की गुरु भक्ति है, कितनी अपूर्व उदारता है। कौन कह सकता है कि दयानन्द ने अपने जीवन का उद्देश्य क्या सोचा होगा ? कौन जानता है इतनी विद्या-उपार्जन और इतना योग-साधन करने के बाद अपने जीवन का लक्ष्य क्या बनाना चाहते थे। उन्होंने अपना भावी प्रोग्राम बनाने के लिए कितना सूक्ष्म विचार किया होगा। वे सब उनके विचार धरे के धरे रह गये, और एक क्षण में गुरु के आदेश से इनका जीवन लक्ष्य सदा के लिए स्थिर हो गया।

३. दक्षिणा देने वाला निकला था घर से सच्चे शिव की तलाश और मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए गुरु दक्षिणा में अपना तन मन देकर इसने अपने कर्त्तव्य से बता दिया कि उसने मृत्यु को पछाड़ कर सच्चे शिव को पा लिया है। अथवा सच्चे शिव को प्राप्त कर मृत्यु पर विजय प्राप्त कर

ली है । अपने आप को भुलाया, सच्चे शिव को पाया । ज्ञानी गुरु के चरणों में जो जीवन अर्पण कर सकता है, निश्चय ही वह संसार-सागर पार करके सदा शिव के पास पहुंच जाता है ।

जब गुरु-आज्ञा पाकर दयानन्द ने पाखण्ड खण्डन करना आरम्भ किया तो उनके सहपाठी पण्डित युगलकिशोर जी ने गुरु विरजानन्द जी से उनकी शिकायत की । अत: जब दण्डी जी ने यह सुना कि दयानन्द जी अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर रहा है तो वह बड़े प्रसन्न हए, और युगलकिशोर से कहा कि दयानन्द ठीक कर रहा है । इस पर युगलकिशोर ने कहा कि क्या आप दयानन्द के कार्य का समर्थन करते हैं तो गुरु जी ने कहा–हां, मैं इसका समर्थन करता हूं और उसको आशीर्वाद देता हूं । अत: युगलकिशोर जी ने भी कण्ठी उतार दी और तिलक माथे से पोंछ दिया, और विनय पूर्वक कहने लगा, महाराज गुरुदेव । हमें यह उपदेश आपने क्यों नहीं दिया, तो गुरुदेव कहने लगे–

"तुम इस बोझ को धारण करने में समर्थ नहीं हो ।"

गुरु विरजानन्द की बाहर की आँखें न थीं परन्तु उन्होंने अपनी अन्तरंग आंखों से दयानन्द को देखा और समझा था । तभी इससे जीवन-दान मांगा था, जो तुरन्त मिल गया ।

अपूर्व गुरु-दक्षिणा मांगने वाले गुरु की जय । बिना विलम्ब अपूर्व दक्षिणा देने वाले शिष्य की जय ।

महाराणा राजसिंह, शिवा जी, गुरु गोविन्द, वन्दा बहादुर

१. महर्षि दयानन्द जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में एक राजनीतिक सत्य का भी प्रकाश किया है, आप लिखते हैं–"इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थ रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इस से देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण दुर्व्यसन बढ़ जाते हैं । जैसे कि मद्य, मांस सेवन, बाल-अवस्था में विवाह और स्वेच्छाचार आदि और जब युद्ध-विभाग में युद्ध-विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल

में दूसरा न हो, तब इन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष आ जाते हैं तब आपस में विरोध हो कर अथवा उनसे अधिक कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा हो जाता है, कि उनका पराजय करने में समर्थ हो जाता है। जैसे--मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी और गुरु गोविन्दसिंह जी ने खड़े हो कर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।"

२. आठवीं सदी के शुरू में मुहम्मद बिन कासिम के हमले से लेकर औरंगजेब तक मुसलमान भारत पर हकूमत करते रहे। और इस लम्बे अर्से में उन्होंने हिन्दुओं पर बेपनाह जुल्म किये। गोहत्या, हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाना, हिन्दु औरतों को जबरदस्ती अपने घरों में डाल लेना और हिन्दुओं पर जजिया लगाना, यह तकरीबन तमाम ही मुसलमानों के राज्य में यहां चलता रहा। दरमियान में अकबर ने आकर गोहत्या बन्द कर दी थी और जजिया भी हटा दिया था परन्तु इसके बाद इसके जानशीन फिर पुरानी चाल पर चलने लग पड़े थे। और औरंगजेब ने तो अपने राज्यकाल में जुल्म करने की हद कर दी थी। भला जो मनुष्य अपने बाप को कैद कर सकता है, अपने सब सगे भाइयों के खून से अपने हाथ रंग सकता है और जो अपने ही हम मजहबों पर केवल अकीदां के भेद से अत्याचार करने में पसोपेश नहीं करता। उसने हिन्दुओं पर जिनको वह काफर समझता था, कितने भयंकर अत्याचार किये होंगे, यह बात आसानी से समझ में आ सकती है। औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह दूसरे धर्मों से न केवल घृणा ही करता था बल्कि उनको समाप्त कर देना चाहता था। हिन्दू तो खास कर उसकी धर्मान्धता का निशाना बने हुए थे। उनको जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था। इन पर जजिया लगाया जाता था, (मजहब इस्लाम में जजिया उस टैक्स को कहते हैं, जो ना मुसलमानों पर लगाया जाता है और मुसलमान होने पर माफ कर दिया जाता है) हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से निकाल दिया गया, उनके मन्दिर गिराये जाने लगे और गोघात जोरों पर होने लगा। दक्षिण में तीनों मुसलमान राज्य अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा, ये तीनों ही शीया थे। इसलिए औरंगजेब सुन्नी होने के कारण उनको भी बरदाश्त करने को तैयार न था। अतः इसने तीनों राज्यों को समाप्त कर दिया। चूंकि हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, इसलिए औरंगजेब के इस हद से बढ़े हुए जुल्म

को मिटाने के लिए इस देश में तीन शक्तियां जाग उठीं, जिन्होंने इस देश से मुगल राज्य का खातमा कर दिया।

६७. मेवाड़ का राणा राजसिंह

महाराणा प्रताप का पोता महाराणा राजसिंह इन दिनों मेवाड़ की गद्दी पर था, जब कि औरंगजेब अपने सब खानदान का सफाया करके दिल्ली के तख्त पर बैठा। जब औरंगजेब ने फिर जजिया टैक्स लगाया तो महाराणा राजसिंह ने औरंगजेब को एक खत लिखा, जिसमें उसने लिखा कि अगर परमात्मा को सब्बुल आलमीन यानी सब दुनिया का रब मानते हो तो जजिया लगाने का कोई प्रयोजन नहीं और अगर तुम रब को रब्बुल मुसलमान मानते हो यानी खुदा मुसलमानों का ही है, और जजिया लगाया है तो फिर आप जनता विचारी से जजिया वसूल न करके यदि हिम्मत है तो पहले मुझ से जजिया वसूल करो। इससे औरंगजेब बहुत चिढ़ गया, और इसके बाद एक और वाकया हुआ जिससे औरंगजेब खुद अपनी कमान में फौज लेकर आया और मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी, परन्तु नाकाम और ना मुराद वापस चला गया। वह वाकया टाड राजस्थान में इस प्रकार लिखा है–

"बून्दी रियासत की राजकन्या, जो अत्यन्त सुन्दर और युवा थी, अपने महल के बाग में अपनी सहेलियों के साथ सैर कर रही थी कि एक बूढ़ी मुसलमान औरत कुछ तस्वीरें हाथ में लिये हुए वहां आई और सब लड़कियां वे तस्वीरें देखने लग गईं। इन तस्वीरों में महाराणा राजसिंह की तस्वीर राजकन्या के मन में लगी, और उसने मन ही मन में राणा राजसिंह को अपना पति मान लिया। फिर इस औरत ने औरंगजेब की तस्वीर दिखाई। जिस पर राजकन्या ने नाखुशी का इजहार करते हुए, इस तस्वीर पर जूता मारा, वह मुसलमान औरत वहां से सीधी औरंगजेब के महल में आई और उसने औरंगजेब की बेगम और उसकी लड़की को यह वाकया सुनाया, तब औरंगजेब को भड़काया, कि इस लड़की को फौरन गिरफ्तार करके यहां मंगवाया जावे। बेगम ने कहा मैं इससे मुट्ठी चापी कराऊंगी, और लड़की ने कहा कि मैं इससे हुक्का की चिलम भरवाऊंगी। अतः उस लड़की को लाने के लिए औरंगजेब ने अपनी कुछ फौज भेजी, बून्दी के राजा को हुक्म दिया कि लड़की को फौरन दरबार में हाजिर करने के लिए फौज के हवाले कर दो। बून्दी का राजा छोटा सा

था, वह डर गया उसने अपनी लड़की फौज के हवाले कर दी । इस लड़की को कहीं से पता लग गया कि महाराणा राजसिंह नजदीक ही कहीं शिकार खेलने आया हुआ है । उसने एक पत्र महाराणा राजसिंह को लिख कर भेज दिया कि मैं अपने मन से आपको पति मान चुकी हूं । अत: मेरा पिता चूंकि औरंगजेब का मुकाबला नहीं कर सकता मुझ को उसने औरंगजेब के पास जाने के लिए उसकी फौज के हवाले कर दिया है । और मैं आपको अपना पति बना चुकी हूं इसलिए आप का धर्म है कि आप मुझे बचावें । अत: महाराणा राजसिंह को जब पत्र मिला । उसने उसी दम औरंगजेब की फौज पर हमला करके लड़की को छुड़ा लिया और अपनी पत्नी बना लिया । औरंगजेब को जब इस बात का पता लगा तो वह और भी गजबनाक हो गया। महाराणा के ऊपर लिखे खत से तो वह पहले ही अपनी हत्तक इज्जत समझ रहा था। अब इस वाकया से तो उसको आग सी लग गई और वह बजाते खुद एक बड़ी फौज लेकर महाराणा राजसिंह पर चढ़ दौड़ा । परन्तु महाराणा भी कोई कच्ची गोलियां न खेले थे । उन्होंने भी औरंगजेब को खूब चने चबाए और खुद औरंगजेब के कैम्प पर हमला करके औरंगजेब की उसी बेगम और लड़की को गिरफ्तार करके अपने महल में ले आया । बून्दी की राजकन्या को जो अब मेवाड़ की रानी बन चुकी थी, इन दोनों मां बेटियों की प्रतिज्ञा याद थी, अत: उसने औरंगजेब की बेगम से कहा कि मेरी मुट्ठी चापी करो । और उसकी लड़की को कहा कि हुक्का की चिलम भर लाओ, और ये दोनों काम करवाने के बाद महाराणा को कहा कि इनको कैम्प में पहुंचा दो । अत: इन दोनों को कैम्प में भेज दिया गया । यही नहीं बल्कि मुगलों का सारा लड़ाई का सामान यहां तक कि शाही झण्डा भी जो राजपूतों ने छीन लिया था वह भी वापस भेज दिया । अत: औरंगजेब ने छ: सात महीने मेवाड़ का मुहासरा करके पड़े रहने के बाद और बहुत सा नुकसान उठाने पर राणा राजसिंह से गिड़गिड़ा कर माफी मांग कर अपनी जान बचाई । मुगल साम्राज्य पर मेवाड़ की ओर से यह एक जबरदस्त चोट थी ।

६८. छत्रपति शिवा जी महाराज

औरंगजेब के बरखिलाफ खड़ी होने वाली दूसरी ताकत थी छत्रपति शिवा जी महाराज की। शिवा जी का जन्म सन् १६२७ में हुआ । उनके पिता

जी का नाम शाह जी भौंसला और उनकी माता जी का नाम जीजाबाई था। इनकी माता इनको बचपन से ही हिन्दू वीरों की प्राचीन गाथाएं सुनाया करती थीं, उनके गुरु दादा जी कौण्डेदेव ने इन्हें शस्त्र विद्या और घोड़ा सवारी में निपुण कर दिया था। शिवा जी की बचपन से धार्मिक प्रवृत्ति थी और वे साधु सन्तों की बहुत सेवा किया करते थे। इस समय महाराष्ट्र में दो सन्त बहुत प्रसिद्ध थे। एक सन्त तुकाराम थे, और दूसरे समर्थ रामदास जी, शिवा जी सन्त तुकाराम जी के पास अकसर जाया करते थे। एक दिन उन्होंने सन्त तुकाराम जी से कहा—कि मैं भी साधु बनना चाहता हूं। तब उन्होंने शिवा जी को समर्थ रामदास जी के पास जाने को कहा—समर्थ रामदास जी औरंगजेब के जुल्म देखकर किसी ऐसे वीर की तलाश में थे जो प्रतीकार कर सके। जब शिवा जी समर्थ रामदास जी के पास गये और उन्होंने अपना अभिप्राय प्रकट किया तो समर्थ रामदास जी को शिवा जी के रूप में वह वीर मिल गया। जिसकी वे तलाश कर रहे थे। तब उन्होंने औरंगजेब की ओर से किये जाने वाले अत्याचारों का इतना मार्मिक चित्र शिवा जी के सामने रखा कि शिवा जी ने समर्थ रामदास जी से पूछा कि फिर मेरा क्या कर्त्तव्य है ? तब समर्थ रामदास जी ने कहा कि तुम वीर हो और वीरों की भांति इस जुल्म के बरखिलाफ खड़े हो जाओ। अतः शिवा जी ने समर्थ रामदास जी के उपदेश से महाराष्ट्र की बिखरी हुई मरहठों की शक्ति को इकट्ठा करना आरम्भ कर दिया और अपने युवक साथियों का एक संघ बना कर सन् १६४७ यानि २० वर्ष की आयु में ही इन्होंने तोरान के अहमद शाही किला पर कब्जा कर लिया। फिर राजगढ़, पोरन्धर और रायगढ़ के किलों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस तरह उन्होंने मरहठों की बिखरी हुई शक्ति को इकट्ठा करके एक विशाल राज्य की स्थापना कर दी, और १८७४ में अपना राज्याभिषेक करके छत्रपति शिवा जी बन गये। और औरंगजेब के लिए तो दक्षिण के शिवा जी बहुत बड़े दुश्मन के रूप में दिखाई देने लगे। अतः मुगल राज्य के कफन में शिवा जी ने दूसरी कील गाड़ दी। शिवा जी एक कुशल, योग्य और सफल सेनापति थे। उन्होंने मराठा जाति को जो रेत के कण के समान बिखरी पड़ी थी एक संयुक्त जाति बना दिया। राजनीति के दाव पेचों में तो चालाक और कपटी मुगल भी उनसे पाठ पढ़ते थे। भय तो इन्हें छू तक न गया था। बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी उन्होंने हारी हुई

बाजियां जीतकर दिखाई थीं। निजी जीवन में वे अत्यन्त सदाचारी और पवित्र आत्मा व्यक्ति थे। इन्हें अपने धर्म से प्रेम था परन्तु दूसरे धर्मों का भी वे आदर करते थे। विद्वानों का बहुत आदर मान करते थे। महाराणा राजसिंह की भांति शिवा जी के पास भी उसके कुछ फौजी औरंगजेब की लड़की को जो एक फौज के साथ खजाना ले जा रहे थे, से पकड़ कर ले आये थे परन्तु जब शिवा जी के हजूर में इस लड़की को पेश किया गया तो शिवा जी ने अपने सैनिकों को आज्ञा दी कि इस लड़की को बहुत ही आदर के साथ मुगल फौज में जो उनके साथ लड़ाई करने आई हुई है पहुँचा दिया जावे। अतः शिवा जी की आज्ञा की तामील की गई। और औरंगजेब की लड़की को बहुत ही आदर के साथ मुगल फौज में पहुंचा दिया गया। यह है अन्तर हमारी सभ्यता में और दूसरी सभ्यता में। जिससे हमें मुकाबला करना पड़ता रहा है। मुगल राज्य को समाप्त करने की माहराष्ट्र में यह सफल योजना थी। १४।४।१६८० को शिवा जी का देहान्त हो गया।

६९. गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह जी का जन्म दिसम्बर १६६६ मुकाम पटना में हुआ था। उनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर था। इस समय औरंगजेब का जुल्मो सितम हद तक पहुँच चुका था। "होनहार बिरवा के होते चीकने पात" की लोकोक्ति के अनुसार बचपन से ही इनकी धर्म भावना और जुल्मो सितम के खिलाफ लड़ने की स्प्रिट का पता लग गया था। जब वे नौ वर्ष के ही थे तो एक बार कश्मीर के कुछ ब्राह्मण आनन्दपुर साहब में गुरु तेगबहादुर के पास आए और मुसलमानों की ओर से किये जाने वाले जुल्मों की कहानियां सुनाईं। तब गुरु तेगबहादुर जी इनकी दुःखभरी कहानियां सुन कर विचार में निमग्न हो गये। पिता जी को चुपचाप देख कर गोविन्द राय जी (इनका जन्मनाम यही था) 'बाद में इन्होंने खालसा पन्थ की बुनियाद रखने पर अपना नाम गोविन्दसिंह रख लिया था।' पूछने लगे पिता जी क्या कारण है कि आप चुप हैं। तब उन्होंने अपने सुपुत्र को बतलाया कि बेटा ऐसे बड़े अत्याचारी को हटाने के लिए किसी महापुरुष के बलिदान की आवश्यकता है। तब नन्हें से गोविन्द राय जी ने पिता जी को सम्बोधन करके कहा–"महाराज इस समय आप से बड़ा महापुरुष कौन है, ये दुःखी लोग आप की शरण

में आए हैं, इनके दु:ख को दूर कीजिए।" तब उन्होंने अपने नन्हे पुत्र के परामर्श से प्रसन्न हो कर इन ब्राह्मणों को हौंसला दिया और उनको कहा कि जाओ औरंगजेब से कह दो कि हम गुरु तेगबहादुर की आज्ञा मानेंगे। इसलिए आप ने जो बात करनी हो उनसे करें। अत: गुरु तेगबहादुर देहली गये और औरंगजेब की आज्ञा से इनका सिर कलम कर दिया गया। इस जगह अब चांदनी चौक देहली में गुरुद्वारा सीसगंज मौजूद खड़ा गुरु जी की कुर्बानी और औरंगजेब के जुल्म की दास्तान सुना रहा है। गुरु गोविन्दसिंह जी १३ वर्ष की आयु में गुरु गद्दी पर विराजमान हुए। अस्त्र शस्त्र विद्या के साथ साथ संस्कृत फारसी में भी कमाल हासिल कर लिया था। उन्होंने चण्डीदेवी के मन्दिर पर एक बड़ा भारी यज्ञ इसी मतलब से किया था कि सब को एक जगह इकट्ठा करके जालम के जुल्म को बन्द किया जावे। अत: इस हवन यज्ञ में सैकड़ों मन घी और हजारों मन सामग्री डाली गई थी। फिर उन्होंने १६९९ में प्रथम वैशाख को आनन्दपुर साहब में खालसा पन्थ की बुनियाद रख कर सिखों को सिंह बना दिया, गुरु जी महाराज पूर्ण सन्त, आलम, फाजल, शायर, सिपहसालार और मातृभूमि के भक्त थे। देश और धर्म के लिए उन्हांने अपना सर्वस्व वार दिया था और अपने रचित विचित्र नाटक में अपने जन्म का कारण वही बतलाया जो भगवान् कृष्ण ने गीता में अपने जन्म का कारण बतलाया था। अत: गुरु जी लिखते हैं–

गुरुदेव परमात्मा ने धर्म की स्थापना के लिए हम को इस जगत् में भेजा और आज्ञा दी है कि जाकर धर्म फैलाओ। जो दुष्ट धर्म के दोखी हैं उनको पकड़ कर पछाड़ दो। ऐ सन्त सज्जनो अपने मन में समझ लो कि इस महान् कार्य को पूरा कर देने के लिए हमारा जन्म हुआ है। हमारे जन्म का एक ही उद्देश्य है कि धर्म को चलाओ, सन्त जनों की रक्षा और दुष्टों को जड़ बुनियाद से उखाड़ देना, लोगों क्री इस प्रवृत्ति को देख कर कि हर महापुरुष को लोग जल्दी परमेश्वर का अवतार मान लेते हैं। उन्होंने कहा–

हम हैं परम पुरुष के दासा, देखन आए जगत् तमाशा।
जो हम को परमेश्वर उचरें, सो नर नरककुण्ड में परिहें॥

यानि हम तो भगवान् के दास हैं, जो हम को परमेश्वर कहेगा, वह नरकगामी होगा, जिस तरह महाराष्ट्र में मरहठों की बिखरी हुई शक्ति को छत्रपति शिवा जी ने इकट्ठा करके एक नई शक्ति को जन्म दिया था। इसी तरह बल्कि उससे भी अधिक परिश्रम करके गुरु गोविन्दसिंह जी ने

पंजाब के हिन्दुओं को जिनके अन्दर सदियों से मुसलमानों के जोर जुल्म बरदाश्त करते करते हीनता के भाव पैदा हो चुके थे, फिर से सिंह बना कर यह नारा लगाया कि–

चिड़ियों से बाज मरवाऊँ ।
सवा-लाख से एक लड़ाऊं ।
तब गोविन्दसिंह नाम धराऊँ ॥

और कमजोर व बुजदिल हिन्दुओं को जो क्षात्र धर्म को भूल चुके थे, फिर से क्षात्र धर्म का पाठ पढ़ा कर जालिम दुश्मन के सामने शेर बना कर खड़ा कर दिया, गुरु गोविन्दसिंह जी ने अपने चारों सुपुत्र भी धर्म और देश की बलिवेदी पर बलिदान कर दिये । सारी आयु औरंगजेब के जुल्म के बरखिलाफ मर्दाना वार लड़ते रहे । गुरु जी ने कई पुस्तकें भी लिखीं, जिस में विचित्र नाटक और दशम ग्रन्थ, बहुत प्रसिद्ध हैं । इनके धार्मिक विचार भी परमात्मा को निराकार मान कर मूर्तिपूजा आदिक के विरुद्ध थे । अतः इनका एक सवैया निम्नलिखित है–

काहू ले पाहन पूज धर्यो सिर ।
काहू ले लिंग गले लटकाया ॥
काहू लख्यो हरी आवरची दिशा माहीं ।
काहू पछाह को सीस नवायो ॥
काहू बुतान को पूजत है पशु, कोई मरतान को पूजन धायो ।
क्रूर क्रिया में उरझयो सभी जग, श्री भगवान् का भेद न पायो ॥

गुरु जी महाराज का चण्डीपाठ और दशम ग्रन्थ ठेठ हिन्दी में लिखे हैं, जिससे उनकी हिन्दी शायरी का परिचय मिलता है । आप फारसी के भी शायर थे । अतः जो खत उन्होंने औरंगजेब को लिखा था, जिसमें उसको द्वन्द्व युद्ध के लिए अल्टीमेटम दिया था वह जफरनामा के नाम से प्रसिद्ध है । इसके फारसी शेर न देकर केवल हिन्दी तर्जुमा दिया जाता है । यानि गुरु महाराज औरंगजेब जैसे जालिम और ताकतवर बादशाह को इस तरह मुखातब करके लिख रहे हैं, जिस प्रकार महाराणा राजसिंह ने इसको पत्र लिख कर बुलाया था कि आओ मुझ से जजिया वसूल करो । गुरु जी कह रहे हैं कि बे फायदा सिपाहियों को लड़ाने से क्या मतलब आओ मेरे साथ बल मुकाबिल युद्ध करो । वह इनका पत्र इस प्रकार है–

(१) खुदाबन्द तेगोतबर और मालिक तीर व सना के नाम से ।

(२) खुदाबन्द जो जंग आजमा सूरमाओं और हवा जैसे तेज रफ्तार घोड़ों का मालिक है ।

(३) वह कि जिसने तुझ को बादशाही दी और मुझ को दीन पनाही दी, यानि धर्म रक्षा का उत्साह दिया ।

(४) जिसने तुझ को मकर दिया और तर्क नाजो दी और मुझ को सिदको सफा की चालसाजी बख्शी ।

(५) औरंगजेब का नाम तुझे जेब नहीं देता । क्योंकि तख्त को जीनत देने वाले फरेबकारी को नजदीक नहीं आने देते ।

(६) तेरी यह तसबीह दानों और धागों के सिवा कुछ भी नहीं है और यह वह जाल है जिसके ऊपर दाने बिखरे होते हैं । (औरंगजेब हर वक्त तसवीह (माला) फेरता रहता था ।)

(७) तू वह है जिसने अपने बुरे कर्म से बाप की मिट्टी को भाई के खून से गून्धा ।

(औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दारा शिकोह को कत्ल कर के उसका सिर अपने बाप शाहजहां को जो उसने कैद कर रखा था, पेश किया था।)

(८) और तूने इस से अपने मिट जाने वाले कच्चे घर की बुनियाद रखी ।

(९) मैं अकाल पुरुष की कृपा से वर्षा की तरह लोहा बरसाऊंगा।

(१०) और इस पवित्र जमीन पर वे दीवारें न रह सकेंगी जो तूने बनाई हैं ।

(११) तू दक्षिण के पहाड़ों से ना काम आया और मेवाड़ से भी तुझे कड़वा प्याला पीना पड़ा । (यह छत्रपति शिवा जी और महाराणा राजसिंह थे जिन्होंने औरंगजेब की दुर्गति बनाई थी इस तरफ इशारा है) ।

(१२) अब जबकि तूने अपनी नजर इधर की है, यकीनी तौर पर तेरी तलखी और प्यास मिट जायेगी ।

(१३) मैं तेरे पांव के नीचे वह आग रखूंगा कि तुझे पंजाब का पानी पीना भी नसीब न होगा ।

(१४) क्या हुआ गीदड़ ने अगर मकरो फरेब से शेर के दो बच्चे मार दिये । (यह गुरु जी अपने दो सुपुत्रों अजीतसिंह और जुझारसिंह की तरफ इशारा कर रहे हैं, जो जंग में काम आ चुके थे) ।

(१५) जबकि वह बब्बर शेर तुझ से बदला लेने के लिए जिन्दा सलामत हैं (यानि मैं मौजूद हूं)।

(१६) मैं तेरी झूठी कस्मों पर इतबार नहीं कर सकता क्योंकि मैंने देख लिया है, कि तू खुदा और खुदा के नाम की कसमें खाकर भी फिर सकता है।

(१७) तेरी सौगन्ध पर अब मुझे विश्वास नहीं रहा है और मैं देखता हूं कि तलवार उठाने के सिवा अब मुझे कोई चारा नहीं है।

(१८) अगर तू चालाक भेड़िया है तो मैं भी तुझ से निपटने के लिए एक तेज शेर को रिहा कर रहा हूं।

(१९) अगर तूने एक बार फिर मुझ से बातचीत की तो विश्वास रख तुझे सीधी और पाक राह अवश्य मिल जायेगी।

(२०) मैदान में दो सेनाएं युद्ध के लिए तैयार हों। और फिर वे बहुत जल्द एक दूसरे के आमने सामने हो जायें।

(२१) मेरे और तेरे दोनों के मध्य दो फर्लांग का फासला रहे।

(२२) इसके बाद लड़ाई के मैदान में मैं अकेला आऊँगा और तू दो सवारों के साथ आ सकता है।

(२३) तूने ऐशो इशरत के तो फल खाए हैं परन्तु तुझे जंगी बहादुर सूरमाओं का सामना कभी न करना पड़ा।

(२४) इस तरह तू खुद तलवार या हथियार ले कर मैदान में आ, खुदा की खलकत को मरवाने की बजाये जंग का फैसला हम आपस में कर लें।

देखिये कितनी बेखौफी और बहादुरी से औरंगजेब जैसे जालिम और जाबर शहन्शाह हिन्द को मैदान में आने के लिए ललकारा गया है। इसी बीच में औरंगजेब मर गया और उसका बेटा बहादुरशाह तख्त पर बैठा और उसने गुरु जी को राजीनामा के लिए आगरा बुलाया। बहादुरशाह को अपने भाई कामबख्श की बगावत को दबाने के लिए दक्षिण की ओर जाना पड़ा। गुरु जी भी दक्षिण की ओर चले गये।

गुरु गोविन्दसिंह पर आघात

हमें आश्चर्य होता है कि गुरु गोविन्दसिंह जैसे राजनीति कुशल महापुरुष भी उन शत्रुपक्ष के लोगों को नहीं पहचान सके और उन्हें अपने

पास बनाये रहे, जिन्होंने अन्त में उनके साथ विश्वासघात किया, जो उनकी मृत्यु का कारण बना । कैसे ? सुनिये ।

जब गुरु गोविन्दसिंह जी के पुत्र अजीतसिंह और जुझारसिंह युद्धक्षेत्र में मारे गये और उनके छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतहसिंह का सरहिन्द के सूबेदार वाजिदखाँ ने जीवित दीवार में चुनवा दिया तो गुरु गोबिन्दसिंह पंजाब छोड़कर दक्षिण की ओर चले गये और गोदावरी के तट पर पंचवटी में तप करने लगे । यहाँ उनके साथ अताउल्लाखाँ और गुलखाँ नामक दो पठान रहते थे । वे कई पीढ़ियों से गुरु जी के घराने का नमक खाते आ रहे थे । एक दिन वे दोनों पठान पञ्चवटी के हाकिम फीरोजखाँ के घर भोजन करने गये। वहाँ एक मुसलमान ने उनसे कहा कि "तुम्हें शर्म नहीं आती जो काफिरों की नौकरी करते हो और फिर भी मुसलमानों के खून का बदला उनसे नहीं लेते ?" इस बात को सुनकर अताउल्लाखाँ और गुलखाँ का चित्त पलट गया। उन्होंने गुरु साहब को मारने का पक्का इरादा कर लिया । एक रात सोते समय गुरु साहब के पेट में गुलखाँ ने कटार भोंक दी । गुरु साहब ने झट उठकर तलवार का एक हाथ ऐसा मारा कि नमकहराम गुलखाँ का सिर धड़ से अलग हो गया । अताउल्लाखाँ भाग निकला, किन्तु सिक्खों ने उसे भी पकड़ कर काट डाला । गुरु का घाव अच्छा होने लगा, तब तक बादशाह बहादुरशाह ने दो कमानें, जो किसी से नहीं चढ़ती थीं चिल्ला चढ़ाने को भेजीं । गुरु साहब ने उन्हें खींचकर जो चिल्ला चढ़ाया तो उनके पेट का कच्चा घाव फिर फट गया और उसी से कार्तिक सुदि ५, संवत् १७६५ को गुरु गोविन्दसिंह का स्वर्गवास हो गया। कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह बहादुरशाह ने कमानें जान बूझकर गुरु के पास भेजी थीं, क्योंकि वह जानता था कि गुरु साहब जोश में आकर जरूर उन पर चिल्ला चढ़ायेंगे, जिससे उनका कच्चा घाव फट जायेगा । पाठको आपने देखा है कि गुरु गोविन्दसिंह जैसे राजनीति कुशल भी अपने सरल स्वभाव और घाव कच्चा होते हुए भी झूठी शान में आकर शत्रुओं के विश्वासघात और कपट के शिकार बन गये । इसलिए शास्त्र कहता है कि शत्रु का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये और उसकी कपट चालों से सदा सावधान रहना चाहिये ।

७०. वीर बन्दा वैरागी

इसका बचपन का नाम लक्ष्मणदेव था । बचपन से ही अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण हो गया । एक दिन शिकार में तीर से घायल एक हिरनी और उसके तड़पते बच्चों की करुण दशा देखकर उसने वैराग्य ले लिया और फिर माधोदास नाम रखकर पंजाब से दक्षिण पंचवटी में तप करने चला गया।

कुछ दिन बाद गुरु गोविन्दसिंह ने पंजाब से वहां जाकर मुसलमानों के अत्याचारों की कथा उसको सुनाई, जिसको सुनकर वह गुरु का बन्दा (शिष्य) वैरागी बन गया और फिर उसने सेना इकट्ठी करके मुसलमानों से बदला लेने की ठानी । पंजाब में पहुंच कर सामरना नगर पर चढ़ाई कर दी। गुरु तेगबहादुर का कातिल जलालुद्दीन इसी नगर में रहने वाला था । बन्दा ने नगर को खूब लूटा । उसके बाद पंजाब के अनेक मुसलमानी नगरों को लूटकर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं और सिक्खों पर किये गये अत्याचारों का खूब बदला लिया। एक ग्राम में मुसलमान गोहत्या किया करते थे, वैरागी ने उस ग्राम को नष्ट कर दिया । उसी को छोड़ा जिसने चोटी और जनेऊ दिखाये। वैरागी की धाक चारों ओर जम गई । मुसलमान उसके नाम से कांपने लगे। बहुत से मुसलमान उसको धोखा देने के लिए उसके शिष्य बन गये। वे उनके साथ विश्वासघात करना चाहते थे । उन्होंने सरहिन्द के नवाब को गुप्त पत्र लिखा कि "हमने इसको हाथों पर डाल लिया है अब यह कपट से मारा जायेगा ।" वैरागी की नीतिकुशलता ने उस पत्र को रास्ते में ही पकड़वा लिया और फिर उन सब कपटियों को कत्ल करा दिया । उस स्थान का नाम कत्लगढ़ी रक्खा । इसके बाद उसने मुसलमानों का कभी विश्वास नहीं किया । यह है व्यावहारिक नीति कुशलता, जिसकी कमी हमारे राजपूत राजाओं में हमें पग-पग पर खटकती है ।

एक बार बलौड़ ग्राम के ब्राह्मणों ने आकर वैरागी से कहा—"महाराज! मुसलमान हमें रहने नहीं देते । हमारी बहू बेटियां जबरदस्ती छीन लेते हैं । गौ को मार कर उसका रुधिर हमारे कूओं में डाल देते हैं" । वैरागी उठा और उसने उस गांव के सारे मुसलमानों को नरकधाम पहुंचा दिया ।

सन् १७०७ में सरहिन्द का घोर युद्ध हुआ । सरहिन्द का सूबेदार वजीदखाँ पकड़ा गया और जिन्दा जला दिया गया । दीवान सुच्चानन्द, जो हिन्दू होकर भी देशद्रोही और जाति का दुश्मन था और मुसलमानों से मिल

गया था, इस युद्ध में पकड़ा गया और मार डाला गया। वैरागी ने नगर की ईंट से ईंट बजा दी और किले की दीवार में से गुरु गोविन्दसिंह के दोनों बच्चों, जोरावरसिंह और फतहसिंह की हड्डियां निकलवा कर विधिवत् संस्कार करके उन पर समाधि बनवा दी। इस प्रकार अपने गुरु के बच्चों के जिन्दा दीवार में चुने जाने का बदला वैरागी ने सरहिन्द नगर से खूब दिल खोल कर लिया। इसके बाद वैरागी ने और अनेक नगरों को जीता। इतिहास लेखक मोहम्मद लतीफ अपनी "Histouy of the Punjab" में लिखता है–"वैरागी ने सहस्रों मुसलमानों का वध किया, मस्जिदें और खानकाहें मिट्टी में मिला दीं। लुधियाना से लेकर सरहिन्द तक सारा देश साफ कर दिया। मुर्दों को कब्रों से निकाल कर कौवों को खिलाया, इसीलिए मुसलमान इसको "मलकुलमौत" कहने लगे।"

दिल्ली के बादशाह औरंगजेब के मरने पर बहादुरशाह बादशाह हुआ। वह भी वैरागी से डरता था। उसके भी मर जाने पर बादशाह फरुखसीयर ने वैरागी की शक्ति को कम करने के लिए सिक्खों में फूट डालने की चाल चली। उसने हिन्दू मन्त्री रामदयाल को गुरु गोविन्दसिंह की पत्नी (माता सुन्दरी) के पास भेंट देकर कहला भेजा, हम गुरु भक्त हैं। उन्हीं के वरदान से हमें राज्य मिला है। 'वैरागी प्रजा को दुख देता है, हम सिक्खों को जागीरें देंगे"। माता जी इस चाल में आ गईं उन्होंने सिक्खों को कहला भेजा कि वैरागी सिक्ख नहीं है। उसका साथ कोई न दे। सिक्खों पर इसका प्रभाव पड़ा और सब ने वैरागी का साथ छोड़ दिया। बादशाह ने खालसा पन्थ से अलग सन्धि की। फल यह हुआ कि लाहौर के पास शालीमार बाग के युद्ध में ५००० खालसा सिक्ख वैरागी के विरुद्ध तलवार लेकर आ गए। वैरागी को यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने तलवार म्यान में कर ली और सोचने लगा कि गुरु के बच्चों का बदला लेने के लिए और जिन सिक्खों के लिए मैं लड़ रहा हूं, जब वही मेरे दुश्मन हो गए तो मैं अब किस के लिए लड़ूँ ? वैरागी ने कुछ दिन के बाद एक बार फिर तलवार उठाई और स्यालकोट, गुजरात आदि को विजय कर लिया। अन्त में ३०,००० शाही सेना ने उसे गुरदासपुर में घेर लिया। उसकी सेना नजर बन्द कर दी गई। सिक्ख मुसलमानों से जा मिले। वैरागी ने विवश होकर आत्मसमर्पण कर दिया। वह अकेला क्या करता ? वह दिल्ली में ले जाया गया जहां गरम चिमटों

से उसका मांस नोचा गया। उसके बेटे का कलेजा निकाल कर उसके मुंह पर मारा गया। उसकी मृत्यु के बाद सिक्खों की आंखें खुलीं कि मुसलमानों पर विश्वास करके और वैरागी का साथ न देकर उन्होंने कितनी भारी भूल की है। सिक्खों के सिरों पर इनाम लगाए गए अर्थात् जो कोई उनका सिर काटकर लाएगा उसे इनाम मिलेगा। भाई तारूसिंह चरखी पर चढ़ाकर कपास की तरह ओट दिए गए। अनेक अत्याचार हिन्दुओं और सिक्खों पर फिर होने लगे। यह सब किसका फल था ? आपस की फूट और शत्रुओं पर विश्वास करके उनके जाल में फंस जाने का। इस अभागिन फूट ने ही हमारे देश का और जाति का सत्यानाश किया है। धन्य है वीर बन्दा वैरागी को ? जिसने अपनी जाति और धर्म की रक्षा के लिए संन्यास छोड़कर तलवार उठाई और क्षात्र धर्म का पालन करते हुए बड़ी वीरता से हिन्दू जाति की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया।

धन्य वीर बन्दा वैरागी, तेरा था अनुपम बलिदान।
आर्य जाति की रक्षा के हित, तूने करतब किये महान्॥

और

मुसलमानों के राजकाल में जहां हकूमत के जोर से हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाया जाता था, वहां इसके साथ ही कुछ मुसलमान फकीरों ने भी हिन्दुओं को मुसलमान बनाने का काम किया। अत: इनमें से इस्माइल बुखारी। नूरुलदीन शेख, महीउद्दीन चिश्ती (जिसकी मजार अजमेर में है)। शेख सलीम नजामउद्दीन, (जिसकी मजार देहली में है) बाबा फरीद के नाम बड़े प्रसिद्ध हैं। इसके इलावा इसमाइली फिर्का के पीर सदरदीन जिनके गद्दीनशीन आज कल आगा खां कहलाते हैं) ने बड़े जोर शोर से प्रचार किया। उन्होंने संस्कृत, फारसी, अरबी की मिली हुई किताबें लिखीं। जिनमें पीर सदरदीन को हिन्दुओं का दसवां अवतार सिद्ध किया गया। अत: इनका एक श्लोक निम्नलिखित देखिये–

जीरे भाई रे आज कलज़ुग मां ईश्वर आदम नाम भनाया।
गुरु ब्रह्मा ने रची मुहम्मद कहलाया हो जीरे भाई॥
जीरे भाई रे पुरुष उत्तम विष्णु जी अलीरूप नाम भनाया।
केते नाम रिखी सरे ध्यायां हो जीरे भाई॥

कलजुग मध्ये अनन्त करोड़ों पीर सदरदीन बरालया ।
अवतार दशमों दिलामां धरी, घट कश रूपे सहजा थापया ॥

अर्थात्—कलयुग में परमेश्वर ने अपना नाम आदम रखाया । ब्रह्मा मुहम्मद कहलाए और विष्णु अली नाम से प्रसिद्ध हुए और कलयुग में दसवां अवतार पीर सदरदीन ही हैं । इसके इलावा मुसलमानों ने इस तरह का एक अल्लाह उपनिषद् भी बना डाला, जिसका खण्डन महर्षि जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में कर दिया है । मुसलमानों के राजकाल में जहां जबरदस्ती और प्रचार के जरिये हिन्दुओं को मुसलमान बनाया जाता था वहां संस्कृत साहित्य की लाखों पुस्तकों को जला कर सोलह साल तक मुसलमान बादशाहों के हमाम गर्म होते रहे और अवन्तीपुरी के नौ नौ मंजिला ऊँचे पुस्तकालय जलाकर खाक कर दिये । मुसलमानों के इस तरह साहित्य को जलाने का एक बड़ा कारण रहा है, जो निम्नलिखित वाक्य से प्रकट होता है । जिस वक्त मुसलमानों ने मिश्र विजय किया तो इसकिन्दरिया में बहुत बड़ा साहित्य का भण्डार था । मुसलमान फौज का सब से बड़ा जरनैल एक मिश्री अमीर का दोस्त बन गया था । उसने अपनी दोस्ती के भरोसे इस जरनैल से यह प्रार्थना की कि इसकिन्दरिया का जो पुस्तकालय है, जिसमें हमारे हजारों बुजुर्गों की वर्षों की मेहनत से लिखी हुई पुस्तकें पड़ी हैं आप तो पढ़ नहीं सकते, वह पुस्तकालय हमें दे दिया जावे । ताकि हम लोग वे पुस्तकें पढ़ लिया करें । तब उस जरनैल ने कहा कि मैं आप की यह प्रार्थना स्वयं स्वीकार नहीं कर सकता । अपने खलीफा साहब को अपने मिश्री दोस्त की प्रार्थना की बाबत लिखा । (तब खलीफा साहब ने जो जवाब दिया वही जवाब ही हमारे संस्कृत ग्रन्थों के जलाने का कारण बना । उसने जवाब दिया कि अगर तो ये पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तब तो कुरान की मौजूदगी में इनकी आवश्यकता नहीं । क्योंकि एक कुरान ही काफी है अगर ये पुस्तकें कुरान के खिलाफ हैं, तब इनकी वैसे ही जरूरत नहीं । इसलिए दोनों सूरतों में यही हुकम दिया जाता है कि इसकिन्दरिया के पुस्तकालय की सब पुस्तकों को जला दिया जावे ।

महर्षि दयानन्द

स्वामी जी महाराज जब कार्य क्षेत्र में उतरे उस समय मुसलमानों का राज्य समाप्त हो चुका था और अंग्रेजों का राज्य सारे भारत पर पूर्ण रूप

से ही स्थापित हो चुका था और इस तरह अब हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान बनाने का तो कोई सवाल न था. अंग्रेज शासकों के साथ-साथ ईसाई पादरी भी देश में फैल कर अपना प्रचार तहरीर और तकरीर द्वारा कर रहे थे । तब मुसलमानों ने भी यही ढंग अपनाना शुरू कर दिया। गोया अब तीर तलवार की जंग न रह कर तहरीर और तकरीर की जंग शुरू हो गई थी, और हिन्दुओं पर अब दो तर्फा हमले हो रहे थे । ईसाइयों की तरफ से भी और मुसलमानों की तरफ से भी । और दोनों ही अपने अपने विचारों के प्रचार से हिन्दुओं को अपनी अपनी तरफ खींचने में पूरा-पूरा जोर लगा रहे थे । हथियारों की जंग से विचारों की जंग बहुत अधिक भयानक होती है । क्योंकि बम से भी विचारशक्ति अत्यन्त प्रबल होती है, इसका एक उदाहरण अभी दूसरी बड़ी जंग में मिलता है । सन् १९४५ में जापान के दो शहर नागासाकी और हिरोशेमा में अमरीका ने एक एक एटम बम्ब मारा था, जिससे दोनों शहर तबाह हो गये । इस में बसने वाले तकरीबन तीन लाख आदमी मारे गये, परन्तु अब १९६४ है । इस १९ वर्ष के अर्से में वही दोनों शहर अब पहले से भी ज्यादा शानदार इमारतों से भरपूर हो गये हैं और उनकी आबादी भी पहले से ड्योढ़ी हो गई है, अथवा केवल १९ वर्ष के समय में एटम बम्ब का असर बिल्कुल समाप्त हो गया, परन्तु मुहम्मद के विचार अभी तक संसार में अपना काम बराबर करते जा रहे हैं । इससे स्पष्ट होता है कि विचार-शक्ति एटम बम्ब से भी बहुत अधिक शक्तिशाली है । महर्षि वाल्मीकि जी ने भी कहा है-"क्षात्रबलम् धिग् बलम् ब्रह्मबलम् बलम्" यानि विचारशक्ति के सामने क्षात्र-शक्ति अति हीन दरजे की है ।

कहा भी है-Ideas are more Powerful than bombs.

हथियारों की जंग हमारे वीर योद्धाओं छत्रपति शिवाजी, महाराणा राजसिंह, श्री गुरु गोविन्दसिंह जी और बन्दा बहादुर ने लड़ कर मुसलमान सलतनत को समाप्त कर दिया । अब विचारों की जंग में एक वीर योद्धा की कमी को महर्षि दयानन्द जी ने पूरा किया । जहां मुसलमानों ने एक अल्लाह उपनिषद् ही बनाया था । वहां ईसाई पादरियों ने एक यजुर्वेद बना डाला । अतः सन् १७६१ में राबर्ट डी० नौवली नामी पादरी ने एक द्राविड पण्डित को रुपया दे कर पुराणों और इञ्जील से कुछ बातें मिला कर एक संस्कृत पुस्तक लिखवाई और उसका नाम यजुर्वेद रखा और उस समय यह पुस्तक

वेद के नाम से लोगों को सुनाया जाता था। इसका फ्रैंच भाषा में अनुवाद भी हुआ और बड़ी धूमधाम से पैरिस के पुस्तकालय में रखा गया। सन् १७७८ में इस पर बड़े बड़े लेख लिखे गये। अन्त में मैक्समूलर ने जब इस पुस्तक की बाबत यह लिखा-"In plain English the whole book is childishly derived."

अर्थात्-यह समग्र पुस्तक बच्चों का खेल है। इस प्रकार ईसाई पादरियों ने हमारे साहित्य को बिगाड़ना शुरू कर दिया था। और हमारे बरखिलाफ बहुत बड़ा आन्दोलन खड़ा कर दिया था। अपने इस साहित्य प्रचार के जोर पर ईसाई पादरी यह एलान करने लग गये थे कि पचास वर्ष के अन्दर सारे भारत को ईसाई बना लेंगे। इसके लिए उन्होंने योजनाएँ भी बना ली थीं।

स्कूल, कालिज, हस्पताल, यतीम खाने आदि महज ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए खोले गये थे। गली, बाजारों, शहरों, गांवों में, तहरीरी और तकरीर प्रचार का एक जोरदार चक्कर सा चला दिया। ईसाइयों ने जब देखा कि हिन्दू भगवे कपड़े वाले साधुओं का बहुत मान करते हैं तो उन्होंने एक सालवेशन आरमी, नाम की संस्था बनाई। जिसके प्रचारक और प्रचारिकाएं बिल्कुल हिन्दु साधुओं का भेष धारण करके हिन्दुओं को ईसाई बनाने का काम करते थे। और मुसलमान भी जोर शोर से तहरीर और तकरीर के द्वारा प्रचार कर रहे थे। परन्तु हिन्दुओं के अन्दर किसी की जुर्रत न पड़ती थी कि मुसलमान वा ईसाइयों की तरफ से किये गये अपने धर्म पर हमलों का कोई उत्तर दे सके। ईसाई पादरी तो बड़े भरोसे के साथ यह कहने लग गये थे कि हम ५० वर्षों में समस्त भारत के हिन्दुओं को मुसलमान बना लेंगे परन्तु परमात्मा को यह मञ्जूर न था क्योंकि किसी कवि ने कहा भी है-

यूनानो मिश्र रूमा सब मिट गये जहाँ से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी॥

और अंग्रेजी की एक लोकोक्ति के अनुसार-

"man proposes and god disposes"

प्रभु के कृपा से ऐसे समय में पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी और पूर्ण विद्वान् महर्षि दयानन्द ने मैदान में आकर सब विरोधियों को ललकारा। ईसाई मुसलमान सब हैरानी के साथ इनकी तरफ देखने लग गये। महर्षि ने जहां

अपने धर्म का अति उत्तम रीति से मण्डन करके उसको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध किया। वहां ईसाई और मुसलमानों के मन्तव्यों का पूरे जोर से खण्डन करके हमलावरों का न सिर्फ मुंह मोड़ दिया । बल्कि उनको अपना घर संभालना कठिन हो गया । और जहां महर्षि के आने से पहले हिन्दुओं में घबराहट फैली हुई थी, महर्षि के आने के बाद ईसाई और मुसलमानों में भगदड़ मच गई, कोई बड़े से बड़ा पादरी और बड़े से बड़ा मौलवी महर्षि के सामने दम मारने की जुर्रत न कर सकता था । जिसका उदाहरण मेला चाँदापुर का प्रसिद्ध शास्त्रार्थ है। चांदापुर यू० पी० में यह शास्त्रार्थ १९ मार्च सन् १८७७ से २३ मार्च १९७७ तक होना निश्चित हुआ था । और इसके लिए विज्ञापन छपा कर सब मजहबों के बड़े बड़े विद्वानों को निमन्त्रण दिया था । अतः महर्षि दयानन्द जी, मौलवी मुहम्मद कासम जो मुसलमानों के दीनी मदरसा देवबन्द के सब से बड़े उस्ताद थे, (देवबन्द का मदरसा मुसलमानों के लिए वैसा ही है जैसा हिन्दुओं के लिए काशी) और पादरी नवल साहब और स्काट साहब जो ईसाई मजहब के प्रसिद्ध प्रचारक थे वहां पहुंचे थे । अतः २० मार्च प्रातः साढ़े सात बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ और शास्त्रार्थ के लिए पांच विषय रखे गये ।

(१) परमेश्वर ने जगत् को किस वस्तु से बनाया, किस समय और किस उद्देश्य से रचा ।

(२) ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं,

(३) ईश्वर न्यायकारी व दयालु किस प्रकार है ।

(४) वेद बाईबल कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ?

(५) मुक्ति क्या पदार्थ है, और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ।

विषय पांच थे दिन चार मुकर्रर थे, परन्तु पहले विषय पर ही महर्षि दयानन्द की अलौकिक प्रतिभा ने विरोधियों के छक्के छुड़ा दिये । एक दिन भी इस पूर्ण विद्वान् के सामने ठहर न सके । और भाग गये हालांके मेले के लिए पांच दिन का समय मुकर्रर हो चुका था । और विज्ञापन भी पांच दिन के शास्त्रार्थ के लिए छपे और बांटे गये थे, महर्षि के सामने सारे भारतवर्ष में जिस तरह कोई पण्डित न ठहर सका । इसी तरह कोई मुसलमान मौलवी और न कोई बड़े से बड़ा ईसाई पादरी ही ठहर सका । और महर्षि हर मैदान

में दिग्विजयी ही रहे।

१. रावलपिण्डी में महर्षि विराजमान थे तो एक दिन एक ईसाई पादरी ने कहा कि महाराज ! कृष्ण महाराज तो गोपियों के कपड़े उतार कर वृक्ष पर चढ़ गये थे, यह कैसी अश्लील बात है। महर्षि जी ने कहा कि जिन पुराण ग्रन्थों में ऐसा लिखा है, उन्हें हम नहीं मानते। कृष्ण जी का जो जीवन-चरित्र महाभारत में है, उसमें कृष्ण जी को कोई दोष नहीं लगाया गया। परन्तु आपकी इंजील में तो हजरत लूत का अपनी सगी दोनों बेटियों से शराब पीकर जना करना दिखलाया गया है, क्या यह अश्लील नहीं है। इस पर वह पादरी कहने लगे कि इंजील में ऐसा कहीं नहीं लिखा। महर्षि ने अपनी इंजील दिखाई तो वह कहने लगा, हम आपकी इंजील नहीं मानते। महाराज ने कहा आपके घर जो इंजील है उसमें देख लेना। जब इस पादरी ने घर पर जाकर देखा तो वैसा ही लिखा पाया, जैसा कि महाराज ने कहा था तो शर्मिन्दा होकर महर्षि के पास न आया।

२. कुरान की तो महाराज ने बिस्मिल्लाह ही गलत कर दी, और उस दिन से यह एक लोकोक्ति बन गई है। जब किसी को कहना हो कि आपने तो पहले ही गलत बात कह दी या कर दी तो लोग कहते हैं कि आपने तो बिस्मिल्ला ही गलत कर दी।

३. महर्षि के प्रचार क्षेत्र में आने से पहले आम हिन्दुओं की तो क्या कथा बड़े बड़े पढ़े लिखे पण्डित किस तरह ईसाई होते थे, इसका एक ही दृष्टान्त पर्याप्त है। जब महर्षि बम्बई में प्रचार कर रहे थे तो नीलकण्ठ शास्त्री नामी एक ईसाई महाराज से मिलने आया, यह वही नीलकण्ठ था जिसने ईसाई होकर इञ्जील का संस्कृत में अनुवाद किया था। महाराज के साथ वार्तालाप करता करता रोने लग पड़ा। महाराज ने कारण पूछा तो कहने लगा—महाराज आप जैसे सदुपदेशक हमें पहले मिल जाते तो हम अपना धर्म क्यों त्यागते। तब महाराज ने कहा—कि अब क्या बिगड़ा है, वापस आ जाओ। तब वह कहने लगा—महाराज अब वापस नहीं आ सकता, क्योंकि बाल बच्चे बड़े हो चुके हैं। और उनके विवाह ईसाई परिवारों में हो चुके हैं। मुझको भी और उनको भी काफी तन्खाहें मिल रही हैं। परन्तु यह मैं अवश्य कहूंगा कि यदि आप जैसे उपदेशक पहले होते तो ईसाई इतना प्रचार न कर पाते।

४. महाराज ने जहां हिन्दू कौम को लुटेरों की लूट से बचाया, वहां

पहला लुटा हुआ माल भी वापस लेने का ढंग बताया। यानि शुद्धि का द्वार जो हजारों वर्षों से बन्द पड़ा था, खोल दिया। और सब को वैदिक धर्म की शरण में आने का आवाहन किया।

५. जहां हमारे वीर योद्धाओं ने हथियारों की जंग लड़ कर विरोधियों के छक्के छुड़ाए, वहां महर्षि दयानन्द जी ने विचारों की जंग लड़कर विरोधियों के धुर्रे उड़ा दिये। और फिर अपना अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश लिख कर विचारों का एक ऐसा शक्तिशाली मेगजीन छोड़ गए, कि जब तक संसार स्थित है, कोई विरोधी सामने न ठहर सकेगा, इसलिए जहां गुरु गोविन्दसिंह जी के लिए किसी कवि ने कहा था।

जो न तीर छूटते गोविन्दसिंह जवान के।
नाम का निशां न रहते, आज हिन्दुआन के॥

पंजाब के हिन्दुओं के लिए तो बिल्कुल सत्य ही था। इसी तरह महर्षि के लिए भी कवि कह गया है, और वह सारे भारत के लिए है—

देखो स्वामी दयानन्द क्या कर गया।
गुलशने हिन्द को फिर हरा कर गया॥
तर्क के तीर बरसाये इस जोर से।
होश पाखण्डियों के हवा कर गया॥

७१. सम्राट् रणजीतसिंह

शेरे पंजाब महाराजा रणजीतसिंह सैर को जा रहे थे, नौकर चाकर साथ थे। कुछ लड़के बेर के पेड़ पर ईंट, रोड़े, कंकर फैंक रहे थे, ताकि पके हुए बेर खा सकें। अचानक एक लड़के का फैंका हुआ कंकर महाराज रणजीतसिंह को लग गया। महाराजा खड़े हो गये, नौकरों को आज्ञा दी कि लड़कों को पकड़ कर पेश करो, महाराज के कंकर लगते ही लड़के तो डर के मारे सिर पर पांव रखकर नजदीकी अपने गांव में भाग गये। नौकर गये और उनको पकड़ कर ले आये। लड़के जार जार रो रहे थे, उनके माँ बाप रिश्तेदार भी घबराये और मन में डर रहे थे कि पता नहीं महाराजा साहिब लड़कों को क्या सजा देंगे ? जब वे लड़के महाराजा के सामने पेश हुए तो महाराजा साहब ने पूछा कि तुम बेरी पर ईंट पत्थर क्यों फैंक रहे थे ? एक लड़के ने जवाब दिया, बेरी से पके हुए बेर प्राप्त करने के लिए। तब महाराजा

साहब ने अपने सेवकों को आज्ञा दी, कि जल्दी बाजार से जाकर मिठाई ले आओ, और इन लड़कों को बांट दो और पुरस्कार भी दिया। कहने लगे कि क्या मैं बेरी के पेड़ से भी गया गुजरा हूं। जो लड़कों को पत्थर मारने के बदले पक्के बेर देती है। महाराजा की यह आज्ञा सुनकर सब बच्चे प्रसन्न हुए और उनके माता पिता आदि को भी प्रसन्नता हुई।

और

२. सन् १८७७ में महर्षि दयानन्द जी अमृतसर पधारे और व्याख्यान आरम्भ किये तो शहर भर में तीव्र आन्दोलन शुरू हो गया। जैसा कि हर जगह महाराज के प्रचार से हो जाता था। एक दिन एक बाल पाठशाला के अध्यापक ने अपने छात्रों से कहा–कि आज सब कथा में चलेंगे। तुम सब अपनी अपनी झोलियाँ ईंट, रोड़े, कंकर आदि से भर कर मेरे साथ चलना, और जब मैं संकेत करूं तो कथा करने वालों पर ईंट, रोड़े, कंकर फैंक देना, मैं तुम्हें लड्डू दूँगा। अबोध बालकों ने अपनी अपनी झोलियाँ, अपने अध्यापक के आदेशानुसार भर लीं, और अपने इस दुष्ट अध्यापक के साथ स्वामी जी के व्याख्यान में पहुंच गये, व्याख्यान रात्रि के आठ बजे समाप्त हुआ करता था। जब कुछ कुछ अन्धेरा होने लगा तो अध्यापक का संकेत पाकर बालक महर्षि पर ईंट, रोड़े और कंकर फैंकने लग गये। सभा में हलचल मच गई परन्तु महाराज शान्त रहे। वह दुष्ट अध्यापक तो भाग गया, परन्तु पुलिस तो मौका पर मौजूद थी, कुछ बालकों को पकड़ कर महाराज के सामने ले आई। बालक विचारे फूट फूट कर रो रहे थे, महाराज ने बालकों को ढारस बंधाई और पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया तो बालकों ने सारा वृत्तान्त सच सच सुना दिया। तब महाराज ने कहा तुम्हारा अध्यापक तो शायद तुम को लड्डू न देवे परन्तु हम तुम को लड्डू खिलाते हैं और बाजार से लड्डू मंगवाकर बच्चों को बाँट दिये। जिससे बच्चे प्रसन्न हो गये।

अबोध बालकों के प्रति सम्राट् रणजीतसिंह और परिव्राट् महर्षि दयानन्द के एक ही समान भाव थे।

७२. प्रसिद्ध जरनैल हरीसिंह नलुआ

महाराजा रणजीतसिंह का यह प्रसिद्ध जरनैल जिस के विषय में अंग्रेजी अखबार में लिखा था कि वह दुनिया का सब से अधिक कामयाब

जरनैल था। और जिसके भय से सरहद के पठान काँपते थे और जिस की दहशत का इतना सिक्का सरहद पर जमा हुआ था कि पठान माताएं अपने रोते हुए बच्चों को चुप कराने के लिए "हरिया आया" का मन्त्र पढ़ती थीं तो रोते हुए बच्चे चुप हो जाया करते थे। और इसी का बिगड़ा हुआ रूप पंजाब में "हौआ आया" बन गया है। वह जरनैल पंजाब के गुजरांवाला शहर में सन् १७७९ में पैदा हुआ था। काश्मीर में उस समय मुसलमानों का राज्य था। और उस राज्य में हिन्दुओं को पगड़ी बांधने और जूता पहनने की मनाही थी। जो इस आज्ञा का विरोध करता था उसको रस्सों से बाँध कर डल झील में डुबो दिया जाता था। हरीसिंह नलुआ ने कश्मीर को विजय कर लिया और हिन्दुओं को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। दुष्टों के साथ दया करना इसके नियम के विपरीत था। वह "शठे शाठ्यं समाचरेत्" के नियम पर अमल करके अपराधियों को खूब सजा देता था। एक बार उसे मालूम हुआ कि पठानों ने कुछ हिन्दू लड़कियां पकड़ कर अपने घरों में डाल रखी हैं उसने उनके घरों में पहुँच कर एक हजार पठान स्त्रियां पकड़वा लीं। यह देख कर पठान घबरा गए। और उन्होंने सब हिन्दू लड़कियां वापस कर दीं। तब नलुआ ने भी सब पठान स्त्रियां वापस कर दीं। फिर पठानों को किसी हिन्दु लड़की पर बलात्कार करने की हिम्मत न रही।

और

सन् १८८१ में महर्षि दयानन्द जी महाराज जब राजपूताना की रियासत मसौदा पहुंचे तो उनको मालूम हुआ कि मसौदा में कुछ हिन्दू राजपूत मुसलमान राजपूतों से अपनी लड़कियों की शादियां कर दिया करते थे। महर्षि ने ये एकतरफा ट्रैफिक देख कर उन हिन्दू राजपूतों को बुलाया और उनको समझाया कि तुम ऐसा अनर्थ क्यों करते हो। महाराज के सद् उपदेशों से उन्होंने ऐसा न करने का प्रण लिया और यह कुप्रथा बन्द हो गई। और हिन्दु लड़कियां मुसलमान घरों में आबाद होकर मुसलमान पैदा करने से बच गईं। क्षात्र धर्म का सहारा लेकर हरीसिंह नलुआ ने हिन्दु स्त्रियों की रक्षा की और ब्रह्म-धर्म का सहारा लेकर महर्षि ने भी वैसा ही किया। परन्तु क्षात्र बल का असर उस समय के लिए ही होता है और ब्रह्मबल का असर स्थायी होता है। इसलिए जब से महर्षि जी के सदुपदेश से यह अनिष्ट करने वाली कुप्रथा बन्द हुई हजारों हिन्दु लड़कियां मुसलमानों का घर बसाने से बच गईं। और

जब तक यह संसार रहेगा बचती रहेंगी ।

७३. अकबर आजम

जब हम तरीख पढ़ा करते थे उसमें अकबर बादशाह के विषय में लिखा था कि–मुगले आजम अकबर एक दिन में ४० मील का सफर कर सकता था ।

और

महर्षि दयानन्द जब गुरु विरजानन्द जी से समावर्तन के बाद विदा हुए तो दो वर्ष आगरा में रहे, आगरा और मथुरा का २० मील का फासला है अत: जब कभी उनके मन में शंका उत्पन्न होती तो वह शंका निवारणार्थ आगरा से मथुरा आते और शंका-निवारण करके उसी दिन वापस आगरा आ जाते यानि एक दिन में ४० मील का सफर करते थे, वैसे भी आम तौर पर ८/१० मील की सैर करते वक्त इतना तेज चलते थे कि आम आदमी दौड़ कर ही उनके बराबर चल सकता था ।

अत: महात्मा मुन्शीराम जी ने अपना बरेली का वृत्तान्त लिखा है कि एक दिन मैं स्वामी जी के साथ सैर करने की इच्छा से घर से जल्दी प्रात: ४ बजे के करीब उनके निवास स्थान पर आ गया और उनके साथ सैर करने चल पड़ा, परन्तु वे इतना तेज चलते थे, कि मैं दौड़ कर भी उनके साथ न मिल सकता था, आखिर में हार थक कर बैठ गया । महात्मा मुन्शीराम कहते हैं, कि उस समय मैं भरपूर जवानी अवस्था में था और व्यायाम करने से मेरा शरीर भी काफी हृष्ट पुष्ट था ।

राज-काण्ड समाप्त ।

***

१०. विदेश-काण्ड

७४. हजरत आदम

३ अक्तूबर सन् १८७२ मुंगेर को जाने के लिए बेगमपुर से गाड़ी पर सवार हुए। जब गाड़ी जमालपुर स्टेशन पर पहुंची तो मुंगेर जाने वाली गाड़ी में एक घण्टे की देर थी। स्वामी जी कौपीन पहने हुए रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज इंजीनियर और उसकी मेम प्लेटफार्म पर खड़े थे। मेम साहब को नंगे साधु का इस तरह स्टेशन पर टहलना बुरा लगा। साहब बहादुर ने स्टेशन मास्टर को कहा कि वह इस साधु को इस तरह टहलने से रोक दे। स्टेशन मास्टर स्वामी जी को जानता था वह डरता-डरता स्वामी जी के पास गया और कहा कि महाराज आप मेरे कमरे में आकर कुर्सी पर विराजिये, गाड़ी छूटने में अभी काफी देर है। स्वामी ही महाराज समझ गये कि उसे गोरे साहब ने भेजा है कि हमें टहलने से रोक दे। स्वामी जी ने स्टेशन मास्टर से कहा–कि साहब को जाकर कह दो कि हम उस युग के लोग हैं कि जब बाबा आदम और बीवी हव्वा अदन के बाग में नंगे रहने में तनिक भी लज्जा नहीं करते थे और स्वामी जी ने टहलना जारी रखा। स्टेशन मास्टर ने साहब बहादुर से जा कर कहा–कि महाराज वह कोई मामूली साधु नहीं हैं, कि जिसे मैं प्लेटफार्म से निकाल सकूं। वह एक महान् आत्मा और स्वतन्त्र संन्यासी हैं जो मुझको या आपको तुच्छ जानता है, नाम पूछने पर जब स्टेशन मास्टर ने महाराज का नाम बताया, तो साहब बहादुर कहने लगा Is he Dayanand, the Great, तब साहब ने स्वामी जी के पास आकर टोपी उतार कर सलाम किया और जब तक गाड़ी न चली स्वामी जी से बातें करता रहा।

७५. हजरत जरदुश्त

वैदिक धर्म का ह्रास होने पर आज से पांच हजार वर्ष पहले सब से पहला मनुष्य ईरान का रहने वाला जरदुश्त था, जिसने पारसी मजहब चलाया

और उसके साथ महर्षि वेदव्यास जी ने शास्त्रार्थ किया था, अतः जरदुश्त नामा के मुसन्नफ सामन ने लिखा है कि दाराय लाल शहन्शाह ईरान के जमाना में बलख के मुकाम पर जरदुश्त का भारत के एक विद्वान् व्यास जी से शास्त्रार्थ हुआ था, हजरत जरदुश्त की जन्दावस्था पुस्तक में वेदों के मन्त्रों के मन्त्र मिलते हैं। हवन करना इस के चलाये पारसी मजहब में इतना जरूरी है कि हवन कुण्ड में जिसको आतशकदा कहते हैं, हर समय आग जलती रहती है और खुशबूएं जलाते रहते हैं। इसी कारण पारसियों को आतशपरस्त कहा जाता है। हजरत जरदुश्त ने "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" का सही तर्जुमा करके अपना मुख्य मन्त्र ठहराया है। वह तर्जुमा है–"नेस्त एजद दिगर यजदां, यानि परमात्मा के सिवाय और कोई परमात्मा नहीं है और अर्बी में इसका तर्जुमा "ला इला इल् लिल्लाह" किया गया है। जिसको हमारे नवीन वेदान्ती भाई न समझकर यह कहते हैं कि एक परमात्मा ही है और दूसरा कुछ नहीं है। जो कि बिलकुल उन शब्दों के विरुद्ध प्रतीत हो रहा है। ऐसा गलत प्रचार करने से संसार में कितना अनर्थ हुआ है।

और

महर्षि दयानन्द महाराज भी इन शब्दों का यही अर्थ करते थे, कि परमात्मा एक है दूसरा कोई परमात्मा नहीं है और इस तरह इन भ्रम उत्पादक शब्दों का दोनों महापुरुष समान अर्थ करते हैं।

२. हजरत जरदुश्त गोमेध को, गोमेज कहकर इनका अर्थ भी खेती बाड़ी सम्बन्धी ही करते थे, अतः पारसी मजहब के इस गोमेज के सम्बन्ध में डाक्टर हाग साहब लिखते हैं–

The Parsi religion enjoins agriculture as religious duty and this is the whole meanings of "Gomez" (Essays on the sacred Language, writings and religions)

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी शतपथ ब्राह्मण के हवाले से लिखा–"अन्नं वै गौः" यानि अन्न ही गौ है। अतः अन्न के विषय में जो विद्या है, यानि खेती बाड़ी की विद्या का नाम ही गोमेध यज्ञ है और इसी तरह दोनों महापुरुष गोमेध यज्ञ के विषय में एक ही विचार रखते थे, जो बुद्धिपूर्वक हैं और जो लोग गोमेध का अर्थ गौ का मारना कहते हैं। वे महाअनर्थ करते हैं। क्योंकि गौ के लिए तो वेद में अघ्न्या शब्द आया है। जिसका अर्थ न मारने योग्य है। इस एक ही शब्द ने गोमेध यज्ञ का सही रूप दुनिया

के सामने रख दिया, जैसे कि जरदुश्त और महर्षि दयानन्द ने ठीक समझकर प्रचार किया।

७६. हजरत मूसा

कोई ३५०० वर्ष हुए फिलिस्तीन देश में हजरत मूसा का जन्म हुआ था। हजरत मूसा को मुक्तिदाता मानने वाले यहूदी कहलाते हैं। हजरत मूसा जंगल में भेंड़ बकरियां चराया करते थे। एक दिन बकरियां चराते चराते तूर पर्वत पर आग जलती देखी और ऊपर चढ़ कर आग लेने के लिए गये तो ऐसा इनका सिद्धान्त है कि पहाड़ पर आग में से परमात्मा ने इनसे बात-चीत की और उनको अपना पैगम्बर नियत किया। इस बात को एक शेर में इस प्रकार ब्यान किया है–

खुदा की देन का मूसा से पूछिये अहवाल।
आग लेने जायें और पैगम्बरी मिल जाय॥

हजरत मूसा ने पहाड़ से उतर कर लोगों में प्रचार आरम्भ कर दिया कि ईश्वर ने इन को दस सिद्धान्तों के प्रचार करने की आज्ञा दी है। जो निम्नलिखित हैं और इन्हीं को मूसा के दस हुकम कहा जाता है–

१. खुदा ने ये सब बातें फरमाईं कि खुदावन्द तेरा खुदा मैं हूं मेरे हजूर तू गैर को पूजनीय न मानना।

२. तू अपने लिए कोई तराशी हुई मूरत न बनाना, तू उनके आगे सजदा न करना और न उनकी इबादत करना।

३. तू खुदावन्द अपने खुदा का नाम बेफायदा न लेना।

४. याद करके तू सबत का दिन पाक मानना।

५. तू अपने बाप और मां की इज्जत करना।

६. तू खून न करना।

७. तू जना न करना।

८. तू चोरी न करना।

९. तू अपने पड़ोसी के खिलाफ झूठी गवाही न देना।

१०. तू लालच न करना। (क्योंकि लालच मूर्तिपूजा के बराबर है)

वास्तव में बात यह है कि पांच हजार वर्ष से पहले सारे संसार में वैदिक धर्म का प्रचार था, परन्तु जब वैदिक धर्म का प्रचार महाभारत के युद्ध

के बाद बन्द हो गया, तब मनुष्यकृत पन्थ चलने आरम्भ हो गये। वैदिक धर्म के जो सिद्धान्त थे वह किसी न किसी शक्ल में फिर भी कायम रहे। अत: यही बात कि आग में से परमात्मा ने मूसा से बात की। इस बात को सिद्ध कर रही है। क्योंकि वैदिक साहित्य में अग्नि परमात्मा का भी नाम है। अत: ऋग्वेद का पहला मन्त्र "अग्निमीळे पुरोहितम्" इत्यादि।

इसका ज्वलन्त उदाहरण है और फिर जो कुछ भी मूसा को प्रचार करने की आज्ञा अग्नि रूप परमात्मा ने दी वह भी सही वेदानुकूल ही है। और शायद आप यह जानकर हैरान भी हों कि यहूदी लोग भी बकायदा हवनकुण्ड और वेदी बना कर हवन करते हैं। यद्यपि वाममार्गियें की तरह खुशबूएं जलाने के साथ-साथ पशु मार कर भी हवनकुण्ड में डालते हैं। क्योंकि जब हजरत मूसा का जन्म हुआ तब भारत में वाममार्ग का प्रचार जोरों पर था। और इसी प्रचार का प्रभाव हजरत मूसा पर पड़ा होगा। तभी वाममार्गियों की तरह हवन में पशुबलि यहूदियों से प्रचलित हुई। हजरत मूसा ने दस नियमों का प्रचार ईश्वर आज्ञा मान कर किया।

और

महर्षि दयानन्द जी ने भी आर्यसमाज के दस नियम ईश्वर आज्ञानुकूल ही बनाए और उनका प्रचार किया जो निम्नलिखित हैं–

आर्यसमाज के नियम

१–सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३–वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४–सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोडने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५–सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये।

६–संसार का उपकार करना आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७–सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ।

८–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

७७. हजरत ईसा

हजरत ईसा बाल ब्रह्मचारी थे, मत्ती की अंजील में उन्होंने कहा कि जो मुझे प्रभु कहता है, वह स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा । फिर इंजील में कहा कि हरेक को उसके कर्म के अनुसार फल मिलेगा परन्तु योहन्ना की इंजील में अपने आप को परमात्मा का पुत्र भी कहा है । फिर लिखा है कि ईश्वर अद्वैत है, लूका की इंजील में लिखा है–तुम मुझ को उत्तम क्यों कहते हो, सिवा परमात्मा के कोई उत्तम नहीं है ।

और

१. महर्षि दयानन्द जी भी बाल ब्रह्मचारी थे, उन्होंने भी मनुष्य के ईश्वर होने का खण्डन किया और हरेक को कर्मानुसार फल मिलने का ही सिद्धान्त प्रचारित किया था । परन्तु हजरत ईसा की तरह सिर्फ अपने आप को ही ईश्वर का पुत्र न कह कर महर्षि जी ने वेद द्वारा यह सिद्ध किया था कि सब मनुष्य परमात्मा के पुत्र हैं ।

हजरत ईसा मसीह ने भूत प्रेत को माना, और जिन लोगों को भूत चिमटे हुए कहे जाते थे, उनको निकालते फिरे और उनके शागिर्द भी निकालते फिरे । और यह ईसाई मत के इस सिद्धान्त के प्रचार का ही फल है कि यूरोप, अमरीका आदि बड़े-बड़े समृद्ध और विद्वत्तापूर्ण देशों में अब तक भी बड़े-बड़े पढ़े लिखे लोग भूत प्रेत को मानते हैं । साईंस की इन देशों में इतनी उन्नति हो जाने पर भी मजहब के नाम से बचपन में जो भ्रम बच्चों को डाला जाता है, यह कितनी भी विद्या पढ़ जाने पर भी नहीं निकल सकता । मार्टिन लूथर जैसे मशहूर रिफार्मर भी इस भ्रमजाल से न निकल सके । दूसरों की

तो क्या कथा । आज कल यूरोप, अमेरिका आदि देशों में स्प्रीचूलीजम का नाम रख कर भूत प्रेत का प्रचार बड़ी तेजी से किया जा रहा है । उनके अखबार निकलते हैं । सभाएँ होती हैं, और शत प्रतिशत पढ़े हुए करोड़ों आदमी इस भ्रमजाल में पड़ कर अपना जीवन दुखी बना रहे हैं । और यह केवल हजरत ईसा को मानने और इंजील के कारण ही फैल रहा है ।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने इस भ्रमजाल को एक दम तोड़ कर रख दिया । और स्पष्ट घोषणा की कि भूत प्रेत कोई विशेष योनि नहीं हैं। बल्कि जो आदमी मर जाता है, उसको भूत कहते हैं । और मरे हुए की लाश का नाम प्रेत है । और महाराज के इस प्रचार ने लाखों करोड़ों आदमियों को इस भ्रमजाल से निकाल कर उनके जीवन सुखी बना दिये हैं ।

३. जहाँ हजरत ईसा मसीह के सब से बड़े शागिर्द यहूदा अस्करयुति ने ३० रुपये के लालच में फंसकर अपने गुरु को दुश्मनों के हाथ गिरफ्तार करा दिया । वहाँ महर्षि दयानन्द जी के रसोइये बलदेव को जीवन जी गोसाईं ने एक हजार रुपये का लालच दिया कि स्वामी जी को जहर दे दो परन्तु उसने लालच में फंसने से इन्कार कर दिया । जहां हजरत ईसा का फांसी पर चढ़कर ईश्वर विश्वास डांवाडोल हो गया । और उससे कहा है कि ऐ मेरे ईश्वर तुम ने मुझ को क्यों त्याग दिया । वहां आखरी सांस तक महर्षि का ईश्वर पर अटल विश्वास रहा और महर्षि ने ईश्वर तैंने अच्छी लीला की, तेरी इच्छा पूर्ण हो कह अपना श्वास त्याग दिया ।

७८. हजरत मुहम्मद

१. हजरत मुहम्मद साहब का जन्म [illegible] सोमवार के दिन प्रातः [illegible] मक्का कुरैश कबीला में हुआ । पिता का नाम अब्दुल्ला और माता का नाम आमना था । पिता उनकी पैदायश से छः माह पहले वफात पा गया, और माता उनको छः वर्ष का छोड़ कर चली गई । दादा अब्दुल मतलब ने उनकी परवरिश की, हजरत का खानदान पक्का मूर्तिपूजक था, और वह मक्का के मन्दिर के पुजारी भी थे ।

और

महर्षि दयानन्द भी जिस कुल में उत्पन्न हुए वह पक्का मूर्तिपूजक

कुल था, और उनके पिता श्री कर्षन जी तिवारी ने अपने खर्च से टंकारा के बाहर एक शिवालय बनाया हुआ था, जहां वह मूर्तिपूजा किया करते थे।

२. हजरत मुहम्मद ने भी जब प्रचार शुरू किया तो मूर्तिपूजा का जबरदस्त खण्डन करने लगे, न सिर्फ मूर्तिपूजा का बल्कि मूर्तियों को भी खण्डन करने का आदेश देते थे ।

और

महर्षि दयानन्द जी ने भी जब प्रचार शुरू किया तो मूर्तिपूजा का बहुत जोर शोर से खण्डन करने लगे, उनके ९९ प्रतिशत शास्त्रार्थ मूर्तिपूजा के विषय पर ही हुए, अपनी सारी जिन्दगी में मूर्तिपूजा के खण्डन को उन्होंने सब से अधिक श्रेय दिया, और सब प्रकार के प्रलोभनों से बच कर इसका खण्डन करते रहे । महर्षि दयानन्द जैसा मूर्तिपूजा का शत्रु संसार ने न कभी देखा होगा न सुना परन्तु उन्होंने मूर्तिखण्डन न कभी खुद किया, न कभी किसी को आदेश किया । अतः सन् १८७९ में जब महाराज फर्रुखाबाद में प्रचार कर रहे थे, उन दिनों बाजार की नाप हो रही थी, बीच में एक मढ़िया थी, जहां लोग धूप दीप जलाते थे, बाबू मदनमोहनलाल ने स्वामी जी से कहा–कि स्काट साहब जो फर्रुखाबाद के कलक्टर हैं, आप को बहुत मान देते हैं उनको कह कर मढ़िया को हटवा दीजिए । स्वामी जी ने कहा कि मेरा काम लोगों के मन मन्दिर में मूर्तिपूजा को निकालना है । ईंट पत्थर के मन्दिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं ।

३. हजरत मुहम्मद साहिब ने ईश्वर की एकता का प्रचार किया और कलाम में "ला इला इलिल्लाह" यानि परमात्मा के सिवा और कोई परमात्मा नहीं, ऐसा कहा–परन्तु उसके साथ "मुहम्मद रसूल अल्लाह" भी जोड़ दिया।

इसके साथ ही यह सिद्धान्त भी कायम कर दिया, कि मैं अन्तिम नबी हूं । यानि मेरे बाद कोई खुदा का पैगम्बर न आवेगा, और यह कि मेरी सिफारिश के बिना कोई बहिश्त में प्रवेश न कर सकेगा । इस सिद्धान्त के कायम होने के परिणाम स्वरूप परमात्मा की पूजा की जगह हजरत मुहम्मद साहिब की पूजा जारी हो गई । अतः इस विचार को एक मुसलमान शायर ने साफ बयान किया है ।

खुदा के पास सिवाये वहदत के रखा ही क्या है ।
हमने जो कुछ भी लेना होगा ले लेंगे मुहम्मद से ॥

और इस सिद्धान्त से फिर मुहम्मदपरस्ती के स्थान पर कबरपरस्ती भी आरम्भ हो गई । और भी कई बातें जो खुदा की वहदानियत पर बादल बन कर छा गईं, पैदा हो गईं । जिसका वर्णन मशहूर मुसलमान शायर मौलाना अलताफ हुसैन हाली पानीपती ने एक नज़म में किया । जो इस तरह है–

करे ग़ैर गर बुत की पूजा तो काफ़र ।
जो ठहराये बेटा खुदा का तो काफ़र ।
झुके आग पर बहरे सजदा तो काफ़र ।
सितारों में माने करिश्मा तो काफ़र ।
मगर मोमनों पर कुशादह हैं राहें ।
परसतिश करें शौक से जिसकी चाहें ।
नबी को जो चाहें खुदा कर दिखायें ।
अमामों का रुतबा नबी से बढ़ायें ।
शहीदों पर दिन रात नज़रें चढ़ायें ।
और कबरों से जा जा के मांगें दुआयें ।
न तोहीद में कुछ ख़लल इससे आये ।
न इस्लाम बिगड़े न ईमान जाये ।

इस्लाम के इस अकीदे के मुतल्लिक एक बड़ा ज्वलन्त उदाहरण हमारे सामने है । जब मौलाना मुहम्मद अली महात्मा गांधी की कृपा से कांग्रेस के प्रधान बनाये गये तो उन्होंने कहा कि–"एक फ़ासक और फ़ाजर मुसलमान भी महात्मा गांधी से अच्छा है" ।

क्या मतलब कि चाहे कितने भी गिरे हुए करैक्टर का आदमी हो अगर वह हजरत मुहम्मद साहब को पैगम्बर मानता है तो वह बहिश्त में दाख़िल हो जावेगा । और महात्मा गांधी जैसा नेक मर्द खुदापरस्त भी क्योंकि हजरत मुहम्मद पर ईमान नहीं लाता, इसलिए बहिश्त में दाख़िल न हो सकेगा ।

और

४. महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी परमात्मा की एकता का प्रचार किया, परन्तु मरमात्मा के साथ न अपना, न किसी और पुरुष का नाम जोड़ा। वेद के मन्त्रों द्वारा परमात्मा की विशुद्ध एकता का प्रचार ही वे सारी आयु करते रहे क्योंकि जिस परमात्मा की विशुद्ध एकता का वेदों में वर्णन है, किसी दूसरे स्थान पर दीपक लेकर ढूंढने से भी न मिल सकेगा ।

वेदोद्धारक, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती लिखते हैं कि–

"(प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं?

(उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है ।"

महर्षि जी के उपर्युक्त लेख से स्पष्ट हो गया कि वेदों में एकेश्वरवाद है । अनेक पाश्चात्त्य विद्वान् वेदों में 'बहुदेवतावाद' मानते हैं जो उनका भ्रम है । Vedic Age p. p. 379

वेदों के प्रमाण

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० म० १। सूक्त १६४। मन्त्र ४६। अथर्व० ९।१०।२८)

इस मन्त्र में स्पष्ट बताया गया है कि "एक सत्स्वरूप परमात्मा को बुद्धिमान् ज्ञानी-जन अनेक प्रकार से पुकारते हैं । उसी को वे अग्नि, यम, मातरिश्वा, इन्द्र, मित्र, वरुण, दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् इत्यादि नामों से स्मरण करते हैं ।"

आत्मानन्द का भाष्य–"एकैव देवता परमात्मा । सर्वदेवता एकस्यैव नाना नाम......।"

(पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० कृत 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' भाग प्रथम, खण्ड द्वितीय, प्रथम संस्करण पृष्ठ ५२)

यो देवानां नामधा एक एव ।

(ऋ० १०।८२।३०, अथर्व० २।१।३, यजु० १७।२७)

अर्थात् "......जो सब देवों (इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम आदि के नामों को प्रधानतया धारण करने वाला एक ही देव है ।"

जनयन् देव एकः ।

(ऋ० १०।८१।३; अथर्व० १३।२।२६, यजु० १७।१९)

इस मन्त्र में परमात्मा को 'देवः एकः' एक देव, सर्वप्रकाशकः, सर्वानन्दप्रदाता कहा है ।

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो०
स एष एक एकवृद् एक एव ।

(अथर्व० १३।४ मन्त्र १६ से २१ तक) अर्थात् 'वह यह परमात्मा

एक है, एक होकर सब को व्यापने वाला सर्वव्यापक है, वह एक ही है। उसे दूसरा, तीसरा, चौथा, पांचवां, छठा, सातवां, आठवां, नौवां वा दसवां नहीं कहा जाता। वह एक है और एक ही है। एक हो कर वह सर्वव्यापक और प्राणी अप्राणी सब को वह विशेष रूप से पूर्णतया देखने वाला है।

एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

(ऋ० १०।११४।५)

अर्थात्–'एक होते हुए भी अनेक रूपों में गुणसूचक अनेक नामों के द्वारा वर्णित है।'

कतिपय पाश्चात्य विद्वान् भी वेदों में एकेश्वरवाद मानते हैं।

श्री एच० एच० विल्सन लिखते हैं–इसमें कोई सन्देह नहीं कि वेदों का मूल सिद्धान्त एकेश्वर प्रतिपादन है। स्वत: श्रुति कहती है कि वास्तव में सत्य यह है कि केवल एक देव है, वही महान् आत्मा है।

(Works by H.H. Wilson, Vol. II, P. P. 51-52)

कौण्ट वियौर्न्सटीर्ना लिखते हैं–"These truly sublime ideas cannot fail to convince us that the Vedas recognise only one God who is almighty, infinite, eternal, self-existent, the light and lord of the universe' (Thogony of the Hindus P. P. 53)

अर्थात् "हम इस परिणाम पर पहुंचे बिना नहीं रह सकते कि वेद केवल एक ईश्वर का ही प्रतिपादन करते हैं जो सर्वशक्तिमान्, अनन्त, नित्य, स्वयम्भू और भूमण्डल का प्रकाशक तथा अध्यक्ष है।"

श्री अर्नेस्टवुड ने "एकं सद्विप्रा' मन्त्र का अनुवाद करते हुए यह टिप्पणी की थी :–In the eyes of the Hindus. there is but one supreme God. This was stated long ago in the Rigveda in the follwing words—

Ekam sad vipra bahudha vadanti, which may be translated: The sages name the one being veriosly.'

(An Englishman defends Mothor India. P. P. 128)

अर्थात्–हिन्दुओं की दृष्टि में एक ही महान् परमात्मा है। यह ऋग्वेद में निम्नांकित शब्दों में बहुत पहले ही कहा गया था–

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" जिसका अनुवाद किया जा सकता है।–बुद्धिमान् नाना नामों से बताते हैं।–

वेदों का प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्री मैक्समूलर लिखता है–

I add only one more hymn (Rig 10. 121) in which the idea of

one God is expressed with such power and decision, that it will make us hesitate before we deny to the Aryans an instinctive Monotheism.
(Histouy of Ancient Sanskrit Literature, P. P. 578.)

अर्थात्–'मैं एक और सूक्त ऋ० १०।१२१ को जोड़ना चाहता हूं जिसमें एक ईश्वर का विचार इतनी प्रबलता और निश्चय के साथ प्रकट किया गया है कि हमें आर्यों के नैसर्गिक एकेश्वरवादी होने से अस्वीकार करते हुए अधिक संकोच करना पड़ेगा ।

अत: शाहजादा दाराशिकोह जो शाहजहां बादशाह का सब से बड़ा लड़का था । वह खुद अर्बी फ़ारसी का बड़ा विद्वान् था और विद्वानों का कदरदान भी था । इसके अन्दर सत्यज्ञान की जिज्ञासा थी । अत: जब इसकी कुरान शरीफ़ और दूसरे इस्लामी ग्रन्थ पढने से तसल्ली न हुई उसने संस्कृत पढ़े हुए विद्वानों से उपनिषदों का फ़ारसी में तरज़मा करवाया और जब इसने वे पढ़े जिनमें आत्मा और परमात्मा के विषय तथा वेदों के व्याख्यान किये गये थे तो इसकी पूरी पूरी तसल्ली हो गई । अत: वह कहता है कि हिन्दुओं की पुरानी किताबों को परमात्मा की एकता से इन्कार नहीं है और न ही एकता मानने वालों पर कोई सन्देह है । बल्कि परमात्मा की एकता का इन ग्रन्थों में पूरे विश्वास के साथ समर्थन किया गया है । इसके विपरीत आज कल के मूर्ख लोग जिन्होंने स्वयम् उपदेश घड़ लिये हैं, एकता मानने वालों को सताने और दु:ख देने की चिन्ता में हैं और एकता के सारे व्याख्यानों का खण्डन करते हैं ।

उपनिषदों के अनुवाद पढ़ कर उसने अपनी दिनचर्या भी संवार ली थी । मांस, शराब सब कुछ छोड़ कर पूरा परहेज़गार बन कर एक प्रभु का पुजारी हो गया था । अत: उसके फारसी के शेर इसके मन की हालत का वर्णन करते हैं । जिनके अर्थ निम्नलिखित हैं ।

अर्थात्–अपने दिल का खून पियो इससे बेहतर कोई शराब नहीं। अपने जिगर पर दांत मारो इससे बढ़कर कोई कबाब नहीं है । कुरान शरीफ़ में खुदा को नहीं पा सकते, अपने दिल में निगाह मारो इससे बेहतर कोई किताब नहीं है ।"

यदि शाहजहां के बाद दाराशिकोह जो कि उसका बड़ा लड़का होने से तख्त ताज का हकदार था, हिन्दुस्तान का बादशाह बन जाता तो हिन्दुस्तान की तारीख ही बदल जाती, लेकिन औरंगजेब मुतसब मुसलमान था इसने जहां

अपने जिन्दा बाप को कैद किया, वहां अपने सब भाइयों को भी कत्ल करवा दिया ।

४. एक युद्ध के समय मुहम्मद साहब के एक साथी ने कहा–कि महाराज दुश्मन संख्या में अधिक हैं और हम कम हैं तो मुहम्मद साहब ने कहा कि खुदा हमारे साथ है, फिर हम कम किस तरह हैं ।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज का जब काशी के पण्डितों से शास्त्रार्थ होनेवाला था, तो उनके सेवक बलदेव ने कहा कि महाराज काशी के पण्डितों की इतनी भारी संख्या के साथ आप अकेले कैसे शास्त्रार्थ कर सकेंगे । महाराज ने कहा कि जब परमेश्वर मेरे साथ है तो मैं अकेला कैसे ।

५. मुहम्मद साहब के एक श्रद्धालु बीमार हो गये, वे उसकी बीमार-पुरसी को गये और बीमार श्रद्धालु का सिर दबाने लगे, श्रद्धालु भक्त ने कहा कि महाराज आप रसूल अल्लाह होकर मेरा सिर दबाते हैं यह ठीक नहीं, इस पर हजरत ने कहा कि इन्सान का इन्सान दारु है, दुःख के समय सेवा करने के लिए बड़ाई छोटाई नहीं देखनी चाहिए ।

और

पण्डित कृष्णराम को स्वामी जी ने लेखक के तौर पर रखा हुआ था, उसको एक दिन बुखार आ गया । महर्षि दयानन्द स्वयम् उसका सिर दबाने लगे । पण्डित जी ने कहा–महाराज आप क्या करते हैं, मैं आप से कैसे सेवा करा सकता हूँ । महाराज बोले–इसमें कोई हानि नहीं, दूसरों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है । यदि बड़े छोटों की सेवा न करेंगे तो छोटों में भी सेवा करने का भाव नहीं आएगा ।

६. मुहम्मद साहब के पास एक उनका श्रद्धालु आया और कहने लगा–महाराज मैंने दो स्त्रियां की हैं, परन्तु मैं बेकार हूं तो मुहम्मद साहब ने हँस कर कहा–एक तीसरी शादी और कर लो बेकारी दूर हो जायगी ।

और

दानापुर के ठाकरदास ने अपनी एक विवाहिता स्त्री की मौजूदगी में दूसरा विवाह कर लिया था । एक दिन उसने महर्षि जी से कहा कि मुझे भी योग की विधि बतला दें, तो हंसते हंसते महाराज ने कहा–तुम एक विवाह और कर लो तुम्हारा योग ठीक हो जायगा ।

७. सीरतुल नवी किताब में लिखा है कि हज़रत ज़ेनब मुहम्मद साहब के मुंहबोले बेटे आज़ाद करदा गुलाम जैद की बीबी थी । एक वर्ष के बाद ज़ैद ने उसे तलाक दे दिया, इस तलाकशुदा जेनब से मुहम्मद साहब ने खुद निकाह कर लिया, इससे पहले अरब में मुंह बोले बेटे की औरत से चाहे वह तलाक याफ़ता हो, उसका बाप जिसने उसको मुंहबोला बेटा बनाया हो शादी नहीं कर सकता था । यह जमाना जहालत की रसम थी, इसलिए मुहम्मद साहब ने अपने मुंह बोले बेटे की तलाकशुदा औरत के साथ शादी करके बड़ी दिलेरी के साथ इस रसम की धज्जियां उड़ा दीं ।

और

इसी तरह यहां, भारत देश में भी एक रसम थी, कि संन्यासियों के मृतक शरीरों को जलाने की बजाये ज़मीन में गाड़ देते थे । ये भी ज़माना जहालत की रसम थी। महर्षि ने इस रसम का भी घोर खण्डन किया और आदेश कर दिया कि मेरे मृतक शरीर को हरगिज़ दबाया न जावे, बल्कि संस्कारविधि के अनुसार जलाया जावे । अत: ३० अक्तूबर १८८३ को महर्षि ने शरीर त्याग दिया तो दो संन्यासी आ गये और महर्षि के शरीर को दबाने का आग्रह करने लगे, परन्तु महर्षि की आज्ञानुसार उनके मृतक शरीर को विधिपूर्वक जलाया गया । वे संन्यासी कहते थे कि हम दो थे और आप लोग यानि महर्षि के श्रद्धालु अधिक हैं इसलिए हम जबरदस्ती नहीं कर सकते। यदि हम अधिक होते तो हम जबरदस्ती महर्षि के शरीर को छीन कर ले जाते और संन्यासियों के नियमानुसार दबाते ।

किसी ने ठीक कहा है–

लीके लीके गाड़ी चले, लीके चलें कपूत ।
लीक पुरानी परहरें शायर सिंह सपूत ॥

८. मुसलमानों का यह मन्तव्य है कि मुहम्मद साहब अनपढ़ थे और उस पर मुसलमान फ़ख़र करते हैं कि अगर वे पढ़े होते तो लोग यह समझते कि कुरान शरीफ़ उनका बनाया है । क्योंकि वह अनपढ़ थे, इसलिए यह ख़ुदा की तरफ़ से ही दिया गया है ।

और

महर्षि दयानन्द जी सिर्फ एक संस्कृत के विद्वान् थे । जिस पर आर्यसमाजी गर्व करते हैं । यदि वे अंग्रेजी पढ़े होते तो लोग यह ही समझते

कि जो रिफ़ार्म का काम वह कर रहे हैं अंग्रेजों की देन है ।

७९. चीन का महापुरुष कनफ्यूशस

करीबन ३००० हज़ार वर्ष हुए कि कन्फ्यूशस नाम का एक महापुरुष चीन में पैदा हुआ। उसने उपदेश किया कि बाप से अधिक मान्यता माता की है, और माता से बढ़कर सन्तान का कोई हितैषी नहीं है । जो लोग माता पिता के दिल को ठेस पहुचाते हैं । वे लोग दरिन्दों और कातलों से भी बढ़कर हैं । और जो बुजुर्गों की इज़्ज़त नहीं करते वे भी ऐसे ही हैं । अतः इस उपदेश के असर से चीन के देश में मां बाप की इज़्ज़त न करने वालों के लिए मौत की सज़ा निश्चित कर दी गई थी ।

और

महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में पञ्चायतन पूजा का यथार्थ स्वरूप वर्णन करते हुए लिखते हैं– "प्रथम माता मूर्तिमती पूजनीय देवी, अर्थात् सन्तानों को तन, मन, धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना, हिंसा तथा ताड़ना कभी न करना । दूसरा पिता सत्कर्तव्य देव उसकी भी माता के समान सेवा करनी । तीसरा आचार्य–जो विद्या का देने वाला है उसकी तन, मन, धन से सेवा करनी चाहिए। चौथा–अतिथि जो विद्वान् धार्मिक निष्कपटी सब की उन्नति चाहने वाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ सत्योपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें । पांचवां स्त्री के लिए पति और पुरुष के लिए पत्नी पूजनीय है । जिनके संग से मनुष्य देह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है, ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियां हैं । इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव वेदविरोधी हैं ।

२. एक राजा कन्फ्युशस के पास आकर कहने लगा कि मेरे राज्य में जिस प्रकार सुख हो, वह उपाय बतलाइये तो उन्होंने कहा अपने नाम दुरुस्त करो ।

और

पूना में व्याख्यान देते हुए महर्षि दयानन्द जी ने एक बड़े मार्मिक शब्दों में एक दिन कहा था–ऐ भाइयो पथभ्रष्ट तो हुए ही थे नामभ्रष्ट भी हो गये हो । तुम्हारा नाम तो आर्य है जो वेदोक्त है, हिन्दू नाम विदेशियों ने

तुम को दिया है, जिसके अर्थ काला, चोर आदि होते हैं परन्तु तुम इस नाम से चिपटे बैठे हो, इसलिए आपको अपना नाम दुरुस्त करना चाहिए । अहो ! महर्षि की कितनी कृपा हुई जो उन्होंने हमारा दुरुस्त नाम बताया । जो सदियों की गुलामी से हम भूल चुके थे । बजाय आर्य यानि श्रेष्ठ कहलाने के हिन्दू यानि काला और चोर कहलाये जाने में ही फ़ख़र महसूस करते थे ।

३. कन्फ्यूशस पुरुषार्थ का प्रचारक था, अतः उसका उपदेश था कि–

God gives every bird its food, but does not threw it into the nest.

अर्थात् परमात्मा सब परिन्दों को खुराक देता है, परन्तु उनके घोंसले में नहीं फैंकता यानि परिन्दों को भी अपनी खुराक पुरुषार्थ से ही हासिल करनी पड़ती है ।

और

महर्षि दयानन्द जी भी पुरुषार्थ का पूर्ण रूप से समर्थन और उपदेश करते थे । अतः एक दिन एक साधु महर्षि के पास आया, और प्रश्न किया कि पुरुषार्थ और प्रारब्ध में कौन बड़ा है, महाराज ने उत्तर दिया प्रारब्ध पिछले कर्म और भोग का नाम है । पुरुषार्थ इस जन्म में कार्य करने का नाम है, इसलिए इस जन्म में पुरुषार्थ ही करना चाहिए, मगर साधु यह कहता हुआ उठ खड़ा हुआ कि पुरुषार्थ करना तो बेकार ही है । इस पर महाराज ने अपने पास बैठे हुए एक सेवक को कहा–कि इस साधु की लोई उतार कर सड़क पर फैंक दो । जब वह सेवक लोई उतारने लगा तो साधु जी महाराज इससे गुत्थम-गुत्था होकर संग्राम करने लग गये, और इस खींचातानी में पुरुषार्थ की जीत हुई । साधु ने महर्षि के चरण पकड़ लिये, कहने लगा महाराज आपने सिद्ध कर दिया है कि इस जन्म में पुरुषार्थ करना अत्यन्त आवश्यक है ।" और महर्षि तो यही उपदेश देते थे ।

पुरुषार्थ ही इस दुनिया में हर कामना पूरी करता है ।

मन चाहा सुख उसने पाया, जो आलसी बन के पड़ा न रहा ॥

महाराज स्वयं भी सारी आयु पुरुषार्थ के मूर्तिमान् ही बने रहे ।

८०. लुकमान

लुकमान यूनान का एक मशहूर फ़िलास्फ़र हुआ है । और यह मिसल आप मशहूर है कि वहम की दवा तो लुकमान के पास भी नहीं थी । इससे

यह बात तो सिद्ध हो जाती है कि वहम कोई ऐसी भयंकर बीमारी है कि जिसका इलाज़ लुकमान जैसे बड़े हकीम के पास भी न था और यह बात है भी सच्ची। वहम निश्चय ही सब से भयंकर बीमारी है, जो कि न सिर्फ व्यक्तिगत जीवन पर ही असर डालती है बल्कि समष्टिगत जीवन पर भी, नहीं नहीं देश और जातियों के इतिहास पर भी इसका बड़ा असर पड़ा हुआ संसार में दीखता है। इसलिए सब से पहले हमें वहम की विवेचना करनी है कि वहम क्या वस्तु है। किसी चीज की हस्ती तो न हो लेकिन इसको फर्ज़ कर लिया जावे कि वह है "यही बहम है" और जब कोई किसी किसम का वहम आदमी पर या जातियों पर सवार हो जावे तो वह उस वक्त तक निकलने का नाम नहीं लेता, जब तक उस आदमी या उस जाति व देश का सत्यानाश नहीं कर देता। वहम तो स्वयं ही बड़ा बलवान् है परन्तु यदि इस के प्रचारक हज़रत ईसा और मार्टिन लूथर जैसे मज़हबों के बानी भी हो जावें "फिर तो एक करेला दूसरे नीम चढ़ा" की मिसाल इस पर आयद होती है, अतः हज़रत ईसा मसीह भी अपनी ज़िन्दगी में लोगों के भूत निकालते रहे और मार्टिन लूथर भी भूतों और बदरूहों का बड़ा कायल था। वह इस बात का पूर्ण रूप से समर्थन करता था कि संसार में जितनी बीमारियां या तकलीफ़ें पैदा होती हैं शैतान और बदरूहें ही इनको पैदा करती हैं। ऐसे विचारों के असर से यूरोप के तमाम मुल्कों में और फिर जहां जहां ईसाइयों का राज्य हुआ और ईसाई प्रचारक गये भूतों बदरूहों की मौजूदगी और इनके तकलीफ़ देने का वह सब साथ ही गया, चुनांचे १६वीं सदी में सिर्फ जर्मनी के मुल्क में जहां मार्टिन लूथर मशहूर रिर्फामर जिसने ईसाइयों के प्रोटेस्टेंट फिर्का की बुनियाद रखी थी, पैदा हुआ था। एक लाख मर्द, औरतें और बच्चे इस शक में जिन्दा जला दिये गये कि वे प्लेग फैलाते हैं। वहम यह पैदा हो गया था कि जो लोग किसी दीवार के साथ हाथ लगाते हैं, वे उस मकान में प्लेग फैलाते हैं। ईसाइयत के प्रचार ने भूतों और बदरूहों के वहम को बहुत फैलाया। सारे संसार में ईसाइयों का राज्य रहा है इसलिए यह वहम सारे संसार में ही फैल चुका है। और आज भी साईंस की इतनी तरक्की हो जाने के बावजूद यूरोप, अमरीका के बड़े-बड़े पढ़े लिखे लोग भूत प्रेतों को मानते हैं। बल्कि यूरोप के मुल्कों में तो बाकायदा इस बात का प्रचार करने के लिए अखबार भी निकलते हैं।

बड़ी-बड़ी किताबें लिखी जाती हैं कि मरने के बाद आदमी भूत बन जाते हैं और आकाश में यत्र तत्र घूमते रहते हैं और वे ज़मीन पर रहने वाले ज़िन्दा लोगों से बातचीत भी करते हैं। यही नहीं बल्कि थ्योसोफ़ीकल सोसाईटी वाले तो इस को सिद्धान्त मानकर इसका खुले बन्दों प्रचार करते हैं। कुछ साल हुए पंजाब में भी रूहों से बातचीत करवाने का ढोंग खूब चल गया था। कुछ लोग तिरपाइयों के इर्द गिर्द बैठ जाते थे और कहा जाता था कि इस तरह जिस रूह को चाहे बुलाकर उससे बातचीत कराई जा सकती है। हमारे शहर चुनियां में भी एक ऐसा शख्स आ गया था, जो रूहों से बातचीत कराने का दावेदार था, लेकिन हमारे सामने तो वह किसी रूह को न बुला सका, क्योंकि पंजाब में आर्यसमाज का प्रचार बहुत अधिक था, इसलिए यह रूहों के साथ बातचीत करवाने का ढोंग ज़्यादा देर न चल सका और खत्म हो गया। वहम के कारण देशों और जातियों के इतिहास ही बदल गये। अपने देश के इतिहास पर वहमों की कितनी छाप लगी और इन वहमों के कारण देश का कितना विनाश हुआ, निम्नलिखित दृष्टान्तों से आप को भली भांति ज्ञात हो जावेगा।

१. सिकन्दर के बाद सब से पहले इस देश पर मुहम्मद बिन कासिम ने हमला किया और राजा दाहर वालिये सिन्ध के साथ इस की मुठभेड़ हुई। कितने ही दिन लड़ाई चलती रही, और मुहम्मद बिन कासिम विजय प्राप्त करने की आशा छोड़ चुका था, निराश होकर, थक हार कर वापस अपने देश को जाने की तैयारियां कर रहा था कि दो देशद्रोहियों ने मुहम्मद बिन कासिम को आ कर कहा कि अगर हम तुम्हारी जीत करा देवें तो आप हमको क्या इनाम देंगे। उसने कहा कि आप को मुंहमांगा इनाम दिया जायेगा। तब उन्होंने कहा कि हमारे राज्य में जो फलां मन्दिर है, उस पर झण्डा चढ़ा हुआ है, हमारा यह विश्वास है कि जिस दिन हमारा यह झण्डा गिर पड़ेगा, हमारी पराजय हो जायेगी, यदि आप किसी तरह इस झण्डे को गिरा देवें तो फौजों में बेदिली फैल जायेगी और आपकी जीत हो जायगी। चुनांचे मुहम्मद बिन कासिम ने किसी न किसी तरह वह झण्डा गिरा दिया बस फिर क्या था, इस वहम के ज़ेरे असर फ़ौज दिल छोड़ बैठी, और राजा दाहर की जीत हार में और मुहम्मद बिन कासिम की हार जीत में तब्दील हो गई राजा दाहर मारा गया। मुहम्मद बिन कासिम ने एक दिन में ही राजधानी में ६४००० आदमी

कतल करा दिये । इसके अलावा सैकड़ों हजारों को गुलाम बना लिया । हजारों नौजवान खूबसूरत लड़कियां मुसलमान फ़ौजियों में तकसीम कर दीं और राजा दाहर की दो नौजवान खूबसूरत लड़कियों को अपने साथ उस वक्त के ख़लीफ़ा को भेंट करने के लिए ले गया । जब ख़लीफ़ा के पास पहुंचा और अपनी जीत की कहानी और इन लड़कियों के मुतल्लिक ख़लीफ़ा साहब को उसने सब कुछ बताया तो ख़लीफ़ा साहब बड़े खुश हुए और उसको इनाम देने की सोचने लगे । उधर इन दोनों लड़कियों ने अपने सतीत्व की रक्षा का निश्चय कर लिया अत: जब दोनों लड़कियां ख़लीफ़ा को पेश की गईं तो ख़लीफ़ा साहब उनकी ज़वानी और खूबसूरती पर लट्टू हो गये परन्तु दोनों बहनों ने ज़ार ज़ार रोना शुरू कर दिया, ख़लीफ़ा ने जब रोने का कारण पूछा तो कहने लगीं कि हम आपके काम की नहीं रही हैं, मुहम्मद बिन कासिम ने रास्ते में हमारी इज्जत लूट ली है । इस पर ख़लीफ़ा को बहुत क्रोध आया और उसने मुहम्मद बिन कासिम को उसी वक्त कतल करवा दिया । जिस वक्त इन कन्याओं ने देखा कि कासिम तो अब कत्ल हो चुका, तब दोनों ने अपने निश्चय के मुताबिक एक दूसरे को कटार मार कर प्राण दे दिये । अब विचारिये कि एक छोटे से वहम ने हमारे देश के इतिहास को किस तरह बदल दिया।

२. जिस वक्त सुबुक्तगीन ने हमारे देश पंजाब पर हमला किया, उस वक्त लाहौर पर राजा जयपाल राज्य करता था, जब दुश्मन के हमले की खबर राजा और जनता को पहुंची तारीख बताती है, कि अपने देश की रक्षा के लिए स्त्रियों ने अपने गहने तक उतार कर दिये । और दुश्मन का मुकाबला करने की खूब तैयारियाँ की गईं । देश के जवानों में जोश ठाठें मार रहा था, कि दुश्मन सिर पर आ पहुंचा, जब हमारी फ़ौज कील कांटे से लैस होकर दुश्मन का मुंह तोड़ने को तैयार थीं कि ज्योतिषियों ने राजा को कहा कि जिस तरफ से दुश्मन की फ़ौज आ रही है, उस तरफ को अगर हमारी फ़ौजें जायेंगी तो इस तरफ डाकनी और योगनी है, हमें निश्चय ही पराजय होगी, बस फिर क्या था फ़ौजों का दिल टूट गया और हमारे फ़ौजी दुश्मन का मुकाबला न कर सके । ज़बरदस्त शिकस्त उठानी पड़ी । राजा जयपाल मारा गया, और देश पंजाब दुश्मन की फ़ौजों के पांवों तले रौंदा गया । इस पराजय से दुश्मनों के हौंसले बहुत बढ़ गये । हमारे देश के अन्दर हीनता की भावना पैदा हो गई। और इसके बाद सुबुक्तगीन का लड़का महमूद गज़नवी इस देश

पर सतत हमले करके अनगिनत धन लूट कर ले गया, लाखों विधवाएं बना दी गईं । लाखों बच्चे यतीम हो गये और हज़ारों लाखों को कैदी बना कर गज़नी ले गया, जहां दो दो रुपये में हिन्दू स्त्री पुरुष गुलाम बनाकर बेचे गये। अगर राजा जयपाल के वक्त ही यह डाकनी शाकनी का वहम फ़ौजों में न पैदा किया जाता तो राजा जयपाल को कभी पराजय न होती और अगर राजा जयपाल जीत जाता तो दुश्मन हार कर वापस चला जाता और फिर किसी की हिम्मत न होती कि हमारे देश की तरफ मुंह भी करता, लेकिन इस जरा से वहम ने भारत की तारीख की धारा ही बदल दी । और यह देश एक हजार साल तक गैरों की गुलामी की जंजीरों में जकड़ा रह कर कराहता रहा। महमूद गज़नी इस देश से अपने १७ हमलों में कितना धन ले गया होगा । वह निम्नलिखित दो उदाहरणों से जाहिर है"।

१. तारीख़ फ़रिश्ता में लिखा है कि महमूद गज़नवी सन् १००९ में कांगड़ा की देवी के मन्दिर से सात लाख सोने की मोहरें ७००० हजार मन सोना चाँदी की ईंटें, २०० मन खालस सोना, दो हजार मन चाँदी, २० मन जवाहरात जिनमें लाल हीरे और अकूत धन शामिल था ले गया था ।

२. जब महमूद ने आखिरी हमला सोमनाथ के मन्दिर पर किया तो उस वक्त सोमनाथ की रक्षा के लिए सत्रह राजपूत राजे अपनी फ़ौजों सहित इकट्ठे हुए थे । परन्तु पुजारियों ने इनको मुकाबला न करने दिया और आख़िर तक यही कहते रहे कि देवता स्वयम् इसको मार देगा, आप बेफ़िकर होकर बैठे रहें । जिसका नतीजा यह हुआ कि सारे राजे और उनकी फ़ौज सब मारी गई । सोमनाथ का मन्दिर लूटा गया, मूर्ति तोड़ी गई और अठारह करोड़ रुपये के जवाहरात सिर्फ सोमनाथ की मूर्ति के पेट से महमूद को मिले थे । और सैकड़ों स्त्री पुरुषों को गुलाम बनाकर अपने साथ ग़जनी ले गया ।

(मालूम ऐसा होता है कि उस वक्त लोग मन्दिरों को बैंक और सेफ़ वाल्ट समझा करते थे, और अपनी कीमती चीजें मन्दिरों में रखा करते थे, यह बात महमूद को मालूम हो गई थी, और इसने जितने हमले किये मन्दिरों को ही लूटा, जिससे इसको बेशुमार दौलत हाथ लगी । जिस वक्त वह मरने लगा तो उसने कहा कि जितनी दौलत मैं हिन्दुस्तान से लूटकर लाया हूं वह मुझे दिखलाई जावे तो कहा जाता है कि दो मील के दायरे के अन्दर सोना, चाँदी, हीरे, जवाहरात का ढेर लगाया गया था, जो हिन्दुस्तान से लूट कर

ले जाई गई थी, यह सिर्फ तभी हो सका कि राजा जयपाल के वक्त फौजों के अन्दर डाकनी, शाकनी का वहम डालकर, इनको बेदिल कर दिया गया। और राजा जयपाल को शिकस्त उठानी पड़ी । सुबुक्तगीन और महमूद गज़नवी के हौसले बढ़े और वे हिन्दुस्तान को पददलित करके बेशुमार दौलत लूट कर ले गये । और इस देश के वासियों को गैरों की गुलामी की जंजीरों में जकड़ दिया गया । जिससे पूरा एक हज़ार साल इस देश पर गैरों की हकूमत रही, यह सिर्फ एक मामूली से वहम का करिश्मा है । इस तरह के कितने ही वहम न सिर्फ़ इस देश के अन्दर बल्कि सारे संसार के अन्दर फैले हुए थे और महर्षि दयानन्द जी ने जब प्रचार क्षेत्र में कदम रखा तो उन्होंने न सिर्फ़ एक वहम को बल्कि दुनिया भर के अन्दर फैले हुए तमाम वहमों का पुरज़ोर खण्डन करके संसार को वहमों से छुटकारा दिलाने का जबरदस्त प्रयत्न किया, और जहां लुकमान के पास एक भी वहम की दवा न थी, वहां महर्षि ने सारे वहमों की अचूक दवाई बताई, चुनांचे अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में महर्षि फ़रमाते हैं–

१. "माता पिता और गुरु अपने बच्चों और शिष्यों को बचपन से ही ऐसी शिक्षा दें जिससे सन्तान किसी धूर्त के बहकावे में न आवे, और जो जो विद्या धर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो । क्योंकि जब आदमी मर जाता है तो इसकी लाश को प्रेत कहते हैं, और जब इसके शरीर का दाह हो चुकता है इसका नाम भूत होता है । (जैसे आजकल कहा भी जाता है कि फ़लां आदमी गुज़र गया ।) यानि गुज़रे हुए काल का नाम भूत होता है । जितने उत्पन्न हों और वर्तमान में आकर न रहें वे भूतस्थ होने से इन का नाम भूत होता है । ऐसा ब्रह्मा से लेकर आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है । परन्तु जिसको शंका कुसंग का संस्कार होता है, उसको भय और शंका रूप भूत-प्रेत डाकनी शाकनी आदि अनेक भ्रमजाल दुखदायक होते हैं । देखो जब कोई प्राणी मरता है तब इसका जीव पाप पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था में सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है । क्या उस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है । अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वर आदि शारीरिक रोगों और

उन्माद आदि मानसिक रोगों का नाम भूत-प्रेत आदि धरते हैं । इनका औषध सेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके, धूर्त, पाखण्डी, महामूर्ख, स्वार्थी, भंगी, चमार, शूद्र, म्लेच्छ पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा, तवीज़ आदि मिथ्या मन्त्र जन्त्र बाँधते बंधवाते फिरते हैं । अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं ।"

२. फिर महाराज इसी दूसरे समुल्लास में लिखते हैं–"कि इसी तरह मौजूदा ज्योतिषियों का भी पाखण्ड ही है कि जब कोई उनके पास जाता है और कहता है कि महाराज मुझ को यह कष्ट है तो वह ज्योतिषी जी कह देते हैं कि इस पर सूर्य, शनिश्चर, मंगल आदि क्रूर ग्रह आए हुए हैं, तुम इनके लिए शान्तिपाठ, पूजा, दान कराओ तो ठीक हो जाएगा तो उनसे कहना चाहिए कि जैसे कि यह पृथ्वी जड़ है, ऐसे ही सूर्य, शनिश्चर आदि ग्रह भी जड़ नहीं हैं क्या ? क्या यह चैतन्य हैं ? जो क्रोधित होकर दुःख, शान्ति या सुख देवें । यह तो ताप और प्रकाश के भिन्न और कुछ नहीं दे सकते और संसार में जो राजा प्रजा सुखी दुःखी हैं, वह इन ग्रहों का फल नहीं, अपितु यह सब हर एक के पाप पुण्य का फल होता है, जो सब को सुख दुख के रूप में मिलता है । स्वामी जी लिखते हैं कि ज्योतिष शास्त्र में जो अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह तो ठीक है, परन्तु जो फल की लीला है वह झूठी है ।"

३. आजकल एक भृगु-संहिता का ढोंग चला हुआ है । कई आदमी कहते हैं कि हमारे पास भृगुसंहिता है और फिर लुत्फ यह है कि हर एक भृगुसंहिता वाला अपनी भृगुसंहिता को सच्चा और बाकी सब की भृगुसंहिता को झूठी बतलाता है । भला सोचो तो सही कि यह ज्योतिषी लोग अपनी कन्याओं का पूरा ज्योतिष लगा कर लग्न, मुहूर्त ठीक विचार कर विवाह करते हैं फिर भी कई कन्याएं विधवा हो जाती हैं, तब इनका ज्योतिष कहां चला जाता है । यह तो आम प्रसिद्ध कहावत है कि ब्रह्मा जी के पुत्र वशिष्ठ मुनि जो राजा दशरथ के पुरोहित थे, उसने रामचन्द्र जी के राजतिलक का मुहूर्त निकाला था, परन्तु हुआ उसके विपरीत ।

ब्रह्मा के पुत्र वशिष्ठ महामुनि, गिन गिन लगन धरे ।
दशरथ का मरना, सिया का हरना, वन वन राम फिरे ॥
कर्मगत टारे नांहि टरे ॥

मुहूर्त विचार

महर्षि दयानन्द महाराज की कृपा से जो थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त हुआ है। इससे मुहूर्त के विषय में भी कुछ विचार उपस्थित करना पाठकों के लिए लाभदायक ही सिद्ध होगा। हमारे पूर्व पुरुषाओं ने जो समय विभाग किया था वह निम्न प्रकार है–एक बार आंख की पलक झपकने का निमेष, उन्मेष है, साठ निमेष, उन्मेष का एक क्षण, साठ क्षण का एक पल, साठ पल की एक घड़ी और साठ घड़ी का एक दिन रात। कैसा विचित्र समय का विभाग किया गया, कि साठ के शब्द को ही लगातार अपनाया गया है। जहां सब संसार के लोगों ने समस्त दूसरी विद्याएं यहां से सीखी हैं। वहां समय विभाग का प्रकार भी यहीं से लिया गया है। संसार भर के प्राणी कोई भी बात अपने आप न कर पाये। यह स्वत: सिद्ध ही है, इसलिए तो महर्षि जी ने कहा कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इस वक्त जो समय विभाग सारे संसार में योरुपीयन लोगों की तरफ से प्रचलित है, इसमें पहले तो साठ का हिंसा ही अपनाया। यानि साठ सैकण्ड का एक मिनट और साठ मिनट का एक घण्टा, आगे चलकर इनको इससे हटना पड़ा। क्योंकि हमारे वैदिक ऋषियों का समय विभाग प्राकृतिक था यानि उन्होंने आंख झपकने को सम्मुख रखकर यह क्रम चलाया था परन्तु योरुपीयन लोगों ने अटकल पच्चू १ सैकण्ड बनाकर इस साठ सैकण्ड का मिनट बना लिया फिर साठ मिनट का घण्टा बना कर आगे इस हिन्दसे के साथ न चल सके। खैर मुहूर्त की बात भी सुनिये। मुहूर्त दो घड़ी का होता है, और मौजूदा हिसाब से घड़ी २४ मिनट की होती है और मुहूर्त ४८ मिनट के अन्तर का नाम हुआ। इसके बिना मुहूर्त का न कोई और अर्थ है, न कोई माहात्म्य है। और इस हिसाब से सारे दिन रात में ३० मुहूर्त आते हैं। और आज कल दिन रात में २४ घण्टे होते हैं। जिस तरह आजकल हम सब जब कोई काम करते हैं या विशेष जगह जाना होता है या किसी विशेष पुरुष से मिलना होता है तो कहते या लिख देते हैं कि इतने बजे या इतने वक्त पर मैं यह काम करूँगा या इस जगह जाऊँगा या उस पुरुष को मिलूंगा। इसी तरह प्राचीन काल में लोग कहा करते थे कि इस मुहूर्त में यह काम करूँगा, इस मुहूर्त में वहां जाऊँगा। गोया मुहूर्त वक्त का एक ऐसा हिस्सा है जो ४८ मिनट का होता है। बस इससे ज़्यादा मुहूर्त का कोई अर्थ नहीं है। अब लगे हाथों यह भी सुन लें

कि आजकल जो वक्त बताने वाले यन्त्र को घड़ी का नाम दिया गया है, वह भी इस घड़ी शब्द को सम्मुख रख कर दिया गया है, प्राचीन काल में समय विभाग को जानने के लिए जो यन्त्र बनाये जाते थे वे अमूमन मट्टी के ऐसे बर्तन बना कर पानी या रेत डाल कर इसके पैन्दे में छेद करके बनाए जाते थे। इसलिए इस समय बताने वाले यन्त्र का नाम भी घड़ी मशहूर हो गया। जो अब तक भी मिट्टी के छोटे से बर्तन को घड़ी और बड़े बर्तन को घड़ा कहा जाता है। और फिर जब यह लोहे के पुरजों से समय बताने वाला यन्त्र बनाया गया और भारत में आया तो इस का नाम भी घड़ी मशहूर हो गया। ऊपर लिखे समय विभाग के क्रम से यह सिद्ध हो गया है कि मुहूर्त ४८ मिनट का है सो अब जो विवाह शादी या दूसरे संस्कारों पर लोगों को यह कहते सुना जाता है या पण्डित लोग बताते हैं कि विवाह का मुहूर्त इस वक्त का है, या फलां संस्कार का यह मुहूर्त है तो इसका भी यही अर्थ होता है जो ऊपर वर्णन किया गया है न इससे ज्यादा न इससे कम। परन्तु हमारे समाज में इस मुहूर्त शब्द के ठीक अर्थ न जानकर कितना भ्रम और वहम फैला हुआ है। यह आप भाई अच्छी तरह जानते ही हैं।

यह तो भला दूर की बात है, १९४७ में देश का बंटवारा हुआ। इससे पहले क्या किसी ज्योतिषी ने कभी कहा था कि देश का बंटवारा होगा और फिर इस बंटवारे में लाखों आदमी मारे गये, खुद ज्योतिषी भी मारे गये, लूटे गये। अगर यह फलित जिस को ग़लत तौर पर ज्योतिष कहा जाता है, सच्चा होता जितना नुकसान जान और माल का इस विभाजन में हुआ कभी न हो सकता, इस से भी बढ़कर जब अंग्रेज यहां से चले गये तो यहां तकरीबन ६०० राजे थे और रियासतों के मालिक थे और हर एक राजा के पास ज्योतिषी भी थे। किसी ज्योतिषी ने किसी राजा को यह बताया, कि महाराज आपका राज अब नहीं रहेगा, अपना अपना बन्दोबस्त कर लो, इस से बढ़कर भी और सबूत इस फलित ज्योतिष के ग़लत होने का मिल सकता है।

(४) अब रह गया मन्त्र-जन्त्र जादू-टोना का वहम भी ढोंग है। महर्षि लिखते हैं कि ऐसे सब लोगों को यह सवाल करना चाहिए कि क्या आप परमेश्वर के नियम और कर्म फल से भी बचा सकोगे ? क्या तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं, तुम्हारे घर में भी मरते हैं। और क्या तुम खुद मौत से बच सकोगे, तब वह कुछ भी नहीं कह सकते

और ऐसे धूर्त लोग जान लेते हैं कि हमारी दाल यहां नहीं गल सकती । और इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों के प्रति उपकार करना है, इस काम को भी न छोड़ना चाहिए । और जितनी यह लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं, उनको भी महापामर समझना चाहिए । इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था में ही सन्तानों के हृदय में डाल देना चाहिए, ताकि अपनी सन्तान किसी के धोखे में पड़कर दुःख न उठावे ।

५. अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में नवग्रह पूजा के वहम का खण्डन करते हुए महर्षि कहते हैं । जिन जिन मन्त्रों से हिन्दू लोग नवग्रहों की पूजा करते हैं, इन वेद मन्त्रों के अर्थों में कहीं नवग्रह पूजा की गन्ध भी नहीं है । यह सब लोगों को ठगने के लिए स्वार्थी लोगों ने चला रखी है । वर्ना यह ग्रह उपग्रह यानि सूर्य चाँद वगैरह की किरणों द्वारा गर्मी सर्दी और मौसमों की तब्दीली का तो सम्बन्ध है । इस के सिवा किसी को किसी और तरह का सुख दुःख नहीं पहुंचा सकते और हरेक मनुष्य अपनी अपनी प्रकृति के अनुकूल या प्रतिकूल होने से गर्मी सर्दी मौसम की तब्दीली में सुख दुःख का अनुभव करता है । यह नहीं कि जिस तरह आजकल पोपलीला वाले कहते हैं कि चन्द्रमा आठवें है, सूर्य बारहवें है, शनिश्चर फलां घर में है, तुम को बड़ कष्ट होगा, इस के लिए इसका कोई उपाय करो और वह पोपलीला वाले उन को दान पुण्य-पूजा पाठ आदि का उपाय बताते हैं । ये सब बातें मिथ्या हैं । लोगों को पूरे तौर पर अपने जाल में फंसाने के लिए इन लोगों ने एक मन्त्र बना रखा है, जिसका अर्थ है, देवताओं के अधीन सब जगत्, मन्त्रों के अधीन सब देवता और मन्त्र ब्राह्मणों के अधीन हैं, इसलिए ब्राह्मण देवता कहलाते हैं । क्योंकि जब चाहें मन्त्र से देवता को बुला और प्रसन्न करके काम सिद्ध कर लेवें । तब स्वामी जी कहते हैं कि उन से कहना चाहिए कि अगर आप देवता को बस में कर सकते हो और जो चाहे करा सकते हो तो फिर नगर नगर क्यों मांगते हो, किसी राजा का खजाना उठवा कर अपने घर मंगवा लो और मौज करो । और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके जितना चाहे धन ले लो, हम गरीबों को क्यों लूटते हो, तुम को दान देने से वे प्रसन्न या अप्रसन्न होते हैं तो प्रत्यक्ष दिखलाओ।

जिसको आठवां सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो, तो दोनों को जेठ के महीने में बिना जूता पहने तपती हुई भूमि पर चलाओ जिस पर ये प्रसन्न होवें उनके शरीर पग न जलें और जिस पर क्रोधित होवें, जल जाने चाहिएं। और पोह के महीने में रात के वक्त दोनों को नंगा रखा जावे तब एक को सर्दी लगे और दूसरे को न लगे, तब तो जानें के ये ग्रह क्रूर और सौम्य होते हैं।

नवग्रह ये हैं—सूर्य, चांद, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, राहु और केतु। महर्षि जी ने कैसी स्पष्ट भाषा में ऐसे ऐसे वहमों का खण्डन किया है और इस खण्डन से सकल संसार का कितना उपकार किया है। किसी शायर ने ठीक कहा है—

दयानन्द स्वामी न हम को बचाते।
तो बछिया के बाबा हमें लूट खाते॥

६. इन ग्रहों के वहम ने सन् १९६२ में सारे देश में कितना आन्दोलन खड़ा कर दिया था, जब कि यह मशहूर कर दिया गया था कि अष्टग्रही योग होगा तो संसार का बड़ा अनिष्ट होगा। सारे भारतवर्ष देश में जगह-जगह अनिष्ट रुकावट के लिए, जैसे-जैसे इन पोपों ने उपाय बताये लोग करते रहे। एक महीना तो इस देश में इतना उपद्रव मचा रहा जिसका कोई ठिकाना नहीं करोड़ों रुपये देश भर में इस वहम की भेंट हो गये, अगर इतनी बड़ी रकम से देशहित की कोई बात की जाती तो देश का कितना भला हो गया होता। वहम के अन्दर मुबतिला होकर अपने देश और जाति का कितना अनिष्ट हुआ है यह इन चन्द वाकयात से आपको भली भांति विदित हो गया होगा और फिर इस तरह से सैकड़ों प्रकार के फैले हुए वहमों का महर्षि ने ज़ोर शोर से खण्डन किया।

७—महर्षि जी जब एकाएक पर्यटन करते थे तो एक बार चार पाँच दिन भोजन न मिलने से बहुत भूख लगी थी, इन का यह नियम था कि वह भोजन के लिए किसी से याचना नहीं करते थे। वे इसी तरह भूखे थे कि एक मनुष्य ने आकर भोजन का प्रस्ताव किया। स्वामी जी इस के साथ इसके घर गये और इसके दिये हुए सत्तू को खाकर तृप्त हुए। तत्पश्चात् इस पुरुष ने स्वामी जी से कहा कि मेरी पुत्रवधू को भूत ने ग्रस लिया हुआ है, आप अनुग्रह करके उसका भूत उतार देवें। स्वामी जी इसके साथ इसके घर के भीतर चले गये, और उसकी पुत्रवधू को अपनी लाठी दिखलाई, तब

इस मनुष्य ने कहा कि और कुछ भी कीजिए। महाराज ने कहा कि हमारी लाठी देख कर भूत भाग जायेगा और सचमुच ऐसा ही हुआ और उसकी पुत्र वधू नीरोग हो गई। वह मनुष्य स्वामी जी का बड़ा अनुगृहीत हुआ और कई दिन तक स्वामी जी ने उसको समझाया कि तुम्हारी पुत्रवधू को भूत-प्रेत कुछ भी नहीं था, किसी ने उसको वहम डाल दिया था जो हमारे लाठी दिखलाने के भय से दूर हो गया वरना भूत-प्रेत कोई चीज़ नहीं होते।

३. एक बार महाराज पर्यटन करते हुए एक ऐसी जगह आए जहां एक मकान के मुतलिक लोगों के अन्दर यह भ्रम फैला हुआ था कि इस मकान में भूत प्रेत निवास करते हैं। और भय से उस मकान में कोई रहता न था। स्वामी जी को भी किसी ने कह दिया था कि इस मकान में भूत है। स्वामी जी ने कहा—फिर तो हम इस मकान में अवश्य ठहरेंगे और इस मकान में रात्रि बिताने के लिए ठहर गये। स्वामी जी की देखा-देखी एक और मनुष्य भी इस मकान में रात को ठहर गया। रात्रि में वह मनुष्य किसी कार्य वश उठकर जाना चाहता था कि किसी ने उसे जबरदस्ती पकड़ लिया तब वह चिल्ला उठा, स्वामी जी भी उठे तब लोग कहने लग गये कि स्वामी महात्मा हैं, इसलिए भूत उनको कुछ न कह सके, परन्तु दूसरा साधारण मनुष्य था इसलिए भूत ने उसको पकड़ लिया तब महर्षि ने सब मनुष्यों को उपदेश किया कि भूत-प्रेत कोई योनि विशेष नहीं होती है, यह तो वहम ही वहम है, जिन लोगों को ऐसे वहम होते हैं वही डरते हैं और जो वहम त्याग देते हैं उनको कोई भय नहीं होता।

८. स्वामी जी महाराज सन् १८०९ में जब बदायूं पधारे तो श्रावणी के दिन जो लोग स्वामी जी से मिलने को आये थे उन में एक वैद्य भी थे, वे अपने साथ एक नवयुवक को ले आए थे, इसके विषय में वैद्य जी ने कहा कि इस में भूत का आवेश है। बहुत चिकित्सा की है परन्तु आराम नहीं आता है। महाराज कहने लगे—आप वैद्य होकर ऐसे अज्ञानी हो रहे हो और ऐसी असत्य बात को मानते हो। भूत-भविष्यत्, वर्तमान तीन काल हैं। भूत योनि कोई नहीं है वैद्यक ग्रन्थों में ऐसे कई रोगों का वर्णन है जिन के कारण मनुष्य उल्टी चेष्टा करने लगते हैं और अण्ट सण्ट बकने लगते हैं। इसने कोई मादक वस्तु खा ली है, अन्त को यह बात सत्य निकली। इसने भांग बहुत पी ली थी, उसी का सारा विकार था। महर्षि ने इसके लिए

एक औषध भी बतलाई थी ।

९. एक जगह महर्षि के पास एक आदमी पुत्र का जन्म-पत्रा ले आया और कहने लगा कि महाराज इस जन्म-पत्रा को देखें कि मेरे पुत्र की किस्मत में क्या लिखा है । महर्षि जी ने हँसते हुए कहा—भाई जन्मपत्रा न देखो, कर्मपत्रा देखो कि तुम्हारा पुत्र क्या करता है । फल तो कर्म करने का ही मिलता है, जैसा कोई कर्म करेगा, वैसा उसको फल अवश्य मिलेगा।

अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

शुभ और अशुभ कर्म का फल अवश्य भोगना होता है ।

१०. सन् १८७९ में जब महाराज पुष्कर तीर्थ पर गये तो वहाँ कुछ वाममार्गी साधु रहते थे । जिनके विषय में प्रसिद्ध था कि इन्हें मन्त्र सिद्ध हैं । और मन्त्र शक्ति द्वारा वे अलौकिक कार्य कर सकते हैं । यहाँ तक कि मनुष्य का प्राण हरण भी कर सकते हैं । अजमेर के पास के एक ग्राम के नवयुवक अजमेर के गवर्नमेंट कालेज में पढ़ते थे, एक बार उन्होंने इन साधुओं के पास जा कर कहा कि तुम्हारी मन्त्रसिद्धि सब मिथ्या है, साधुओं ने कहा कि हम मन्त्र-शक्ति दिखा सकते हैं, जब उन विद्यार्थियों ने कहा कि दिखाओ तो साधुओं ने पूछा—तुम्हारा गुरु कौन है, उन्होंने कहा स्वामी दयानन्द सरस्वती । इस पर साधु बोले—हम उसी को दिखा देंगे । जब वह आवे उसे हम से मिलाना । अतः जब स्वामी आए तो उनमें से कुछ छात्र, एक ठाकुर, एक साधु और मुन्शी समर्थदान ने एक दिन कहा—कि यहाँ कुछ साधु रहते हैं, जो कहते हैं कि हम मन्त्र-शक्ति से मनुष्य को मार सकते हैं । यदि आज्ञा हो तो अपनी परीक्षार्थ आपके पास लावें । महाराज ने कहा कि ले आओ । हम तो आप लोगों को निश्चय कराने के लिए ऐसी बातों में उत्साह पूर्वक तत्पर रहते हैं । फिर लोगों ने पूछा कि आप उन साधुओं की परीक्षा कैसे करेंगे तो महाराज ने कहा कि हम एक मक्खी को एक बोतल में जिस में वायु आने जाने का मार्ग हो, बन्द करके इन्हें कहेंगे कि इस मक्खी को मारो । और यदि वे मन्त्र को मनुष्य पर ही चलाना चाहेंगे तो हम कहेंगे कि मुझ पर मन्त्र चलाओ । इसके पश्चात् वे लोग उन साधुओं के पास गये और कहा कि तुम कहा करते थे कि हम अपनी मन्त्र-शक्ति स्वामी दयानन्द को दिखा देंगे, सो वे आज यहाँ आये हुए हैं उन्हें अपनी मन्त्र-शक्ति दिखलाइये, साधु लोग यह बात सुन कर आग बबूला हो गये

और कहा कि जाओ जाओ यहां मन्त्र कहां रखे हैं। मन्त्र क्या ऐसे दिखलाये जाते हैं। उन लोगों ने आ कर महाराज से सब वृत्तान्त सुनाया तो महाराज ने कहा कि साधुओं ने आप लोगों को बहकाने के लिए यह प्रपंच रच रखा है। परन्तु हमारा आना हो गया और उनकी कलई खुल गई। अन्यथा आप लोग धोखा खा जाते। हम तो ऐसे बहुत लोगों से मिल चुके हैं। जहां जाते हैं ऐसे ही भ्रमजाल बिछे हुए दिखते हैं।

११. दानापुर निवास के समय एक दिन ठाकुरदास सुनार ने पूछा– कि महाराज मेरी सन्तान जीवित नहीं रहती और मेरा विश्वास है कि इनकी मृत्यु भूतों के कारण होती है। आप कोई ऐसे उपाय बताइये, जिससे मैं भूतों के भय से सुरक्षित हो जाऊँ। महाराज ने कहा भूत का वहम बिल्कुल झूठा है। तू नित्य प्रति दोनों काल सन्ध्या, हवन किया कर और हवन करते समय अपनी धर्मपत्नी को भी साथ बैठा लिया कर। फिर जो सन्तान होगी, जीवित रहेगी उसने ऐसा ही आचरण करना आरम्भ कर दिया। फिर जो उसकी सन्तान हुई वह जीवित रही।

बोलो वहम निवारक महाराज की जय।

८१. यूनान का फ़िलासफ़र सुकरात

१. करीबन २४०० वर्ष हुए यूनान के ईथन्ज़ शहर में सुकरात का जन्म हुआ। इसका पिता बुततराश था, और इसकी माता दाई का काम करती थी। सुकरात बुतपरस्ती नहीं करता था और आत्मा के नित्य और अमर होने का प्रचार करता था। सुकरात निर्भय और स्पष्ट वक्ता था। सर्दी और गर्मी में नंगे पांव ईथन्ज़ के गली बाजारों में अपने विचारों का प्रचार करता रहता था। जो उस वक्त के यूनान के विचारों से विपरीत थे, क्योंकि एक तो वहां बुतपरस्ती जोरों पर थी और दूसरे वहां के लोग आत्मा को अमर नहीं मानते थे। तब उस समय के हाकमों ने इस पर दो इल्ज़ाम लगा कर उस पर मुकद्दमा चलाया। एक तो यह कि सुकरात ईथन्ज़ के देवताओं में विश्वास नहीं रखता और दूसरा यह कि वह शहर के नौजवानों को गुमराह करता है। सुकरात की घोषणा यह थी कि Know thyself यानि अपने आपको जानो और पहचानो कि तुम शरीर ही नहीं हो बल्कि अमर आत्मा हो। और यही बात उस वक्त ईथन्ज़ के हाकमों को चुभती थी। क्योंकि यह विश्वास उस समय के विचारों

के विरुद्ध था, जब वह अपने इल्जाम का जबाब देने के लिए जजों के सामने पेश हुआ तो इसने जो तकरीर की वह इसके ईश्वर विश्वास और आत्मविश्वास को प्रकट करती है । अत: उसने परमात्मा की तरफ से प्रेरित होकर सत्य का प्रकाश किया । वह कहने लगा–

"मेरी दानाई यह है कि मैं जानता हूं कि मैं दाना नहीं हूँ और दूसरे लोग अपनी मूर्खता और ग़रूर को जाहिर करते हैं और यह स्पष्ट प्रचार ही मेरी ग़ैर हरदिल अज़ीज़ी का कारण है । उसने कहा कि मैं तो लोगों को नेकी और खुशी की जिन्दगी बसर करने का उपदेश देता हूं नौजवानों को गुमराह करने की बजाय मैं उनको शरीफ़ और नेक बनाना चाहता हूं । और मैं यह परमात्मा के आदेशानुसार करता हूं जो कि आप जैसे जजों से महान् है, फ़िर इस बात की परवाह किये बगैर कि कौन खुश होता है या नाखुश। सुकरात ने कहा–यदि आप मुझे इस शर्त पर छोड़ने को तैयार हो कि मैं सत्य की खोज न करूँ तो ईथन्ज़ के निवासियो मैं आपका धन्यवाद करता हूँ । परन्तु मैं आपकी बजाय परमात्मा की आज्ञा का पालन करूंगा । जिसने मुझे इस काम पर लगाया है, और जब तक मेरे प्राण हैं मैं इससे पीछे नहीं हटूंगा। मैं नहीं जानता कि मौत क्या चीज है । वह अच्छी होगी, मैं उससे डरता नहीं हूं परन्तु मैं यह जानता हूं कि अपने कर्तव्य कर्म से पीछे कदम हटाना बुरा है । और आखिर उसने निहायत दिलेरी से कहा कि आप जानते हैं कि मैं अपने विश्वास पर पक्का हूँ और मैं इसको छोड़ नहीं सकता, चाहे मुझे सौ दफा भी मरना पड़े"। सुकरात की यह तकरीर सुनकर जजों ने इसको मौत की सजा सुना दी ।

सुकरात ने मौत की सजा का हुक्म बड़ी शान्ति से सुना, तब उसने कहा कि अब हमारे अलग होने का समय आ गया है, मुझे मरने के लिए और आपको जिन्दा रहने के लिए लेकिन परमात्मा के सिवाय और कोई नहीं जानता कि हम में किस की हालत बेहतर है । (सो सुकरात को मौत की सजा देने वाले जजों को कोई नहीं जानता परन्तु सुकरात को सारा संसार जानता है) ।

अत: सुकरात को जब जेल भेजा गया तो सुकरात को एक अत्यन्त वफादार शिष्य ग्रेट ने आकर कहा कि जेल से आपको भगा ले जाने का सब इन्तजाम हो चुका है, परन्तु सुकरात ने कहा कि मैं मुल्क के कानून की

खिलाफवर्जी करने से मरना बेहतर समझता हूं। अफलातून सुकरात का बड़ा वफादार शिष्य था, उसने सुकरात की मौत का बहुत ही खूबसूरती से वर्णन किया है । वह लिखता है कि उस दिन सुकरात की जंजीरें खोल दी गईं। इसकी औरत और बच्चे जेल में इसको मिलने आए और जार जार रोने लगे तब इसने क्रेटू से कहा—इसको घर छोड़ आओ, जब वह चली गई तो सुकरात ने अपने शिष्यों के सामने दुःख सुख की असलियत पर उपदेश दिया और आत्मा के अमरपन पर बातें करता रहा, फिर जब उसकी मौत का समय आया तो एक आफिसर ने जहर का प्याला लेकर सुकरात के हाथ में पकड़ा दिया परन्तु वह रोने लग पड़ा । फिर सुकरात ने एक ही सांस में जहर का प्याला पी लिया, सुकरात बिल्कुल शान्त रहा, लेकिन इसके श्रद्धालु इसको बरदाश्त न कर सके और वह छमाछम आंसू बहाने लगे, और जार जार रोने लग पड़े। तब इसने सब को कहा कि शान्त हो जाओ और परमात्मा की इच्छा के सामने सिर झुकाओ ।

और

महर्षि दयानन्द भी बड़े स्पष्टवक्ता थे, और अपनी विद्या पर उन्होंने भी कभी घमण्ड नहीं किया था, जहां सुकरात सिर्फ ईथंज शहर में ही प्रचार करता रहा, वहां महर्षि सारे भारतवर्ष में फिर कर प्रचार करते रहे और जिस तरह सुकरात ने उस वक्त के ईथंज के विश्वासों के खिलाफ मूर्तिपूजा का खण्डन किया और आत्मा के अमरपन का प्रचार भी किया था, ठीक इसी तरह महर्षि भी किया करते थे। जब महर्षि को सहारनपुर पहुँचने पर किसी ने कहा कि सत्यार्थप्रकाश में जैनमत का खण्डन करने पर जैनी लोग आप पर मुकद्दमा बनाने की सलाह कर रहे हैं तो महाराज ने उत्तर दिया था कि तोप के मुंह के आगे बांधकर भी कोई मुझ से पूछेगा तो सत्य ही मेरे मुंह से निकलेगा । सुकरात की तरह सत्य अनुरागी और सत्य के प्रचारक थे और सत्य कहने में कभी डरते न थे । इन के एक लैक्चर में भारत के कमाण्डर इनचीफ जनरल राबर्ट्स भी तशरीफ लाए, उस समय महर्षि इञ्जील का खण्डन कर रहे थे । जनरल साहब सुनते रहे । जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो महाराज को टोपी उतार कर सलाम किया और कहने लगे आप जैसा निर्भय मनुष्य हम ने नहीं देखा कि हमारी मौजूदगी में ही आप इञ्जील पर नुक्ताचीनी करते रहे हैं महाराज के जीवन में कई ऐसी घटनाएं होती रहीं ।

१. सुकरात की तरह महर्षि के भी स्पष्ट प्रचार से लोग दुश्मन बन गये थे। और आख़ीर में महाराज जोधपुर को उनके कुकर्म पर स्पष्ट उपदेश करने पर ही उनको भी ज़हर पीना पड़ा था। कई बार श्रद्धालु भक्तों ने प्रार्थना की कि आप पालसी से काम लिया करें, परन्तु महाराज न मानते थे। लाहौर में एक दिन किसी सज्जन ने कहा कि अगर आप मूर्तिपूजा का खण्डन न करें तो महाराजा जम्मू वा कशमीर आप पर बहुत प्रसन्न होंगे। महर्षि जी ने सुकरात की तरह उत्तर दिया कि मैं परमात्मा की आज्ञा-पालन करता हूँ और उसके आदेशानुसार यह काम कर रहा हूँ और वह महाराजा जम्मू वा कशमीर से महान् है। इसी तरह आगरा में राजाओं की सभा में महर्षि शैव मत का खण्डन कर रहे थे। एक शैव मत को माननेवाला राजा तलवार खैंचकर महाराज पर लपका, तब महाराज ने उसकी ओर देखा और कहा कि मैं सत्य का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझता हूं। मैं अपना कर्तव्य निभाता हूँ, तुम अपना निभाओ। अतः वह क्षत्री राजा तलवार म्यान में डालकर सभा मण्डप से उठकर चला गया परन्तु सुकरात की तरह महाराज भी अपने सत्योपदेश के कर्तव्य से पीछे न हटे। एक बार एक पादरी ने महाराज से कहा–कि आप मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, लोग आपको मार डालेंगे तो महर्षि ने भी सुकरात की तरह बहुत दिलेरी से उत्तर दिया था कि चाहे सौ दफा भी मुझ को मरना पड़े, मेरा जो विश्वास है मैं उस को नहीं छोड़ सकता। और आख़री समय भी दोनों महापुरुषों का एक जैसा ही आया। सुकरात को भी ज़हर का प्याला दिया गया और महर्षि को भी ज़हर पिलाया गया। और सुकरात ने भी कहा ईश्वर की इच्छा पर सिर झुकाओ। और महर्षि दयानन्द जी ने भी यही कहा–"ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो" मरते दम तक ईश्वर विश्वास पर दोनों महापुरुष अटल रहे और मौत के भय को दोनों महापुरुषों ने जीत लिया था परन्तु संसार का यह अजीब दस्तूर है जैसा कि कवि ने कहा है–

यह दुनिया का इन्साफ नहीं बल्कि कहर है।
अमृत पिलाने वालों के हिस्से में ज़हर है॥

सुकरात और महर्षि दयानन्द अपने अपने समय में अपने सत्योपदेश से संसार को अमृत पिला गये, परन्तु संसार ने उन दोनों महापुरुषों को ज़हर पिलाया।

८२. जर्मन का मार्टन लूथर

ईसाई मत में इस समय दो बड़े दल हैं, एक रोमन कैथोलिक कहलाते हैं जो मूर्तिपूजक हैं और दूसरे प्रोटैस्टैंट हैं जो मूर्तिपूजा नहीं करते । मार्टन लूथर प्रोटैस्टैंट दल का वाणी हुआ । और यह जर्मन देश में सन् १५२५ में पैदा हुआ था, और ईसाई मत में मूर्तिपूजा का पुरज़ोर खण्डन किया था ।

इसी तरह महर्षि दयानन्द जी ने भी भारतवर्ष में मूर्तिपूजा का बलपूर्वक खण्डन किया, और इस देश में भी दो दल हो गये हैं । एक वह जो मूर्तिपूजक हैं, दूसरे वह जो निराकार परमात्मा के उपासक हैं । फिर महर्षि दयानन्द जी और मार्टन लूथर का मुकाबला करते हुए जर्मन के रहने वाले हैम्बर्ग यूनिवर्सिटी के संस्कृत के प्रोफेसर लिखते हैं ।

१. लूथर किसी हद तक झुकने वाला (कायर) और अपनी बात (सिद्धान्त) पर स्थिर न रहने वाला था । कहीं-कहीं डगमगा जाता था परन्तु महर्षि दयानन्द बेधड़क, निर्भय और अपने सिद्धान्त का पक्का था । वे जो कुछ मुंह से कहते थे कर दिखलाते थे, अर्थात् आलम बा-अमल था और अपने सिद्धान्त से कभी डगमगाते न थे ।

२. लूथर को केवल ईसाई मत के फ़िर्का से लड़ना पड़ा, उसे किसी और मज़हब से वास्ता न पड़ा था, इसकी सारी जद्दोजहद ईसाइयों के कैथोलिक फ़िर्का तक महदूद थी । परन्तु दयानन्द ने दुनिया भर के मतमतान्तरों का मुकाबला किया । योग्यता और युक्तियों से उनका प्रबल खण्डन किया । और निर्भय होकर मर्द मैदान बनकर उनके वरखिलाफ बलपूर्वक लड़े और किसी से भी भयभीत न हुए ।

३. लूथर मानसिक शक्ति से दुर्बल था यदि अपने विरोधियों को परास्त न कर सकता तो उन्हें नास्तिक कह-कह कर भगा देता था और इन्हें घृणा की दृष्टि से देखता था । परन्तु स्वामी दयानन्द अपने विरोधियों के साथ युक्ति और प्रेम का बर्ताव करते थे, और उन्हें कायल करके छोड़ते थे, अपने विरोधियों के साथ आदर और सत्कार से पेश आते थे, और उनसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करते थे ।

४. लूथर ने अपने विचारों से यूरोप की सभ्यता में क्रान्ति उत्पन्न की परन्तु स्वामी दयानन्द ने संसार भर की धार्मिक पुस्तकों और धार्मिक संस्थाओं में भारी परिवर्तन पैदा कर दिया । अन्य मतमतान्तरों के लोग अब अपनी-अपनी

पुस्तकों के अर्थों में तबदीलियां कर रहे हैं ।

५. लूथर दुबला पतला और नाजुक आदमी था, हमेशा बीमार और तकलीफ़ में रहता था । परन्तु स्वामी दयानन्द स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट और पूर्ण ब्रह्मचारी थे । वे सुडौल जिस्म, लम्बे कद और रौब दाब वाले थे ।

६. लूथर का सहायक और संरक्षक टिसकनी का रईस था और भी कई साहूकार चोरी छिपे उसकी सहायता करते थे । परन्तु स्वामी दयानन्द का न राजा, न रईस कोई भी संरक्षक न था । उन्होंने इतना महान् कार्य आत्मविश्वास पर अकेले मर्द मैदान बन कर किया ।

७. लूथर साईंसदानों और फ़िलासफ़रों को लूमड़, मक्कार, छिपकिलि, मैंढक, पागल, नाबकार आदि बुरे शब्दों से सम्बोधन करता था । परन्तु महर्षि दयानन्द सब विद्वानों का आदर पूर्वक नाम लेते थे और महानुभाव आदि शब्दों से सत्कार करते और इन्हें आदरणीय समझते थे ।

८. लूथर बाईबल को अन्धविश्वास की दृष्टि से मानता था । वह ईसाइयों के तवाहमात और पोप के मुज़ालिम और उसकी डिक्टेटराना हकूमत का विरोधी था । परन्तु दयानन्द धर्म (वेद को) युक्ति की कसौटी पर परखने की आज्ञा देते थे ।

९. लूथर अपने अनुयायियों से प्रेम करता था, दूसरे विचार के लोगों से इसका कोई सम्बन्ध न था । परन्तु स्वामी दयानन्द प्रेम के प्रचारक और सार्वभौमिक भ्रातृभाव के प्रचारक थे ।

१०. स्वामी दयानन्द सब को एकता की लड़ी में पिरोना चाहते थे, और तमाम मज़हबों को सच्चाई के एक प्लेटफ़ार्म पर लाना चाहते थे । मगर लूथर केवल प्रोटैस्टेण्ट फिर्कापरस्ती का ही समर्थक था ।

ये विचार प्रोफेसर फामेशी की निर्भयता, स्पष्टता, योग्यता और महर्षि दयानन्द के प्रति भक्ति की भावना को प्रकट करते हैं ।

८३. नैपोलियन बोनापार्ट

नैपोलियन बोनापार्ट एक मामूली सिपाही के घर पैदा होकर फ्रांस का शहनशाह बन गया, और उसने अपनी शक्ति से आधा यूरोप विजय कर लिया था । रूस की राजधानी मास्को तक पहुँच गया था, एक बार वह जंगी मुहम पर जाने लगा तो रास्ता में आल्प्स पहाड़ आता था । किसी जरनैल

ने कह दिया कि आल्प्स को पार करना तो असम्भव है तो नैपोलियन कहने लगा, असम्भव का शब्द मूर्खों की डिक्शनरी में है मर्दों की में नहीं। Impossible is the word found in the dictionary of fools और उसने अपने आत्मा-विश्वास पर सेना सहित आल्प्स पर्वत पार करके दूसरे देश को विजय कर लिया।

और

इसी तरह काशी के पण्डित अपनी विद्या के घमण्ड में थे, जब महर्षि ने नंगे बदन एक लंगोटी पहने हुए उनको शास्त्रार्थ के मैदान में ललकारा तो पण्डितों ने कहा कि यह अनहोनी बात है। काशी में आकर कोई पण्डितों को ललकारे यह कैसे हो सकता है। परन्तु महर्षि ने इस अनहोनी बात को होनहार बना दिया। और पण्डितों को शास्त्रार्थ का चैलेंज देकर, शास्त्रार्थ के मैदान में उन सब को ज़बरदस्त पराजय दे दी। और काशी की विद्या का घमण्ड तोड़कर काशी को विजय कर लिया। आत्मविश्वास के बल पर ही महर्षि दयानन्द ने भी असम्भव को सम्भव बना दिया।

२. नैपोलियन बोनापार्ट एक दिन लायब्रेरी में कोई किताब तलाश कर रहे थे, अन्त में उनको वह पुस्तक सब से ऊंचे शैल्फ में रखी हुई दिखाई दी, जहां पहुंचना उनके लिए कठिन था। जनरल मौसी ने जो सेना में सबसे लम्बा आदमी था बाहर से झांकते हुए कहा–मुझे आज्ञा दीजिए श्रीमान् जी मैं आपसे ऊंचा हूं। तुम मुझ से ऊंचे नहीं हो मार्शल, नैपोलियन ने मुस्कराते हुए कहा–"लम्बे हो"।

और

सन् १८७३ में जब महर्षि दयानन्द अलीगढ़ आये तो एक दिन एक पण्डित आया और शिवाले के चबूतरे पर बैठकर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने लगा, उस समय स्वामी जी चबूतरे के नीचे फ़र्श पर बैठे थे। और अनुमान से उनके पास २०० मनुष्य बैठे हुए थे। लोगों ने बहुतेरा कहा कि यदि आप को शास्त्रार्थ करना हो तो नीचे आ जावें, और सभ्यता पूर्वक शास्त्रार्थ कीजिए परन्तु वह अपने स्थान से न हिला, स्वामी जी ने कहा कुछ चिन्ता नहीं है, ऊपर नीचे बैठने से कोई बड़ा छोटा नहीं होता। देखो वह कौआ जो वृक्ष पर बैठा है पण्डित जी से भी ऊंचा है।

३. अमृतसर में जब महाराज पधारे तो व्याख्यानों की झड़ी लगा दी,

व्याख्यान स्थल में महाराज एक कुर्सी अपने सामने रखवा दिया करते थे, ताकि व्याख्यान समाप्त होने पर जिसे कोई शंका करनी हो तो इस पर बैठ कर करे, एक दिन एक पण्डित आया, उसे कुर्सी पर बैठने को कहा गया पर वह न बैठा, और स्वामी जी को सम्बोधन करके कहने लगा, कि आपने मुझे नीचा आसन दिया है। मुझे भी आपके समान ही कुर्सी मिलनी चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया कि मैं तो व्याख्यान देता था। आप यदि कुर्सी पर बैठने में अपमान समझते हों तो कुर्सी को मेज पर रखकर बैठ जाइये। आश्चर्य है कि विद्वान् होकर बैठने में आसन को ऊंचा नीचा होने का विचार करते हैं, क्या किसी चक्रवर्ती राजा के मुकुट पर मक्खी मच्छर बैठने से बड़े हो सकते हैं।

४. नैपोलियन बोनापार्ट का भी यह विश्वास था कि माताएं ही बच्चों और कौमों को जैसा बनाना चाहें बना सकती हैं। उसका कहना है–

Nations are what mothers make them क्योंकि नैपोलियन बोनापार्ट को उसकी माता ने ही, जो कुछ वह बन सका, बनाया था, एक मामूली सिपाही से फ्रांस का शहनशाह बन जाने पर भी वह माता के उपकार को न भूल सका, और इसीलिए वह इस विश्वास का बन चुका था।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज ने भी सत्यार्थप्रकाश के दूसरे समुल्लास में बच्चों की शिक्षा के सम्बन्ध में लिखते हुए सब से पहले शतपथ ब्राह्मण का यह वाक्य "मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।" लिखा है। अतः स्वामी जी लिखते हैं–कि धन्य वह माता जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। माता अपने बच्चे को जैसा चाहे वैसा बना सकती है।

५. नैपोलियन बोनापार्ट ने निद्रा अपने वश में की हुई थी, युद्ध के मैदान में वह घोड़े की पीठ पर ही जितना चाहता था सो लिया करता था।

और

इसी तरह महर्षि जी ने भी निद्रा वश में की हुई थी, जितना चाहते थे सो लेते थे, और फिर पूरे समय पर स्वयं ही जाग पड़ते थे।

१. सन् १८७७ में महाराज मेरठ पधारे, एक दिन एक ज्योतिषी गौरी–शंकर नाम का स्वामी जी की सेवा में उपस्थित हुआ, और कुछ वार्तालाप

करना चाहा, स्वामी जी ने कहा कि १५ मिनट तक निद्रा लूंगा उसके पश्चात् बातचीत होगी, अभी ५ मिनट बीते थे कि एक तहसीलदार स्वामी जी के दर्शनार्थ आ गया। उनसे पं० गौरीशंकर जी ने कहा कि स्वामी जी सो रहे हैं १० मिनट बाद जागेंगे, आप प्रतीक्षा कीजिए, अतः पूरे १० मिनट बाद स्वामी जी जाग पड़े।

२. महाराज का यह नियम था कि भोजन के पश्चात् ग्रीष्मकाल में १६ मिनट और शीतकाल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे, जब पलंग पर लेटते थे उसी समय सो जाते थे। सन् १८८३ में राजपूताना में शाहपुरा रियासत में विचरते थे, नौकर स्वामी जी के इस नियम को जानते थे, इसलिए जब स्वामी जी सो जाते तो नौकर जागने के समय से पहले पानी हाथ मुंह धोने को तैयार कर लेते थे, ठीक रात के दस बजे सो जाते थे, और लेटते ही गहरी नींद में सो जाते थे, निद्रा पर उनका भी नैपोलियन की तरह अधिकार था।

३. राजपूताना निवास में रात्रि के दस का पहला घंटा बजते ही पलंग पर लेट जाते थे, और लेटते ही गहरी नींद में सो जाते थे, महाराज का निद्रा पर यह अधिकार देखकर सब को आश्चर्य होता था।

८४. जार्ज वाशिंगटन

१. पहले अमरीका पर भी अंग्रेजों का राज्य था। अंग्रेजों की गुलामी से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अमरीका को अंग्रेजों से बहुत बड़ा युद्ध करना पड़ा इस युद्ध में अमरीका को विजय प्राप्त हुई और अमरीका अंग्रेजों की पराधीनता से मुक्त हो गया। इस जीत का सेहरा जार्ज वाशिंगटन के सर रहा। क्योंकि वही अमरीका की सेना का सेनापति था। जार्ज वाशिंगटन १७३२ में पैदा हुआ और १७५९ तक जीता रहा। जार्ज वाशिंगटन सेना में बड़ा मान्यवर लीडर था और सारी फौज इसका बहुत आदर सम्मान करती थी। अमरीकी सेना के अफ़सर और सिपाही इस पर प्राण न्योछावर करते थे। इनके प्रति इस प्रेम और भक्ति का यह परिणाम हुआ कि फ़ौजी अफ़सरों ने चुपके-चुपके इस बात की तैयारियाँ शुरू कर दीं कि जार्ज वाशिंगटन को अमरीका का शहन्शाह बना दिया जावे और इस प्रकार एक नये राज्य वंश की दाग बेल डाल दी जाय। अतः उनके राज्याभिषेक की तैयारियां मुकम्मल

कर ली गईं तो इसके विषय में करनल निकोला ने जार्ज वार्शिंगटन को राज्याभिषेक के लिए तैयार रहने को पत्र लिखा । इस पत्र के मिलने पर वार्शिंगटन ने जवाब में जो पत्र लिखा वह उनके महान् त्याग का परिचय देता है । उन्होंने लिखा–

"श्रीमान् जी मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि सारे युद्ध में मुझ को किसी बात से कभी इतना दुःख न हुआ था, जितना यह मालूम करके हुआ कि सेना में इस प्रकार की विचारधारा चल रही है । जैसा कि आप के पत्र से प्रकट होता है, मैं ऐसे विचार से घृणा करता हूँ । मैं नहीं जान पाया मेरे किस विचार से आप को मुझे ऐसा पत्र लिखने का साहस हुआ है । अगर आपको अपने देश और आने वाली भावी सन्तान का कुछ भी ध्यान है तो आप इस विचार को मन से निकाल दीजिए ।

प्रणाम । आपका आज्ञाकारी–

जार्ज वार्शिंगटन

अहो : कितना त्याग है ।

और

१. महर्षि दयानन्द जी महाराज ! काशी पधारे और मूर्तिपूजा, अवतारवाद का जोरदार खण्डन करने के अतिरिक्त काशी के समस्त विद्वानों को मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ करने का आवाहन करने लगे । काशी के पण्डित अपने आप को महर्षि के साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ पाते थे, तब उन्होंने महर्षि के सामने सब से बड़ा प्रलोभन रखने का यत्न किया और विश्वस्त मनुष्यों के हाथ महर्षि को कहला भेजा कि यदि आप मूर्तिपूजा आदि का खण्डन न करें तो हम आप को ईश्वर का ग्यारहवां अवतार "निष्कलंक अवतार" मान कर आप की हाथी पर सवारी निकाल आप की जय-जयकार करेंगे । परन्तु महर्षि जी ने भी जार्ज वार्शिंगटन की भांति इस प्रलोभन में आने से इन्कार करते हुए कहा कि मैं ईश्वर की आज्ञानुसार जो काम कर रहा हूं इससे पराङ्मुख कदाचित् भी नहीं हो सकता और उन्होंने भी काशी के पण्डितों का यह प्रस्ताव न माना । जिससे उनकी अवतारों में गणना हो जाती। जार्ज वार्शिंगटन का त्याग भी महान् था, परन्तु फिर भी वह बादशाही का त्याग था, बादशाह तो लाखों करोड़ों संसार के अन्दर हो चुके हैं किसी का कोई नाम भी नहीं जानता परन्तु राम-कृष्ण, बुद्ध आदि अवतार । ईसा, मूसा,

मुहम्मदादि परमात्मा के बेटे और पैगम्बर आज तक भी करोड़ों इन्सानों के दिलों पर हकूमत कर रहे हैं। किसी ने ठीक कहा है–

दारा रहा न हम न सिकन्दर सा बादशाह।
तख्ते जमीं पै सैकड़ों आये चले गये॥

फिर भी त्याग की भावना की तुलना दोनों महापुरुषों में एक सी ही थी।

२. जार्ज वाशिंगटन अमरीका के बादशाह तो न बने, परन्तु उनको सब से पहला प्रधान बनाया गया। एक दिन जार्ज वाशिंगटन जब अपने दफ़्तर में गये तो उनका सैक्रेटरी ५ मिनट लेट पहुँचा। जार्ज वाशिंगटन समय के बड़े पुजारी थे, सैक्रेटरी साहब से पूछने लगे कि आप ५ मिनट लेट क्यों आये हैं, तो सैक्रेटरी ने तुरन्त उत्तर दिया कि मेरी घड़ी के अनुसार मैं ठीक समय पर आ गया हूँ। इस पर जार्ज वाशिंगटन साहब बोले कि या तो कल आप अपनी घड़ी बदल लें या मैं अपना सैक्रेटरी बदल लूंगा। इसके बाद इनके किसी भी कर्मचारी को समय के बाद आने का साहस न हुआ।

और

२. इसी प्रकार महर्षि दयानन्द जी भी समय को बहुमूल्य समझते थे। लाहौर निवास के समय पंजाब के लाटसाहब के साथ महर्षि के मिलने का समय निश्चित हो गया। महाराज गाड़ी में बैठकर निश्चित समय पर लाटसाहब की कोठी पर पहुँच गये। द्वारपाल को कहा गया कि लाटसाहब को पता देवें कि स्वामी जी आ गये हैं। लाटसाहब उस समय स्नान कर रहे थे, द्वारपाल से उन्होंने कहा कि स्वामी जी को आदर से बिठाओ मैं अभी कपड़े पहनकर आता हूं। जब द्वारपाल ने स्वामी जी को लाटसाहब का सन्देशा दिया। तब स्वामी जी ने गाड़ी वापस ले चलने की आज्ञा दी। द्वारपाल फिर लाटसाहब के पास गया और स्वामी जी के वापस जाने की बात बताई। तब लाटसाहब जी कपड़े पहन रहे थे। आधे कपड़े पहने बाहर भाग कर आ गये परन्तु स्वामी जी वापस हो चुके थे। फिर लाटसाहब के बुलाने पर भी नहीं गये।

३. एक दिन बुलन्दशहर के कलक्टर महाराज की कुटिया पर आये। महाराज कुटिया के भीतर थे, कलक्टर साहिब ने अपने आने का समाचार अन्दर भेजा तो महाराज ने कहा कि इस समय हमें अवकाश नहीं है। फिर

उन्होंने पुछवाया कि आपको कब अवकाश होगा। महाराज ने इसका उत्तर तो न दिया उल्टा कलक्टर साहिब से पुछवाया कि आपको कब अवकाश होगा तो कलक्टर साहिब ने कहा कि चार घण्टे के बाद मुझे अवकाश ही अवकाश है। यह सुनकर महाराज कुटिया से बाहिर आ गए और कलक्टर को आसन देने के पश्चात् उनको राज धर्म का उपदेश दिया और कहा कि जिस मनुष्य पर एक परिवार का भार होता है उसे सर खुजलाने की फुरसत नहीं मिलती। आपके ऊपर तो सहस्रों मनुष्यों के संकट-निवारण का भार है। मुझे यह सुन कर आश्चर्य हुआ कि आपको ४ घण्टे के बाद अवकाश ही अवकाश है, समय बहुत अमूल्य वस्तु है। इसकी कदर करनी चाहिए।

४. जब महाराज लखनऊ में थे तो एक दिन कर्मचारी आध घण्टा पीछे काम पर आए। महाराज ने इन्हें उपदेश दिया कि हमारे देशनिवासी समय का मूल्य नहीं जानते। इसे व्यर्थ खोते हैं, यही उनकी दुरवस्था का कारण है। समय का मूल्य उस समय ज्ञात होता है जब एक मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए रोगी को देख कर वैद्य कहता है कि यदि मुझे पांच मिनट पहले बुलाते तो यह न मरता। अब हजारों रु० खर्च करने पर भी नहीं बच सकता।

५. कसूर बच्चों के बच्चों का है।

बरेली में महाराज जब व्याख्यानों का दरिया बहा रहे थे तो एक दिन कुछ श्रद्धालुओं ने महाराज से प्रार्थना की कि कल रविवार का दिन है, यदि व्याख्यान एक घण्टा पहले आरम्भ कर दिया जावे तो उत्तम है। महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली परन्तु कहा कि मैं तो एक घण्टा पहले आ जाऊँगा। गाड़ी भी तो एक घण्टा पहले पहुंच जानी चाहिए। क्योंकि मैं व्याख्यान-स्थल में आने के लिए ठीक उस समय तैयार होता हूं जब व्याख्यान के आरम्भ में १५ मिनट रह जाते हैं। लाला लक्ष्मीनारायण ख़ज़ाञ्ची जी ने कहा कि गाड़ी नियत समय से एक घण्टा पहले पहुंच जाएगी। अगले दिन अन्य दिनों की अपेक्षा श्रोतागण एक घण्टा पहले ही इकट्ठे हो गये नियत समय बीत गया परन्तु स्वामी जी न पहुंचे। पूरा पौना घण्टा पीछे महाराज पधारे और आते ही कहा कि मैं तो नियत समय पर आने को तैयार था परन्तु गाड़ी न पहुंची, तब मैं प्रतीक्षा कर के पैदल ही चल पड़ा मार्ग में गाड़ी मिली। यही देर का कारण है। सभ्य जनो इसमें मेरा दोष नहीं है। दोष तो बच्चों के बच्चों का है, जिनको न तो समय की कदर है और न ही प्रतिज्ञा-पालन ही

जानते हैं । लाला लक्ष्मीनारायण बैठे हुए थे, बहुत लज्जित हुए और गर्दन झुका कर सुनते रहे ।

६. रुड़की में व्याख्यान का समय पाँच बजे निश्चित था । महाराज को व्याख्यान स्थल पर लाने के लिए बग्गी साढ़े चार बजे ही आ गई । उन्होंने घड़ी देख कहा कि मार्ग १५ मिनट का है, आध घण्टा पहले जाने में क्या लाभ । मैं समय से ५ मिनट पहले पहुँचना चाहता हूँ सो उन्होंने ऐसा ही किया।

७. स्वामी जी नियत समय पर काम करने के सिद्धान्त का बड़ी कड़ाई के साथ पालन करते थे । रुड़की में ही एक दिन जब आप व्याख्यान-स्थल में पहुंचे तो वहां दो ही श्रोता बैठे थे । आपने अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए व्याख्यान आरम्भ कर दिया ।

८. एक बार महाराज वेद-भाष्य के कार्य में बहुत संलग्न थे । उन्होंने विज्ञापन दे रखा था कि वह प्रातःकाल के सात बजे से सायं काल के ५ बजे तक किसी से न मिलेंगे । ५ बजे शाम से रात्री पर्यन्त मिलेंगे । एक दिन श्रीमान् गोविन्द महादेव रानाडे (जो महाराज के बड़े श्रद्धालु शिष्य थे और उच्चपदाधिकारी भी थे ।) महाराज से मिलने आए और एक घण्टा तक प्रतीक्षा करते रहे । महाराज ने उनको कहला भेजा कि आप क्षमा करें, इस समय मैं आप से बातें नहीं कर सकूंगा । उस समय वे चले गए और फिर शाम को पाँच बजे आ कर ही महाराज को मिल सके ।

९. उदयपुर निवास के समय महाराणा उदयपुर महाराज से वार्तालाप कर रहे थे । जब घड़ी ने रात के दस बजाये तो महर्षि जी ने महाराज को कहा कि अब मेरे सोने का समय हो गया है । आप तशरीफ ले जायें । महाराणा साहिब चले गये और स्वामी जी पलंग पर लेटते ही सो गये ।

१०. समय का मूल्य जानने के कारण ही महर्षि १९ वर्ष के थोड़े समय में एकाएकी इतना महान् कार्य कर गये । जो उन के बाद ९१ वर्ष में एक करोड़ आर्यसमाजी जिन के पास अरबों रुपये की जायदाद भी है न कर पाए, इसी से आप महर्षि के महान् कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। जब महाराज कार्य-क्षेत्र में उतरे तो सत्य सनातन वेद मार्ग पर मूर्तिपूजा, अवतार-वाद, शून्यवाद आदि कई पाखण्ड रूपी झाड़ झंकार और विशाल कंटीले वृक्ष हजारों वर्षों से पैदा हो हो कर उस मार्ग को लुप्तप्रायः कर चुके थे और मनुष्य ने अलग अलग पन्थों के पन्थाई बन कर आपस में लड़ाई फसाद शुरू कर

रखे थे। तब अकेले महर्षि ने अपने ब्रह्मचर्य और योगबल से समय का मूल्य आंकते हुए हर किस्म की कठिनाइयों और विरोधों का मुकाबला करते हुए पाखण्ड के सब कंटीले वृक्षों को जड़ मूल से काटकर सत्य सनातन वेद मार्ग को साफ करके मनुष्यों के चलने योग्य बना कर सब संसार को इस पर चलने का आवाहन किया था।

११. एक दिन जार्ज वाशिंगटन प्रेजीडेंट अमेरिका अपने मातहत अफसरों और दोस्तों के साथ बाहर सैर करने जा रहे थे, कि सामने से आते हुए एक नीग्रो ने (अमरीका के असली रहने वालों को नीग्रो कहते हैं) टोपी उतार कर वाशिंगटन को अभिवादन किया। और वाशिंगटन ने भी उसी तरह टोपी उतार कर जवाब दिया। जब वह नीग्रो चला गया तो एक दोस्त ने पूछा कि आपने एक तुच्छ नीग्रो का टोपी उतार कर उसका अभिवादन क्यों किया, यह तो आपने बड़ी अनुचित बात की है। इससे इन लोगों का हौसला बढ़ेगा, तब वाशिंगटन महोदय ने उत्तर दिया कि परमात्मा की सृष्टि में कोई ऊँच नीच नहीं है। सब मनुष्य बराबर हैं। फिर दूसरी बात यह कि जब एक नीग्रो ने शिष्टता पूर्वक मेरा अभिवादन किया तो क्या मैं उससे भी गया गुजरा हूँ क़ि उसके अभिवादन का उत्तर तक न दूं। ऐसी अशिष्टता को मैं स्वीकार नहीं करता।

और

१२. रुड़की में प्रचार करते समय एक फौजी मुलाजम मजहबी सिक्ख बड़ी श्रद्धा से आकर महर्षि दयानन्द जी महाराज के व्याख्यान स्थल में बैठकर व्याख्यान सुना करता था। एक दिन एक चिट्ठीरसान मुसलमान ने जो स्वामी जी को पत्र देने आया, इस मजहबी सिक्ख को व्याख्यान-स्थल पर बैठे देख कर इस को बहुत डांट बताई कि इतने बड़े महापुरुष की सभा में तुम्हारे जैसे तुच्छ आदमी को आते शर्म नहीं आती। इस पर महाराज ने इस मुसलमान चिट्ठीरसान को कहा—कि भाई ईश्वर की सृष्टि में कोई ऊँच नीच नहीं है। अगर यह सज्जन व्याख्यान स्थल में बैठकर व्याख्यान सुनता है तो इसका अधिकार है किसी को उसके अधिकार से वंचित नहीं करना चाहिए। हमें किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए। सब मनुष्य परमात्मा के अमृत पुत्र हैं और फिर उस मजहबी सिक्ख को प्रेमपूर्वक कहा कि तुम बेशक रोज आया करो और व्याख्यान सुनो तुम को कोई रुकावट नहीं है। इस पर वह मजहबी

सिक्ख बहुत प्रोत्साहित हुआ और महर्षि के पूर्वोक्त व्यवहार से महर्षि पर उसकी श्रद्धा पहले से कई गुणा बढ़ गई ।

ऊँच नीच के भेदभाव को न समझ कर मनुष्य मात्र को प्रेम का पात्र समझने में भी दोनों महापुरुषों के एक जैसे ही भाव थे ।

८५. अबराहम लिंकन

अबराहम लिंकन १२।२।१८०९ में पैदा हुआ, फ़रवरी १८६१ में अमरीका का प्रेजीडेंट बन गया ।

अबराहम लिंकन अमरीका का १६ वां प्रेजीडेंट था, अमरीका के असल निवासियों को नीग्रो या रैड इण्डियन कहा जाता है । अमरीका में उन को गुलामों के तौर पर बेचा जाता था । जब लिंकन १९ वर्ष की आयु में दरयाये मसिंसपि पर मल्लाह का काम करता था तो उसने देखा कि अमरीका के असल निवासियों को जंजीरों से जकड़ कर लाया जाता है और उनको नीलाम किया जाता है । सब से अधिक बोली देने वाला उनको खरीद लेता है और मनमाने अत्याचार उन पर करता है । यह दृश्य देख कर उसके मन में बहुत चोट लगी और उसने अपने मन में पक्का इरादा कर लिया कि अगर ताकत मेरे हाथ में आ गई तो मैं इस गुलामी की प्रथा को कानून बना कर हटा दूंगा । अत: वह दैवयोग से अमरीका का १५ वां प्रधान चुना गया । "दैवयोग में इसलिए कि इसके प्रधान बनने की किसी को भी आशा न थी, "लेकिन इसको ऐसा चांस मिल गया कि वह प्रधान चुन लिया गया। अत: इसने अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए गुलामी की प्रथा को हटाने का कानून पास करा दिया जिसका नाम Emancipation proclamation रखकर जनवरी १८६३ को इसने हस्ताक्षर करके ४० लाख गुलामों को आज़ाद करा दिया । लेकिन इस कानून के पास कराने पर उसको किसी ने बन्दूक की गोली मारकर उसका कत्ल कर दिया। लिंकन का सिद्धान्त था कि परमात्मा ने ही सब मनुष्यों को बनाया है और वह अपने मनुष्यों में रंग नसल का भेद न रखकर सब से प्यार करता है ।

और

जिस तरह लिंकन के मन में गुलामों के प्रति दया का भाव था, इसी तरह महर्षि के मन में भी भारत में अछूत कहे जाने वाले करोड़ों आदमियों

के प्रति दया का भाव था। अतः महर्षि जी ने अपने प्रचार में नफ़रत के ख़िलाफ़ बड़े जोर शोर से आन्दोलन उठाया और महर्षि जी ने वेद के उन मन्त्रों को जिसमें लिखा है कि सब लोग भाई-भाई हैं और परमात्मा सब का पिता है, कोई बड़ा छोटा नहीं है, सुना-सुनाकर सब को आपस में प्रेम प्यार करने का सन्देश सुनाया। और महर्षि जी के बाद भी आर्यसमाज ने छूतछात के बखेड़े को दूर करने के लिए बलिदान दिये। अतः महर्षि के चलाये हुए इस आन्दोलन को महात्मा गांधी जी ने स्वराज्य प्राप्ति के सिद्धान्तों में रखा और स्वराज्य प्राप्त होने पर छूतछात नाशक कानून भी बनाया गया है, जिससे भारतवर्ष के ९ करोड़ मनुष्यों को जिनको अछूत समझा जाता था, बराबरी के अधिकार मिले हैं। अमरीका का गुलामी नाशक कानून लिंकन ने बनाया और भारत का छूतछात नाशक कानून महर्षि दयानन्द ने बनवाया। महर्षि के इस गुण की सराहना करते हुए फ्रांस का मशहूर लेखक रोमन रोलैंड लिखता है–

"महर्षि दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूतपन का अन्याय सहन नहीं किया। और उनसे अधिक उनके उपयुक्त अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता और साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सब से अधिक प्रबल शक्ति ऋषि की थी। वे पुनर्निर्माण और राष्ट्रीय संगठन के उत्साही पैग़म्बरों में से थे।"

२. अमरीका के गुलामी नाशक कानून बनने से पहले नीग्रो लोगों के लिए पढ़ना जुर्म था, और कोई नीग्रो विद्या नहीं पढ़ सकता था। न किसी स्कूल या कालेज में किसी नीग्रो लड़के या लड़की को दाखिल किया जाता था। अर्थात् विद्या प्राप्त करने के दरवाज़े उनके लिए बन्द थे। और लिंकन ने यह कानून बना कर तालीम के दरवाजे भी उनके लिए खोल दिये।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज से पहले यहां भारत में भी "स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्' की श्रुति बनाकर शूद्रों और अछूतों तथा स्त्री जाति को विद्या से वंचित रखा हुआ था। अतः महर्षि ने इसका खूब खण्डन किया और सब के लिए विद्या के शताब्दियों से बन्द दरवाजे खोल दिये। इस काम में भी

दोनों महापुरुषों का उत्साह एक जैसा ही प्रतीत होता है ।

३. एक दिन प्रेज़ीडेंट की गाड़ी पर बैठ कर अपने दफ्तर को जा रहे थे, कि रास्ते में क्या देखते हैं कि एक सूअर का बच्चा कीचड़ में फंसा हुआ है, और निकलने का यत्न करते हुए भी निकल नहीं रहा, लिंकन गाड़ी से उतर पड़े और कीचड़ में दाखिल होकर सूअर के बच्चे को बाहर निकाल लाए । नौकर जो साथ था उसने कहा कि आपने अपना लिबास खराब कर लिया है । अगर यही काम करना था तो मुझ को हुक्म देते मैं कर देता । लिंकन ने जवाब दिया–भाई इस सूअर के बच्चे की तकलीफ़ को देखकर मुझे खुद तकलीफ़ होने लग गई थी। और मैंने अपनी तकलीफ़ दूर करने के लिए यह काम किया है । यदि तुम करते तो सूअर के बच्चे को तो बाहर निकाल लाते परन्तु मेरे दिल का दर्द कैसे दूर होता और फिर दर्द इतना अधिक था कि मैं बेकरार होकर कीचड़ में चला गया ।

और

एक दिन महर्षि दयानन्द जब काशी में विराजमान थे, नित्य की तरह सैर करने को बाहर गये, क्या देखते हैं एक माल से लदी हुई बैलगाड़ी कीचड़ में फंसी खड़ी है और गाड़ीवान जोर ज़ोर से बैलों को डण्डे मार रहा है, परन्तु दोनों बैल अपना पूरा जोर लगाने पर भी गाड़ी को कीचड़ से बाहर निकालने में असमर्थ थे । दयालु दयानन्द से यह दशा देखी न गई, महर्षि ने गाड़ीवान से कहा कि बैलों को खोल दो, और खुद नीचे उतर आओ । गाड़ीवान ने कहा बाबा गाड़ी कीचड़ से बाहर निकालनी है । बैलों को कैसे खोल दूँ ! महाराज ने कहा गाड़ी बाहर निकालनी है, तुम बैलों को अब मत मारो और उनको खोल दो । इतना कह कर खुद लिंकन की तरह कीचड़ में उतर पड़े और बैलों को खोल दिया । गाड़ीवान को गाड़ी से उतार दिया और महर्षि ने अपने कन्धों पर जोर लगा कर गाड़ी कीचड़ से बाहर निकाल कर सड़क पर रख दी और आगे सैर को चल दिये ।

४. अबराहम लिंकन प्रेज़ीडेंट की हैसियत में एक दिन घोड़े पर सवार होकर अकेला ही सैर को निकल पड़ा, क्या देखता है कि रेलवे लाईन पर दो मजदूर एक शहतीर को उठा रहे हैं, परन्तु पूरा जोर लगाने पर भी उठा नहीं सकते, इनका मेट पास खड़ा उनको ज़ोर लगाने का उपदेश तो कर रहा था, परन्तु उनकी सहायता नहीं करता था, लिंकन ने जब यह देखा तो घोड़े

से नीचे उतर आये और मज़दूरों के साथ जोर लगा कर शहतीर को उठा कर अपने ठिकाने रख दिया । मेट यह देखता रहा, जब यह काम समाप्त करके लिंकन अपने घोड़े पर सवार हुआ तो मेट ने इनका नाम-धाम पूछा ताकि उनका धन्यवाद करे । जब लिंकन ने अपना सब कुछ बताया तो मेट शर्मिन्दा होकर क्षमा मांगने लगा तो लिंकन ने कहा–भाई आदमी का आदमी दारु है अगर फिर कभी मेरी आवश्यकता हो तो बुला भेजना ।

और

एक जगह महर्षि दयानन्द का व्याख्यान एक ऐसे अहाता में हो रहा था, जिसका फाटक लगा हुआ था, जब व्याख्यान समाप्त हुआ और लोग जाने लगे तो फाटक बन्द हो गया था, बहुत से लोग बड़े दुःखी होकर घबरा रहे थे, महर्षि ने उनके दुःख को देखा और खुद आगे बढ़ कर पूरा जोर लगा कर फाटक खोल दिया। फिर लोग जा सके । किसी ने ऐसे ही महापुरुषों की निस्बत सच कहा है–

दर्दे दिल के वास्ते पैदा किया इन्सान को ।
वरना तायत के लिए कुछ कम न थे करो बयां ॥

५. अबराहम लिंकन भी प्रभुभक्त था, और महर्षि दयानन्द भी प्रभुभक्त थे। और दोनों ही महापुरुषों के अन्दर दूसरों के दुःख दूर करने की शक्ति प्रभुभक्ति से ही आई थी । दोनों में ही न अहंकार था, न कोई लालच, केवल सत्य और न्याय ही दोनों के जीवन का आधार था । लिंकन का कद सवा छः फुट था, और महर्षि का कद भी सवा छः फुट ही था, प्राणी मात्र के दुखों को अपना दुख समझने वाले दोनों महापुरुषों में समानता थी ।

८६. गोइटे, ८७. सिसरो

यूरोप मे गोइटे और सिसरो अपने वक्त के बहुत बड़े व्याख्याता हुए हैं। इनकी वाणी में बल था, ओज था और वे बड़ी बड़ी जनसंख्या में व्याख्यान देकर श्रोतागणों को मुग्ध कर देते थे ।

और

महर्षि दयानन्द अपूर्व वक्ता होने के साथ-साथ सत्यवक्ता और स्पष्टवक्ता भी थे । इनका कथन था कि एक बार मेरी बात कोई सुन ले फिर वह सूई की तरह उसके हृदय में खुब जाएगी । और निकाले से भी

न निकल सकेगी। जब महर्षि दयानन्द जी ने प्रचार शुरू किया तो उस समय लाउडस्पीकर वगैरा कुछ न होते थे और महर्षि अपनी ओजस्वी वाणी के आधार पर हजारों मनुष्यों की जनसंख्या में व्याख्यान देते थे । और सुनने वाले (Spell bound) चुपचाप मुग्ध होकर सुनते थे । और कई बार श्रोतागण उस वक्त चेतते थे जब महर्षि कहते थे कि आज का व्याख्यान समाप्त हुआ । महर्षि की आवाज इतनी गम्भीर और ऊंची होती थी कि बम्बई जैसे बड़े शहर में पांच-पांच मील तक सुनाई देती थी । काशी के शास्त्रार्थ में पचास हजार और कानपुर के शास्त्रार्थ में तीस हजार की हाजरी पर भी बगैर किसी उपकरण के कण्ट्रोल किया था ।

१. महर्षि जी की इस अलौकिक शक्ति का वर्णन करते हुए फ्रांस के मशहूर फ़िलासफ़र और लेखक रोमन रोलां जिनको एक लाख २० हजार रुपये का नोबल प्राइज भी मिला था । अपनी पुस्तक में लिखते हैं-"महर्षि दयानन्द ऐसे निर्भीक वक्ता थे जिनकी सिंह गर्जना के सम्मुख उसके प्रतिद्वन्द्वियों को ठहरने का साहस नहीं होता था । दयानन्द की ओजस्वी वाणी बिना किसी वैज्ञानिक उपकरण के तेज़ आंधी की तरह समस्त भारत में फैल गई । मानो उसकी पृष्ठभूमि में विधाता की कोई रहस्यमयी योजना काम कर रही हो। शत्रु और मित्र दोनों ही महर्षि का भाषण सुनने पर विवश थे । जनता की अपार भीड़ के समक्ष काले मेघ की तरह मुक्त रूप से हुंकार करते हुए सुनने वालों के मस्तिष्क और हृदय पर समान अधिकार जमा लेते थे । प्रकृति ने ऐसा वरदान उन्हें दे रखा था ।" महर्षि की इस दैविक शक्ति के उदाहरण निम्न घटनाओं में पढ़िए ।

१. सत्य वक्ता २. स्पष्ट वक्ता

महाराज जिया जी राव सिंधिया ने सन् १८६४ में १०८ भागवत पाठ का आयोजन किया । बहुत सा रुपया खर्च करके दूर-दूर से पण्डित बुलवाये गये, और बड़ा भारी मण्डप तैयार किया गया, महर्षि भी वहां जा पहुंचे । और भागवत का खण्डन करने लगे । महाराज साहब ने पण्डित विष्णु दीक्षित को स्वामी जी के पास भेजा और भागवत सप्ताह का माहात्म्य पूछा । दयानन्द ने हंस कर जवाब दिया कि सिवाय दुःख और क्लेश के इसका कोई फल न होगा । चाहे करके देख लो । महाराज स्वामी जी का स्पष्ट उत्तर सुनकर बहुत खिन्न हुए परन्तु इतना कहा कि स्वामी जी आप का सामर्थ्य है जो चाहें

कहें परन्तु अब तो हम तैयारी कर चुके हैं। पाठ की समाप्ति के बाद महारानी का पांच माह का गर्भपात हो गया और पांच वर्ष के राजकुमार का देहान्त हो गया।

३. स्वामी जी की उपस्थिति में एक ब्राह्मण ने राजा साहब करौली को अन्नदाता कहकर आशीर्वाद दिया। इस पर स्वामी जी कहने लगे, यह क्या कहा, अन्नदाता तो परमेश्वर है। मनुष्य अन्नदाता कैसे हो सकता है। इस पर राजा साहब स्वामी जी से रुष्ट हो गये परन्तु स्वामी जी वहां से चले गये।

४. ठाकुर गुरप्रसाद वेसवां के ताल्लुकादार थे, उन्होंने महीधर के यजुर्वेद भाष्य का हिन्दी में उल्था करके छपवाया, वह पुस्तक स्वामी जी के पास लाया और महाराज की सम्मति पूछी। महाराज ने स्पष्ट कह दिया– कि यह बिल्कुल अशुद्ध और वेदविरुद्ध है।

५. इन्दौर के पण्डित विष्णुपन्त ने जो स्वामी जी के व्याख्यानों में जब वह इन्दौर आया करते थे, उन्होंने सम्मति जाहिर की थी, कि स्वामी जी उत्कृष्ट वक्ता थे उनका स्वर उच्च, गम्भीर और मधुर था। उनके बोलने की रीति तेजपूर्ण और उनका आक्रमण तीव्र होता था। उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदयों में प्रवेश कर जाती थी, इसलिए वह विरोधी पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी। और कई लोग बीच में से उठ कर चले जाते थे।

अपूर्व वक्ता

६. सन् १८७६ बड़ौदा में महर्षि का तीसरा व्याख्यान केदार ईश्वर के मन्दिर में राज्य धर्म विषय पर हुआ। राय बहादुर रामचन्द्र गोपाल राओ देशमुख ने इस व्याख्यान को सफल बनाने के लिए विशेष उद्योग किया था। और राज्य कर्मचारियों, वकीलों, प्रतिष्ठित मनुष्यों के पास उन्होंने निमन्त्रण भेजे थे। अतः इस व्याख्यान में श्रोताओं की संख्या बहुत बड़ी थी, इसमें सब बड़े-बड़े राज्याधिकारी पधारे थे। प्रधानमन्त्री श्री माधवराव भी आये थे, मिस्टर आर० एम० केल्कर जो इन दिनों विषलाद ताल्लुका की जमीन का बन्दोबस्त कर रहे थे. वे भी आये थे। बहुत से पटेल जो बन्दोबस्त के सिलसिले में बड़ौदा आये हुए थे, वे भी आए। रेज़ीडैन्सी के सब अधिकारी भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने इस व्याख्यान में राजा के गुण और कर्तव्य तथा मन्त्रियों के कर्तव्यादि सब बातें विस्तार से बताई थीं। ब्रह्मचर्य पर विशेष

बल दिया था, और कहा था राजाओं के लिए ब्रह्मचर्य के पालन की नितान्त आवश्यकता है । राजाओं को चाहिए कि कानून बना कर लोगों को ब्रह्मचर्य पालन पर बाधित करें, और बाल विवाह को रोकें । मनुष्यों को सदाचारी और वैदिक धर्मानुयायी होना चाहिए । "अन्त में स्वामी जी ने कहा था कि यदि भारतवासी योग्य बन जावेंगे तो विदेशी लोग स्वयं ही उनसे कह देंगे कि तुम योग्य हो गए हो तुम अपना शासन-प्रबन्ध स्वयं करो ।" ब्रह्मचर्य पर कथन करते हुए स्वामी जी ने यह भी कहा था कि किसी भी तीस वर्ष के मांस-मदिरा-भोजी युवक को हमारे साथ चलने दो, तब आप देखना कि ब्रह्मचर्य का बल क्या होता है या हमें किसी तीस वर्ष के युवक का हाथ पकड़ लेने दो । तब आप देखेंगे कि ब्रह्मचर्य का बल कैसा होता है । यदि एक मनुष्य केवल चने चबा कर ब्रह्मचर्य का पालन करे तो वह मांसाहारी से कहीं अधिक बलिष्ठ हो सकता है । जिस समय सर टी० सी० माधवराय प्रधानमन्त्री बड़ौदा व्याख्यान-स्थल में आए थे तो साधारण रीति से प्रणाम कर के बैठ गए थे, परन्तु जब व्याख्यांन समाप्त हो गया और वह उस स्थल से जाने लगे तो उन्होंने स्वामी जी को दण्डवत् होकर प्रणाम किया था और कहा महाराज आप राज्यनीति में हम से सौ गुना अधिक निपुण हैं और सर टी० सी० माधव राव ने महाराज को अपने गृह में भोजन का निमन्त्रण दिया और भोजन के उपरान्त एक हजार रु० थाल में रखकर भेंट करने को लाए तो महाराज ने लेने से इन्कार कर दिया और कहा कि हम अपने व्याख्यान बेचते नहीं हैं ।

स्पष्टवक्ता

अमृतसर निवास काल में एक दिन सरदार हरचरनदास महाराज को मिलने आए । वह इतने मोटे थे कि अच्छी तरह चल फिर भी न सकते थे । महाराज ने उनको देख कर कहा कि यह हमारे देश के अमीर लोग हैं । जिनमें चलने फिरने की भी शक्ति नही है । ऐसे मनुष्य देश का क्या उपकार कर सकते हैं ।

११ मार्च सन् १८७८ लाहौर में स्वामी जी ने इस्लाम की आलोचना पर लैक्चर दिया । जिस कोठी में स्वामी जी ठहरे थे उसके मालिक नवाब निवाज़शअली खां पास ही टहल रहे थे और उनका व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान की समाप्ति पर किसी ने कहा कि महाराज आपको न कोई हिन्दू

ठहरने को स्थान देता है, न कोई ईसाई, न मुसलमान । नवाब साहिब ने कृपा करके आप को यह स्थान दिया है । सो यहां भी आपने इस्लाम का खण्डन करना शुरू कर दिया । ऐसा न हो कि नवाब साहिब नाराज हो जाएं । महाराज ने कहा कि मैं यहाँ इस्लाम या किसी दूसरे मत की प्रशंसा करने नहीं आया हूं । मैं तो केवल वैदिक धर्म को ही सच्चा मानता हूं और उसी का उपदेश देता हूं । मैंने देख लिया था कि नवाब साहिब सुन रहे हैं और जानबूझ कर उनको वैदिक धर्म के गुण बता रहा था, मुझे परमात्मा के बिना अन्य किसी का भय नहीं है ।

९. अमृतसर में सरदार दयालसिंह मजीठिया ने महाराज के निवास के लिए एक कोठी किराया पर ली थी । एक दिन उनकी महाराज से वेद विषय पर बातचीत हुई । सरदार दयालसिंह जी ब्रह्मसमाजी थे, वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते थे । इस बात के लिए एक दिन निश्चित किया गया । सरदार साहिब बातचीत के वक्त प्रसंग से इधर-उधर हो जाते थे । और बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट कर रहे थे। इस पर महाराज ने कहा कि दोनों के बोलने का समय निश्चित होना चाहिए और समय का नियम हो जाने पर सरदार साहिब अपने निश्चित समय से अधिक समय लेते थे । तब स्वामी जी ने इनको नियम विरुद्ध समय ज़्यादा लेने से रोका । लेकिन वह अपनी अमीरी के नशे में इसको अपना अपमान समझ कर रुष्ट होकर चले गये ।

१०. मुलतान में महाराज १२।३।७८ से १६।४।७८ तर्क ३६ दिन रहे और ३५ व्याख्यान दिये । केवल एक दिन रुग्ण हो जाने के कारण व्याख्यान न दिया। व्याख्यानों में प्राय: सभी धार्मिक और लौकिक विषय आ गए थे। लोग चाहे किसी मत वा सम्प्रदाय के थे उनकी विद्या और बुद्धि के वैभव को देख कर चकित रह जाते थे । अत: एक मुसलमान सज्जन ने कहा था कि, "स्वामी जी की विद्या, योग्यता और वा दलील कथन होने के कारण उनसे शास्त्रार्थ करना तो अलग रहा, उनसे किसी को कोई बात पूछने का भी साहस न होता था ।"

११. सन् १८७९. ३ ज़ुलाई को मुरादाबाद में वहां के अंग्रेज जाएंट मैजिस्ट्रेट स्पैडिंग की इच्छा से राजनीति विषय पर एक व्याख्यान मुरादाबाद छावनी की पीली कोठी में हुआ था । इस का प्रबन्ध भी अंग्रेज मैजिस्ट्रेट ने किया था और गण्यमान्य लोगों को टिकट दिए गए थे । जिसमें मुरादाबाद

से सब अंग्रेज अफ़सर, वकील, डाक्टर और पढ़े-लिखे विद्वान् लोग ही निमन्त्रित थे। सब से पहले जब महाराज ने (शन्नो मित्रः शं वरुणः) वाला मन्त्र ही गम्भीर और उच्च स्वर से पढ़ा तो सुनने वाले वाह वाह करने लगे। व्याख्यान में स्वामी जी ने राजा प्रजा के धर्म का पूर्ण रीति से वर्णन किया तो श्रोता गण सुनकर मुग्ध हो गए और सब लोग हैरान थे कि एक संन्यासी जो केवल संस्कृत जानता है राजनीति के गूढ़ तत्त्वों को ऐसी उत्तम रीति से वर्णन कर रहा है यह उन सब अंग्रेजी पढ़े लिखे श्रोताओं के लिए एक नई बात थी। ऐसा राजनीति का विवेचन तो वह किसी बड़े से बड़े अंग्रेजी पढ़े लिखे पालिटीशन से भी आशा न रख सकते थे। कालिज के ग्रेजुऐटों ने कालिज में भी किसी अंग्रेजी की पुस्तक में ऐसी बातें नहीं पढ़ी थीं। बीमार होने के बावजूद भी महाराज कई घण्टे तक व्याख्यान देते रहे और श्रोतागण (Spell bound) मुग्ध होकर सुनते रहे। व्याख्यान की समाप्ति पर स्पैंडिंग साहब ने उठ कर महर्षि की बहुत प्रशंसा की और कहा कि यदि राजा और प्रजा ऐसे धर्म का पालन करते जैसा कि महाराज ने कहा है तो सन् १८५७ का गदर न होता और राजा व प्रजा को वे दुःख उठाने न पड़ते जो उन दिनों सब ने उठाये। इसके बाद महाराज का बहुत बहुत धन्यवाद किया गया। अभी सभा में कुछ लोग बैठे हुए थे, कि श्री कालीप्रसन्न वकील ने किसी से अंग्रेजी में बातचीत करनी शुरू कर दी, इस पर स्वामी जी ने इन्हें उपदेश दिया कि सभा में बैठ कर ऐसी भाषा में बातचीत करना जिसको दूसरे समझ न सकें अनुचित और चोरी की बात है।

१२. एक दिन व्याख्यान में बरेली के कमिश्नर कलैक्टर पादरी स्काट और कई दूसरे अंग्रेज भी उपस्थित थे। महाराज पुराणों के दोषों का वर्णन कर रहे थे। व्याख्यान ऐसा विनोदप्रिय था कि सब हाजरीन हँस रहे थे। पुराणकों के इस विश्वास का कि द्रोपदी, तारा, मन्दोदरी आदि कुमारी हैं। महाराज ने खण्डन किया और पुराणकों की बुद्धि पर खेद प्रकट किया कि ये लोग द्रौपदी के पांच पति बतलाते हैं और फिर उसे कुमारी भी गिनते हैं। महाराज ने जब अंग्रेजों की तरफ देखा और अनुभव किया कि इनकी हँसी बड़ी अवज्ञा और ग्लानि सूचक है, तब इस विषय को समाप्त कर दिया और बोले कि यह तो हुई पुराणकों की लीला। अब ज़रा किरानियों की सुनो– ये लोग कुमारी के पेट से पुत्र उत्पन्न होना मानते हैं और दोष सर्वज्ञ शुद्ध

स्वरूप परमात्मा पर लगाते हैं और ऐसे घोर पाप की बात कहते हुए ज़रा भी लज्जित नहीं होते, बस इतना सुनना था कि अंग्रेजों की हँसी क्रोध में बदल गई। कलक्टर और कमिश्नर के चेहरे क्रोध से तमतमा उठे। महाराज ने इसकी रत्ती भर भी परवाह न करके ईसाई मत की तीव्र आलोचना की।

१३. बरेली में महाराज लक्ष्मीनारायण ख़जाञ्ची की कोठी में उतरे हुए थे और लक्ष्मीनारायण ने एक वेश्या रखी हुई थी। महाराज ने एक दिन उनसे पूछा कि आपका कौन सा वर्ण है। ख़ज़ाञ्ची साहिब ने कहा कि आप तो वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार मानते हैं। मैं क्या उत्तर दूं। तब महाराज बोले कि यूं तो सभी वर्णसंकर हैं। परन्तु लोक प्रथा के अनुसार तुम अपने आप को क्या कहते हो। उत्तर में उन्होंने कहा कि मैं क्षत्री हूं। तब महाराज बोले यदि क्षत्रिय के वीर्य से वेश्या के पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहोगे। तब ख़ज़ाञ्ची साहिब ने यह सुन कर शर्म से सिर नीचा कर लिया। महाराज ने कहा, सुन भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते। हम तो सत्य ही कहेंगे। ख़ज़ाञ्ची जी ने उसी रात उस वैश्या को निकाल बाहर किया।

१४. सन् १८८७ में महाराज राजपूताने की रियासत रायपुर में पधारे। ठाकुर हरीसिंह जी अपने राज्य कर्मचारियों और बन्धु वर्ग समेत महाराज को मिलने आए। तब महाराज ने ठाकुर साहिब से पूछा कि आप का मन्त्री कौन है ? उन्होंने कह दिया कि शेख़ इलाही बख्श मन्त्री हैं। वे जोधपुर गए हुए हैं। उनके पीछे उनके भतीजे शेख़ करीम बख्श जी काम करते हैं। जो यहां उपस्थित हैं। महाराज ने कहा कि आर्य पुरुषों को चाहिए कि यवनों को अपना राज्य मन्त्री न बनावें। यह सुनकर करीम बख्श और उनके पांच छः मुसलमान साथी जो वहां बैठे थे बहुत क्रोधित हो गए।

१५. उदयपुर अधीश महाराणा सज्जनसिंह का चित्त नास्तिकता की ओर झुकने लगा था और उनके चरित्र में वेश्या रखने का दोष भी आ गया था। एक दो मुसलमानों से भी महाराणा बहुत खुश थे और मुसलमान महाराणा को अपने वश में करने का उद्योग भी करने लगे थे कि चित्तौड़ में जब कि उस वक्त के गवर्नर जनरल लार्ड रिपिन महाराणा को जी० सी० एस० आई० की उपाधि देने आए थे। स्वामी जी भी पहुंच गए दरबार के खतम होने पर महाराणा साहिब की महाराज से भेंट हुई और स्वामी जी ने महाराणा साहिब

को राजनीति का उपदेश दिया । और राजाओं के चरित्र में वेश्यागमन का दोष भी दिखलाया। स्वामी जी की निर्भय वाणी का महाराणा साहिब पर बड़ा प्रभाव पड़ा । उन्होंने अपने वज़ीरों और सरदारों को सम्बोधित करके कहा कि हमने अपनी ज़िन्दगी में केवल यही एक मनुष्य देखा है जो सत्य कहता और स्पष्ट कहता है और बिना लाग लपेट सत्य का ही उपदेश करता है।

१६. एक पंजाबी सज्जन स्वामी जी के दर्शनार्थ बम्बई पहुंचा । स्वामी जी ने सत्कार पूर्वक उसे अपने पास ठहराया, वह कई दिन ठहरा रहा । सारा दिन बम्बई की सैर करता और रात्री को आकर भोजन पाकर सो रहता । स्वामी जी ने जब इसकी यह दशा देखी तो एक दिन उसे कहा कि आलसी हो कर दूसरे का अन्न खाते रहना और व्यर्थ समय खोना यह मेरे सिद्धान्त में सर्वथा विरुद्ध है ।

१७. जालन्धर में राजा विक्रमसिंह जी महाराज के श्रद्धालु थे । और इन्हीं के स्थान पर महाराज व्याख्यान भी दिया करते थे । उन को पता लग गया कि राजा विक्रमसिंह ने वेश्या रखी हुई है । एक दिन बहुत से सज्जन उपस्थित थे । राजा विक्रमसिंह जी भी बैठे हुए थे तो महाराज ने कहा कि जो कंजरियां रखते हैं वह कंजर ही होते हैं । इस पर राजा विक्रमसिंह कहने लगे महाराज आज हम पर भी बरसे तो महाराज ने तुरन्त उत्तर दिया-भई हम तो सत्य कहते हैं और स्पष्ट कहते हैं । इस पर राजा विक्रमसिंह ने कंजरी को निकाल दिया ।

१८. जोधपुर निवास में एक दिन महाराज ने अपने व्याख्यान में भी राजाओं के व्यभिचार का बड़े कड़े शब्दों में खण्डन किया, और कहा कि ये लोग वेश्याओं के पीछे कुत्तों की तरह फिरते हैं । इतना ही नहीं उन्होंने सर प्रतापसिंह को पत्र लिखकर उन्हें महाराजा जोधपुर के चरित्र संशोधन के विषय में सम्बोधित किया था ।

१९. महाराज कहा करते थे कि हिन्दु राजाओं की दुराचार के कारण बहुत बुरी दशा है । उनके राज्य कभी के नष्ट हो गए होते अगर अभी तक नहीं हुए तो यह सिर्फ रानियों के पतिव्रत धर्म की सत्ता से है । वरना राजाओं के कुकर्म तो ऐसे हैं कि उनसे बेड़ा कभी का गर्क हो गया होता ।

२०. जोधपुर में हर रोज़ चार बजे से ६ बजे शाम तक महाराज के व्याख्यान शुरू हो गए । सैकड़ों हजारों लोग व्याख्यान सुनने के लिए आने

लगे उन्होंने कभी ऐसे व्याख्यान न सुने थे। श्रोताओं की आंखें खुलने लगीं, जिन बातों को वे लोग ब्रह्मवाक्य समझते थे वह महाराज के व्याख्यानों से भ्रममूलक दिखलाई पड़ने लगीं। इन्हें अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होने लगा। मनुष्य के उद्देश्य का ध्यान आने लगा। महाराज के व्याख्यानों में उन्हें नित्य नया आत्मिक भोजन मिलता था। जिसे पहले चखना तो दूर रहा, जिसकी गन्ध भी कभी उनको न आई थी। महाराज के ये व्याख्यान सुन कर उनके ज्ञानचक्षु खुल गए। महाराज के व्याख्यानों को सुनकर हरेक यह अनुभव करता था कि वह ज्ञान और आनन्द की गंगा में स्नान कर रहा है। महाराज अपने व्याख्यानों में क्षत्रियों के चरित्र-संशोधन और गो-रक्षा पर बहुत बल देते थे, महाराज भरी सभा में वेश्यागमन के दोष दिखलाते हुए कहते थे कि क्षत्री सिंह हैं और वेश्या कुतिया हैं। सिंहों को कुतिया से कभी भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। महाराजा जोधपुर ने भी नन्ही जान नामी वेश्या रखी हुई थी, और महाराज के ऐसे उपदेशों से उसे अपना आसन डोलता हुआ दिखाई दिया। इसलिए वह महाराज की दुश्मन हो गई थी। और यह बात भी आम तौर पर मशहूर है, कि एक दिन महाराज महलों में गए तो महाराणा साहब के पास नन्ही जान बैठी थी। महाराजा साहब ने स्वामी जी का आना सुनकर नन्ही जान को पालकी में बिठा कर विदा कर दिया। परन्तु पालकी का सहारा देते हुए स्वामी जी ने देख लिया था और उस समय महाराजा जोधपुर को कहा था कि आप सिंह होकर कुतिया के साथ सम्बन्ध रखे हुए हो इसका बड़ा खेद है। और इस बात से नन्ही जान बहुत चिढ़ गई, और स्वामी जी को मार डालने का षड्यन्त्र रचा गया।

२१. महर्षि दयानन्द के सत्यवक्ता और स्पष्टवक्ता होने के कारण उनको कई आपत्तियों का सामना करना पड़ता था, कई जगह से इनको निकाला गया, लाठियां चलाई गईं, जहर खिलाए गए, अपमान किये गये, परन्तु महर्षि ने सब कुछ सहा और लोक हित के लिए सत्योपदेश न छोड़ा, किसी ने ठीक कहा है–"ऐ रोशनीये तबा तू बर मन बलाशुदि" यही स्पष्टवादिता महाराज की जानलेवा साबित हुई।

८८. सैण्ट पाल

सैण्टपाल ईसामसीह का बहुत बड़ा श्रद्धालु शिष्य था और उसने

एक ईंजील भी बनाई है । परन्तु वह इंजील के प्रचार में असत्य का भी आश्रय लेना बुरा न समझता था । अतः जब किसी ने इससे पूछा कि आप इंजील के प्रचार में असत्य का आश्रय क्यों लेते हैं तो उसने कहा–For if the truth of god hath more abandoned through my lie unto his glory, why yet I also judged a sinner.

अर्थात्–यदि मेरे असत्य भाषण से प्रभु के सत्य की महिमा अधिक बढ़ती है तो इसमें मैं पापी क्यों कर हो सकता हूं ।

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज को कई बार उनके भक्तों ने कहा कि महाराज आप सत्य कहते हैं और स्पष्ट कह देते हैं जिससे कई भाई नाराज भी हो जाते हैं । यदि आप नीति से काम लें तो क्या अच्छा हो । तब महर्षि तत्क्षण कह दिया करते थे कि मैं सत्य का प्रचार असत्य से कदापि नहीं करूँगा, चाहे मुझे प्राण भी क्यों न त्यागने पड़ें ।

८९. सर एज़क न्यूटन

१. सर एज़क न्यूटन इंग्लैंड में पैदा हुए थे, एक दिन एक बाग में बैठे थे जिसमें सेब के वृक्षों पर सेब के फल लगे हुए थे । वे अपने ध्यान में मग्न थे कि एक सेब पेड़ से गिर कर पृथ्वी पर आ पड़ा । न्यूटन हैरान हो गया और विचार करने लगा कि सेब का फल पेड़ से गिर कर ऊपर की ओर क्यों नहीं गया । नीचे पृथ्वी पर क्यों आ गिरा, इसका क्या कारण है । अतः इस बात पर विचार करते हुए इन्हें इस बात का ज्ञान प्राप्त हुआ कि पृथ्वी के अन्दर आकर्षण शक्ति है । जो हर वस्तु को अपनी ओर आकर्षित करती है । अतः इस बात का निश्चय हो जाने पर उन्होंने (Law of gravitation) यानि पृथ्वी के अन्दर होने वाली आकर्षण शक्ति की घोषणा कर दी, और इसी एक अनुभव के कारण उनका नाम अमर हो गया। इसी प्रकार न्यूटन भी ऋषि था, क्योंकि उसने इस तत्त्व का दर्शन किया ।

९०. जार्ज स्टीफ़न्सन

जार्ज स्टीफ़न्सन भी इंग्लैंड में ही पैदा हुआ था । एक दिन केतली में चाय बनाने लगा और पानी को केतली में डाल कर आग पर रख दिया। केतली के ऊपर ढकना देकर आप किसी और ध्यान में लग गया। जब केतली

में आग की गर्मी से पानी उबलने लगा तो केतली का ढकना भाप के ज़ोर से ऊपर उठने लगा । इस पर स्टीफ़न्सन का ध्यान इस तरफ आकृष्ट हुआ। वह हैरान हो कर देखने लगा कि केतली के अन्दर से ढकने को कौन उठा रहा है । ज़्यादा गौर करने पर उसने मालूम किया कि केतली के अन्दर पानी से भाप बन जाने पर वह भाप अपनी ताकत से केतली का ढकना ऊपर ढकेल रही है । इस प्रकार विचार करते-करते उन्होंने भाप की इस ताकत को इस्तेमाल करने के अनुभव शुरू कर दिए । अन्त में इस भाप से रेलवे का इंजन बनाकर चलाने में कामयाब हो गया, और इस बात से वह भी अमर हो गया। ऐसी बातों को देखकर एक अंग्रेज शायर ने कहा है Little things are great for great men and great things are littlemen. अर्थात् छोटी-छोटी बातें बड़ों के लिए बड़ी होती हैं, और बड़ी-बड़ी बातें छोटों के लिए छोटी होती हैं ।

स्टीफ़न्सन भी ऋषि था, जिसने इस तत्त्व का दर्शन किया ।

और

महर्षि दयानन्द को भी इस प्रकार एक मामूली से दृश्य ने पलट दिया और वह छोटा सा दृश्य उनको भी अमर कर गया । अतः जब उनकी आयु १४ वर्ष की थी तो पिता जी के आग्रह करने पर शिवरात्रि पूजन का व्रत रखा और सारी रात जागरण करने के लिए पिता जी के साथ शिवालय में गये । गुजरात देश में शिवरात्रि की रात ४ पहर में ४ बार शिव जी की पूजा करनी होती है । जब दो बार पूजा हो चुकी तब स्वामी जी ने देखा कि पुजारी और सब भक्त लोग और उनके पिता जी भी सो गए । स्वामी जी ने यह सुन रखा था कि शिवरात्रि की सारी रात जाग कर पूजा करने का माहात्म्य है । अतः वह अपनी आंखों पर पानी के छींटे दे दे कर नींद को पीछे धकेलते रहे और अकेले ही जागते रहे । तब एक ऐसी घटना घटी जिसने उनके जीवन को ही पलट दिया । क्या देखते हैं कि एक चूहा बिल से निकला और शिव जी की पत्थर की मूर्ति पर उछल कूद करने लग गया और चढ़ावे की सब चीजें खानी शुरू कर दीं । उनके मन में यह बात बिठाई गई थी कि शिव त्रिशूलधारी बड़े बड़े राक्षसों को क्षण भर में मार डालते हैं । इसलिए उनके मन में विचार आया कि अभी शिव जी त्रिशूल लेकर नाचीज़ गुस्ताख़ चूहे को खत्म कर देंगे । परन्तु जब बहुत देर गुजर जाने पर भी वह चूहा

आज़ादी से विचरता रहा और शिव जी त्रिशूल लेकर न निकले तो बालक मूलशंकर के मन में शंका पैदा हुई कि जिस शिव जी की कथाएं मुझे सुनाई जाती थीं वे ये शिव नहीं हैं। यह तो पत्थर की मूर्ति ही है जो बेजान निर्जीव पड़ी है। उन्होंने अपने सोते हुए पिता जी को जगा कर इस शंका का समाधान चाहा, परन्तु उनके पिता उनको सन्तुष्ट न कर सके और इस छोटी सी घटना ने छोटे से बालक के अन्दर मूर्तिपूजा के लिए अश्रद्धा का बीज बो दिया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है-

शिव के सिर पर चढ़ गया चूहा मिठाई खा गया।
मूलशंकर को मगर इक बात वह बतला गया॥

१. क्या बात बतला गया कि पत्थर की मूर्ति शिव नहीं है, सच्चा शिव तो और ही है जिसकी खोज करनी चाहिए और वह इसकी खोज में शीघ्र ही घर से निकल खड़े हुए। और न केवल खुद ही सच्चे शिव के दर्शन किये बल्कि सारे संसार को सच्चे शिव के दर्शन करा दिए।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।

ऋ० १०। ७१। ७

आकार, रूप और रंग के भेद मनुष्यों के वास्तविक भेदक नहीं, वरन मन के वेग से ही मनुष्यों के तारतम्य का अन्तिम निश्चय हो सकता है। आंखों से देखकर और कानों से सुन कर जिन व्यक्तियों के हृदय पटल में विशेष प्रतिभामूलक भावों का संचार नहीं होता वे साधारण कोटि में पशु का ही जीवन निर्वाह करते हैं। परन्तु जो बाहिर के आवरण का छेदन कर वस्तु के वस्तुतत्त्व के दर्शन की लालसा से उत्तेजित हो, निरन्तर अन्तर्मुख रह सकते हैं, वे महापुरुष सर्वप्रकार से पूज्य और श्रेष्ठ होते हैं। जिस ओर वे अपनी मनोवृत्ति को प्रेरित करते हैं उसी ओर अप्रतिहत रूप से उनका मार्ग खुलता हुआ चला जाता है।

इन ऊपर के अर्थों में श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज सच्चे ऋषि हुए हैं। आरम्भ से ही उनकी बुद्धि सूक्ष्मता की ओर झुकी हुई थी। मूषिक क्रीड़ा मन्दिरों में बहुतों ने कई बार देखी होगी, परन्तु उसका यथार्थ प्रभाव मूलशंकर के प्रत्यग्र, कोमल, हृदय-अंकुर पर ही पड़ा। मृत्यु किस घर में नहीं हुई और कौन ऐसा सौभाग्यवान् है, जिसके देखते-देखते उसका कोई न कोई प्रेम-पात्र आन की आन में न चल बसा हो? परन्तु जो स्थिर परिणाम

पूज्य स्वामी दयानन्द को इस जीवनतत्त्व और मृत्यु-रहस्य की गवेषणा से उपलब्ध हुआ और जो शाश्वत सन्तोष और कठिन वैराग्य का आनन्द उन्होंने पाया, वह ऋषियों के ही भाग्य में आता है ।

९१. कार्ल मार्क्स

सोशल इज़्म के प्रचारक और कम्यूनिस्टों के गुरु का नाम कार्ल मार्क्स है । यह जर्मन देश में एक यहूदी खानदान में पिछली शताब्दी के पहले हिस्से में पैदा हुआ था । इसका एक साथी ईंजल था । दोनों पढ़े लिखे नौजवान थे । कार्ल मार्क्स डॉक्टर ऑफ फ़िलासफ़ी था । कार्ल मार्क्स ने अपने दोस्त की मदद से यूरोप के सामने वर्गवाद का सिद्धान्त रखा जिसका मतलब यह था कि सारी दौलत और ज़मीन समाज की मलकीयत हो । प्रत्येक आदमी अपनी शक्ति के अनुसार काम करे और मज़दूरी सब को बराबर मिले। इसके सामने केवल शरीर की समस्या थी क्योंकि वह नास्तिक था । आत्मा परमात्मा को नहीं मानता था । इसलिए वर्गवाद में आध्यात्मिकता के लिए कोई स्थान न था । इसके विचार में मनुष्य को यदि, रोटी, कपड़ा और मकान मिल जाये तो बस मनुष्य का उद्देश्य पूरा हो जाता है । क्योंकि अल्प बुद्धि मनुष्य था। इसलिए इसकी नजर शरीर को चलाने वाले आत्मा और जगत् के रचयिता परमेश्वर को न देख सकी । फिर उसकी दृष्टि में मनुष्य का शरीर ही पालन पोषण करने योग्य था । बाकी जीव-जन्तु पशु पक्षी भी इसकी नजरों से ओझल ही रहे । इसने समझ लिया कि मेरे इस सिद्धान्त के प्रचार से ही संसार स्वर्ग बन सकता है परन्तु जब इस सिद्धान्त को कर्म में प्रवृत्त किया गया तो एकदम फेल हो गया और जल्दी ही इसको छोड़कर करीबन-करीबन वैदिक सिद्धान्त अपनाना पड़ा । सन् १९१७ में ज़ार रूस और उसके सब परिवार को क्रेमलिन के महल में आधी रात को जगा कर गोली से उड़ा दिया गया तो राज्य-शक्ति कम्युनिस्टों के अधीन आ गई । और लेनिन हकूमत का सरपंच बना तो लेनिन ने कार्ल मार्क्स वाले सिद्धान्त को रूस देश में लागू कर दिया । जिसके अनुसार हर कारख़ाने में और हर सरकारी काम में पढ़े लिखे, अनपढ़, विद्वान्, मूर्ख सब एक ही लाठी से हांके जाने लगे । यानि सब को मज़दूरी एक ही जितनी मिलने लगी । परन्तु यह सिद्धान्त बहुत देर तक न चल सका । विद्वान् इञ्जीनियर, साईंसदानों ने जब यह देखा कि यहां तो अन्धेर नगरी चौपट राजा । टके सेर

भाजी टके सेर खाजा । वाला सिद्धान्त चलता है तो ये सब रूस के देश से भागने शुरू हो गये । और ऐसे देशों में जा बसे जहां उनकी विद्वत्ता की मान्यता थी । इतने में लेनिन मर गया और स्टालिन रूस का डिक्टेटर बना। उसने देखा कि विद्वान्, इञ्जीनियर, साईंसदान तो यहां से भाग रहे हैं । इस तरह पांच साला प्लान यकीनन फेल हो जायेगा तो उसने रूस में एक बड़ा सम्मेलन करके इस बात की घोषणा की कि सब को एक लाठी से हांकने वाला सिद्धान्त कर्म में प्रवृत्ति करने से फेल हो गया है । इसलिए अब हम प्रत्येक को उसके गुण, कर्म, अनुसार वेतन दिया करेंगे । और इस तरह कार्ल मार्क्स के इस सिद्धान्त की कबर स्वयम् उसके चेलों के हाथों, केवल दो तीन वर्ष के अनुभव से ही तैयार कर दी गई । और इस सिद्धान्त को इसमें दफ़ना दिया गया । तब जो विद्वान् इञ्जीनियर साईंसदान रूस से चले गये थे वापस आने शुरू हो गये । क्योंकि रूस में मज़दूरी का अन्तर इस प्रकार कर दिया कि ४५ रोबल (रूसी सिक्के का नाम) से लेकर १५०० रोबल महावार योग्यतानुसार विषमता हो गई । फ़िल्मस्टार और लेखक इस से भी अधिक कमा लेते थे । और श्रेणी रहित समाज की जगह, समाज में चार श्रेणियां कायम की गईं । जो लगभग वैदिक वर्ण-व्यवस्था के अनुकूल ही थीं ।

(१) वर्गवादी कम्यूनिस्ट जिनके हाथ में हकूमत थी, 'क्षत्रीय' (२) शारीरिक परिश्रम करनेवाले 'शूद्र' (३) किसानों के चार वर्ग । (४) व्यापारियों के चार वर्ग (५) विद्वान्, साईंसदान, इञ्जीनियरों का एक वर्ग ।

कार्ल मार्क्स का दूसरा सिद्धान्त यह था कि किसी की निजी सम्पत्ति न हो कर सब सम्पत्ति समाज के अधीन होवे । परन्तु क्रियात्मक रूप में जब यह सिद्धान्त भी बोदा साबित हुआ तो सन् १९३७ में रूस में एक कानून बनाया गया कि हर एक को अपनी निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार होगा और सरकार हर एक की निजी सम्पत्ति की रक्षा करेगी । इस प्रकार कार्ल मार्क्स का दूसरा सिद्धान्त भी त्याग दिया गया । तनिक सोचिये तो सही रोटी कपड़ा और मकान मिल जाने से ही मनुष्य की तृप्ति हो सकती तो यह सब चीजें तो हर एक जेल खाना में सरकार की ओर से हर कैदी को मिलती ही हैं परन्तु आप किसी कंगले से कंगले फ़कीर को जो पैसा मांगता फिरता है यह कहें कि आप को जेल भेज देते हैं, वहाँ रोज रोज के मांगने से तुम्हारा छुटकारा भी हो जायेगा और रोटी कपड़े और मकान की समस्या भी तुम्हारी

हल हो जावेगी तो शायद आपको एक भी आदमी जेल जाने को न मिल सके । इसी एक बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य की तृप्ति केवल रोटी कपड़े और मकान से ही नहीं हो सकती । इसको और भी किसी चीज़ की तलाश है । जिसके लिए वह दिन रात भटकता रहता है और वह है सच्चा आनन्द । स्टालिन ने रूस के अन्दर कम्यूनिज़्म का प्रचार करने के लिए कितना खून खराबा किया, वह मिस्टर आर्थर कोरस्टा को किताब Darkness at noon (दोपहर में अन्धेरा) में लिखा है कि स्टालिन ने ३१ लाट पादरी, २८५७५ वकील और जज, ७९३७९ कानूनी अफसर, १६३३७ प्रोफेसर और विद्यार्थी, ९५८९० अमीर वा रईस, तीन लाख राजनैतिक कार्यकर्ता । छ: लाख किसान कत्ल करा दिये । ५००० गिर्जे गिरा दिये । ढाई लाख रूसी बाहर चले गये ।

३. रूस में एक बार खुदा का जनाज़ा निकाला गया । जलूस बना कर हज़ारों कम्यूनिस्ट इस जनाज़े के साथ थे, जब स्टालिन को इस बात का पता लगा तो उसने जनाज़ा निकालने वालों को कहा—कि ज़रा खुदा को गहरा दबाना ताकि वह फिर बाहर न निकल आये और जिस तरह कम्यूनिज़म के उपरोक्त सिद्धान्तों का खुद स्टालिन ने ही जनाज़ह निकाला । इसी तरह गहरे दबाए हुए खुदा की याद भी आ गई । किसी ने ठीक कहा है—

जब रंज दिया बुतों ने तो खुदा याद आया ।

"जब हिटलर की फौजें रूस पर ताबड़ तोड़ हमले करके फ़तह हासिल कर रही थीं तो उसी स्टालिन ने जिसने खुदा को गहरा दबाने की आज्ञा दी थी अपने थूके हुए को चाटा और रूस की स्त्रियों से अपील की कि वह अपने पुत्रों की रक्षा के लिए परमात्मा से प्रार्थनाएं करें" ।

४. फ्रांस के कुछ एक वर्गवादी यानि कम्यूनिस्टों ने एक समय विवाह करना छोड़ दिया । उन्होंने विवाह करना तो छोड़ दिया परन्तु विवाह सम्बन्धी गृहस्थ कर्म की स्वाभाविक गति प्रगति को रोकने में असमर्थ रहे और इस तरह बिना विवाह के पशुओं की भांति मैथुन करते हुए जो बच्चे पैदा हुए उनके पालन पोषण की ज़िम्मेदारी स्त्री पुरुष दोनों ने लेने से इन्कार कर दिया। तब ऐसे बच्चों को नष्ट कर देने के उद्देश्य से फ्रांस में सन् १९१४ से पहले भट्टियां बनाई गईं । इन भट्टियों के स्वामी निश्चित फ़ीस ले कर ऐसे बच्चों को जला दिया करते थे । एक ऐसी ही भट्टी वाली स्त्री पकड़ी गई । इसका

हिसाब देखने से पता चला कि गिरफ़्तारी के समय ऐसे तीन बच्चों को वह जला चुकी है। इस प्रकार विवाह न करने और बच्चों के नष्ट करने से संख्या कम होने लगी। तब फ्रांस सरकार ने उन लोगों पर जो सन्तान पैदा कर सकते थे। सन्तान न पैदा करने का टैक्स लगा दिया और मार्शल फायान ने जो सन् १९१४ से १९१८ की जंग में फ्रांस का प्रधान था। खुले आम इस बात को स्वीकार किया था कि जर्मनी के हाथों फ्रांस की शिकस्त के यह ही दो कारण हैं कि नौजवान स्त्री पुरुष इस प्रकार अपनी वासना पूरी करते रहे परन्तु सन्तान पैदा न करते रहे। यह था वर्गवाद और कम्यूनिस्ट के घिनावने सिद्धान्त का घृणित परिणाम।

१२. डारवन

कार्ल मार्क्स के वर्गवाद के सिद्धान्त के अतिरिक्त यूरोप में डारवन का भी एक सिद्धान्त चालू है, जिसके तीन अंग हैं।

(१) योग्यतम का जीवित रहना Survival of the fittest.

(२) निर्बलों का रसातल को चला जाना। The weaker must go to the down.

(३) जीवन के लिए स्वार्थपूर्ण संघर्ष करना। The selfish struggle for existence.

इस अर्ध सच्चाई ने मनुष्य को पशु बना दिया। और लोगों के अन्दर स्वार्थ की भावना भर दी। इसके लिए उदाहरण दिये जाते कि जैसे बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है। इसी प्रकार कमज़ोर मनुष्य को जीने का कोई हक नहीं। परन्तु यह न सोचा कि ऐसे संघर्ष से वह स्वयं भी जीवित नहीं रह सकते। निम्नलिखित दृष्टान्त से इस सिद्धान्त की निर्मूलता भी सिद्ध होती है। कल्पना करो कि एक तालाब में १०० मछलियां हैं और इस नियम की भांति पहले सब से कमज़ोर मछली बलवान् मछलियों की खुराक बनेगी। इस के बाद फिर कमज़ोर मछली की वारी आवेगी। और इसके बाद दूसरी कमज़ोर मछली की वारी आवेगी। और इसके बाद तीसरी कमज़ोर मछली की. यह काम जारी रहने पर आख़िर में केवल एक मछली ही सब से बलवान् बाकी रह जावेगी और वह भूख से तड़प कर मर जावेगी। क्योंकि अब उसके पास और कमजोर मछली खाने के लिए नहीं है। इस प्रकार डारवन का यह मछली सिद्धान्त भी थोथा प्रतीत होता है। और इस सिद्धान्त ने यूरोप

की जातियों को कमज़ोर जातियों पर आक्रमण करने और उनको हर प्रकार के सुख सम्पत्ति से वंचित करके उनको गुलाम बनाने पर उतारू किया ।

स्वामी दयानन्द प्रचारित वैदिक समाजवाद

कार्ल मार्क्स के समाज़वाद की परख की गई परन्तु वह पांच वर्ष तक भी उस रूप में न चल सका, जिसमें वह चलाना चाहता था । जिस को कामयाब करने के लिए स्टालिन ने बेगुनाहों का खून किया । अब आपको वैदिक समाजवाद का दर्शन कराते हैं । जो पौने दो अरब वर्ष तक संसार में शान्ति कायम रखे रहा और जिसका पुनर् उद्धार महर्षि दयानन्द जी ने किया। अगरचे कार्ल मार्क्स की हार्दिक इच्छा संसार में शान्ति स्थापन करने की ही थी, परन्तु अल्प बुद्धि होने से और वेद का ज्ञान न होने से , वह इसमें असफल रहा परन्तु वेद का सिद्धान्त ऐसे ही अटल है, जैसे कि सूर्य की चाल अटल है ।

वैदिक सोशलइज़्म के लिए सब से पहले ऋग्वेद ५।६०।५ का मन्त्र है–

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता त्वा रुद्र एषां सुदुघा, पृथिवी सुदिना मरुद्भ्यः ॥

अर्थात्–सब मनुष्य (बिना लिहाज़ रंग नस्ल जाति और देश के एक जैसे भाई भाई हैं । उन में कोई बड़ा नहीं कोई छोटा नहीं। वे सब मिलकर सौभाग्य की उन्नति के लिए यत्नशील हों । उन सब का पिता शक्तिसम्पन्न, सर्वरक्षक, सब को मर्यादा में रखने वाला परमेश्वर और अनेक प्रकार के धन वा मान्य देने वाली पृथ्वी, उनकी माता है । यानि समस्त पृथ्वी के मानव एक परिवार रूप हैं । जिनका मां बाप एक ही है और जिनमें बड़ाई छोटाई का कोई भेद नहीं । इससे उत्तम कोई समाजवाद का क्या स्पष्टीकरण कर सकेगा । और आप यह सुनकर हैरान होंगे कि जहां कार्ल मार्क्स जैसे लोग इस मन्त्र की सच्चाई को अनुभव कर समाजवाद में समता का प्रचार कर गये । वहां अमरीका जैसे धनाढ्य और प्रजातन्त्रवादी देश ने भी, इसी मन्त्र को अपना लक्ष्य बनाया । जब अमरीका के लोगों ने जंग करके अंग्रेजों की गुलामी के जूए को उतार फेंका तो अमरीका के इन बुजुर्गों ने इसी वेद मन्त्र का प्रत्येक शब्द अंग्रेजी में तर्जुमा करके अपने देश की आज़ादी की बुनियाद में रखा । गोया रूस और अमरीका जो इस समय दो विपरीत कैम्पों में बंटे

होने से दुनिया में अमन कायम नहीं कर सके । इस वेद मन्त्र के अभिप्राय को दोनों ही स्वीकार कर रहे हैं । ये है वेदज्ञान के ईश्वरीय होने का उज्ज्वल उदाहरण कि दुनिया से सब लोग वेदानुयायी ही बनने की कोशिश कर रहे हैं । और जब यह कोशिश पूर्ण रूप से सफल हो गई । संसार में अमन की बांसुरी बजने लग जायेगी ।

The revolution began in 1775 when a group of 13 English colonies revolted against the mother country and the year later their independence.

The founder fathers said :

"we hold these truths to be self evident that all men are created equal, that they are endowed by their creator with certain unalienable rights, that among these sre life, liberty and pursuit of happness".

Again in the independence charter of U. S. A. it is written—

"The American experience has shown that democracy is a way of life and a system of government by which men can co-operativly build a strong structure providing a high standrad of living for the citizens and at the same time preserve the right and dignity of the individual."

अमरीका का विधान भी वेद के इस मन्त्र को स्वतः प्रमाण स्वीकार कर रहा है जैसे नीचे लकीर खींचे अंग्रेजी के शब्दों से जाहिर होता है ।

अब आप शंका कर सकते हैं कि जब वेद के अनुसार कार्ल मार्क्स ने समता का प्रचार किया कि सब समान हैं और सब के समान अधिकार हैं और फिर तजुरबा अमल में लाए जाने के पांच वर्ष के अन्दर-अन्दर ही फेल हो गया तो गोया वेद की वाणी नाकाबल अमल ठहरती है । इसका जवाब भी वेद ही देता है जो कार्ल मार्क्स जैसे तुच्छ बुद्धि वाले इन्सान की अल्प बुद्धि में न आया और फिर तजुर्बा करने वाले वेद की ही शरण में आये ।

ऋग्वेद १०।२२६।९ में भगवान् उपदेश करते हैं कि—

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः, संमातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि, ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥

अर्थात् मनुष्य के दोनों हाथ बराबर शक्ति वाले नहीं होते । एक गाय की दो बछड़ियां बराबर दूध देने वाली नहीं । एक माता के दो पुत्र जो एक साथ ही पैदा हुए हों बराबर शक्ति वाले नहीं होते । एक समाज में एक ही Status वाले दो व्यक्ति बराबर दान देने वाले नहीं होते ।

इस वेद मन्त्र के आधार पर किसी फ़ारसी के कवि ने भी कहा है–

न हर ज़न ज़न अस्तो न हर मर्द मर्द ।
खुदा पंज अंगुश्त यकसां न करद ॥

अर्थात्–हर औरत-औरत नहीं होती, हर मर्द-मर्द नहीं होता, परमात्मा ने किसी की पांचों अंगुलियां बराबर नहीं बनाईं । इसी आधार पर पंजाबी में लोकोक्ति है ।

माँ ने जाय सत पुत्तर, ते कर्म न दित्ते वण्ड ।

फ़िर अथर्ववेद १२।१।४२ में लिखा है कि मनुष्यों की हर किस्म की शक्तियों में विभिन्नता होने के बावजूद भी क्या करना चाहिए । पृथ्वी तब मनुष्यों की रक्षा करती है जब वह अनेक भाषाओं और अनेक धर्मों के होने पर भी (इस पृथ्वी पर इस प्रकार मिलकर रहते हैं) जैसे एक घर में घरवाले मिलकर रहते हैं । इस वक्त पृथ्वी धन की सहस्र धाराएं उसी प्रकार दिया करती हैं, जैसे गौएं निश्चित रीति से दूध की अनेक धाराएं दिया करती हैं । गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है–

तुलसी इस संसार में भांत भांत के लोग ।
सब से रल मिल बैठिये नदी नाव संयोग ॥
तुलसी इस संसार में सब से मिलिये धाय ।
न जाने किस भेष में नारायण मिल जाय ॥

और फिर इन वेद के मन्त्रों में अगर किसी की समझ में न आने वाली कोई अड़चन हो तो वेद भगवान् ने इन दोनों उपदेशों को एक और उपदेश देकर Reconcile कर दिया है और वह है वर्ण-व्यवस्था का मूल वेद मन्त्र। यजुर्वेद ३१।११, ३१।१०

ब्राह्मणो अस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

अर्थात् जो मनुष्य समाज में ऐसे हैं, जैसे मनुष्य के शरीर में मुख, यानि मुख जैसे गर्दन से ऊपर के हिस्सा में सब ज्ञान इन्द्रियां हैं। इसी प्रकार मनुष्य समाज में ज्ञानवान् होकर ज्ञान का दान करे, प्रसार करे। विद्वान् हो कर विद्या पढ़ाये, उसको ब्राह्मण कहो। जो समाज की रक्षा में तत्पर है, जैसे मनुष्य शरीर की रक्षा में हाथ तत्पर रहते हैं, उसको क्षत्रिय कहो। जो समाज में खेतीबाड़ी, पशु-पालन वा व्यापार करे, जैसे कि पेट में सब कुछ इकट्ठा हो कर शरीर के सब अंगों को उनका भाग खाई हुई खुराक में से बराबर मिलता है, उसको वैश्य कहो और जो केवल भार ही उठा सकता है तो जैसे पांव शरीर का भार उठाये फिरते हैं, उसको शूद्र कहो।

गोया यह Division of Labour है जो वेद ने बयान करके दोनों मन्त्रों को एक जगह पर रख संसार को अमन से रहने का उपदेश दे दिया है। और कम व अधिक सब संसार में Division of Labour इसी प्रकार से चलती आई हैं। अब भी चलती है, आगे भी चलती रहेगी। जहां जहां और जिस वक्त मनुष्य अपनी अकल को बड़ा समझकर इस (डिविजन आफ़ लेबर) में टांग अड़ा कर उसको ख़राब करने की कोशिश करेंगे। वहीं अशान्ति दुःख और सन्ताप पैदा हो जायेगा। रूस में कार्ल मार्क्स का श्रेणी रहित समाज का असूल फ़ेल हो गया और फिर वहां भी अनायास ही श्रेणीबद्ध समाज बनाने की योजना बनानी पड़ी। क्योंकि वेद ज्ञान से मुनकिर होने की किसी में शक्ति नहीं है।

इस वेद मन्त्र को फ़ारसी के प्रसिद्ध कवि शेख़ सादी ने इस प्रकार बयान किया है—

बनी आदम आज़ाये यक दीगरंद,
के दरआफ़रीनश ज़े यक ज़ोहरंद।
चूं उज़वे वदर्द आवरद रोज़गार,
दिगर उज़वाहा रा न मानद करार॥

अर्थात् समस्त मनुष्य एक दूसरे के अंग हैं। एक अंग दर्द करे तो बाकी सारे अंग जिस्म के दुःखी होते हैं।

सच्चा और सुच्चा सोशल इज़म जो वेद के उपरोक्त मन्त्रों और निम्नलिखित वेद मन्त्रों में उपदेश किया गया है। इससे बेहतर कोई आज तक बता नहीं सका। हाँ अपनी अल्प बुद्धि से इसको दूषित कर रहे हैं।

जिससे संसार में खून ख़राबा होता चला आया है और दुनिया जग का अखाड़ा बन रही है ।

हमारे वैदिक धर्म का शुद्ध सांस्कृतिक स्वरूप तो हमारे इस वैदिक सन्देश में भरा पड़ा है कि–

१– यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति ॥

२– यस्य सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूत् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

संसार के सब देशों के सब प्राणधारी मेरे आत्मा में मेरे अनुकूल ही हैं और सर्वत्र एक आत्म तत्त्व का निवास देखने वाला सब प्रकार के संशयों से मुक्त हो जाता है । सारा विश्व मेरा निजी बन्धु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' जिस पुरुष को भगवान् की कृपा से यह भान हो गया कि मेरा परिवार एक छोटे से तंग मकान तक ही परिमित नहीं अपितु सारी पृथ्वी के नर नारी ही नहीं पशु-पक्षी तक मेरे अपने पारिवारिक जन हैं । उसमें काले और गोरे का छूत और अछूत का ब्राह्मण और क्षत्रिय का और धनी व कंगाल का फिर भेद भाव कहां ? हम ऐसी उत्तम संस्कृति के कोष भण्डार रखते हुए भी आज दीवालिए बन गए और पतन के धरातल को पहुँच गए । हमारी सांस्कृतिक विचारधारा और हमारे क्रियात्मक चलन में कितना पृथ्वी पाताल का अन्तर है ? अस्तु । आज हमें कौन साम्यवाद की शिक्षा देने का साहस कर सकता है । हम तो स्वयं साम्यवादियों के परमगुरु रह चुके हैं ।

हमारी Joint Hindu Family System (सम्मिलित हिन्दु प्रणाली) क्या परस्पर सहकारिता और सहयोग Co-operative System के आदर्श प्रतीक न थी । जैसे हिरण की अपनी नाभि में कस्तूरी होती है परन्तु वह उसकी सुगन्धि से सुरभित हो कर उसे पाने के लिए बाहर को दौड़ता है, ठीक हमारी अवस्था भी वैसी ही बन रही है । सहकारिता का मूल-मन्त्र हमने वेद में पढ़ा, जब इसने गाया–

सहृदयं सांमनस्यम् अविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्याः ॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चः सव्रताः भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥

वेद ने कहा ! तुम "वन्दे मातरम्" गान करते हो । मातृभूमि जननी व माता की पूजा करो परन्तु आज "वन्दे मातरम्" गाने वाला युग आ गया है । आज परमेश्वर पिता और पृथ्वी माता के हम सब पुत्र परस्पर भाई बहिन के तुल्य हैं । हमें आज एक दूसरे से ऐसा प्यार करना है जैसे गौ नये उत्पन्न हुए बछड़े को चाट चुम्बन करके स्नेह प्रदर्शन करती है । वेद कहता है-

अज्येष्ठासोऽकनिष्ठासः सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।

हम सब प्रभु की सन्तान एक दूसरे के भाई हैं । हम में न कोई बड़ा है और न कोई छोटा है । फिर वेद में आया "समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः"। हम सब के खाने व पीने का स्थान व भाग एक जैसा हो । हमारे अन्दर आर्थिक समानता की भावनाएँ जागृत हों । हमें वेद का सन्देश मिला "संगच्छध्वम् संवदध्वम्" तुम्हारा गीत और तुम्हारी वाणी एक सरीखी हो । "समानो मन्त्रः समितिः समानी" तुम्हारी सभा समितियां एक समान हों और उन सब में विचारों की एकता और सामंजस्य हो । इसी प्रकार "समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः" तुम्हारे हृदय के संकल्प एक से हों और तुम्हारे हृदयों का मिलन संसार के लिए अनुकरणीय आदर्श हो । हमारे वैदिक ऋषि जिन्होंने जीवन के चार लक्ष्यों "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष" में से "धन से धर्म" "अर्थस्य मूलम् धर्मः" धर्म को विशेष प्रधानता दी थी, वह अर्थ के विषमता पूर्ण बंटवारे को कैसे बरदाश्त कर सकते थे वह तो "सर्वे भवन्तु सुखिनः" सब लोगों को सुखी बनाने की प्रार्थना करते थे और "सर्वभूतहिते रताः" और समस्त मनुष्यों और प्राणियों के हितों की रक्षा में एक रस रत रहने वाले थे । उन्होंने तो दान शब्द की व्याख्या की तो कहा "दानं समविभागः" दान उसे कहते हैं जिसमें सब को एक सरीखा धन का भाग प्राप्त हो सके। धन, भूमि आदि सम्पत्ति के बंटवारे के इस सिद्धान्त का श्री गांधी जी अथवा विनोबा जी ने नया आविष्कार नहीं किया यह तो वैदिक धर्म की वर्ण-व्यवस्था और आश्रम मर्यादा के मूल-भूत सिद्धान्तों में से एक था । जहाँ गुरुकुल में राजा और रंक के सुपुत्र-सुदामा और कृष्ण दोनों एक सरीखा भोजन और एक सरीखे वस्त्र, एक सरीखा छात्रावास और एक सरीखी शिक्षा प्राप्त करते थे । हमारे शास्त्रकारों ने तो Co-operation संगतिकरण सहयोग के प्रचार को ही 'यज्ञ' का नाम दिया था और परमेश्वर ने सब प्रजाओं को उत्पन्न कर के यह आदेश दिया कि हे मनुष्यो! मैंने तुम्हें 'यज्ञ के साथ' अर्थात् परस्पर सहयोग की दीक्षा दे कर मानव जन्म

दिया है । इस सिद्धान्त का पालन करके तुम संसार में समृद्धि और ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकते हो । गीता का प्रमाण है ।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वम् एष वोऽस्तु इष्टकामधुक् ॥

गीता में स्पष्ट कहा कि परस्पर सहयोग अथवा यज्ञ से तुम मुंह मांगी मुरादें पा सकते हो और जो आदमी अकेले खाते हैं ऋग्वेद ने उनके बारे में कहा–'केवलाघो भवति हि केवलादी' अकेला खाने वाला पाप खाता है ।" गीता में भी इसी भाव को प्रदर्शित किया गया 'भुञ्जते तेतु अघं पापा ये पचन्ति आत्मकारणात् ।' निश्चय से केवल अपने लिए ही अन्न पकाने वाले स्वार्थी पाप खाते हैं । इस यज्ञ की महिमा में माता-पिता, गुरु आचार्य कुल पुरोहित की पूजा 'पितृयज्ञ' से, संन्यासी महात्मा विद्वानों का सत्कार 'अतिथि यज्ञ' से और अपने घर के गौ कुत्ते कव्वे तक की सेवा 'भूतयज्ञ' से करने का विधान यज्ञ द्वारा धन के बंटवारे का उपदेश करता है । शास्त्र ने लिखा जो लोग धन को बांट कर खाते हैं वे यज्ञमय पुरुष सब पापों और कष्टों से रहित हो जाते हैं । हमारे नीतिकारों ने भी लिखा है–

धर्माय यशसे कामाय स्वजनाय परहिताय च ।
पञ्चधा विभजन् वित्तम् इहामुत्र च मोदयत ॥

जो लोग धर्म, यश-कामना व बन्धुवर्ग और परोपकार में धन सदुपयोग करते हैं वे इस लोक और परलोक दोनों में सुख को पाते हैं । और भी बृहस्पति नीति में कहा गया है–

सभा प्रपा देवगृहं तडागारामसंस्कृतिः ।
तथा अनाथदरिद्राणाम् संरक्षणं याजनक्रियाः ॥
समर्थैस्तु पालनीयाः सर्वे, यः समर्थस्तु संवदेत् ।
तस्य सर्वस्वहरणं दण्डः निर्वासनं पुरात् ॥

धनी पुरुषों का धर्म है कि वह सार्वजनिक हित के लिए सभा भवन, विद्यालय मन्दिर, कूआं, तालाब, बाग आदि और अनाथ विधवा आदि पीड़ितों की रक्षा और बड़ी-बड़ी राष्ट्र हित की इंजीनियरिंग की योजनाओं के लिए धन देवें और जो धनी लोग ऐसा आर्थिक सहयोग देने से इन्कार करें राजा उसका समस्त धन छीन लेवे अर्थात् ज़प्त कर लेवे और ऐसे देशद्रोही स्वार्थी

को अपने देश से निर्वासित कर देवे । फिर लिखा है कि–

यावद्भ्रियते उदरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ।
तदूर्ध्वम् योऽभिमन्येत सः स्तेनः दण्डमर्हति ॥

जो धनी सार्वजनिक हितों के लिए अपने धन का प्रयोग नहीं करता वह समाज का चोर है और राज्य दण्ड का पात्र अपराधी है । प्रत्येक को पेट भरने मात्र, प्राचीन ब्राह्मणों को भांति 'कुम्भी-धान्य' आवश्यकतानुसार धन का भण्डार करना चाहिए । वैदिक साम्यवाद और आर्थिक सहयोग की ऐसी शिक्षा देने वाली संस्कृति वाले राष्ट्र को रूस का झूठा और कै किया हुआ विचार खाने की विशेष आवश्यकता नहीं ।

४. वैदिक वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था ही है जो संसार में बेरोज़गारी नहीं होने देती । जिस बेरोजगारी से सारा संसार इस समय तंग आ रहा है । इसका हल आश्रम-व्यवस्था से किया गया है यानि रोज़गार धन्धा करना और कमाना केवल गृहस्थ आश्रम में ही है । अतः दुनिया की १/४ आबादी कमाये और बाकी ३/४ खाये । तब बेरोज़गारी का सवाल ही नहीं पैदा हो सकता है । ब्रह्मचर्याश्रम में विद्या पढ़ें । न कोई विद्यार्थी फ़ीस देवे, न कोई गुरु वेतन लेवे । क्योंकि जो वानप्रस्थी होते थे, वे गुरु का कार्य बिना वेतन के करते थे । विद्यार्थी और गुरु केवल रोटी कपड़ा वह भी सादा और मामूली लेकर निर्वाह करते थे । जो कि गृहस्थी उन्हें दे दिया करते थे और चौथा आश्रम संन्यास है जो कि विद्यालयों के और दूसरी संस्थाओं के इन्स्पैक्टर के तौर पर होते थे और हर जगह Surprise Visit करके, सब संस्थाओं को नियम पूर्वक चलाने में सहायक बनते थे और ये गुरु भी केवल मामूली रोटी कपड़ा ले कर गुजारा करते और दौरा सुपुर्द रहते थे । मनुस्मृति में संन्यासी को तीन रात्रि से अधिक एक जगह ठहरने का विधान नहीं है और फिर उनको अतिथि भी कहते थे । क्योंकि उनके आने की कोई तिथि निश्चित नहीं होती थी, बल्कि अकस्मात् ही वे किसी जगह आ सकते थे और सब संस्थाओं की जांच पड़ताल कर सकते थे ।

चूंकि हर विद्या के माहर और तजुरबाकार हो कर ही संन्यासी बनते थे । इसलिए सब राज्य कार्य और समष्टि गत अथवा व्यक्तिगत, देख भाल उनके जिम्मे होती थी, किसी भी दुःख का डाक्टर नुस्खा लिखे तो जब तक उसका अनुपात न हो, वह दवाई लाभ नहीं कर सकती, अब दुनिया के अन्दर

जो दु:ख है उसका वेद ने समाजवाद बनाने का नुसखा लिखा और यूरोप के विद्वान् भी इसी समाजवाद को संसार के दु:खों का सही इलाज समझते हैं। और कार्ल मार्क्स ने भी यही समझा और नुस्खा लिखा और इसका प्रचार किया । परन्तु इसका अनुपान सिवाय वैदिक ऋषियों के यूरोपियन विद्वानों की समझ में नहीं आया । अत: कार्ल मार्क्स ने तो इस नुस्खा के अनुपान में यहां तक लिख दिया कि खून ख़राबा करके राज्य-शक्ति को प्राप्त कर राज्य-शक्ति के ज़ोर से समाजवाद चलाया जावे । परन्तु इतना बड़ा खून ख़राबा करने पर भी कार्ल मार्क्स का सोशलइज़्म अमली तौर पर फ़ेल हो गया । चलाना तो वही पड़ा जो करीबन-करीबन वेदानुकूल था । परन्तु सोलह आना सही तौर पर सोशलइज़्म चलाने का तरीका महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में इस तरह लिखा है "कि पांच वर्ष से आठ वर्ष की आयु के सब लड़के और लड़कियां अपनी-अपनी पाठशाला में चली जावें। जो पाठशालाएं गांव नगर से करीबन ४ कोस के फासला पर हों । और इसमें सब को एक जैसे कपड़े, खाना, पीना, विस्तर, आसन दिये जायें । चाहे राजकुमारी या राजकुमार क्यों न हों । चाहे गरीब चाहे अमीर की सन्तान हों। सब को तपस्वी होना चाहिये ।' यह है सही तरीका जिससे सही सोशलइज़्म पनप सकता है । वरना कह देने से कि सब को एक जैसा उन्नति का मौका दिया जावेगा, सोशलइज़्म नहीं बन सकता । शुरू की तालीम से ही इस तरह रहन सहन और विचार बनाये जावें । तब बड़ी आयु में ये परिपक्व हो सकते हैं अथवा आजकल के तालीमी सिस्टम में सोशलइज़्म नहीं पनप सकेगा । चाहे लाख यत्न किया जावे । क्योंकि यत्न भी तो वही सफल हो सकता है जो सही तरीके से किया जावे । वरना व्यर्थ ही हो जाता है ।

किसानों और मजदूरों के मुतल्लिक महर्षि का अपना विचार कार्ल मार्क्स या किसी दीगर समाजवादी से बढ़कर ही है कम नहीं । महर्षि लिखते हैं—यह बात ठीक ही है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करने वाले हैं और राजा इनका रक्षक है । अत: संसार का कल्याण वेद मार्ग के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं कर सकता ।

सोशलइज़्म के फ़लसफे को महर्षि ने आर्यसमाज के नौवें नियम में बयान करके समुद्र को कूज़े में बन्द कर दिया है कि "प्रत्येक को अपनी ही उन्नति मे सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति
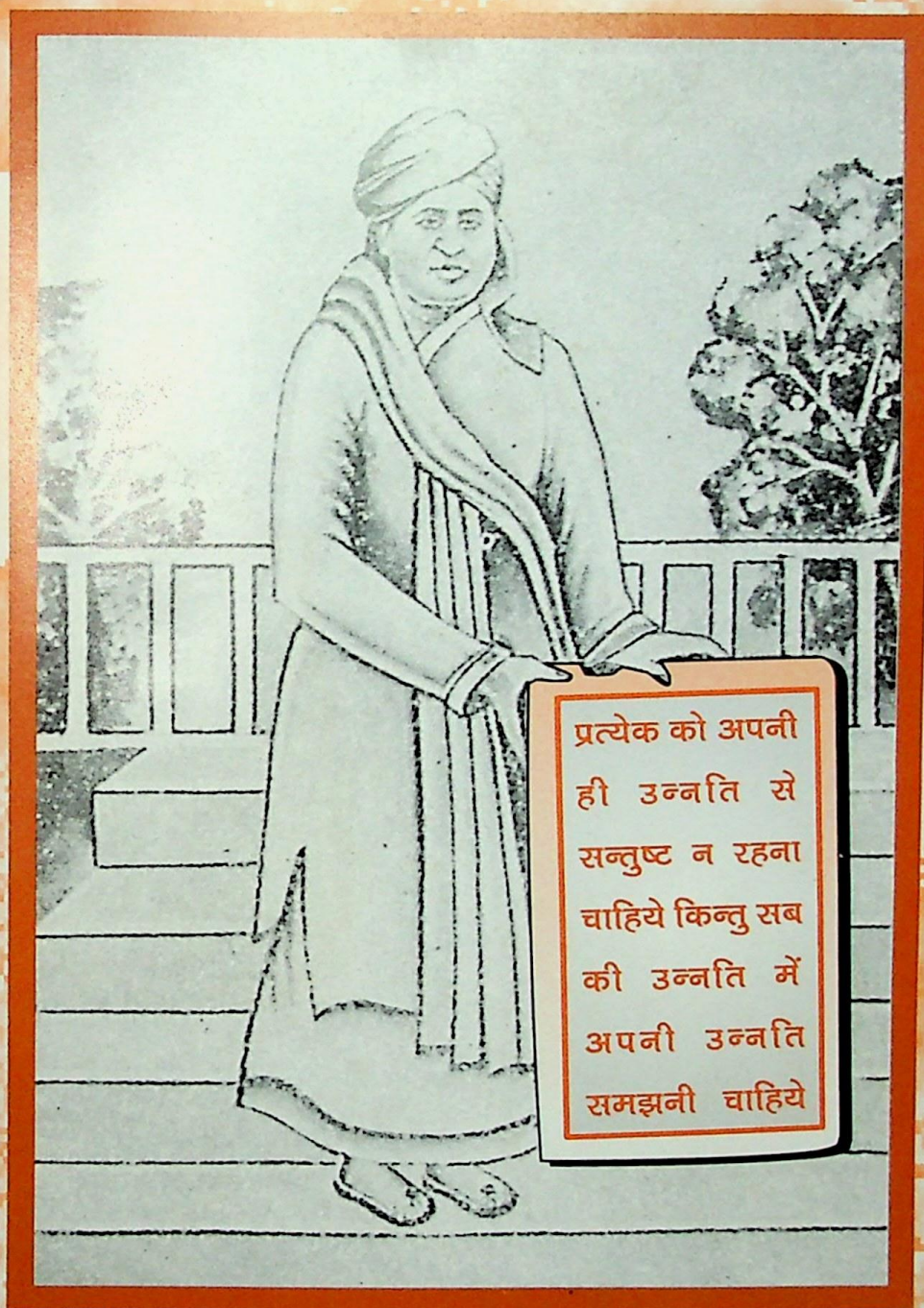
महर्षि दयानन्द सरस्वती
सच्चे और स्वच्छ वैदिक समाजवाद
का प्रचारक

समझनी चाहिये"।

बोलो वैदिक धर्म की जय ।

९३. इटली का जोज़फ़ मेज़नी

१. इटली को गुलामी से नजात दिलाने वाला महापुरुष जोज़फ़ मेज़नी बाल ब्रह्मचारी था । बड़ा विद्वान् था, उसकी वाणी में जादू था, लैक्चर देता था तो सुनने वाले मोहित हो जाते थे, इसकी तहरीर में बिजली चमकती थी। इसने एक किताब मनुष्य धर्म की व्याख्या में लिखी, जो बिल्कुल वैदिक सिद्धान्तों के अनुकूल थी । ईश्वर–विश्वासी, ईश्वर–भक्त था, आत्मा को अमर मानता था, पुनर्जन्म मानने वाला था । एक दिन उसके एक भक्त ने पूछा कि आपके मन में कभी कामवासना पैदा हुई या नहीं हुई तो उसने जवाब दिया कि मेरे पास समय ही नहीं जो ऐसी बात भी सोच सकूं । ईश्वर सर्वव्यापक है इसलिए उनका वेद ज्ञान भी सर्वव्यापक है । सारे संसार में जहां कोई चाहे वैदिक सिद्धान्तों को उपलब्ध कर सकता है । इसलिए अगर इटली के महापुरुष मेज़नी ने वैदिक सिद्धान्त जाने और माने तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

और

१. इसी तरह महर्षि दयानन्द जी भी बाल ब्रह्मचारी थे, महर्षि की वाणी में भी जादू था, व्याख्यान देते थे तो हजारों श्रोतागण मुग्ध हो जाते थे । महर्षि के कलम में भी बिजली चमकती थी, और सत्यार्थप्रकाश जैसा अमर ग्रन्थ रचकर महर्षि ने तहलका मचा दिया । वैदिक धर्म के समस्त सिद्धान्तों के पूर्ण विश्वासी और उनके उत्कृष्ट प्रचारक थे ।

महर्षि जब बंगाल में प्रचारार्थ पधारे तो ख्यातनामा साधक अश्विनी–कुमारदत्त भी उनके प्रचार में आया करते थे । एक दिन एकान्त पाकर दत्त महाशय ने महर्षि से प्रश्न किया–'क्या आप को काम ने कभी नहीं सताया'? महर्षि ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया–'स्मरण नहीं पड़ता'। इस उत्तर को सुनकर दत्त महोदय ने फिर कहा–क्या आप हाड़ मांस के बने हुए नहीं हैं।' महर्षि जी ने जो उत्तर दिया वह प्रत्येक ब्रह्मचारी तथा सच्चरित्र मनुष्य के लिए अपने हृदय में धारण करने योग्य है । महर्षि ने कहा–अश्विनीकुमार जी ! अवकाश ही नहीं है' । महर्षि ने कितना उत्तम उत्तर दिया, बात भी सत्य है कि–युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् । अर्थात् मन एक समय में एक विचार कर सकता

है, अनेक नहीं। महर्षि का सदाचार ऊंचे दर्जे का था, इसकी अनेक घटनाएं महर्षि जीवन में मिलती हैं। ब्रह्मचर्य, सदाचार के कारण ही तो महर्षि ने सारे विश्व में वेदों का प्रचार किया। स्वराज्य का नाद बजाया, भारत के सर्वविध-त्राता दयानन्द थे। उन्होंने अपने जीवन में १६ बार विषपान किया। २३ के लगभग ग्रन्थ लिखे, जिनमें सत्यार्थप्रकाश अनुपम ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर कलुषित जीवनों में जागृति आती है। सत्यार्थप्रकाश में मनुष्य बनने का पूर्ण विधान है। मनुष्य जीवन का पूरा प्रोग्राम है। यह सब कुछ महर्षि ने किया अपने ब्रह्मचर्य, सुदृढ़ वेदाध्ययन तथा सच्चरित्रता से।

अपनी चिन्ता न करें प्रभु प्रेम के दास।
सूई खुद नंगी रहे सब का सिये लिबास॥

दोनों महापुरुष अपने लिए नहीं अपितु दूसरों के लिए ही चिन्ता करते रहे।

९४. जापान के महापुरुष ईटो

१. जापान में भी समुद्र यात्रा करना पाप समझा जाता था, और समुद्र यात्रा करने वाले को प्राण-दण्ड दिया जाता था। अनुमान से १५० वर्ष हुए, वहां एक महापुरुष पैदा हुआ, जिसका नाम ईटो था। इससे यह प्रतिबन्ध सहन न हो सका। इसने नौजवानों का एक जत्था तैयार किया, समुद्र-यात्रा को यह जत्था निकल पड़ा और जर्मन देश जो उस समय साईंस का घर था पहुंच गया और वहां से दियासलाई और कपड़े की दस्तकारी सीख कर वह जत्था वापस जापान आ गया, और देश में इस दस्तकारी को चला दिया। पहले तो इसको भी प्राण-दण्ड की सजा दी गई परन्तु उसने अपने प्रचार से और दस्तकारी के जरिए देश को लाभ पहुंचाकर आम राय अपने हक में कर ली, इस तरह खुद भी बच गया और जापान को भी बचा लिया, वही जापान जो चीन से शिकस्त खा गया था, ईटो के इस उपकार से इतना बलवान् हो गया कि सन १९०४ में रूस जैसे देश को शिकस्त देकर दुनिया के बड़े देशों की पंक्ति में खडा हो गया।

और

इस तरह भारत में भी समुद्र-यात्रा को पाप समझा जाता था, अगरचे यहां इसकी सजा प्राण-दण्ड तो न थी। जिसके डर के मारे लोग समुद्र-यात्रा

न करते थे, और इसी तरह कुएं के मैंडक बने रहते थे। महर्षि दयानन्द जी महाराज ने जहां देश की उन्नति में बाधक दूसरी सब बातों को अच्छी तरह देखा, उनको दूर करने का यत्न किया वहां उन्होंने इस प्रतिबन्ध की बुराइयों को भी अनुभव किया और घोषणा कर दी कि समुद्र-यात्रा कदापि पाप नहीं। और ईटो की तरह उन्होंने भी नौजवानों का एक जत्था तैयार करना चाहा, जो जर्मन देश में जाकर दस्तकारी की तालीम प्राप्त करके आवे, और देश के अन्दर कल कारख़ाने लगा कर देश को लाभ पहुचावे। अतः उन्होंने इस विषय में जर्मन के प्रिन्सिपल डाक्टर वाईज़ से पत्र व्यवहार भी किया था, जिसके जवाब में डाक्टर वाईज़ ने महाराज को लिखा–'काश मैं आपका पुत्र या शिष्य होता और आप के चरणों में बैठकर ब्रह्मज्ञान की शिक्षा प्राप्त करता। यदि आप अपना कोई योग्य शिष्य यहां भेजें तो हम उन्हें दस्तकारी की शिक्षा देंगे। और उनसे वह ज्ञान भी प्राप्त करेंगे, जो उन्होंने आप से प्राप्त किया होगा।'

स्वामी जी के अत्यन्त यत्न करने पर भी नौजवान आगे न आए और कोई जत्था जर्मनी न भेजा जा सका, परन्तु महर्षि के दिल में जो अपने देशोन्नति के विचार थे, वह उनके इन प्रयत्नों से बिल्कुल प्रत्यक्ष हैं। इसके अतिरिक्त महर्षि जी ने अपने आम ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दसवें समुल्लास में अति उत्तम रीति से विदेश-यात्रा करने का समर्थन किया है। पूर्व पक्ष में यह प्रश्न रखकर।

"आर्यावर्त देशवासियों का आर्यावर्त देश से भिन्न-भिन्न देशों में जाने से आचार भ्रष्ट हो जाता है या नहीं?" इसके उत्तर में महाराज लिखते हैं– "यह बात मिथ्या है, क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी, सत्यभाषण आदि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट न होगा। और जो आर्यावर्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा।" इसके बाद महाराज उदाहरण देते हैं–"कि एक समय व्यास जी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल, अर्थात् जिसको इस समय अमरीका कहते हैं उसमें निवास करते थे, और व्यास जी ने अपने पुत्र शुक के एक प्रश्न का उत्तर लेने के लिए अमरीका से भारत मिथिलापुरी राजा जनक के पास भेजा था, और शुक अमरीका से हरिवर्ष यानि यूरोप और हूण यानि यहूदियों के देश को पार करते हुए भारत पहुंचे और श्रीकृष्ण और अर्जुन जहाज़ पर चढ़कर अमरीका से उद्दालक ऋषि को महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ में लाए

थे। धृतराष्ट्र का विवाह गन्धार के राजा की पुत्री गान्धारी से हुआ था, माद्री पाण्डु की स्त्री ईरान के राजा की लड़की थी, और अर्जुन का विवाह अमरीका के राजा की लड़की उलूपी से हुआ था। जो देश देशान्तर, द्वीप- द्वीपान्तर न जाते होते तो ये बातें क्योंकर हो सकतीं। महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सब पृथ्वी के राजाओं को निमन्त्रण देने भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव चारों दिशाओं में गये थे यदि दोष मानते तो कभी न जाते। सर्वप्रथम आर्य लोग व्यापार, राज्य कार्य और भ्रमण के लिए सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूत-छात और धर्म-भ्रष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्ख बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य दूसरे देश में जाने में शंका नहीं करते, वे हर किस्म के लोगों के संसर्ग में आने से अपना राज्य और व्यापार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते हैं। अच्छे व्यवहार को ग्रहण और बुरी बातों के छोड़ने से बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छ कुल उत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचारभ्रष्ट, धर्महीन, नहीं होते। किन्तु देश देशान्तरों के उत्तम पुरुषों के साथ समागम से छूत और दोष मानते हैं। यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो और क्या है ?" विदेश-यात्रा के लिए महर्षि के कितने खुले विचार हैं। और देशयात्रा के प्रतिबन्ध को महर्षि मूर्खता की बात बताते थे और देश के लिए हानिकारक। हरेक बात का महाराज ने बड़े तीव्र शब्दों में खण्डन किया है। फिर अन्त में महर्षि बड़ी अमूल्य बात कहते हैं–"कि जब विदेशियों को देखने और स्पर्श करने से मूर्ख जन पाप मानते हैं तो उनसे युद्ध कभी नहीं कर सकते। क्योंकि युद्ध में उनको देखना और स्पर्श करना आवश्यक है।

९५. मैक्समूलर, ९६. ग्रिफिथ, ९७. मेक्डानल्ड

यूरोप देश के वेद के भाष्यकारों में मैक्समूलर का दर्जा सब से बड़ा माना जाता है, और हमारे देश के लोग भी उसको बहुत बड़ा विद्वान् मानते हैं। परन्तु मैक्समूलर, ग्रिफिथ, मैक्डानल्ड आदि यूरोपियन भाष्यकार देव वाणी, और संस्कृत के भेद को नहीं जानते थे। और उनके सामने जो उस समय सायण आदि के भाष्य थे उनका ही उन्हें आश्रय लेना पड़ा था। इसलिए वे वेद के अर्थ को समझने से एकदम वञ्चित रहे। और उन्होंने वेदवाणी को आम संस्कृत समझा और उसके साथ ही उसका शब्दार्थ भी करा

दिया । जो कि सरासर ग़लत और बेजोड़ साबित हुआ । तभी उन्होंने वेदों के विषय में यह राय स्थिर की कि 'वेद गड़रियों के गीत हैं' इन बेचारों को तो यहां तक भी ज्ञान न था कि वेदवाणी संस्कृत से बिल्कुल भिन्न वाणी है । और उसका अलग व्याकरण है, अलग ही उसका कोष है, और इसीलिए वे वेद के अर्थों में अनर्थ कर गये । जैसे एक नीम हकीम अपने कई मरीजों के मारने में समर्थ हुआ था । जिसकी कथा इस प्रकार है–

"एक आदमी ने कहीं यह पढ़ लिया कि मरोड़ की जो बीमारी है इसके लिए अस्पग़ोल बहुत अच्छी दवाई है । अब उसको अस्पग़ोल के अर्थ देखने के लिए कोष का सहारा लेना पड़ा परन्तु उसने दवाइयों के कोष को न देख कर साधारण कोष देखा, उसमें अस्पग़ोल के अर्थ लिखे थे घोड़े के नाखून, "तब उसने घोड़े के नाखून इकट्ठे किये और उनको पीस कर शीशी में बन्द कर लिया, जो कोई मरोड़ का मरीज आता, उसको वही दवाई देता तभी बीमार की बीमारी बजाए अच्छी होने के और बढ़ जाती, और कई कई बेचारे तो जान से भी हाथ धो बैठते ।" बस यही हालत इन वेद-भाष्यकारों की है कि वेदवाणी को वैदिक कोष और व्याकरण से सिद्ध न कर आम संस्कृत के कोष और व्याकरण से सिद्ध करते रहे । जिसमें आप भी अन्धेरे में रहे और दूसरों को भी अन्धेरे में ही रखा । मैक्समूलर आदि ईसाई भाष्यकारों का तो इससे एक अभिप्राय सिद्ध हो गया कि वे वेदों के विषय में अश्रद्धा पैदा करने में सफल हुए जिससे ईसाई मत के प्रचार को बढ़ावा मिल गया । अतः मैक्समूलर ने तो अपनी इस भावना को अपने एक पत्र में स्पष्ट रूप से उल्लेख भी कर दिया था । यह मैक्समूलर ऋषि के समय में ही हुआ है, और महर्षि जी ने इसके अनर्थकारी वेदभाष्य के लिए उसको चैलेंज भी दिया था । परन्तु जिस महान् ऋषि के सामने भारत के ब्राह्मणों में एक भी न आया, और जो आया भी वह एक मिनट के लिए भी न ठहर सका, तो इनका चैलेंज मैक्समूलर जैसा विदेशी कैसे स्वीकार करने का साहस कर सकता था । अतः महर्षि इस मैक्समूलर के विषय में सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में लिखते हैं । और मैक्समूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुझ को विदित होता है कि मैक्समूलर साहब ने इधर-उधर के आर्यावर्त्तीय लोगों की टीका देख कर कुछ कुछ यथा तथा लिखा है । जैसा कि–

(ऋग्वेद १।६।१) इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है । इससे तो सायणाचार्य ने सूर्य अर्थ किया है, सो अच्छा है । परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है, सो मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका देख लीजिये, उसमें इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ किया है । इससे जान लीजिये कि जर्मनी देश और मैक्समूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है । यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं, वह सब आर्यावर्त देश से ही प्रचारित हुए और मैक्समूलर साहब ने हिरण्यगर्भ का अर्थ सोने का अण्डा किया है और ग्रिफिथ साहब ने 'अज एकपाद्देवा' का अर्थ–एक पांव वाला बकरा किया है । भला इन भले मानसों से कोई पूछे कि सोने का अण्डा या एक पांव वाला बकरा कभी संसार में किसी ने देखा है परन्तु इन लोगों को इससे क्या प्रयोजन था । उन्होंने तो वेदों के अर्थ, शब्दार्थ किये हैं इसका भाव कुछ बनता है या नहीं, अक्ल के विरुद्ध है व अनुकूल इससे इनका कोई मतलब न था । इन यूरोपीयन लोगों का वेद का तर्जुमा तो ऐसा ही है, जैसा कि एक विद्यार्थी ने परीक्षा के पर्चे में आये हुए निम्नलिखित वाक्यों का अंग्रेजी में तर्जुमा किया था । ऐसा ही अनुवाद इन यूरोपीयन लोगों ने वेद को अंग्रेजी में किया है । अंग्रेजी में तर्जुमा करो–

प्रश्न–१. दो रुपये तो मेरे मारे गये तुम्हारा क्या गया ?
जवाब–Two rupees of mine killed what went of you.

प्रश्न–२. कल मुझ को बुखार चढ़ा ?
जवाब–Machine Vapour ascended me.

अब उपरोक्त दोनों फिकरों के भाषा में लिखे शब्दों का अंग्रेज़ी में उल्था तो ठीक है, परन्तु भाव कुछ नहीं बनता और एक पागल का प्रलाप ही प्रतीत होता है । ठीक इसी तरह यूरोपीयन लोगों का वेदभाष्य पागल का प्रलाप ही सिद्ध होता रहा । एक संस्कृत कवि ने भी कहा है–

यस्य प्रज्ञा नास्ति तस्य शास्त्रं किं करिष्यति ।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

अर्थात् जिसको प्रज्ञा (Common sence) नहीं वह शास्त्र को क्या समझ सकता है, जैसे अन्धा जिसकी आंखें नहीं हैं, उसको शीशा क्या दिखा सकता है । और जो हमारे देशी भाई ऐसे अनर्थकारी भाष्यकारों का आंखें

मूंद कर समर्थन कर रहे हैं। उनके विषय में क्या कहा जावे। यह आप स्वयं विचार लें।

९८. अफ़लातून

राजा हरिश्चन्द्र प्रकरण में देखो।

९९. लार्ड विलिंगडन

महर्षि धनमन्त्री प्रकरण में देखो।

१००. शोपनहार, १०१. लार्ड बायरन

नारी अधिकार-रक्षक प्रकरण में देखो।

विदेश-काण्ड समाप्त।

❋❋❋

११. विशेष गुण-कीर्तन-काण्ड

१०२. पूर्ण पुरुष का वास्तविक स्वरूप

१. अनूपशहर निवास के समय एक ब्राह्मण ने स्वामी जी के मूर्तिपूजा के खण्डन से रुष्ट होकर पान में विष दे दिया था। परन्तु महाराज ने न्यौली कर्म करके इस विष को अपने शरीर से निकाल दिया था और स्वस्थ हो गये थे। अनूपशहर का मुसलमान तहसीलदार सैयद मुहम्मद स्वामी जी का बड़ा भक्त बन गया था। जब सैयद मुहम्मद को इस घटना का पता लगा तो वह उस ब्राह्मण को पकड़ कर स्वामी जी के पास ले आया और मन में विचारने लगा कि स्वामी जी अपने कातल को पकड़ कर लाने के सबब मुझ पर प्रसन्न होंगे। परन्तु जब वह उनके सामने आया तो महर्षि जी ने इस से बोलना बन्द कर दिया। जब सैयद मुहम्मद ने इस अप्रसन्नता का कारण पूछा तो महाराज ने कहा–

"मैं दुनिया को कैद कराने नहीं आया बल्कि कैद से छुड़ाने आया हूं।"

अगर दुष्ट अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो मैं संन्यासी होकर अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ूं।

२. महर्षि न सिर्फ दुनियावी कैद से अपितु दिमागी गुलामी से भी संसार को छुड़ाने आये थे। उन्होंने कभी यह न कहा था, कि मेरी कोई नया मत चलाने की इच्छा है। बल्कि हर समय वह यही कहते और लिखते रहे कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि पर्यन्त जो वैदिक ऋषियों का मन्तव्य है वही मेरा भी है।

३. जब आर्यसमाज बम्बई की स्थापना हुई तब सब सभासदों ने स्वामी जी से प्रार्थना की कि आप इस समाज के सभापति अथवा अधिनायक बन जावें तो स्वामी जी ने इस बात को स्वीकार न किया। परन्तु सभासदों के आग्रह करने पर अन्य सभासदों की भांति समाज के

सभासद बन गये, और नियमानुसार चन्दा देते रहे, इस पर किसी कवि ने कहा है–"सभासद बना खुद समाजें बना कर ।

४. जब आर्यसमाज लाहौर की स्थापना हो गई तो एक दिन शारदाप्रसाद भट्टाचार्य ने अन्य सभासदों की अनुमति से आर्यसमाज के अधिवेशन में यह प्रस्ताव किया कि महाराज को आर्यसमाज लाहौर के संरक्षक वा अधिनायक की पदवी दी जावे । सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास हो गया परन्तु जब महाराज के सामने यह प्रस्ताव रखा गया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और कहा कि इस से गुरुडम की बू आती है । और मेरा जीवन उद्देश्य गुरुडम के दुर्ग को मिस्मार करने का है । न कि स्वयं गुरु बनने या कोई नया पन्थ स्थापित करने का । यदि कल को इस पदवी से मेरा ही मस्तिष्क फिर जावे अथवा ऐसा न भी हो और मेरा चेला घमण्ड में आकर कोई अन्यथा कार्य करने लगे । तब आप लोगों को बड़ी कठिनता होगी, और वही दोष उत्पन्न हो जाएंगे जो दूसरे नवीन पन्थों में हो गये हैं ।

५. इसके बाद फिर लाहौर के सभासदों ने सर्वसम्मति से यह पास किया कि महाराज को आर्यसमाज लाहौर के परम सहायक की पदवी दी जावे । इसे भी महाराज ने अस्वीकार कर दिया, और कहा कि यदि मुझे परम सहायक मानोगे तो उस जगदीश्वर जगद्गुरु सर्वशक्तिमान् को क्या मानोगे । अन्त में सब सभासदों के आग्रह पर महाराज लाहौर आर्यसमाज के साधारण सभासद् बन गये । और अपना नाम सभासदों की सूची में दूसरों की भांति लिखवा दिया ।

६. एक दिन महाराज आर्यसमाज लाहौर के सत्संग में जब पधारे तो उस समय ईश्वर-उपासना हो रही थी, महाराज को आता देखकर सब सभासद् सम्मान प्रदर्शनार्थ खड़े हो गये । उपासना की समाप्ति पर महाराज ने उपदेश दिया कि उपासना-काल में उपासक ईश्वर के सत्संग में मग्न होता है । ऐसे समय में कोई कितना भी बड़ा मनुष्य आवे, उपासकों को खड़ा न होना चाहिए । क्योंकि परमेश्वर से बड़ा कोई नहीं है । अत: ऐसा करने से उपासना धर्म का निरादर होता है ।

७. संसार में कितने लोगों ने अपने को ईश्वर का सन्देशहर (पैगम्बर) कह कर अपने नाम से पन्थ चलाए और आज उनके लाखों

करोड़ों अनुयायी हैं । कितनों ने गुरु बनकर चेलों चेलियों की बुद्धि की आंखों पर पट्टी बाँधी, उनका तन, मन, धन हड़प कर लिया । किसी ने अपने आपको ईश्वर का इकलौता बेटा घोषित किया । और कई स्वयम् ईश्वर बन बैठे और लाखों लोगों को अज्ञान के घोर अन्धकार में धकेल दिया ।

एक ओर ये लोग हैं और एक ओर ऋषि दयानन्द हैं, जो उनको गुरु बनाना चाहता है, वे इन्कार कर देते हैं । हम देखते हैं कि योग की साधारण क्रियाओं के द्वारा कई लोग गुरु बन बैठे हैं और शिष्य मण्डली के हृदय और मस्तिष्क के स्वामी बने हुए हैं । परन्तु एक दयानन्द हैं जो पूर्ण योगी, पूर्ण विद्वान् होते हुए भी गुरु बनने से भागते हैं । निरभिमान की पराकाष्ठा है, यह है दयानन्द का वास्तविक स्वरूप । दयानन्द जो कुछ थे वह औरों के लिए थे । अपने लिए कुछ नहीं । दयानन्द न सिर्फ जिस्मानी गुलामी से दुनिया को आजाद कराने आये थे बल्कि दिमागी गुलामी से भी संसार को आज़ाद कराने आये थे। दिमागी गुलामी सब से बुरी चीज़ है, दिमागी तौर पर गुलाम मनुष्य और जातियां अपने लिए स्वतन्त्रता से कुछ सोच नहीं सकते । उनके हांकने वाला जिस तरफ उनको ले जाना चाहे, भेड़ों की तरह दिमागी गुलाम लोग उसी तरफ चल पड़ते हैं । जैसे किसी ने कहा भी है–

गुर गूंगे गुर बावरे गुर के रहिये दास ।
जे गुर भेजे नर्क में तो स्वर्ग न रखिये आस ॥

८. किसी पुरुष का वास्तविक स्वरूप वह अच्छी तरह बयान कर सकता है, जो कुछ समय तक उस पुरुष के पास आठों पहर रहता रहा हो । एक ही जगह भोजन करता रहा हो और एक ही जगह रात को सोता रहा हो । महर्षि का वास्तविक स्वरूप नीचे लिखे एक पत्र से जो बाबू मन्मथनाथ चौधरी B. A. एक बंगाली युवक बंगाली महाशय ने देवेन्द्र बाबू जी को लिखा था अच्छी तरह देखा जा सकता है । बाबू मन्मथनाथ चौधरी B. A. एक बंगाली युवक स्वामी जी के उपदेश, उनके चरित्र, उनकी विद्वत्ता पर इतने मुग्ध हुए कि कलकत्ता से प्रायः उनके साथ ही रहने और उनके पास ही सोने लगे थे । वे कलकत्ता से हुगली भी स्वामी जी के साथ आए थे । उनका वह पत्र जिसमें उन्होंने महर्षि

के जीवन का आंखों देखा हाल लिखा है । निम्न प्रकार है–

"मैं वर्धमान से स्वामी जी से विदा होकर कलकत्ता चला गया, मुझे कुछ काम था और स्वामी जी बिहार चले गये । वर्धमान से अलग होकर मैं जोधपुर में महाराजा के स्कूल का हैडमास्टर होकर चला गया। फिर मैं स्वामी जी के सहवास का आनन्द लाभ न कर सका । स्वामी जी मुझे अन्तिम दिनों तक प्रेम करते रहे, जैसा मुझे बहुत से मनुष्यों से ज्ञात हुआ । अब मुझे गहरा शोक है कि मैंने नौकरी करनी क्यों स्वीकार कर ली । मैं स्वामी जी के साथ सन् १८७३ में रहा था और अब सन् १९०० है । इन २७ वर्षों में मैं भारतवर्ष में बहुत कुछ घूमा हूं परन्तु मुझे एक भी पुरुष ऐसा नहीं मिला जो स्वामी जी से लग्गा खाता हो। मेरा जीवन दूसरे ही प्रकार का होता, यदि मैं उनके साथ रह जाता । क्योंकि मैं उनके साथ रहा हूं, सोया हूं, इसलिए मैं आपको कुछ ऐसी बातें बता सकता हूं । जो कोई दूसरा मनुष्य नहीं बता सकता । वे पक्के निरामिषभोजी थे । उनकी दाल भाजी में विलक्षण प्रकार के मसाले पड़ते थे और उनका विलक्षण स्वाद होता था । अपने पश्चात् के जीवन में मैंने कभी कोई वस्तु उस जैसी नहीं खाई । वे फूस पर सोते थे, मैं भी उनके पास ही सोता था । वे नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल बहुत देर तक योगाभ्यास किया करते थे, और इस समय भी मुझे अपने पास रहने की आज्ञा दे दिया करते थे । मैंने बनारस में बहुतों को योगाभ्यास करते देखा है, परन्तु उनके समान किसी को नहीं देखा । उनकी दिनचर्या इस प्रकार थी । वे तीन बजे के लगभग उठा करते थे और प्रातःकाल तक योगाभ्यास करते रहते थे । फिर वह शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान करते थे और शरीर पर भस्म लगाते थे । ९ बजे वह दर्शकों से मिलते थे और १२ बजे तक उनसे बातचीत करते थे । फिर वे भोजन करते, मुझे आश्चर्य है कि उन्हें गले का कैंसर रोग क्यों नहीं हुआ । मैंने और किसी मनुष्य को नहीं देखा, जो प्रतिदिन इतने घण्टे महीनों और वर्षों संस्कृत में बोलता और वाद-विवाद करता रहे । मुझे विश्वास है कि उनका जन्म किसी विशेष उद्देश्य के लिए हुआ था । वे इतना बोलते थे कि प्रतिदिन उनका गला बैठ जाता था परन्तु अगले दिन फिर उसी कार्य में संलग्न हो जाते थे । रात्रि को वे सूक्ष्म आहार करते थे और कई बार कुछ भी नहीं

खाते थे और सब भोजन हम लोगों में बाँट देते थे । अब मैं वह वर्णन करता हूं जो अनुभव मुझे उनका हुआ था । यदि कोई मनुष्य पूर्णतया स्वतन्त्र चरित्र लेकर उत्पन्न हुआ हो तो वे स्वामी जी थे । यदि किसी मनुष्य ने साम्यवाद को चरितार्थ किया हो तो वे स्वामी जी थे, वे यह जानते ही न थे, कि ऊँच-नीच का भेद भाव क्या होता है । मैंने उनके पास राजाओं और महाराजाओं को बहुधा आते देखा है, जो यह आशा रखते थे कि उनका विशेष प्रकार से स्वागत किया जायेगा परन्तु स्वामी जी उनके प्रति लेशमात्र भी विशेष सम्मान प्रकट न करते थे । हम बहुत बार निःस्वार्थी पुरुषों और देशभक्तों का वर्णन सुनते हैं, परन्तु मेरे ज्ञान में तो यही एक निःस्वार्थी पुरुष और देशभक्त थे । यदि मुझे उनके निरन्तर सहवास का सौभाग्य प्राप्त न हुआ होता तो मुझे यह भी ज्ञान न होता कि साम्यवाद क्या होता है, मुझे कभी ज्ञात न होता कि चरित्रबल क्या होता है । यह भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि उनकी मृत्यु समय से पहले हुई है । उनका स्थान लेने वाला कोई नहीं है, ऐसा विद्वान्, ऐसा भक्त, निःस्वार्थी कोई नहीं है । कट्टर पण्डित गण ने चिढ़ाने के लिए उनका नाम नास्तिक रख छोड़ा था परन्तु यदि वे नास्तिक थे तो मैं नहीं जानता कि आस्तिक कौन हो सकता है, मैं स्वामी जी की स्मृति से अत्यन्त प्रेम करता हूं । मुझे सदा यह पश्चात्ताप रहा है कि मैंने नौकरी के लिए उनका सहवास त्याग दिया। मैं आप को धन्यवाद देता हूं कि आप उनका जीवनचरित्र लिख रहे हैं, मैं उनकी स्मृति की पूजा करता हूं ।"

महर्षि के प्रचार-काल के समय छपने वाले अखबारों ने जो कुछ उनके विषय में लिखा था, उनके वास्तविक स्वरूप पर बड़ा प्रकाश पड़ता है । अतः कुछ संक्षिप्त उदाहरण निम्नलिखित हैं-

कलकत्ता से छपने वाली ब्रह्मपत्रिका में लिखा है-"प्रसिद्ध पण्डित दयानन्द सरस्वती कलकत्ता आये हैं, हिन्दू शास्त्र में उनका निश्चित अधिकार है, वे मूर्तिपूजक नहीं हैं, और अद्वैतवादी भी नहीं हैं। वे जीवात्मा और परमात्मा का भेद स्वीकार करते हैं, और एक निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं । उनके मत में वेद का मन्त्र भाग निर्भ्रान्त ईश्वरीय ज्ञान हैं । विधवा विवाह के सम्बन्ध में उनकी सम्मति युक्ति संगत है । बालविवाह के वे नितान्त विरोधी हैं, वे यह सिद्ध करते हैं

कि कन्या के लिए १८ वर्ष की आयु और पुरुष के लिए ३० वर्ष की आयु विवाह के लिए शास्त्रोक्त है। वे जाति पांति का भेद स्वीकार नहीं करते। गुण कर्म के अनुसार वर्ण भेद की व्यवस्था स्वीकार करते हैं। वे बड़े विद्वान्, शिष्टाचारी, सदाचारी और सरल हैं परन्तु मूर्तिपूजा के बड़े विरोधी हैं, संस्कृत भाषा उनकी मातृ भाषा हो गई है। वे बिल्कुल अनायास ही श्रुति मधुर संस्कृत भाषा में वार्तालाप करते हैं। और उनके साथ बातचीत करने से सभी प्रसन्न होकर आते हैं।"

१०. कलकत्ता से निकलने वाली पत्रिका धर्मतत्त्व में दयानन्द सरस्वती शीर्षक देकर लिखा है-"ये एक दिग्गज पण्डित हैं, ये हिन्दु-शास्त्र विशारद हैं। संस्कृत भाषा इनके अधीन हो गई है, विशेष कर उनकी संस्कृत भाषा इतनी श्रुति मधुर और सरल है कि संस्कृत न जानने वाले भी उनके कथन को बहुत कुछ समझ लेते हैं। सरस्वती की बुद्धि बड़ी परिष्कृत और तीक्ष्ण है, उनकी क्षमता असाधारण है। इनमें लोगों के आकर्षण करने की विलक्षण शक्ति है, वे बड़े मीठा बोलने वाले हैं। एक ईश्वर की उपासना का प्रचार, मूर्तिपूजा का विनाश, उनके जीवन का प्रधान लक्ष्य है। पश्चिम की रोशनी से आलोकित न होने पर भी वे जिस विशुद्ध रूप से उदारता के साथ सारे विषयों को प्रकट करते हैं। इसे देखकर अवाक् होना पड़ता है, आश्चर्य की बात यह है कि जिस विषय पर भी व्याख्यान देते हैं उसको ऐसा खोल कर वर्णन करते हैं कि वह सब की समझ में ठीक बैठ जाते हैं। ये वर्ण-गुण, कर्म, स्वभाव से मानते हैं, जन्म से नहीं। ये विधवा विवाह के पक्षपाती हैं, और छोटी आयु के विवाह की घोर निन्दा करते हैं, यही नहीं कि सरस्वती जी व्याख्यान ही देते हैं, बल्कि वे प्रातःकाल और सायंकाल दोनों सन्धियों में ५-६ घण्टे ईश्वर के ध्यान और उपासना में लगाते हैं। इनमें अन्तर्दृष्टि विशेष भाव से दीखती है। इन्द्रिय-निग्रह और आत्म-संयम इनको सिद्ध है। इनको देखने से इन में वीरत्व, महत्त्व, गंभीरत्व, उच्च आशा के लक्षण स्पष्ट प्रतीत होते हैं। ये अपना जीवन प्रतिदिन, उपासना अध्ययन, व्यायाम और धर्मालय में बिताते हैं। जो कुछ कहते हैं, वह सब कुछ उनके जीवन में उपस्थित है।"

११. इन्दुप्रकाश नामक पत्र में महर्षि के उपदेश की बाबत लिखा

है–"वे इतने निर्भीक थे, कि नदी के तट पर विचार विमूढ़ ब्राह्मणों के बृहत् समूह के सामने पुरोहित दल की बुराइयों और इन लोगों के अविद्या जन्य दोषों को निर्भीकता और अटल भाव से स्पष्ट अक्षरों में वर्णन करने के कारण उसी स्थान के लोग पण्डित दयानन्द से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने पण्डित दयानन्द का साधुवाद किया। और बहूमूल्य वस्त्र उपहार में दिये।

१२. ११ मार्च सन् १८७५ के अहमदाबाद से निकलने वाले पत्र हितेच्छु में लिखा था–"निःसन्देह स्वामी दयानन्द असाधारण व्यक्ति हैं, इनकी प्रतिभा और योग्यता दुर्लभ है। यदि वे अन्य सम्प्रदायवादी गुरुओं के सदृश धन के कारण कार्य करने वाले होते तो इन्हें हजारों शिष्य प्राप्त हो जाते। और एक नया सम्प्रदाय स्थापित करके धन की बहुत बड़ी राशि इकट्ठी कर लेते, परन्तु ऐसे नीच भाव उनकी प्रकृति के प्रतिकूल हैं, इनका एकमात्र उद्देश्य भारत सुधार ही है। इनकी प्रबल इच्छा है कि वे समृद्धि और सभ्यता में अपने देश को फिर एक बार सारे संसार के सिर स्थान पर देखें।"

१३. गुजरात (पंजाब) में पहले ही व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा कि जब कोई श्रोता किसी का व्याख्यान सुने तब उस पर खूब मनन करे, और देखे कि इसमें कितना सत्य है और कितना असत्य है, फिर असत्य के त्यागने और सत्य के ग्रहण करने में तत्पर रहना चाहिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं, कि मैं यह नहीं चाहता, कि जो कुछ मैं आप से कहूं आप उस पर आँखें मीच कर चलें। यदि वह आपको सत्य जान पड़े तो उस पर चलें, यदि असत्य जान पड़े तो उस पर कोई ध्यान न दें। यह अन्धविश्वास ही हमारे विनाश का मूल है, संस्कृत पुस्तकों में ज्ञान का बहुत बड़ा कोष है, इन्हें पढ़ो और देखो। इनमें क्या है ? ऐसा मत कहो कि कोई बात केवल इसलिए मानने वा त्यागने योग्य है कि दयानन्द सरस्वती ऐसा कहता है।

१४. कानपुर में एक दिन प्रातःकाल महर्षि लेटे हुए थे, लाला मोहनलाल सभापति गोरक्षणी सभा पैर दबा रहे थे, लाला मोहनलाल ने अत्यन्त नम्र भाव से महाराज से कहा कि महाराज जो कुछ मैंने शास्त्रों में देखा और सुना है उससे ज्ञात होता है कि आप मोक्ष के पूर्ण

अधिकारी हैं, क्या आपको इस शरीर में मोक्ष पाने की इच्छा नहीं है ? महाराज ने इसके उत्तर में कहा मैं अकेला मोक्ष पा कर क्या करूंगा। मेरी तो इच्छा है कि बहुत से मनुष्यों को मोक्ष मिले ।

१५. कहते हैं कि एक बार ऋषि-भक्तों ने इच्छा प्रकट की कि ऋषि के निर्वाण पद प्राप्त करने पर उनकी समाधि बनवाई जाए । ऋषि जानते थे समाधि के बन जाने पर भक्त लोग समाधि की पूजा में रत हो सकते हैं और इस प्रकार जिस गुरडम और कबरपरस्ती आदि का खण्डन करके ऋषि ने उन्हें स्वतन्त्र विचार का मार्ग दिखाया था उस सारे जीवन कार्य का विध्वंस हो कर लोग फिर से उसी अन्धेरे कूप में गिर पड़ेंगे। इसलिए उसी समय उन्हें इस घृणित कार्य से रोकते हुए कहा–

जलाना मुझ को, मगर न मेरी समाधि हरगिज़ वहां बनाना ।
यह बट्टा हरगिज़ मेरे नाम पर ऐ-आर्यो न तुम लगाना ॥
वह ताकि बेफ़ायदा न जाये किसी मसरफ़ के काम आए ।
जो ख़ाक हो मेरी हड्डियों की वह जाके खेतों में डाल आना ॥

धन्य हो निरभिमानता के अवतार, तुम धन्य हो, तुम्हें नतमस्तक होकर कोटिशः प्रणाम करता हूं । आर्यो, ऋषिराज अपने शरीर की भस्म तक न पुजवा कर लोकोपकार के लिए उसे खेतों में डलवा देना चाहते हैं । वे गुरुडम के सख्त विरुद्ध थे ।

१६. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आर्यसमाज के इस दसवें नियम में स्वतन्त्रता और परतन्त्रता की मीमांसा बड़ी उत्तम रीति से कर दी गई है, और आर्यसमाज के सभासद पूरी स्वतन्त्रता से काम करते रहे हैं । पंजाब में एक ऐसा भी समय आया कि डॉ० गोलकचन्द नारंग हिन्दू सभा के डॉ० सत्यपाल कांगिरिस के सर छोटूराम ज़मींदार पार्टी के प्रधान रहे और ये तीनों महानुभाव पक्के समाजी भी थे परन्तु जिस पोलिटीकल पार्टी में उन्हें काम करना देश के हित में ठीक प्रतीत हुआ पूरी ज़िम्मेदारी से काम करते रहे, ऐसी विचार स्वतन्त्रता संसार के इतिहास में आप कहीं भी देख न पाएंगे, इसीलिए तो महाराज ने कहा था, मैं दुनिया को कैद कराने नहीं आया परन्तु कैद से छुड़ाने आया हूं, और यही महाराज का वास्तविक स्वरूप है ।

१०३. पूर्ण विद्वान्

१. महर्षि दयानन्द जी ने भ्रान्ति-निवारण पुस्तक में लिखा है कि "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा पर्यन्त अनुमान से ३ हज़ार ग्रन्थों के लगभग मानता हूं।" अब आप स्वयं ही विचार करें, कि जिस महाराज ने ३ हज़ार ग्रन्थ पढ़े होंगे, ऐसा अनुमान सहज में ही किया जा सकता है। संस्कृत के तो वे पूर्ण विद्वान् थे ही, अतः वे ६-७ वर्ष जब गंगा के किनारे विचरते रहे और जितने व्याख्यान दिये, बड़े-बड़े शास्त्रार्थ किये, वार्तालाप और बातचीत की, सब संस्कृत में ही करते रहे। उनको संस्कृत वाणी पर इतना प्रभुत्व था कि घण्टों बोलते रहते और व्याख्यान देते थे, और ऐसी आसान संस्कृत में कि जो संस्कृत से अनभिज्ञ मनुष्यों को भी आ जाया करती थी। इससे अधिक किसी भाषा पर और क्या प्रभुत्व हो सकता है। और फिर जो तीन हज़ार ग्रन्थ वे प्रामाणिक मानते थे, इसमें साईंस, फ़िलासफ़ी, हिस्ट्री, जुगराफिया, आयुर्वेद, ज्योतिष, व्याकरण, आध्यात्मिक आधि दैविक, आधिभौतिक, याज्ञिक, कानून आदि विद्याओं का समावेश ही है, इसलिए वे इन सब विद्याओं के भी पूर्ण विद्वान् थे।

२. आजकल जो मनुष्य १६ वर्ष पढ़ता है उसको M. A. M. Sc. यानि मास्टर की डिगरी मिल जाती हैं। और इस पर भी यदि कोई मनुष्य किसी एक मज़मून पर एक छोटी सी पुस्तक या लेख जिसको Thesis कहते हैं लिख देवे तो उसको डॉक्टर की डिगरी मिल जाती है। परन्तु क्या आप को ज्ञात है कि महर्षि ने कितनी देर विद्या पढ़ी, और किस अवस्था में पढ़ी, याद रखिये दुनिया की सारी यूनिवर्सिटियों में एक दो प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे निकलेंगे जो मास्टर की डिगरी लेने तक पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रह सके हों। पूर्ण रूप से ब्रह्मचारी रहने का अर्थ है कि किसी भी अवस्था में स्त्री का दर्शन, चिन्तन सम्भाषण आदि न कर पाये परन्तु महर्षि जी पूर्ण ब्रह्मचारी थे। उनको ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिए भरपूर यत्न भी करने पड़े। सारे संसार की यूनिवर्सिटियों में चाहे कोई पूर्ण ब्रह्मचारी तो निकल भी आये परन्तु पूर्ण योगी एक भी दृष्टिगोचर न होगा। महर्षि न केवल पूर्ण ब्रह्मचारी ही थे परन्तु पूर्ण योगी भी थे।

और

३. एक पूर्ण योगी और ब्रह्मचारी पूरे ३६ वर्ष जो ४ वर्ष की आयु से लेकर ४० वर्ष की आयु तक विद्या ग्रहण करता रहा हो और वह भी योगियों और ब्रह्मचारियों से । यदि वह पूर्ण विद्वान् न हो तो कौन होगा । आप सब भाई यह तो जानते ही हैं, कि विद्यार्थी के लिए ध्यान की एकाग्रता योग की पहली सीढ़ी ही है । वह योगी जो ७२ घण्टे लगातार बगैर कुछ खाये पिये, हिले जुले अपने मन को एक स्थान पर स्थिर कर सकता है । इससे बढ़ कर कौन ध्यान की एकाग्रता को प्राप्त हो सकता है । इसलिए महर्षि किसी पुस्तक को एक बार पढ़ कर ही याद कर लेते थे । एक मज़मून का छोटा सा Thesis लिख कर डॉक्टर की डिगरी लेकर बड़ा समझने वाले भला इसको क्या कहेंगे । जिसने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और सत्यार्थप्रकाश जैसे कितने ही प्रामाणिक ग्रन्थों की रचना कर डाली हो, जिनमें सभी विद्याओं का समावेश हो।

४. इस प्रकार इन साधनों से प्राप्त की हुई विद्या में पूर्ण हो कर ही तो महाराज ने सारे संसार के हर किस्म के विद्वानों को चैलेंज किया। परन्तु उनके सारे प्रचार के समय में कोई भी किसी भी विद्या का विद्वान् उनके चैलेंज को स्वीकार न कर सका और जिसने स्वीकार किया उसने मुंह की खाई । पुराणी, किरानी, कुरानी, बौद्ध, जैनी, नवीन, वेदान्ती, साईंसदान, फ़िलास्फर, तारीखदान कोई भी उनके सामने ठहर न सका। चक्रवर्ती बाबू ने जो कलकत्ता से कानपुर उनके पास उपनिषद् पढ़ने आये। कुछ दिन महर्षि के साथ एक जगह रहे । एक दिन हैरान हो कर महाराज से कहा—महाराज जी यह विचित्र तमाशा है जो आपके सम्मुख आता है । दो चार मिनट से अधिक आप से बातचीत ही नहीं कर सकता, और चुप साध कर बैठ जाता है पूर्ण विद्वान् थे तभी तो दुनिया के दो अरब मनुष्यों के सामने अकेले डट कर खड़े हुए और किसी की हिम्मत न हुई कि इस सिंह के सामने दम भी मार सके ।

५. रुड़की में इसी प्रकार मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना किसी प्रकार भी स्वीकार नहीं किया जिन दिनों मौलवी साहब से शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ हो रही थी उन्हीं दिनों एक पण्डित जी आये जिनके संस्कृत के विद्वान् होने की बड़ी ख्याति थी । वे महाराज से मिलने गये तो महाराज

ने उन्हें सत्कार पूर्वक बिठाया । पण्डित जी ने एक व्याकरण का ग्रन्थ बनाया था जिसे वे अपने विचार में अपूर्व समझते थे । उन्होंने वह ग्रन्थ महाराज को दिखाया, महाराज ने ५, ७ मिनट देखकर वापस कर दिया। और कहा कि आपका संस्कृत का ज्ञान अच्छा है । पण्डित जी उन दिनों बेकार थे, महाराज ने उन्हें पास रखना भी चाहा परन्तु वे राजी न हुए । महाराज ने कहा कि यदि आप अपना समय किसी आर्ष ग्रन्थ के अनुवाद में लगाते तो अच्छा होता । पण्डित जी बोले तो मेरा ग्रन्थ किसी अर्थ का नहीं ? महाराज ने कहा जैसा है वैसा ही है । पण्डित जी ने कहा कि मेरे व्याकरण में सब नियम आ गये हैं । पण्डित जी के हठ करने पर महाराज ने कहा कि आप अपने ग्रन्थ का कोई नियम निकालिये । उन्होंने एक नियम निकाला तो महाराज ने १७, १८ वेद मन्त्र पढ़ कर कहा आप अपने नियम को इन मन्त्रों पर घटाइये परन्तु वह न घटा तो पण्डित जी ने कहा कि वेद का व्याकरण अलग हो सकता है। इस पर महाराज ने कहा कि इससे क्या लाभ कि वेद के लिए एक ग्रन्थ पढ़ा जाय और लौकिक संस्कृत के लिए दूसरा । फिर महाराज ने ३२, ३३ लौकिक संस्कृत के श्लोक पढ़े । उन पर भी पण्डित जी का नियम न घटा । इस पर पण्डित जी चकित हुए और महाराज के पग पकड़ लिये और कहा कि आप समुद्र हैं । मैंने यह ग्रन्थ काशी के पण्डितों को भी दिखाया था, सब ने इसकी प्रशंसा की । फिर महाराज ने पाणिनीय का एक सूत्र पढ़कर सब पर घटा दिया और पण्डित जी को मन्त्रणा दी कि आप आर्ष-ग्रन्थ की टीका और व्याख्या लिखने का यत्न करें जिससे संस्कृत विद्या की उन्नति हो । पण्डित जी का गर्व चूर्ण हो गया और निष्प्रभ परन्तु अधिक बुद्धिमान् हो कर विदा हो गए ।

हरिद्वार के प्रसिद्ध सतुआ स्वामी से भी लोगों ने कहा था कि स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ कीजिये । पहले तो उन्होंने हाँ कर ली परन्तु फिर कहा कि मैं स्वामी दयानन्द का मुख नहीं देख सकता । लोगों ने यह बात महाराज से कही तो उन्होंने कहा कि बीच में पर्दा डाल कर शास्त्रार्थ हो सकता है, परन्तु सतुआ स्वामी इस पर भी उद्यत न हुए।

१०४. पूर्ण योगी

१. राजयोग–महर्षि पतञ्जलि योगदर्शन के समाधिपाद के दूसरे सूत्र में योग का लक्षण करते हुए लिखते हैं–"योगश्चित्तवृत्ति-निरोधः।" अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है, और वृत्तियों की पाँच प्रकार की गणना की है। १. प्रमाण, २. विपर्यय, ३. विकल्प, ४. निद्रा, ५. स्मृति। प्रमाण तीन माने हैं–१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. आगम। मिथ्या का नाम विपर्यय है, नास्ति स अस्ति मानना विकल्प कहलाता है। ज्ञान के अभाव को निद्रा कहा गया है। स्मृति यानि वृत्तियों की याददाश्त में इनकी दो किस्मों का वर्णन किया गया है। एक क्लिष्ट और दूसरी अक्लिष्ट। फिर योगदर्शन के समाधिपाद के २४वें श्लोक में ईश्वर की स्तुति करते हुए लिखा है। जो क्लेश कर्मविपाक, आशय के सम्बन्ध से रहित हो वह पुरुष विशेष ईश्वर है। क्लेश पाँच हैं–अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। कर्म चार प्रकार के हैं–पुण्य-पाप, पुण्य और पाप मिश्रित और पुण्य पाप से रहित। और कर्मों के फल का नाम विपाक है। और श्लोक २७ में उस ईश्वर का नाम "ओ३म्" बतलाया है। देखिये कितने साफ़ शब्दों में ईश्वर को निराकार माना गया है। पाँचों क्लेश योगसाधन में बड़ी भारी रुकावट बनते हैं। ईश्वर के इस स्वरूप का ध्यान और ओं के नाम का जाप करने से बुद्धि ऋतंम्भरा हो जाती है, यानि सच्चाई की तह तक पहुँचने वाली बुद्धि प्राप्त हो जाती है, जिसमें संशय और भ्रम का लेश भी नहीं होता। योग के आठ अंग हैं, इसलिए उसको अष्टांग योग कहते हैं। १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि। फिर यम पांच हैं–१. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य, ५. अपरिग्रह। पांच ही नियम हैं–१. शौच, २. सन्तोष, ३. तप, ४. स्वाध्याय, ५. ईश्वरप्रणिधान। जब योग-साधन करता हुआ मनुष्य समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेता है। तब उसको सब से पहले ६ सिद्धियां प्रकट होती हैं–१. प्रतिभा, २. श्रवण, ३. वेदन, ४. आदर्श, ५. आस्वाद, ६. वार्ता।

१. **प्रतिभा**–इस से भूत, भविष्य, वर्तमान और सूक्ष्म ढकी हुई और दूर देश में रखी हुई वस्तुएं प्रत्यक्ष हो जाती हैं। २. **श्रवण**–इससे

दिव्य शब्द सुना जाता है । ३. **वेदन**—इससे दिव्य स्पर्श का अनुभव होता है । ४. **आदर्श**—इससे दिव्य रूप का दर्शन होता है । ५. **आस्वाद**—इससे दिव्य रस का अनुभव होता है । ६. **वार्ता**—इससे दिव्य गन्ध का अनुभव होता है, अथवा पांचों ज्ञान इन्द्रियों के अन्दर दिव्य शक्तियों का समावेश होता है परन्तु इन सिद्धियों को पतञ्जलि मुनि ने ईश्वर-दर्शन या कैवल्य पद-प्राप्ति के रास्ते में रुकावट समझते हुए उनको त्याग देने का उपदेश दिया है । क्योंकि अगर साधक रास्ते में ही कुछ कामयाबी प्राप्त होने पर थक कर बैठ जावे या उसी थोड़ी कामयाबी को मंजिल समझ ले तो फिर वह अपनी असल मंजिल यानि मुक्ति पद को प्राप्त नहीं कर सकता; इसलिए ऋषि ने उनको त्याग कर इनमें न रीझ कर निरन्तर आगे बढ़ने के लिए उत्साह दिलाया है, ताकि साधक अपनी असली मंजिल को प्राप्त कर सके ।

२. राजयोग से जो विभूतियां साधक के अन्दर उत्पन्न हो जाती हैं, उनका वर्णन करते हुए योगदर्शन के विभूतिपाद में महर्षि पतञ्जलि जी ने जो लिखा है, उसमें से थोड़ा सा दिग्दर्शन कराया जाता है ।

२. बाहर या शरीर के भीतर किसी एक देश में चित्त को ठहराना धारणा कहलाती है, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है, जब केवल ध्येय मात्र यानि जिसका ध्यान किया जावे उसकी ही प्रतीति होती है और चित्त का निज स्वरूप शून्य सा हो जाता है, तब वही ध्यान समाधि कहलाता है ।

प्रेम गली अति साँकरी ता में दो न समाएं ।
जब मैं था तब साहब नहीं, जब साहब हैं तब मैं नाएं ॥

और जब धारणा ध्यान समाधि तीनों इकट्ठे हो जाते हैं तो उसको संयम कहते हैं । जब योगी ऐसा संयमी बन जाता है तब उसकी बुद्धि में अलौकिक ज्ञानशक्ति आ जाती है । दूसरे के चित्त का साक्षात् कर लेने से दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है यह mind reading है । हाथी के समान बल प्राप्त हो जाता है । कण्ठ कूप में संयम करने से भूख, प्यास मिट जाती है, कूर्माकार नाड़ी में संयम करने से चित्त और शरीर दोनों स्थिर हो जाते हैं ।

३—योगदर्शन के कैवल्य पाद में पाँच सिद्धियों का वर्णन किया

गया है जो योगी को सिद्ध हो जाती हैं, सिद्धि की तारीफ करते हुए लिखा है कि शरीर इन्द्रिय और चित्त में परिवर्तन होने से जो पहले की अपेक्षा विलक्षण शक्तियाँ पैदा हो जाती हैं इन्हीं को सिद्धि कहते हैं और वे पांच प्रकार की हैं ।

१. **जन्म से होने वाली सिद्धि**–जब योगी मर कर एक योनि से दूसरी योनि में जाता है । तब उसके प्रारब्धानुसार शरीर इन्द्रियों और चित्त का परिवर्तन होकर इन में अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है । दुनिया के अन्दर जितने भी महापुरुष हुए हैं वे सभी इसी जन्म के कर्मों के प्रभाव से नहीं बन पाये, परन्तु जन्म जन्म के ही इस प्रकार के संस्कार लेकर ही आए थे जिससे इस जन्म में इनका जीवन चमत्कारक बन सका। एक अंग्रेज शायर कहता है–The height which greatmen reached and kept was not attained by sudden flight. अर्थात् बड़े आदमी एकदम बड़े आदमी नहीं बन गए । उर्दू के शायर ने भी कहा है–"सौ बार जब अकाक कटा तब नगीं हुआ ।" यानी मुन्दरी में आने से पहले सौ बार उसको कटना पड़ता है ।

२. **औषध से होने वाली सिद्धि**–यानी औषधि का उपचार करने से जो शरीर का कायाकल्प हो जाता है ।

३. **मन्त्र से होने वाली सिद्धि**–जब मनुष्य विलक्षण सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए किसी मन्त्र का अनुष्ठान करता है, तब इससे भी इन्द्रियों और चित्त में विलक्षण शक्ति पैदा हो जाती है ।

४. **तप से पैदा होने वाली सिद्धि**–जब मनुष्य शास्त्रोक्त तप विधिवत् करता है, अथवा अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए भारी से भारी कष्ट सहर्ष सहन करता है, परन्तु धर्म का त्याग नहीं करता तब इसके शरीर इन्द्रियों और चित्त समस्त के मल नष्ट हो जाते हैं और उनमें अपूर्व शक्ति का प्रादुर्भाव हो जाता है ।

५. **समाधि से होने वाली सिद्धियों** का वर्णन विभूतिपाद में आ चुका है । और आप स्वयं देख सकेंगे कि योगदर्शन में वर्णित सिद्धियां और योग की विभूतियां सब ही महर्षि को सिद्ध हो चुकी थीं ।

१. अजमेर जब स्वामी जी पहली बार आए तो शामलालसिंह जी एकाउण्टेंट जनरल रेलवे के दफ्तर में क्लर्क थे । उनकी श्रद्धा स्वामी

जी पर हो गई। एक दिन उन्होंने अपने घर से स्वामी जी को दूध भिजवाया, उनकी माता को यह बात बुरी मालूम हुई और उसने क्रोध करके कहा– उस मुण्डे संन्यासी को दूध क्यों पिलाता है। जब उनका नौकर दूध लेकर स्वामी जी के पास गया, तब स्वामी जी ने तिरस्कार पूर्वक उससे कहा कि यह दूध वापस ले जाओ मुझे ऐसा चिन्तायुक्त दूध नहीं चाहिए। और आयन्दा भी मेरे लिए ऐसी अनिच्छा से भेजा हुआ दूध मत लाना। शामलालसिंह जी को इस पर बहुत खेद हुआ। जब अपनी माता से पूछा तो इन्हें अपनी माता की कृपणता का वृत्तान्त मालूम हुआ।

२. करनवास में एक दिन एक ब्राह्मण ने महाराज को भोजन का निमन्त्रण दिया। महाराज ने उसे स्वीकार कर लिया। इस ब्राह्मण ने ठाकुरों को भोग लगाया हुआ भोजन महाराज के सामने रखा, परन्तु स्वामी जी ने यह कहकर खाने से इन्कार कर दिया कि हम किसी का जूठा भोजन नहीं खाते।

३. करनवास में एक दिन रतीराम नामी पहलवान जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था महाराज के निवासस्थान पर आया और महाराज को देखकर तिरस्कार पूर्ण बोला–अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है। महाराज ने उसे कुछ उत्तर नहीं दिया परन्तु इस पर अपने नेत्रों की इस प्रकार ज्योति डाली कि इस का सारा घमण्ड चूर हो गया और इस पर महाराज का इतना रोब छाया कि तुरन्त श्रीचरणों में गिरा और हाथ जोड़ कर अपने अशिष्ट व्यवहार के लिए क्षमा मांगी।

४. करनवास में ही एक दिन १५/२० पण्डित, जिनमें पण्डित कमलनेत्र और सुखदेव अच्छे विद्वान् थे, एक बहुत ही मुश्किल सवाल पूछने के अभिप्राय से स्वामी जी के पास आये, इस समय महाराज गंगा तट पर गये हुए थे, ये सब लोग उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहे। थोड़ी देर में जब महाराज वहां आ गए तो सब ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया। महाराज बैठ कर थोड़ी देर तो ध्यानावस्थित हो गए, जब उन्होंने आंखें खोलीं तो उनसे कहा कि जो कुछ पूछने आए हो पूछो। स्वामी जी ने एक दो बार उनसे कहा परन्तु कोई न बोला, तब स्वामी जी ने अपना उपदेश आरम्भ कर दिया। वे सब लोग सुनते रहे और सत्य वचन महाराज ही कहते रहे, थोड़ी देर पश्चात् वे लोग चले गये। और रास्ते में जाते

हुए एक-दूसरे से कहने लगे-कि न जाने दयानन्द के पास क्या शक्ति है कि हम सब के मुख पर ताले लग गये और जो प्रश्न सोच कर ले गये थे उन में से एक भी पूछ न सके ।

योग-साधन की अन्तिम सीढ़ी कैवल्य पद-प्राप्ति ही है, सो योगदर्शनकार ऋषि ४-२६ में कहते हैं । उस समय योगी का चित्त असार संसार के विषयों की ओर नहीं जाता उनसे सर्वथा विरक्त हो जाता है, इस विवेक ज्ञान में निरन्तर रहता है तथा कैवल्य के अभिमुख हो जाता है अर्थात् अपने आप में विलीन होना आरम्भ कर देता है, क्योंकि चित्त का अपने कारण में विलीन हो जाना, और द्रष्टा का स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना यही कैवल्य है । फिर ३० सूत्र में ऋषि कहते हैं कि जब योगी को धर्ममेघ समाधि सिद्ध हो जाती है, तब इस योगी को अविद्यादि पांचों क्लेश तथा सब कर्मों के संस्कार नष्ट हो जाते हैं । अतः वह योगी जीवनमुक्त कहलाता है । अतः इस राजयोग को महर्षि दयानन्द जी ने कितने कष्ट उठा कर और कितना समय लगाकर सिद्ध किया, यह नीचे लिखे वर्णन में पढ़िये ।

५. अपने ही घर में पहले छोटी बहिन फिर प्यारे चाचा जी की मौत हो जाने के कारण बालक मूलशंकर के मन में वैराग्य की भावना जाग कर परिपक्व होने लग गई । सच्चे शिव की तलाश जो शिवरात्री के व्रत रखने से पैदा हुई थी, उसके साथ अब मौत की दवा ढूंढने की जिज्ञासा भी तीव्र हो उठी थी, और जिस किसी से भी इन दोनों मनोकामनाओं को पूरा करने का इलाज पूछा, सब ने एक स्वर से यही कहा कि दोनों रोगों का एक ही इलाज है और वह है योग । सर्वसम्मति से हर किसी ने यही राय दी तो अब योगसाधन की लालसा ने इनको घर त्याग करने पर तैयार करना शुरू कर दिया । अतः अब आप घर त्याग करने की योजना बनाने लगे । और दूसरी तरफ इनके माता पिता उनको विवाह के बन्धन में बांधने की योजना बनाने लगे । जब मूल जी को यह पता लगा तो उन्होंने पिता जी को साफ़ कह दिया, कि मैं विवाह के बन्धन में नहीं बन्धना चाहता परन्तु उनके पिता जी को बालक मूलशंकर का यह जवाब असह्य हो गया । अब बाप और बेटा अपनी-अपनी धुन के पक्के हो गये । जहां मां बाप ने विवाह की पूरी तैयारी

शुरू कर दी । दूसरी तरफ़ बेटे ने भी घर के त्याग की पूरी तैयारी कर ली, और एक दिन संवत् १९०३ मुताबिक सन् १८४६ पूरे २१ वर्ष की भरपूर जवानी में घर के ऐश वा आराम को लात मार कर सायंकाल के समय किसी से कुछ कहे बिना सदा के लिए पितृ-गृह को छोड़ दिया ।

न सुध बुध की ली और न मंगल की ली ।
घर से निकल राह जंगल की ली ॥

और योगसाधन सीखने के लिए योगियों की तलाश में सरगरम हो गये । जहां-जहां भी किसी योगी का नाम सुनते वहीं पहुंच जाते । सब से पहले उन्होंने पहचाने जाने के डर से घर के वस्त्र उतार ब्रह्मचारियों जैसे वस्त्र पहन कर अपना नाम शुद्ध चैतन्य रख लिया । लेकिन ब्रह्मचर्य आश्रम में रहते हुए भी उनको योगाभ्यास करने में अड़चन महसूस हुई, अतः घर से निकलने के एक वर्ष बाद स्वामी पूर्णानन्द जी से संन्यास की दीक्षा लेकर दयानन्द सरस्वती नाम से प्रसिद्ध हुए । और जहां कहीं भी योग में प्रवीण किसी साधु संन्यासी का नाम सुना फ़ौरन वहां पहुंचे। अतः स्वामी योगानन्द जी से योग की दीक्षा प्राप्त करते रहे और योगानुष्ठान भी करते रहे । योगानन्द और उसके साथी ज्वालानन्द पुरी जी से भी महर्षि दयानन्द जी ने योग की बहुत उच्च शिक्षा प्राप्त की और उनके साथ योगाभ्यास भी करते रहे । महर्षि स्वयम् अपने चरित्र में लिखते हैं ।' योगविद्या की जो कुछ भी क्रिया गत शिक्षा थी वह मैंने उन्हीं दोनों साधुओं से पाई और मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूं ।" इसके सिवा महर्षि शिवानन्द गिरि, भवानी गिरि, और दूसरे बहुत से योगियों के सत्संग में आए और योगाभ्यास को पूर्णता तक पहुंचने के लिए आप निम्नलिखित स्थानों में योगाभ्यास करते रहे और तीन दिन रात यानि ७२ घण्टे की समाधि सिद्ध कर ली, इस योग के सिद्ध हो जाने से वह इतना कार्य करने में सफलता प्राप्त कर पाए ।

महर्षि के योगसाधन के स्थान–

१. शैला नगरी,	१३. हरद्वार	२७. केदारनाथ,
२. कोटकांगड़ा,	१४. चण्डी का जंगल,	२८. त्रियुगी नारायण
३. सिद्धपुर,	१५. हृषीकेश,	२९. बद्रीनारायण
४. चेतनमठ वटोदर	१६. टिहरी श्रीनगर,	३०. सत्पथ,
५. चाणोद कर्णाली,	१७. देवप्रयाग	३१. नर्मदा नदी का स्रोत
६. व्यासाश्रम,	१८. रुद्रप्रयाग,	३२. गङ्गोत्तरी,
७. छिनूर या सिनोर	१९. केदार घाट,	३३. उत्तरकाशी
८. दुग्धेश्वर मन्दिर, (अहमदाबाद)	२०. तुङ्गनाथ,	३४. गंगापार चोल के जंगल के जल प्रपात
	२१. ओखीमठ,	
९. आबू पर्वत	२२. ज्योतिर्मठ,	३५. धराली की गुफा
१०. अर्बुदा भवानी गिरिश्रृङ्ग	२३. अलखनन्दा,	३६. भटवाड़ी का ऊंचा जंगल
	२४. वसुधारा,	
११. उत्तराखण्ड,	२५. गौरीकुण्ड,	३७. मल्लाचट्टी का मार्ग
१२. हिमालय	२६. भीमा गुफा,	३८. बूढ़ केदार आदि आदि।

६. महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में राजयोग और महर्षि वेदव्यास जी ने गीता में कर्मयोग का वर्णन किया है। गीता महाभारत का एक हिस्सा ही है, और महाभारत की रचना वेदव्यास जी ने की थी, परन्तु गीता को कृष्ण अर्जुन के संवाद बनाकर वर्णन किया गया है। योगदर्शन में चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग कहा गया है। और गीता के २।५० श्लोक में योग की तारीफ़ यूं की गई है–"समत्व बुद्धियुक्त पुरुष पुण्य पाप दोनों को ही इस लोक में त्याग देता है। अर्थात् कम्पायमान नहीं होता, यह समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्म में चतुरता है यानि सिद्धि असिद्धि किसी की भी परवाह न करके कर्तव्य करते जाना ही योग है।" फिर ७।४६ में कहा है–कर्म योगी तपस्वियों से भी श्रेष्ठ है, इसलिए हे अर्जुन तू योगी बन, निष्काम कर्म करना ही गीताकार को अभीष्ट है। फल की कामना न करते हुए अपने कर्तव्य कर्मों को करते चले जाना। क्योंकि साफ कहा गया है कि तेरा कर्म करने का अधिकार है, फल में मनुष्य का अधिकार नहीं है, इसलिए जिसमें अपना अधिकार नहीं

है, उसकी चिन्ता फ़िज़ूल है और जिसमें अपना अधिकार है उसको पूर्ण रूप से सम्पन्न करना ही योग गीताकार ने लिखा है ।

७. संसार के अन्दर राजयोगी भी बहुत हुए होंगे, और शायद आज भी कोई हिमालय की गुफ़ाओं में मिल जाए, परन्तु ऐसे राजयोगियों से संसार को क्या लाभ, क्योंकि अपने लिए तो एक चींटी भी परिश्रम करती है । इसलिए अगर किसी योगी ने समाधि लगा कर ईश्वर का साक्षात्कार कर भी लिया तो संसार को क्या और इस तरह कर्मयोगी भी संसार के अन्दर पहले भी बहुत से हुए और अब भी बहुत से मिल जाएंगे। परन्तु राजयोग और कर्मयोग दोनों में समृद्ध पुरुष तो पांच हजार वर्ष के अरसे में केवल दो ही हुए हैं । स्वामी शंकराचार्य और स्वामी दयानन्द महर्षि के जीवन की निम्नलिखित घटनाएं महर्षि के राजयोगी और कर्म योगी होने का भरपूर प्रमाण दे रही हैं ।

८. करनवास में एक दिन पण्डित नन्दकिशोर अध्यापक स्वामी जी के पास जा रहे थे, मार्ग में एक खेत से काले सेम की फलियां तोड़ कर ले जाकर स्वामी जी की भेंट कीं । स्वामी जी ने कहा नन्दकिशोर जी आप यह फलियां चोरी करके लाये हो । यह शब्द सुन कर वह बहुत सटपटाये और बोले कि महाराज मैंने किसकी चोरी की है । तो महाराज ने हंसकर कहा कि सच कहिये, क्या आप ये फलियां खेत के स्वामी से पूछ कर लाये हैं । इस पर पण्डित नन्दकिशोर जी लज्जित हुए और अपने कर्म पर पश्चात्ताप करने लगे महाराज ने वे फलियां ग्रहण न कीं ।

९. अम्बागढ़ में एक दिन महाराज उपदेश दे रहे थे सभा मण्डप श्रद्धालुओं से खचाख़च भरा हुआ था । एक जाट क्रोध में भरा हुआ एक मोटा सा लठ लिये हुए आया, और आते ही स्वामी जी को सम्बोधन करके बोला । अरे साधू तू मूर्तिपूजा का खण्डन करता है। गंगा मैया की निन्दा करता है, देवी देवताओं को बुरा कहता है । झट पट बता यह लठ कहां मार कर तुझे समाप्त करूं । यह सुन कर एक बात तो सारी सभा विचलित हो गई परन्तु स्वामी जी की शान्ति और धैर्य भंग न हुआ । उन्होंने गम्भीरता पूर्वक उससे कहा—यदि तू समझता है कि मेरा धर्म प्रचार करना अपराध है तो इसका अपराधी मेरा मस्तक

है, वही मुझ से यह कार्य कराता है, तू अपना लठ मेरे सिर पर मार। यह कहकर महाराज ने अपनी दिव्य दृष्टि उस पर डाली । महाराज की आंखें ज्यों ही उसकी आंखों के सामने हुईं त्यों ही उसका हिंसा भाव लुप्त हो गया । चरणों में गिर पड़ा और रो रो कर अपना अपराध क्षमा कराने लगा । महाराज ने उससे कहा कि तुमने मेरा कोई अपराध नहीं किया । यदि तुम मुझे मारते तो भी कोई बात न थी, व्यर्थ क्यों रो रहे हो, जाओ ईश्वर तुम्हें सन्मार्ग दिखलाए ।

१०. जलालाबाद के नवाब साहब ने महर्षि दयानन्द से पूछा कि कोई ऐसी भी विद्या है कि यहां बैठा हुआ आदमी दूसरी जगह की बात जान सके, महाराज ने कहा कि योगी लोग इच्छा नहीं करते, सब से गुप्त ब्रह्मविद्या है योगी का उसी को जानने का उद्देश्य है लेकिन योगी अगर चाहे तो योगविद्या द्वारा गुप्त बातों को जान सकता है ।

११. कानपुर में अनेक पण्डित महाराज से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ करने आते थे और परास्त होकर चले जाते थे, एक दिन कुछ पण्डित षड्विंश ब्राह्मण का प्रमाण 'प्रतिमा हसन्ति' इत्यादि लेकर इस आशा से स्वामी जी के पास आए कि आज स्वामी जी को परास्त करेंगे । स्वामी जी ने उनसे पूछा कि कोई प्रमाण लाए हो, उन्होंने कहा कि लाए हैं, स्वामी जी ने कहा वही प्रतिमा हसन्ति वाला लाये होंगे । यह सुनकर वे इतने घबराये कि अंगोछे से पुस्तक भी न खुल सकी और लज्जित होकर वापस चले गये ।

१२. काशी में सब से बड़े शास्त्रार्थ के दिन बलदेवप्रसाद स्वामी जी के सेवक ने कहा कि महाराज आज बहुत भीड़ होगी । काशी गुण्डों का शहर है, यदि फर्रूखाबाद होता तो दस बीस आदमी आप के पक्ष के भी होते, स्वामी जी यह बात सुन कर हँसे और बोले-'योगियों का यह निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार की सेना पर अकेला ही विजय पाता है ।' और ऐसा ही हुआ । काशी के सब बड़े-बड़े पण्डित काशी का राजा उसका भाई, तमाम शहर के गुण्डे एक तरफ और पचास हजार की हाजरी में अकेला दयानन्द सत्य का सूर्य एक तरफ और अन्धकार की सारी सेना पर विजय प्राप्त करके योगियों के निश्चित सिद्धान्त का बोल बाला कर गया ।

१३. दूसरी बार काशी निवास में एक दिन महाराज सत्संगियों को उपदेश दे रहे थे कि उपदेश करते-करते रुक गये और कहा कि थोड़ी देर में एक विशेष घटना होने वाली है । कुछ देर के बाद एक ब्राह्मण महाराज के लिए भोजन और पान लाया और उनसे भोजन पाने की प्रार्थना की, महाराज ने स्वीकार न किया, परन्तु उसके आग्रह करनेपर कि पान तो ले लें । पान लेकर महाराज ने खोल कर देखा तो वह ब्राह्मण तेज़ी से दौड़ गया। भोजन और पान दोनों में जहर मिलाया हुआ था ।

१४. पटना में डिप्टी सोहनलाल ने राजनाथ विद्यार्थी को कहा कि स्वामी जी के लिए दूध ले जाओ, रात का वक्त था वह दूध लेकर जब चला, रात अन्धेरी थी, बूंदें भी पड़ रही थीं । स्वामी जी का डेरा बस्ती से दूर था । सड़क पर दोनों तर्फ़ पानी थां, थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि सड़क पर सांप पड़ा है, इसने सोचा कि वापस चला जाऊं परन्तु पीछे मुड़ कर देखा तो उधर भी एक बड़ा सांप छुपा पाया, फिर वह आगे की तर्फ़ ही बढ़ा, और सांप के ऊपर से छलांग लगा कर फांद कर भाग खड़ा हुआ । जब स्वामी जी के पास पहुंचा तो वे बैठे हुए थे, स्वामी जी ने इस से कहा कि क्या मार्ग में तू डरा था और तूने सांप देखा था, राजनाथ को बड़ा आश्चर्य हुआ कि स्वामी को सारी बातें कैसे पता लग गईं ।

१५. पटना में एक दिन स्वामी जी का कहार गंगा तट पर जो लकड़ी की टाल थी, उस पर सूखी लकड़ी मांगने चला गया । स्वामी जी को उसकी खबर न थी, टाल वाले ने पूछा—कि लकड़ी किसके लिए चाहिए तो कहार ने कहा—स्वामी जी के लिए । टाल वाले ने कहा हम नहीं जानते कौन स्वामी है । जब कहार वापस आया तो स्वामी जी ने राजनाथ विद्यार्थी को कहा कि इसके जूते लगाओ, राजनाथ बड़ा हैरान हुआ कि स्वामी जी ऐसी आज्ञा क्यों दे रहे हैं । उसने स्वामी जी से पूछा—इसने क्या अपराध किया है ? स्वामी जी ने कहा कि वह टाल पर लकड़ी की भिक्षा मांगने गया था । जब राजनाथ ने कहार से पूछा तो उसने सब बात मान ली । इतने में टाल वाला लकड़ी लेकर आ गया। तब स्वामी जी ने दोनों से कहा कि ख़बरदार किसी से भिक्षा मांगी तो दोनों को निकाल दूंगा ।

१६. भागलपुर निवास के वक्त एक दिन राजनाथ रसोई बना रहा था, स्वामी जी ने राजनाथ से कहा-तेरा पिता आ गया है। हमने तुम से कहा था कि अपने पिता की आज्ञा लेकर आओ परन्तु तुम ने न माना, राजनाथ रसोई से बाहर आया परन्तु उसके पिता का कहीं पता न था, आध घण्टे के बाद इसका पिता सचमुच आ गया। वह राजनाथ को देख कर रोने लगा। स्वामी जी ने कहा तुम अपने पुत्र को ले जाओ। हम दूसरे साधुओं की तरह नहीं हैं कि तुम्हारे पुत्र को चेला बना कर तुम को दुःख दें।

१७. पण्डित पन्नालाल जोधपुर निवासी ने देवेन्द्र बाबू से कहा था कि जिन दिनों स्वामी जी काशी में थे, मैं भी काशी में था और जिस पण्डित के पास भी जाता था और स्वामी जी का ज़िकर करता था तो वह यही कह दिया करता था कि स्वामी जी को परास्त करने का सामर्थ्य किसी में नहीं है।

१८. प्रयाग निवास के समय श्री ठाकुरदास ने एक दिन स्वामी जी को योगाभ्यास करते हुए कमरे के किवाड़ों के दरार में से देखा था कि स्वामी जी समाधिस्थ अवस्था में धीरे-धीरे पृथ्वी से ऊपर उठ रहे हैं, और थोड़ी देर में ही वे अधर में स्थित हो गये यानि कमरे के मध्य में ठहर गये थे।

१९. काशीनिवास में एक दिन महाराज ध्यान से निवृत्त होकर हंसते हुए बाहर आए तो पण्डित सुन्दरलाल ने हंसने का कारण पूछा- उन्होंने कहा एक मनुष्य मेरी ओर आ रहा है, थोड़ी देर पीछे एक मनुष्य आया और नमोनारायण कर के बैठ गया उसने कुछ मिठाई महाराज के आगे रखकर खाने की प्रार्थना की, स्वामी जी ने कहा थोड़ी सी मिठाई तुम भी लो, परन्तु उसने न ली, जब महाराज ने डांट कर कहा तब भी उसने न ली और कांपने लगा। स्वामी जी ने कहा कि यह हमारे लिए विष युक्त मिठाई लाया है। पण्डित सुन्दरलाल ने उसको पकड़ना चाहा, परन्तु स्वामी जी ने उन्हें पकड़ने न दिया और उसे क्षमा कर दिया। फिर उस मिठाई में से थोड़ी सी एक कुत्ते को डाली। कुत्ता उसे खाकर मर गया।

२०. एक बार गंगा के तट पर विचरते हुए, स्वामी जी एक घने

जंगल में जा निकले वहां इन्हें सामने से एक शेर आता दिखाई दिया। स्वामी जी सीधे चलते रहे, जब वह इस शेर के पास पहुंचे तो शेर ने स्वामी जी को देख कर मुंह फेर लिया और जंगल में घुस गया। (अहिंसा को स्वामी जी ने सिद्ध किया हुआ था।)

२१. मुलतान निवास के वक्त एक दिन पण्डित कृष्णनारायण अपने अन्य कई मुसलमान और ईसाई मित्रों के साथ महाराज का व्याख्यान सुनने गये। और सब लोग कुछ प्रश्न पूछना चाहते थे, परन्तु उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ कर दिया और इन सब लोगों के सब प्रश्नों का उत्तर बिना पूछे ही उनको मिल गया, जिससे इन लोगों को विश्वास हो गया कि महाराज सच्चे योगी हैं।

२२. मुन्शी सेवाराम इन दिनों मेरठ में नहर के जिलादार थे, एक दिन उन्होंने महाराज से कहा कि यदि मैं नहर का डिप्टी मजिस्ट्रेट हो जाऊं तो पहले मास का वेतन वेदभाष्य की सहायता के लिए दूंगा। इसके कुछ काल के पश्चात् उनको यह पद मिल गया, अभी उन्होंने यह शुभ समाचार अपने किसी मित्र या रिश्तेदार को भी न कहा था कि स्वामी जी का पत्र उनके पास आया, जिसमें इन्हें बधाई दी गई थी और उनकी प्रतिज्ञा याद कराई गई थी।

२३. मैडम ब्लोवट्सकी ने अपनी किताब में लिखा है कि स्वामी जी महाराज ने उनको कहा था कि वह सन् १८८४ नहीं देखेंगे और इसलिए उन्होंने अपनी वसीयत भी सन् १८८३ में ही उदयपुर में करा दी थी।

२४. शाहपुरानिवास के समय खस की टट्टी के कमरे में पंखे के नीचे बैठ कर वेदभाष्य लिखवाया करते थे, खस की टट्टी पर जल छिड़कने के लिए एक हौज था जिस में प्रतिदिन कूएं का ताजा जल भर दिया जाता था। इसमें से जल लेकर घासीलाल ब्राह्मण टट्टी पर जल छिड़कता था। एक दिन नौकर ने आलस्य किया और हौज को अच्छी तरह साफ न करके इसमें थोड़ा जल रह गया था इस पर ताजा जल भर दिया। जब टट्टी पर वह मिला ज़ुला जल छिड़का गया तो महाराज ने यह बात जान ली और उसी वक्त वेदभाष्य का काम बन्द कर दिया और कहा कि इस सारे हौज को बिल्कुल खाली कर के ताजा जल भर कर फिर छिड़को। घासीलाल को कहा तुमने बासी जल में

ताजा जल मिला कर छिड़का है। (यह भी योग की एक विभूति है कि घ्राण इन्द्रिय इतनी प्रबल हो जाती है)।

२५. आगरा में आगरा कालेज के विद्यार्थी ब्रह्मानन्द दर्शन करने आए, स्वामी जी इस समय कुटिया में न थे। पण्डित भीमसेन और पण्डित ज्वालादत्त बैठे थे, ब्रह्मानन्द जी ने कहा–क्यों जी आप किसी आत्मज्ञानी योगी को जानते हैं। ज्वालादत्त जी बोले कि इस समय स्वामी दयानन्द से बढ़ कर कौन है। हमने स्वयम् उनको कई बार समाधि में देखा है। वेदभाष्य कराते समय जब कोई गूढ़ विषय जान पड़ता तो तुरन्त समाधि लगा लेते और उस गूढ़ विषय को सिद्ध कर लेते थे।

२६. जिस वक्त से महर्षि दयानन्द गुरु आज्ञा मान कर प्रचार क्षेत्र में उतरे उसी वक्त से महर्षि के दो ही काम रहे। हर रोज योग-अभ्यास करना और हर रोज वेद प्रचार का निष्काम कर्म करना। यानि राजयोग और निष्काम कार्य योग ही इनका रोजाना का प्रोग्राम रहा है।

२७. अजमेर निवास के समय एक दिन एक अंग्रेज साईंसदान ने स्वामी जी से योग की सिद्धियों की बाबत संशय प्रकट किया। महाराज ने पहले तो युक्ति प्रमाण से योग सिद्धियों की सच्चाई प्रमाणित की जब फिर भी उसकी तसल्ली न हुई तो महाराज ने कहा कि क्या आप समझते हैं कि मैं जो इतना बड़ा कार्य करता हूं यह बिना योगसिद्धि के कर रहा हूं। इस जवाब पर उस अंग्रेज साईंसदान की तसल्ली हो गई कि वास्तव में इतना महान् कार्य साधारण मनुष्य कदापि नहीं कर सकता।

२८. मुरादाबाद में एक दिन तीन पण्डित शास्त्रार्थ करने के विचार से स्वामी जी के पास आये, परन्तु शास्त्रार्था करना तो अलग रहा, वह स्वामी जी को देख कर कांपने लग गये, और उनके मुंह से बात तक निकलनी कठिन हो गई।

२९. दानापुर में एक दिन एक आदमी ने महाराज से कहा ईश्वर-उपासना में मन नहीं लगता तो महाराज मन्द मुस्कान से बोले–महाशय यदि मन एकाग्र नहीं होता तो भंग का एक लोटा और पी लिया करो। अब वह आश्चर्य में था कि स्वामी जी को मेरे भंग पीने का पता कैसे लग गया। क्योंकि वह भंग पिया करता था।

३०. अमृतसर में एक कमरे में बैठे हुए वेदभाष्य लिखा रहे थे,

अचानक किसी विचार तरंग में उठ कर खड़े हो गये, और कहने लगे कि शीघ्रता से इस कमरे का सब सामान निकाल कर दूसरी जगह ले चलो । सब इस अकारण आज्ञा पर आश्चर्यचकित हो गये परन्तु सब सामान बाहर निकाल दिया । अभी सारा सामान निकाल कर कमरा खाली किया ही था कि उसकी छत गिर पड़ी ।

३१. एक दिन महर्षि शौच करने बैठे हुए थे, कि एक मनुष्य नंगी तलवार लेकर उनके पीछे आ खड़ा हुआ, स्वामी जी ने इससे कहा मैं शौच से निवृत्त हो लूं फिर मेरा सिर काट लेना, इस पर वह राजी हो गया । जब महाराज शौच से निवृत्त हो चुके । तब उन्होंने अपनी आंख की ज्योति उस पर डाली और गर्दन उसके आगे झुका दी, इससे वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे वहां से चला गया ।

३२. नर्मदा तीर पर विचरते हुए एक दिन घने जंगल में एक बहुत बलवान् काला रीछ स्वामी जी के सामने आ खड़ा हुआ, और अपने दोनों पाओं पर खड़ा हो गया, परन्तु ज्यों ही स्वामी जी ने अपनी आंखों की ज्योति इसकी आंखों में डाली, वह मुंह फेर कर जंगल में चला गया।

३३. उदयपुर निवास में नौलखा बाग़ के समीप ही एक बड़ा सरोवर है, महाराज गोवर्धन पर्वत को उसी के तीर-तीर जाया करते थे। एक दिन सहजानन्द ने देखा कि महाराज पद्मासन लगाए जल पर ध्यानावस्थित हैं । सहजानन्द यह देख कर चकित हुए परन्तु साथ ही महाराज की योगविद्या में निपुणता उनके हृदय में अंकित हो गई । कभी-कभी महाराज लम्बी समाधि भी लगाया करते थे, और जब उन्होंने ऐसा करना होंता था तो एक दिन पहले सब को कह दिया करते थे कि कल मेरे पास कोई न आए और न किवाड़ खटखटाये, और कई बार २४ घण्टे की असम्प्रज्ञात संमाधि लगाया करते थे, वरना १८-१८ घण्टे तो उनकी आम समाधि लगती थी ।

३४. एक दिन महाराणा सज्जनसिंह और सहजानन्द श्री सेवा में उपस्थित थे, और वार्तालाप कर रहे थे कि महाराज ने कहा कि पण्डित सुन्दरलाल जी आ रहे हैं । अगर पहले सूचना दे देते तो सवारी का उचित प्रबन्ध हो जाता । महाराणा साहब ने कहा कि सवारी का प्रबन्ध तो अब भी हो सकता है परन्तु महाराज बोले कि अब तो वे बैलगाड़ी में आ

रहे हैं। इसका एक बैल श्वेत और एक काला है। वह कल यहां पहुंच जाएंगे, अगले दिन पण्डित सुन्दरलाल जी उदयपुर पहुंच गये।

३५. गंगा तीर विचरते समय एक दिन गंगा में पैर डाल कर मौज में बैठे थे कि नदी में एक बड़ा मगरमच्छ निकल आया। पास खड़े लोगों ने शोर मचा कर कहा—स्वामी जी मगरमच्छ निकला है ऊपर आ जाइये। महाराज ने हंस कर कहा—जब हमारे मन में इसके प्रति वैर भाव नहीं है तो हमें क्यों दुःख देगा और अपनी जगह पर बैठे रहे, मगर उनके पास आ कर वापस चला गया।

बोलो पूर्ण योगी महर्षि दयानन्द सरस्वती की जय!

१०५. "पूर्ण ब्रह्मचारी"

(क) ब्रह्मचर्य की पहली विभूति शारीरिक बल—

महर्षि दयानन्द न केवल स्वयं पूर्ण ब्रह्मचारी थे अपितु इस हितकर और महान् विषय पर प्रभावशाली व्याख्यान देते थे। वैसा अन्य किसी ने नहीं किया। हम यह नहीं कहते कि शंकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य, कबीर और गौरांगदेव आदि ने ब्रह्मचर्य के महत्त्व को साधारण भाव से प्रकट नहीं किया परन्तु इतना अवश्य कहते हैं, कि जिस असाधारण और अपरिहार्य भाव से ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, और इसके गौरव का दयानन्द प्रचार कर गये, ऐसे किसी आचार्य को करते हुए हमने नहीं देखा। मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जय किशनदास जी कहा करते थे कि जिस जोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामी जी इस विषय पर बोलते थे, ऐसा हम ने किसी से नहीं सुना था, वह सब से अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे। महर्षि का निश्चल विश्वास था कि ब्रह्मचर्य के विना मनुष्य का किसी प्रकार का कल्याण साधन नहीं हो सकता। चाहे वह शारीरिक हो, मानसिक, आर्थिक हो या आध्यात्मिक, और जो कुछ उन्होंने ब्रह्मचर्य से अपने जीवन में प्राप्त किया था। वही वह सब मनुष्यों को प्राप्त कराना चाहते थे, महर्षि ने अपने जीवन में क्या क्या विभूतियां प्राप्त कीं, यह तो उनके सारे जीवन की जगमगाती हुई ज्योति स्पष्ट रूप से दरशाती है। परन्तु निम्नलिखित केवल चन्द घटनाएं महर्षि के जीवन में ब्रह्मचर्य की महिमा

गा रही हैं ।

१. करनवास में रतीराम नामी एक पहलवान था जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था । एक दिन वह महाराज के स्थान पर आया, और महाराज को देखकर तिरस्कार पूर्वक कहने लगा, अरे यह बाबा तो बड़ा हृष्ट पुष्ट है । महाराज ने उत्तर में कुछ न कहा—परन्तु इस पर अपने नेत्रों की इस प्रकार दृष्टि डाली, कि इसका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। और उस पर महाराज का इतना रौब छा गया कि वह तत्काल ही महर्षि के चरणों में लोटने लग गया ।

२. इसी करनवास में राव कर्णसिंह ने म्यान से तलवार निकाल कर महाराज का सिर काटने के लिए हमला करना चाहा । परन्तु महाराज ने एक ही झटके से उसके हाथ से तलवार छीन कर जमीन पर मार कर तलवार को दो टुकड़े कर दिया ।

३. एक बार पण्डित मोहनलाल पाण्डे एक मास्टर के साथ कानपुर गये थे । एक दिन वह सन्ध्या समय गंगा तट पर भ्रमण करते हुए एक ऐसी जगह चले गये जहां महर्षि घाट पर एक बुर्ज पर बैठे हुए सामगान कर रहे थे । थोड़ी देर पीछे उन्होंने पाण्डे जी, मास्टर साहब से चले जाने को कहा—कि यहां उपद्रव होने वाला है, वे दोनों वापस जाने ही वाले थे कि इतने में कुछ लोग लाठियां और ढेले लिये हुए वहां आए, और महाराज पर ढेले—फैंकने लगे, और एक व्यक्ति ने आगे बढ़ कर लाठी चलाई, महाराज ने इसकी लाठी पकड़ ली, और उसे गंगा में धकेल दिया । और पास से ही एक पेड़ का टहना तोड़कर हमलावरों को हटाते हुए कहने लगे कि मित्र गण आओ । जो भी उनके पास आया उसी को चोट खाकर वापस जाना पड़ा । फिर स्वामी जी ने इन दुष्टों को ललकार कर कहा—कि मैं निरा साधु नहीं हूं । आप जैसे गुण्डों का इलाज करना भी जानता हूं । इस पर सब दुष्ट अपना सा मुंह लेकर भाग गये ।

४. काशी निवास के समय एक दिन महाराज एक घाट पर बैठे गंगा मैया से कलोल कर रहे थे, बाजार की तरफ उनकी पीठ थी । इतने में कुछ मुसलमान वहां से गुजरे । इनमें से किसी एक ने स्वामी जी का इस्लाम के खण्डन पर व्याख्यान सुना था, वह दूसरे मुसलमान

गुण्डों को कहने लगा कि यही वह बाबा है जो कुरान का खण्डन करता है । इस पर दो बलवान् गुण्डों ने स्वामी जी को गंगा में डुबोने की नीयत से पीछे से आकर स्वामी जी को धक्का देना चाहा । स्वामी जी इनका अभिप्राय समझ गये । और दोनों के एक एक हाथ को अपनी बगल में भींच कर छलांग लगा दी । अब दोनों गुण्डे गोते खाने लगे, तब जान बचाने की खातिर लगे मिन्नत समाजत करने, तब महाराज ने कहा मैं तुम को डुबोऊंगा नहीं केवल दो चार गोते और देकर यह सबक देना चाहता हूं कि पीठ पीछे से किसी पर हमला नहीं करना चाहिए । जब दो चार गोते और देने से दोनों गुण्डे निढाल हो गये तब स्वामी जी ने उनको छोड़ दिया। और स्वयं गोता लगाकर गंगा के दूसरे पार जा निकले।

५. काशीनिवास के समय ही एक दिन स्वामी जी बाहर भ्रमण करने जा रहे थे । क्या देखते हैं कि एक गड्डा सामान से लदा हुआ कीचड़ में फंसा खड़ा है और गाड़ीवान् बैलों पर जो बावजूद हृष्ट पुष्ट होने के गड्डा कीचड़ की दलदल से बाहर निकालने में असमर्थ हो रहे थे, बार बार कोड़े मार रहा है । दयालु दयानन्द से यह दशा देखी न गई । स्वयं कीचड़ में घुस गये, और सामान से लदी हुई गाड़ी को, जो हृष्ट पुष्ट बैलों से भी बाहर न निकल सकती थी, अपना कन्धा लगा कर दलदल से बाहर निकाल कर सड़क पर खड़ी करके आगे सैर को चले गये ।

६. काशी में ही एक दिन महाराज निश्चिन्त मौज से चल रहे थे, कि एक गुण्डा उनके पीछे हो लिया, उनकी दृष्टि पीछे फिरी तो देखा कि एक हट्टा कट्टा गुण्डा एक मोटा सा लठ लिये उनके पीछे आ रहा है, उन्होंने इस जोर से हुँकार नाद किया कि गुण्डा भयभीत हो कर भाग गया ।

७. मिर्जापुर निवास में बूढ़े महादेव के मन्दिर का पुजारी छोटू-गिर गोसाईं बड़ा हृष्ट पुष्ट था, वह मूर्तिपूजा खण्डन से महाराज से द्वेष करने लगा, एक दिन वह कुछ साथियों को लेकर स्वामी जी का प्राण-हरण करने के लिए उनके डेरे पर आया । और चिल्लाकर बोला–"बच्चा हम तेरे गुरु हैं, आज तुझे हम मूर्तिपूजा खण्डन का मजा चखायेंगे । जब स्वामी जी ने देखा कि यह अब दुष्टता करना चाहता है तो अपने सिरहाने

का पत्थर उठा कर जोर से हुंकार नाद करके कहने लगे, मूर्ख तू मुझे रोब दिखाता है । यदि मैं ऐसे ही भय खाता तो सारे देश में घूम घूम कर प्रचार कैसे कर सकता । तब ललकार कर बोले कि आओ मेरे नजदीक तो आओ, तब स्वामी जी की ललकार सुन कर वह हृष्ट पुष्ट और उसके साथी कांपने लगे ।

८. स्वामी जी की हुंकार से दुष्टों का टट्टी पेशाब निकल गया।

मिर्जापुर निवास के समय उसी छोटूगिर ने एक दिन दो गुण्डों को स्वामी जी का वध करने के लिए कुछ लालच देकर भेजा, वे स्वामी जी के स्थान पर आकर गुण्डापन का मजहरा करने लगे । पहले तो महाराज ने उनको कोमल शब्दों में रोका परन्तु जब वे न रुके तब महाराज ने उठ कर ऐसा हुंकार नाद किया कि दोनों गुण्डों का टट्टी पेशाब निकल गया । और वे बेहोश होकर वहीं गिर पड़े ।

९. कासगंज निवास के समय एक दिन शाम के समय स्वामी जी जंगल की ओर शौच के लिए जा रहे थे, और कई विद्यार्थी और अनुरागी जन उनके साथ थे, थोड़ी दूर चल कर गुलजारीलाल क्षत्री के बाग के सामने देखा कि मार्ग रुका हुआ है, कुछ और आगे बढ़ कर देखा कि मार्ग दूसरी ओर से भी रुका हुआ है । न इधर के लोग उधर जा सकते हैं । न उधर के लोग इधर आ सकते हैं । कारण यह था कि मार्ग के बीच में दो सांड आपस में लड़ रहे थे । दोनों सांडों के मुंह आपस में एक दूसरे से मिल रहे थे । और वे दोनों एक दूसरे को धकेलने का यत्न कर रहे थे, और यह द्वन्द्व युद्ध निरन्तर दो घण्टे से चल रहा था । कुछ देर तो स्वामी जी भी इस युद्ध की प्रतीक्षा करते रहे, जब लोगों ने कहा चलो दूसरी ओर चलें तब स्वामी जी ने हूं कह कर अस्वीकार कर दिया और तुरन्त ही उन रनमस्त सांडों की ओर चल पड़े उनके सांथियों ने भी इनको रोका और दूसरे लोग भी चिल्लाने लग पड़े कि बाबा जी क्या करते हो परन्तु महाराज ने किसी की बात न सुनी और उन रनमस्त सांडों के पास जा कर दोनों का एक एक सींग एक एक हाथ में पकड़ लिया, और इस जोर से उनको धक्का दिया कि दोनों का मुंह आकाश की ओर उठ गया । और दोनों एक दूसरे से अलग अलग हो गये । सांड इतने डर गये कि मार्ग छोड़ कर चले गये, और

लोगों का आने जाने का मार्ग खुल गया। (सांड की ताकत शेर से भी अधिक होती है यह प्रसिद्ध ही है।)

१०. बम्बई निवास के समय जीवन जी गुसाईं ने चार गुण्डों को लालच देकर स्वामी जी को जान से मार डालने के लिए नियत किया, वे गुण्डे जिधर स्वामी जी प्रातःकाल सैर को जाया करते थे उधर ही रास्ते में बैठ गये। जब स्वामी जी वापस आ रहे थे कि चारों गुण्डे हाथों में लाठियां ले कर स्वामी जी के सामने आ खड़े हुए और आक्रमण करने ही वाले थे कि स्वामी जी ने अपने डण्डे से एक आक्रमणकारी पर वार किया और इतने जोर से हुंकार नाद किया कि चारों गुण्डे भयभीत हो कर वहां से भाग गये।

११. जालन्धर निवास के समय एक दिन राजा विक्रमसिंह जी ने महाराज से कहा कि सुनते हैं कि ब्रह्मचर्य से बहुत बल बढ़ता है। महाराज ने कहा कि यह बात सत्य है तो राजा साहब ने कहा कि शास्त्रों के कथन का सत्य सिद्ध होना कठिन है, आप भी तो ब्रह्मचारी हैं परन्तु आप में इतना बल प्रतीत नहीं होता, महाराज उस समय तो चुप हो गये परन्तु जब सरदार साहब अपने दो घोड़ों की गाड़ी पर सवार होकर, चलने लगे तो स्वामी जी महाराज ने पीछे से चुपके-चुपके गाड़ी का पहिया पकड़ लिया, कोचवान ने गाड़ी को चलाना चाहा, परन्तु घोड़े न चल सके, फिर उसने घोड़ों को चाबुक मारा चाबुक खाने पर घोड़ों ने बहुतेरा जोर लगाया पर वे चल न सके। कोचवान और राजा साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो स्वामी जी महाराज गाड़ी का पहिया पकड़े खड़े थे। तब स्वामी जी ने राजा साहब की ओर देखते हुए कहा कि मैंने ब्रह्मचर्य के बल का परिचय दे दिया है। तब राजा विक्रमसिंह जी ने महाराज के चरण छुए और चले गये।

११. गुजरात (पंजाब) में एक दिन महाराज के व्याख्यान स्थल पर बहुत से गुण्डों ने आक्रमण कर दिया। महाराज बड़ी मुश्किल से अपने निवास-स्थल पर पहुंच गये परन्तु आक्रमणकारियों की भीड़ उनके निवास स्थान के बाहर खड़े होकर हल्ला गुल्ला करती रही। इतने में स्वामी जी का एक नौकर लाठी लेकर बाहर आया तो उनको गुण्डों ने खूब पीटा। इस पर स्वामी जी स्वयं लाठी लेकर बाहर आए और इस

जोर से गर्जना की कि सारी भीड़ भयभीत होकर तितर बितर हो गई।

१२. गुजरांवाला निवास में एक दिन ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुए महाराज ने कहा था कि हरिसिंह नलवा बड़ा शूरवीर था। सम्भवतः वह २५-२६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा होगा, फिर कहा कि मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की है और ब्रह्मचर्य अखण्डित है, मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूं कि जिस किसी को अपने बल का घमण्ड हो मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूं। वह छुड़वा लेवे या मैं अपना हाथ खड़ा करता हूं मेरे हाथ को झुका देवे, इस समय लगभग ५०० मनुष्यों की हाजरी थी, जिसमें कश्मीरी पहलवान भी थे परन्तु किसी को भी महाराज का चैलेंज स्वीकार करने का साहस न हुआ।

१३. मेरठ निवास में एक दिन रात्रि के नौ बजे, बेनप्रशाद और उनके कुछ मित्रों ने महाराज की सेवा में उपस्थित होकर कहा कि हम आप के पैर दबाना चाहते हैं, महाराज जान गये कि इस तरह वह इनके बल की परीक्षा करना चाहते हैं अतः उन्होंने कहा कि पैर तो पीछे दबाना पहले मेरा पांव उठाओ। यह कह कर अपने पांव जमीन पर फैला दिये। युवकों ने बहुतेरा जोर लगाया पर अंगद पांव की भांति महाराज का पांव न उठ सका।

१४. कहते हैं कि किसी एक नगर में एक पहलवान रहता था, जिसे अपने बल पर बड़ा घमण्ड था। वह अकेला ही कूंआ चलाकर अपने स्नान के लिए हौज पानी का भर लेता था। वह स्वयं और दूसरे लोग भी यह समझते थे कि दूसरा कोई इस प्रकार हौज नहीं भर सकता। घटनावश महाराज भी उस नगर में पहुंच गये। महाराज का यह नियम था कि वह प्रातःकाल भ्रमणार्थ नगर से बाहर जाया करते थे, एक दिन महाराज ने भी उसको हौज भरते देख लिया। इसके पश्चात् एक दिन वायु-सेवन के अर्थ भ्रमण करते हुए वह इसी तरफ से गुजरे उनके जी में आई कि आज हम भी हौज भरें। कुआ चला कर महाराज ने हौज भर दिया और वायु-सेवन अर्थ आगे चले गये। तब पहलवान आया तो उसने देखा कि हौज पानी से भरा पड़ा है। तब उसके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा। उसको यह सोच हुई कि मेरे समान कौन बलवान् पैदा हो गया है। उसने वहां के रहने वालों से पूछताछ की तो उन्होंने

कहा कि अभी अभी एक साधु हौज भर कर आगे चला गया है। पहलवान साधु के दर्शन करने की इच्छा से बैठ गया थोड़ी देर में स्वामी जी महाराज भी बड़ी तेज गति से आते हुए दिखाई दिये। पहलवान ने आगे बढ़ कर स्वामी जी का स्वागत किया और कहा कि आप हौज भर कर थके नहीं स्वामी जी ने उत्तर दिया कि हमारा तो व्यायाम भी इस हौज के भरने से पूरा नहीं हुआ। इसलिए हमें भ्रमण करने आगे जाना पड़ा। पहलवान यह सुन कर हक्का बक्का रह गया और महाराज के चरण छूने लग गया।

१५. एक बार जब स्वामी जी एकाएकी घूमते थे तो वाममार्गियों ने देवी पर बलि चढ़ाने की कुचेष्टा की। परन्तु स्वामी जी महाराज अपने ब्रह्मचर्य बल से इन दुष्टों को मारते हटाते गिराते हुए आठ फुट ऊंची दीवार पर छलांग लगा कर चढ़ गये और दूसरी ओर उतर कर इन कातलों के पंजों से बच गये।

लाख रुपये की एक बात

१६. काशी-निवास में एक दिन महाराज ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान दे रहे थे कि एक मुसलमान नौजवान भी व्याख्यान सुनने लगा। व्याख्यान की समाप्ति पर वह महाराज जी से कहने लगा कि आप मुझे भी कुछ उपदेश देवें। महर्षि जी ने कहा कि आप २५ वर्ष की आयु से पहले विवाह न करना और २५ वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहना, इस मुसलमान नौजवान ने स्वामी जी की आज्ञा पालनकर अपना बहुत हित किया। तब आठ वर्ष के बाद जब स्वामी जी फिर काशी पधारे तो महाराज के पास वह मुसलमान नौजवान आया। स्वामी जी ने उसको तुरन्त पहचान लिया और कहा कि क्या तूने हमारी आज्ञा का पालन किया था। तब मुसलमान नौजवान कहने लगा। महाराज वह आप की लाख रुपये की बात थी। मैंने आप की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन किया है। और मैं बड़ा सुख अनुभव करता हूं।

(ख) स्मरण-शक्ति का विकास

१. महर्षि की स्मरण-शक्ति अलौकिक थी, वह पाठ को एक दो बार सुनने से स्मरण कर लेते थे परन्तु एक दिन अष्टाध्यायी की प्रयोग-सिद्धि स्मृति से उतर गई। उन्होंने उसे दण्डी जी से दो बार पूछा, दण्डी

जी ने न बताया और कहा कि जाओ स्मरण करके आओ, हम बार-बार बताने के लिए नहीं हैं। दयानन्द ने बहुतेरा प्रयत्न किया परन्तु सफलता न हुई। वे फिर गुरुदेव के पास गये और कहा कि महाराज मैंने तो बहुत प्रयत्न किया परन्तु वह प्रयोग स्मृति-पथ पर नहीं आया। दण्डी जी अपनी हठ के पक्के थे। शिष्य की प्रार्थना पर उन्होंने कान न दिया। बल्कि डांट कर बोले कि जब तक पिछला पाठ न सुना दोगे तब तक अगला पाठ नहीं चलेगा तुम्हें अगर वह पाठ याद नहीं आता तो जमना में भले ही डूब जाओ परन्तु मेरे पास न आना। दयानन्द को गुरुदेव के वचन तीर के समान चुभे उन्होंने यह संकल्प कर लिया कि या तो पाठ स्मरण करूंगा नहीं तो यमुना में डूब कर प्राण दे दूंगा। यह संकल्प करके वे विश्राम घाट के समीप सीता घाट शिखर पर चढ़ कर समाधिस्थ हो गये कि यदि पाठ-स्मरण न आया तो मैं यहीं से यमुना जी में छलांग लगा दूंगा परन्तु समाधि अवस्था में उनको पाठ-स्मरण हो गया और वह विपत्ति दूर हो गई।

२. बरेली नगर में चौधरी तालाब के निकटवर्ती कोठी में स्वामी जी बरेली निवास के समय ठहरा करते थे, एक बार बरेली के एक दिग्गज विद्वान् ने स्वामी जी को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया। सभामण्डप दर्शकों से खचाखच भर गया। इस पण्डित ने ऋषि पर ५० प्रश्न किये, जो एक कागज पर लिखकर वह पण्डित सभा में ले गया था। स्वामी जी ने कहा—सब प्रश्न सुना दीजिये, उसने सुना दिये। स्वामी जी ने कहा—ये प्रश्न आपके हैं या और किसी के, पण्डित जी ने कहा मैं स्वयं पण्डित हूं। स्वामी जी ने कहा—कि यदि ये प्रश्न आपके हैं तो कागज बन्द करके सुना दीजिए। पण्डित जी बिना देखे सब प्रश्न न सुना सके। तब स्वामी जी ने कहा कि आप अपना कागज अपने पास रखिये मैं आपके प्रश्नों को सुनाता हूं। स्वामी जी ने इस पण्डित के ५० सों प्रश्न सिलसिले वार सुना दिये। जिस सिलसिले से कागज पर लिखे हुए थे पण्डित ने बोले थे। तब इस दिग्गज विद्वान् ने महर्षि को प्रणाम किया कि महाराज मैं आपके साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकता।

३. लाहौर निवास के समय पं० शिवनारायण अग्निहोत्री ने आक्षेप किया कि सामवेद में उल्लू की कथा है। महाराज ने कहा कि नहीं

है और सामवेद का पुस्तक इन्हें देकर कहा-कि यदि है तो इसमें से निकाल कर दिखला दीजिये । कुछ देर तक पुस्तक के पन्ने उलटने के बाद कहा कि इसमें तो नहीं मिलती । इस पर महाराज तो चुप रहे, परन्तु अन्य पास बैठे लोगों ने पण्डित जी को बहुत शर्मिन्दा किया ।

४. लाहौर निवास के समय ऐसे ही एक पण्डित ने महाराज से कहा कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का विधान है, और एक श्लोक भी पढ़ दिया । महाराज ने कहा-कि यह मनुस्मृति का श्लोक नहीं है । और कहा कि यदि यह श्लोक मनुस्मृति में न निकला तो क्या आप मूर्तिपूजा छोड़ देंगे । यह कह कर मनुस्मृति का पुस्तक पण्डित जी को दे दिया और कहा कि श्लोक निकाल कर दिखाओ । पण्डित ने कहा-कि मैं आपकी मनुस्मृति से नहीं किन्तु अपनी मनुस्मृति से निकाल कर लाऊंगा। स्वामी जी ने कहा-बहुत अच्छा । जब तीसरे दिन वह पण्डित फिर आया तो स्वामी जी ने पूछा कि क्या वह श्लोक आपकी मनुस्मृति में मिला। तब पण्डित जी हंसने लगे कि नहीं मिला ।

५. और इसी प्रकार एक पण्डित ने एक श्लोक पढ़ कर कहा- कि देखो योगवाशिष्ठ में मूर्तिपूजा की आज्ञा है । इस पर स्वामी जी ने कहा कि यद्यपि हम योगवाशिष्ठ को प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं मानते परन्तु आपके श्लोक में आधा योगवाशिष्ठ का है और आधा किसी और की रचना है । इस पर जब योगवाशिष्ठ का ग्रन्थ देखा तो आधा ही श्लोक वहां निकला ।

६. किसी आदमी को एक बार देख लेने के बाद सालों तक उसे न भूलते थे, और मिलने पर पहचान लेते थे । अतः एक मुसलमान नौजवान जिसको ब्रह्मचर्य का उपदेश काशी में दिया था दस साल के बाद भी उसको पहचान लिया । और पण्डित भगवानवल्लभ वैद्य अनूपशहर निवासी को भी कई सालों बाद देखने पर भी तुरन्त पहचान लिया ।

७. सन् १८७४ में बम्बई जाते हुए रास्ते में नासिक शहर में महाराज सिर्फ़ चार दिन रहे । उन दिनों में उन्होंने दो व्याख्यान दिये । एक दिन व्याख्यान नासिक के प्रसिद्ध राममन्दिर में हुआ और दूसरा ताप्ती नदी के तट पर । राममन्दिर नासिक के पञ्चवटी भाग में है, व्याख्यानों

में जन साधारण बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे । एक व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा था कि श्री रामचन्द्र जी वनवास के समय पंचवटी में आकर रहे थे तो इससे इसे तीर्थ मानने का क्या प्रयोजन । इस समय नासिक में श्री विष्णु मोरेश्वर भिड्डे सब जज थे, इनके गृह पर स्वामी जी के साथ पण्डितों के शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया गया । और विशेष विशेष पण्डितों को निमन्त्रित किया गया था । इस सम्बन्ध में बम्बई के समाचार पत्र इन्दुप्रकाश में महाराज की वाक्-शक्ति, विद्या और स्मरण-शक्ति के अद्भुत होने का लेख लिखा गया था । जो निम्नलिखित प्रकार है–

"स्वामी जी की मानसिक शक्तियां दुर्लभ हैं, उनकी वाणी बड़ी प्रभाव उत्पादक है, उनकी स्मृति चूकने वाली नहीं है। इसके साथ ही वे अपने सुधार-कार्य में उच्च कोटि के संस्कृत पाण्डित्य और हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों के गहन परिचय से योग लेते हैं । हिन्दुओं के भिन्न-भिन्न दर्शनों के गूढ़ ग्रन्थों के इतने संकेत होते हैं कि हमारी सम्मति में किसी लिखित निबन्ध में भी और अच्छे पुस्तकालय की सहायता से भी उतने वचनों का उद्धरण करना सहज नहीं है । पण्डित दयानन्द में ऐसे विशेष गुण हैं जो इन्हें दूसरों से अलग करते हैं । इनके हिन्दू धर्म-सम्बन्धी विचार बहुत ठीक और उदार हैं। पण्डित दयानन्द इस कपट के सच्चे मन से विरोधी हैं। जिनमें पुरोहित श्रेणी की मक्कारी ने हमारे सरल चित्त जन साधारण को धर्म के नाम पर फांस रखा है । अतः पण्डित दयानन्द में प्रकृति आदियोपार्जित गुणों का दुर्लभ सम्मिलन है । इसलिए यह देख कर हम सब को विशुद्ध प्रसन्नता हुई है । उन्होंने अपने जीवन को अपने देश के सुधार में लगाने का निश्चय किया है । और मूर्तिपूजा का दमन करने का व्रत धारण कर लिया है जो सभ्यता के मार्ग पर अग्रसर होने में रुकावट डालने और युक्ति विरुद्ध विचारों का उत्पत्ति स्थान है ।

८. गुजरात (पंजाब) में एक दिन पंण्डित होशनाकराय ने कहा कि मनुस्मृति में मूर्तिपूजा का विधान है । महाराज ने कहा कि नहीं है तब पण्डित जी ने एक श्लोक पढ़कर के कहा–कि यह मनुस्मृति का श्लोक है, जिससे मूर्तिपूजा सिद्ध हुई है, इस पर महाराज ने कहा कि आप झूठ बोलते हैं । यह श्लोक मनुस्मृति का नहीं है अपितु विष्णुपुराण का है । इस पर पण्डित जी शर्मिन्दा होकर चले गये ।

१०६. बाल ब्रह्मचारी का संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता

महाभारत युद्ध की समाप्ति पर महाराज युधिष्ठिर ने शरशय्या पर पड़े ब्रह्मचारी भीष्म पितामह जी से उपदेश प्राप्ति के लिए कितने ही प्रश्न किये, उनमें से एक यह भी था कि "बाल ब्रह्मचारी की क्या पहचान है।" पितामह जी ने उत्तर दिया--"बाल ब्रह्मचारी का संकल्प कभी निष्फल नहीं जाता।"

इस कसौटी पर परखते हुए हम देखते हैं बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती का कोई भी संकल्प निष्फल नहीं गया और उनके सारे ही संकल्प सफल हुए हैं।

१. महर्षि जी ने स्वराज की महिमा गाई, उसकी प्राप्ति के साधन बताए, और स्वराज की प्राप्ति होकर उनका यह पहला संकल्प पूरा हुआ।

२. सारे देश की एक भाषा हो, और वह हिन्दी ही हो। हमारे विधान ने ऐसा मान कर महर्षि का दूसरा संकल्प भी पूरा कर दिया।

३. छूत-छात, ऊंच-नीच का भेद-भाव समाप्त करके सब को एक जैसा उन्नति करने का अवकाश मिलना चाहिए। देश के विधान ने महर्षि के तीसरे संकल्प को भी स्वीकार कर लिया।

४. छोटी आयु में विवाह नहीं होना चाहिए कानून बनाकर महर्षि के इस संकल्प पर भी फूल चढ़ाये गये।

५. एक स्त्री के होते हुए, पुरुष को दूसरा विवाह का अधिकार न हो। महर्षि का यह संकल्प भी पूरा हुआ।

६. सात वर्ष की आयु के बाद जो माता पिता अपने बच्चों को पाठशाला में न भेजें। उनको दण्ड दिया जावे। यह संकल्प भी कानून बन कर पूरा हो गया।

७. देश में पञ्चायत राज्य होना चाहिए। यह संकल्प भी महर्षि का ज्यों का त्यों पूरा हो गया। और देश में पञ्चायत राज्य चलाने का कानून बन चुका है।

८. देश में कल कारखाने खुलने चाहिए। जिससे देश उन्नत हो। महर्षि का यह संकल्प भी सफल हो रहा है।

बोलो बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द की जय !

१०७. पूर्ण महात्मा

द्वन्द्वअतीत पूर्ण महात्मा होता है। द्वन्द्व कहते हैं जोड़े यानि सर्दी-गर्मी, दुःख-सुख, भूख-प्यास, मान-अपमान। इन द्वन्द्वों को जो सहन कर लेता है, वह पूर्ण महात्मा कहा जाता है। सो महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के अन्दर इन द्वन्द्वों को सहन करने की अपार शक्ति थी। सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुख-दुःख, इन सब को तो महर्षि बिल्कुल खातर में नहीं लाते थे। जो महापुरुष बर्फ से ढकी हुई पहाड़ों की चोटियों पर खूंखार जानवरों से भरे हुए जंगलात में वर्षों तक एकाकी बिल्कुल अल्प वस्त्रों में और फिर पूरे छः वर्ष सिर्फ एक लंगोटी में ही घूमता रहा हो, और जिसने भूख निवृत्ति के लिए कभी किसी के सामने हाथ न पसारा हो, भला इससे बढ़कर भी कोई उसके द्वन्द्वातीत होने का प्रमाण मिल सकता है। बाकी रही मान अपमान की बात तो इस द्वन्द्व को सहन करने की भी पूर्ण शक्ति महर्षि में थी जो इनके जीवन निम्न घटनाओं से स्पष्ट हो रही है।

१. जब काशी शास्त्रार्थ में काशी के राजा और पण्डितों ने मिल मिलाकर महर्षि के किसी सवाल का जवाब देने की अपने में सामर्थ्य न पाकर हल्ला गुल्ला करके महर्षि की हार घोषित कर दी और फिर ईंट पत्थर जूते चला कर घोर अपमान किया तो उसी शाम को एक निर्मल साधु महाराज के पास आया, यह देखने के लिए कि इतने घोर अपमान का महर्षि पर क्या प्रभाव पड़ा है परन्तु वह यह देखकर हैरान रह गया कि महर्षि ने इसके साथ इस घोर अपमान की बात तक नहीं की और साधारण वार्तालाप इससे करते रहे। तब इस निर्मल साधु ने कहा कि पहले तो मैं आपको अजेय पण्डित ही समझता था परन्तु आज मुझे विश्वास हो गया कि आप पूर्ण महात्मा भी हैं।

२. काशी में ही महर्षि से परास्त होकर पण्डितों ने एक गधे पर एक व्यक्ति को भगवे वस्त्र पहना कर और गले में जूतियों का हार डालकर स्वांग बना कर, उस पर दयानन्द लिखकर उसका जलूस बाजारों में निकाला, महर्षि के एक भक्त ने महर्षि को इस घटना का वृत्तान्त सुनाया तो ऋषि हंस कर कहने लगे, वे सब ठीक कर रहे हैं। "नकली दयानन्द" के साथ ऐसा ही सलूक होना चाहिए।

३. लाहौर निवास के समय जब पण्डित लोग महर्षि के सामने न ठहर सके तो वे दीवान रत्नचन्द जी के सुपुत्र दीवान भगवानदास के पास गये। जिन के बाग में महाराज ठहरे हुए थे, और कहा कि दयानन्द को ईसाइयों ने तनख्वाह देकर सब हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए नियत किया है, ऐसे नास्तिक को आपने बाग में ठहरा रखा है, इससे घोर पाप लगेगा। दीवान साहब उनकी बातों में आ गये, और महर्षि को अपने बाग से निकाल दिया।

४. जब महाराज लाहौर पधारे तो उनके सब खर्च की जिम्मेदारी ब्रह्मसमाजियों ने अपने ऊपर ली थी, और इसके लिए उन्होंने चन्दा भी किया था। दो सप्ताह तक तो वे सब खर्च करते रहे परन्तु जब उन्होंने देखा कि महर्षि पर इनका रंग नहीं चढ़ता, और वे ब्रह्मसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार नहीं करते, बल्कि उनका भी खण्डन करते हैं। तब उन्होंने न सिर्फ आगे के लिए खर्च देना बन्द कर दिया। बल्कि पिछले दो सप्ताह के खर्च का बिल २५ रुपया महर्षि जी से वसूल कर लिया।

५. एक ही दिन एक ही जगह मान अपमान करने वाली दोनों घटनाएं महर्षि के मान अपमान सहन करने की पूरी शक्ति का उदाहरण देती हैं। **महादेव गोविन्द रानाडे आदि सुधारक सज्जनों ने महर्षि को पूना आवाहन किया। और महाराज ने वहां ५० व्याख्यान दिए। और वे सब व्याख्यान रानाडे महोदय ने पुस्तक में छपवा दिये।** १५ व्याख्यान जो शहर में दिये थे, उनका हिन्दी अनुवाद उपदेशमञ्जरी के नाम से प्रकाशित हुआ था। पूना में अपना कार्य समाप्त करके स्वामी जी ने सितारा जाने की इच्छा प्रकट की। तब उनके श्रद्धालु भक्तों ने आपस में परामर्श करके यह स्थिर किया कि उनके प्रति अपने ऊपर किये उपकार को प्रकट करने के लिए इन्हें सम्मान पूर्वक शहर और छावनी में ले जाया जावे, और ५ सितम्बर १८७५ रविवार का दिन निश्चित किया गया और तदर्थ शहर और छावनी में तैयारियां शुरू कर दी गईं। स्वामी जी की समारोह यात्रा के लिए ३००) रुपये इकट्ठे किये गये। यह निश्चय हुआ कि ५ सितम्बर को पहले छावनी में महाराज का एक व्याख्यान कराया जावे, और तत्पश्चात् समारोह यात्रा (जलूस) नगर को ले जाया जावे, सभा के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे गये, और सभागृह को

फूल और पत्तों से खूब सजाया गया । जलूस के लिए देसी और अंग्रेजी बैण्ड बाजे मंगाये गये, कैम्प मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेकर महाराज की सवारी के लिए हाथी मंगवाया गया, जिसको खूब सजाया गया, क्योंकि विपक्षियों की तरफ से दंगा फ़साद का भी खतरा था । इसलिए पुलिस का भी प्रबन्ध कर लिया गया । संवर्धन सभा संगठित हुई । श्रोताओं में हिन्दु, मुसलमान, पारसी, यहूदी, ईसाई सब ही मौजूद थे, स्वामी जी ने अपने व्याख्यान में "यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः । इत्यादि वेदमन्त्र की व्याख्या की । व्याख्यान की समाप्ति पर श्री भाव भसके ने एक सुन्दर वक्तृता की जिस में महाराज के उपकारों का वर्णन करके उनके प्रति पूना निवासियों की कृतज्ञता प्रकट करके अन्त में कहा–'स्वामी जी की व्याख्यान-माला से सभी को लाभ हुआ है, इसलिए कृतज्ञता प्रकट करने के चिह्न स्वरूप हमें कोई उत्तम पारिषद इनको भेंट करना चाहिए और मैं आशा करता हूं कि स्वामी जी इसे ग्रहण करने की कृपा करेंगे।'

महाराज ने कहा यद्यपि मैं किसी पारिषद लेने को उद्यत नहीं हूं परन्तु न लेने से आप लोग असन्तुष्ट होंगे, अतः मैं इसे स्वीकार करने में बाधित हूं । इसके अनन्तर एक जोड़ा शाल, एक पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर और एक रेशमी चादर अत्यन्त श्रद्धा से महाराज को भेंट किये, और सब श्रोताओं ने महाराज पर पुष्प-वर्षा की, और उपस्थित लोगों में पान सुपारी बांटी गई और जलूस आरम्भ हो गया। महाराज ने हाथी पर सवार होना स्वीकार न किया और वे अन्य मनुष्यों के साथ पैदल ही चल पड़े । जलूस का क्रम ऐसा था कि सब के आगे हाथी, उसके पीछे कोतल घोड़े, फिर पोलीस के सिपाही, और उनके पीछे बैंड बाजे, और उसके पीछे महर्षि जी और उनके श्रद्धालु भक्त जिनकी संख्या ३००-४०० थी । यह थी सम्मान की पराकाष्ठा ।

६. अब निहारिये अपमान की पराकाष्ठा, स्वामी जी का इस प्रकार सम्मान होने से विपक्षी दल के हृदयों में ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि जल उठी, और उनके सीने में इस मान से बरछियां चलने लगीं । तब उन लोगों ने परामर्श करके स्वामी जी के अपमान करने के निमित्त गर्दभ समारोह यात्रा निकाली । एक गधे को सजाया गया, उस पर गेरवे रंग की चादर जैसी की स्वामी जी पहना करते थे झूल डाली, और उस पर

गर्दभानन्द सरस्वती के शब्द लिखे और उसके आगे बाजे बजाते हुए "गर्दभानन्द सरस्वती की जय," "दयानन्द गधे की जय" बोलते हुए पूना नगर के बाजारों में घूमने लगे। शहर के सब लुच्चे, लफंगे, गुण्डे बहुत बड़ी संख्या में विपक्षी दल के इस जलूस में शामिल हुए। स्वामी जी की समारोह यात्रा ५ बजे सायंकाल कैम्प से चलकर नगर में पहुंच कर भवानी-पीठ, गणेश-पीठ, आदित्य वार-पीठ, बुधवार-पीठ में से होती हुई भिड़े के बाड़े की ओर जहां स्वामी जी का व्याख्यान होने को था जाने लगी तो साढ़े सात बजे गये थे, दूसरी तरफ से विपक्षियों का जलूस भी पहुंच गया। और 'स्वामी गधे की जय' 'दयानन्द गधे की जय' बोलना आरम्भ कर दिया गया, तब गधे को पुलिस के हवाले करा दिया गया, फिर विपक्षी दल ने मशालें बुझा दीं और स्वामी जी और उनके श्रद्धालुओं पर ईंट, पत्थर, गोबर, कीचड़ फैंकना आरम्भ कर दिया। गली के मकानों की छतों से ईंटें बरसने लगीं और कई लोगों को चोटें भी लगीं। इस हुल्लड़बाजी में रात के दस बज गये, पोलीस वाले खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे। उन्होंने उपद्रव को शान्त करने का कोई भी उपाय न किया। तब किसी ने पुलिस कप्तान को खबर कर दी, और वह एक इन्स्पैक्टर और १०० सिपाही लेकर उपद्रव स्थल पर पहुंच गए परन्तु इतना बड़ा भारी उपद्रव होते हुए भी इतनी भीड़ में से सिर्फ एक व्यक्ति गिरफ्तार किया गया। उपद्रव शान्त होने पर भी गर्दभ दल के लगभग १००० मनुष्य वहां खड़े रहे। उपद्रव समाप्त होने पर स्वामी जी उस मकान में पहुंच गये जहां उनका व्याख्यान होना था। और उन्होंने व्याख्यान दिया परन्तु अपने उपरोक्त घोर अपमान का उन्होंने कोई जिकर तक नहीं किया। उनका स्वर पहले की भांति मधुर, गम्भीर और स्पष्ट था। श्रोतागण महर्षि का व्याख्यान सुनने के लिए इतने लालायित थे कि इतना बड़ा भारी उपद्रव होने पर भी व्याख्यान-स्थल श्रद्धालुओं से भर गया था, व्याख्यान की समाप्ति पर बहुत से विद्वान् पुरुषों ने महाराज की भूरि भूरि प्रशंसा की। महादेव गोविन्द रानाडे ने सभा की ओर से २५० रुपया वेदभाष्य की सहायता के लिए स्वामी जी को भेंट किये। इस समय रात के बारह बज गये थे। ट्रेन साहब इन्स्पैक्टर ने जो व्याख्यान-स्थल में उपस्थित थे, कहा कि आज की रात आप इसी जगह व्यतीत

करें क्योंकि बाहर जाने पर आप पर आक्रमण होने की सम्भावना है। तब स्वामी जी ने कहा कि आपका काम रक्षा करना है । आप अपना काम करें, हम तो अपने निवास-स्थान पर ही जाकर आराम करेंगे । इस पर पुलिस विवश होकर स्वामी जी के साथ गई, और उनको निवास-स्थान पर पहुँचा आई ।

विरोधी दल ने जो इस समय तक बाजार में डटा खड़ा था । पुलिस और स्वामी जी पर ईंट पत्थर बरसाए । पूना शहर की इन दोनों घटनाओं से ज्ञात होता है कि स्वामी जी महाराज में मान अपमान सहन करने की कितनी सहन-शक्ति, साहस, विपुल वीर्य, दृढ़ संकल्प, निश्चल निर्भीकता के गुण थे । वे चट्टान की तरह अटल थे। जिसे टकरा कर विरोध की लहरें छिन्न भिन्न हो जाती थीं ।

६. बम्बई के विष्णु परशुराम शास्त्री जी जब महर्षि के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ रहे तब उन्होंने अखबारों में स्वामी जी पर मिथ्या दोषारोपण करने के अलावा उनको अवधूत, धूरत और असत्यवादी आदि आदि कुवाक्य लिखने आरम्भ कर दिये परन्तु महाराज ने इनकी तनिक भी परवाह न की ।

७. महर्षि को प्रचार-काल में बीसियों आदमियों ने गालियां निकालीं । कई जगह ठहरने वाले स्थानों से निकाले गये । ईंट, पत्थर, लाठियां लोगों ने मारीं, वृन्दावन में एक आदमी ने मुट्ठी में खाक भर कर महर्षि के सिर पर डाल दी । यह सब तरह के अपमान महर्षि हंसते हंसते सहन करके, संसार के दुखी प्राणियों को वेद का पवित्र सुख और शान्तिदायक मार्ग दिखलाते ही चले गये । इतने घोर अपमान के अतिरिक्त भी अपने पूज्य गुरु जी से जो प्रतिज्ञा वैदिक धर्म प्रचार की की थी, वह आखिरी सांस देकर भी पूरी की ।

बोलो पूर्ण महात्मा महर्षि दयानन्द की जय ।

१०८. पूर्ण धर्मात्मा

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥

भगवान् मनु ने धर्म के दश लक्षण बतलाये हैं । वे ये हैं–

१. **धृति**—सदा सुख में, दुःख में, भले में, बुरे में धैर्य रखना।

२. **क्षमा**—सदा मानापमान, हानि-लाभ, स्तुति-निन्दा आदि में सहनशीलता रखना ।

३. **दम**—ज्ञान और कर्म इन्द्रियों तथा मन को सदैव भले कामों में प्रवृत्त रखना और पथभ्रष्ट न होना ।

४. **अस्तेय**—चोरी न करना, दूसरे के धन तथा अन्य पदार्थों को बिना उसकी आज्ञा के तथा कपट-छल से लेना चोरी है और ऐसा न करना अस्तेय है । पर-द्रव्य का लोभ न करना अस्तेय है ।

५. **शौच**—मन, वाणी तथा कर्म की पवित्रता शौच है । शरीर को जल आदि से शुद्ध रखना और मन और वाणी से किसी का बुरा चिन्तन और सम्बोधन न करना शौच है ।

६. **इन्द्रियनिग्रह**—दस इन्द्रियों को सदा धर्म में लगाए रखना और उन्हें पाप से दूर रखना ही इन्द्रिय-निग्रह कहलाता है ।

७. **धी**—मद्य, मांस तथा अन्य बुद्धिनाशक पदार्थों से परहेज करना, कुसंगत से दूर रहना और शुद्ध बुद्धि रखना तथा शरीर-पोषक पदार्थों का सेवन, स्वाध्याय तथा महात्माओं की संगत में रहना, सन्ध्या-हवन तथा प्रभु की स्तुति-प्रार्थना से बुद्धि को पवित्र बनाना धी है ।

८. **विद्या**—परा तथा अपरा विद्या का अध्ययन करना, ब्रह्मा से जैमिनि पर्यन्त ऋषियों के ज्ञान का ग्राप्त करना और अविद्या से सदैव दूर रहना विद्या कहलाता है ।

९. **सत्य**—जो जैसी बात हो, उसको वैसा ही समझना, वैसा ही वाणी पर लाना और वैसा ही कर्म में प्रयोग करना सत्य है । किसी दशा में भी इस नियम का परित्याग न करना चाहिए ।

१०. **अक्रोध**—किसी दशा में भी क्रोध न करना, सदैव सहनशील रहना और शान्ति को हाथ से न छोड़ना ही अक्रोध है ।

महर्षि जी ने धर्म के सब अंगों को पूर्ण रूप से अपने जीवन में धारण किया हुआ था, जो इस पुस्तक में पाठक पढ़ेंगे ।

१०९. पूर्ण भक्त

महर्षि दयानन्द परमात्मा के परम भक्त थे, योग समाधि उनको सिद्ध हो चुकी थी । और प्रचार कार्य करते हुए भी महर्षि रात्रि को तीन बजे के करीब उठ कर परम पिता परमात्मा का ध्यान किया करते थे । जिस दिन शास्त्रार्थ करना होता था, उस दिन कुछ अधिक समय प्रभु-चिन्तन में लगाया करते थे, प्रभु-भक्ति से भक्त को अभीष्ट फल मिलता है, यह सभी आस्तिक लोग स्वीकार करते हैं । आस्तिक लोगों में कई ऐसे हैं जो यह मानते हैं कि प्रभु-भक्ति का फल मिलता है परन्तु परलोक सम्बन्धी, जैसे दूसरे जन्म में अच्छी योनि मिलनी, अच्छे आदमियों के घर पैदा होना या स्वर्ग की प्राप्ति, बहिश्त का मिलना, मोक्ष-प्राप्ति अर्थात् नजात का मिलना, आदि आदि । दूसरी विचारधारा के कई ऐसे लोग भी हैं, जो प्रभु-भक्ति का फल केवल सांसारिक सुख सम्पत्ति-स्त्री, पुत्र, नौकर चाकर की प्राप्ति मानते हैं परन्तु परम भक्त दयानन्द प्रभुभक्ति का फल लौकिक और पारलौकिक दोनों स्वीकार करते हैं । उनका विचार है कि इस लोक तथा परलोक के जो भी सुख या पदार्थ अभीष्ट हैं, सच्चे हृदय से तथा अटल विश्वास और श्रद्धा पूर्वक भक्ति करने वाले भक्त को वे अवश्य मिलते हैं । अतः उन्होंने सन्ध्या के पहले मन्त्र-

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभि स्रवन्तु नः ।।

में आये हुए अभीष्ट पद का अर्थ किया है, अभीष्ट सुख की प्राप्ति ।

महाराज ने पूना शहर में बहुत से व्याख्यान दिये, जिनमें से १४ व्याख्यानों की पुस्तक उपदेशमञ्जरी के नाम से छपी हुई है। इन में एक व्याख्यान प्रभु-भक्ति पर भी था । इस में ऋषि ने हम ईश्वर-भक्ति क्यों करें का बड़ा सुन्दर विवेचन किया है । महर्षि ने ईश्वर-भक्ति के आठ फल बताये थे, यदि हम प्रभु की उपासना करते हैं तो माता-पिता से भी ज्यादा उस परम हितकारी प्रभु के प्रति अपनी कृतज्ञता का प्रकाश करते हैं । अगर हम उस दयालु परमात्मा की उपासना नहीं करते और उसके गुणानुवाद नहीं गाते तो हम कृतघ्न बनते हैं । भला जिस ईश्वर ने सृष्टि और सृष्टि के सब पदार्थ हमारे लिए ही बनाए हैं तो उसके अनन्य उपकारों को भूलना नहीं चाहिए । कृतज्ञता प्रकट करने के लिए

हमें उसकी भक्ति अवश्य करनी चाहिए।

२. प्रभुभक्ति करने वाले का कार्य सब के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने वाला होता है, वह सदैव प्रसन्न चित्त और शान्त रहता है। इसे दुःख और चिन्ता नहीं सताते, क्योंकि अहसान मानने वाले मनुष्य का कोई भी अनिष्ट या अहित नहीं चाहता।

३. जो मनुष्य नित्य प्रति प्रभुभक्ति के द्वारा उसके चरणों में लीन रहता है, उसका आत्मा दिन प्रतिदिन निर्मल होता जाता है। और आत्मा के मल विक्षेप आदि दोष दूर होके एक दिन भक्त अत्यन्त निर्मल और पवित्र बन जाता है।

४. जो भक्त प्रभु के दरबार में दीन होकर अपने सारे दोषों और अपराधों को प्रकट करता है और उनके लिए पश्चात्ताप करता है, उसके सब दोष और दुर्गुण एक न एक दिन दूर हो ही जाते हैं। पाप की वासना नष्ट होकर मन के मल धुल जाते हैं। महर्षि फ़रमाते हैं कि पापवासना के नष्ट करने का प्रभुभक्ति से बढ़ कर और कोई उपाय नहीं है।

५. प्रभुभक्ति में सत्य और प्रेम का निवास हो जाता है। सच्चिदानन्द का चिन्तन करने से उपासक का जीवन भी सत्यमय बन जाता है। वह कभी भूलकर भी असत्य का आचरण नहीं करता और वह प्राणी मात्र से प्रेम करने लग जाता है। कभी भूल कर भी किसी से द्वेष या वैर भाव नहीं रखता और न ही वह कभी अप्रिय आचरण करता है। उसका स्वभाव ही प्रेममय बन जाता है।

६. ईश्वर-भक्ति करने से ईश्वर में प्रीति बढ़ती है और ज्यों-ज्यों प्रभु के गुण हमारी समझ में आते जाते हैं त्यों-त्यों प्रीति अधिक बढ़ती जाती है।

७. उपासना के द्वारा आत्मा में सुख और शान्ति का प्रादुर्भाव होता है।

८. उपासना से विवेक उत्पन्न होता है और विवेक होने से प्राणिक वस्तुओं में शोक और मोह ये नहीं होते। सत्य असत्य और नित्य अनित्य की पहचान उसको हो जाती है और वह असत्य और अनित्य वस्तुओं में आसक्त नहीं होता।

११०. पूर्ण त्यागी ।

१–अपने माता-पिता सगे सम्बन्धियों का त्याग ।

२–अपने माता-पिता की सब सम्पत्ति से भरे घर का त्याग ।

३–भरी जवानी में होने वाली स्वाभाविक कामनाओं का त्याग।

४–हर प्रकार के मोह, ममता का त्याग ।

५–गुरु विरजानन्द को समावर्तन के समय लौंगों की भेंट देते हुए क्या पता महर्षि के मन में क्या विचार थे और वे क्या बनना चाहते थे, परन्तु गुरु जी के जीवन दक्षिणा मांगने पर एकदम अपनी सब भावनाओं का त्याग करके गुरुचरणों में सीस भेंट कर दिया ।

६–परमानन्द का त्याग करके त्याग की पराकाष्ठा पूर्ण कर दी।

जिस परमानन्द की प्राप्ति के लिए १४ वर्ष निरन्तर घोर तपस्या की और उसको प्राप्त कर लिया, निरन्तर ७२ घण्टे की समाधि लगा कर परमानन्द में मग्न रहना सीख लिया उस परमानन्द को भी सर्व-साधारण की उन्नति के लिए त्याग दिया । क्या होता है वह परमानन्द। कितना ऊंचा है उसका स्थान । उसकी व्याख्या तैत्तिरीय उपनिषत् के आठवें अनुवाक में इस प्रकार की गई है ।

७–यह आनन्द की मीमांसा आनन्द का वर्णन है ।

१–मनुष्य श्रेष्ठ, युवा तथा विद्वान् हो, पुरुषार्थी वा सुशिक्षित हो, सुदृढ़ वा अतिशय बलवान् हो, उसको धन से पूर्ण सारी पृथिवी=भूमि मिल जावे । यह एक मानुषीय आनन्द है । यह एक मनुष्य सम्बन्धी सुख है ।

२. वह जो सौ मनुष्य का आनन्द है उनके बराबर वह एक मनुष्य गन्धर्वों का आनन्द है । युवा, श्रेष्ठ, पुष्ट, उद्यमी, सुदृढ़ अंगी । महा धनाढ्य मनुष्य का आनन्द सौ गुणा किया जाये तो उतना आनन्द संगीत, नृत्य निपुण मनुष्य को होता है । पर उस मनुष्य गन्धर्व को जो वेद का विद्वान् हो और कामना के वशीभूत न हो यह आनन्द होता है ।

३–वे जो सौ मनुष्य गन्धर्व के आनन्द हैं उनके बराबर वह एक देव गन्धर्व का आनन्द है । देव गायकों का सुख, पर वह वेद का विद्वान् और कामना रहित हो ।

४. वह जो सौ गन्धर्वों के आनन्द हैं उनके बराबर एक पितर

लोकवासी पितरों का आनन्द है । पर वह पितर वेद का विद्वान् और कामनारहित हो ।

५–वह जो पितरों के सौ आनन्द हैं, उनके बराबर वह एक आनन्द है । अजानज ज्ञानज देवों का आनन्द है । वह देव वेद का विद्वान् और कामना रहित हो ।

६–वह जो सौ अजानज ज्ञानज देवों के आनन्द हैं। उनके बराबर एक आनन्द कर्म-देव का आनन्द है । कर्मदेव वे हैं जो कर्म से देवत्व को प्राप्त होते हैं । (कर्मयोगी) पर वह कर्मदेव वेद का विद्वान् और कामना रहित हो ।

७–वे जो कर्म-देवों के सौ आनन्द हैं उनके बराबर वह एक देव का आनन्द है । जो देव ज्ञानी कामना रहित हो ।

८–वह जो सौ देवों का आनन्द है, इसके बराबर वह एक इन्द्र का आनन्द है । वह इन्द्र ज्ञानी हो और कामना रहित हो

९–वे जो इन्द्र के सौ आनन्द हैं । उनके बराबर एक बृहस्पति का आनन्द है । वह ज्ञानी और कामना रहित हो ।

१०–वे जो बृहस्पति के सौ आनन्द हैं उनके बराबर एक प्रजापति का आनन्द है । पर वह ज्ञानी और कामना रहित हो ।

११–वे जो प्रजापति के सौ आनन्द हैं, उनके बराबर एक ब्रह्मा का आनन्द है । पर वह ज्ञानी और कामना रहित हो ।

१२–ऊपर के पाठ से ब्रह्मा से तात्पर्य ब्रह्मवेत्ता तथा ब्रह्मलीन से है । यह आनन्द की ऊंची कोटि है ।

१३–वह जो यह ब्रह्मा समाधि गत पुरुष में है, और वह जो आदित्य वर्ण भगवान् में है वह एक ही है । ब्रह्मा ज्ञानी और ब्रह्मा की आनन्दावस्था में समता है ।

१४–वह जो ज्ञानी आनन्द धाम ब्रह्मा की महत्ता को उक्त प्रकार से जानता है । वह इस लोक से मुक्त हो कर इस अन्तर्मय शरीर के आत्मा को पा लेता है । इस प्राणमय आत्मा को पा लेता है । वह इस मनोमय आत्मा को पा लेता है । वह इस आनन्दमय आत्मा को पा लेता है । इस पर यह श्लोक है–

इस ब्रह्मानन्द की महिमा को गान करते हुए एक भक्त ने फारसी

में एक शेर कहा है । जो ब्रह्मानन्द की ऊंची कोटि का वर्णन कर रह है । जिसका अर्थ निम्नलिखित है ।

अर्थात्–तीस वर्ष के बाद ये मुझ को साक्षात् अनुभव हुआ है कि एक मिनट भी ब्रह्मालीन होने का जो आनन्द है । वह सुलेमान की बादशाही के आनन्द से बेहतर है । कहते हैं हजरत सुलेमान जमीन, पानी, हवा का बादशाह था । गोया इस भक्त का इशारा है कि तीनों लोकों की बादशाही से भी एक मिनट की ब्रह्मलीनता में जो आनन्द है वह बड़ा है । सो आनन्द की प्राप्ति के लिए जो गुण उपनिषत्कार ने लिखे हैं वे सब ही महर्षि में विद्यमान थे । महर्षि ब्रह्मज्ञानी और कामना रहित थे । उन्होंने ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लिया था परन्तु सर्व साधारण के कल्याण के लिए इस ब्रह्मानन्द का भी त्याग कर दिया ।

अहो कितना महान् त्याग है, त्याग की पराकाष्ठा है त्याग की पूर्णता है ।

१–महर्षि के एक भक्त ने कहा कि महाराज आप इन सांसारिक झगड़ों में न पड़ते तो अनायास ही मुक्ति प्राप्त कर लेते क्योंकि आप में ऐसे ही गुण विद्यमान हैं । तब महाराज ने इस भक्त को कहा–मैं अकेला मुक्ति लेकर क्या करूंगा जब जन साधारण उल्टे मार्ग पर चल कर महाकष्ट भोग रहे हैं । मैं तो सब को ही मुक्ति का रास्ता दिखलाना चाहता हूं । मैं अकेला मुक्ति लेना नहीं चाहता ।

१११. पूर्ण विवेकी राजहंस

राजहंस पक्षी का यह गुण प्रसिद्ध है, कि उसके सामने यदि दूध और पानी मिलाकर रखा जावे तो वह दूध पी लेता है, और पानी छोड़ देता है, अथवा दूध और पानी मिले हुए में से दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है । और इसी गुण को यदि मनुष्य धारण कर ले तो उसे विवेक गुण कहा जाता है। सो महर्षि राजहंस की भांति पूर्ण विवेकी थे । वैदिक साहित्य में अहिंसा और हिंसा का दूध और पानी की तरह मिलाप हो रहा है । और उस अहिंसा और हिंसा के मिलाप को कोई पूर्ण विवेकी ही पृथक्-पृथक् कर सकता है । महर्षि जी से पहले आने वाले बहुत से आचार्य अर्थात् बुद्ध और जैन आचार्य तो अहिंसा परमो

धर्मः । का नारा लगा कर अहिंसा और हिंसा में कोई विवेक न कर सके। और फिर शंकराचार्य जैसे महापुरुष भी, कीड़ों तक को भी मारने का परहेज बता कर उसी डगर पर चलते रहे और अहिंसा तथा हिंसा के विवेक न होने के कारण हमारा यह देश एक हजार वर्ष तक विदेशियों की परतन्त्रता की जंजीरों में जकड़ा रहा और अब हजारों वर्षों के बाद महर्षि दयानन्द ही ऐसे पूर्ण पुरुष हुए हैं जिन्होंने राजहंस की भांति अहिंसा और हिंसा का विवेक करके इन दोनों के वास्तविक स्वरूप को भारत में प्रचारित कर इस मुर्दा जाति के धर्म को उजागर कर के इस देश को आजाद कराने का प्रोग्राम बनाकर देश की स्वतन्त्रता के स्वप्न को पूरा कर दिया ।

२–वेदों में बहुत से मन्त्र ऐसे हैं जो सकल संसार के साथ मित्रता का उपदेश करते हैं । जैसे "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" या "सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।" परन्तु वेद में ऐसे मन्त्र भी बहुत हैं जहां शत्रुओं को, दुष्टों को, आततायियों को, मार डालने की भी स्पष्ट आज्ञा पाई जाती है। इस प्रकार मनुस्मृति आदि धर्म ग्रन्थों में दोनों ही किस्म के श्लोक लिखे मिलते हैं, ऐसी सूरत में अहिंसा और हिंसा का जो मिश्रण वैदिक साहित्य में पाया जाता है, इसमें से किस समय हिंसा धर्म है, और किस समय अहिंसा धर्म है, इसका विवेक हजारों वर्षों के बाद महर्षि दयानन्द जी महाराज ने किया–अतः सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में स्पष्ट लिखा है–"कि जो हानिकारक पशु अथवा मनुष्य हों । राजा उनको दण्ड देवे और प्राण से भी विमुक्त कर दे ।" सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में मनुस्मृति के श्लोक लिखकर स्वामी जी लिखते हैं– "चाहे गुरु पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण, चाहे बहुत शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो, जो धर्म को छोड़ कर अधर्म में वर्तमान होकर दूसरे को बिना अपराध मारने वाले हों, उनको बिना विचारे मार डालना चाहिए, दुष्ट-पुरुषों को मारने में हन्ता को कोई पाप नहीं होता। इस प्रकार वेद और शास्त्रों का मन्थन कर महर्षि जी ने अहिंसा और हिंसा का पूर्ण विवेक कर दिया और आर्यसमाज का सातवां नियम बना करके "सब के साथ प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।" समुद्र को कूजे में बन्द करके अपने को राजहंस यानि पूर्ण विवेकी सिद्ध कर गये ।

११२. देश-हितैषी

अगर देश-हितैषी हमें न जगाता ।
तो देशोन्नति का किसे ध्यान आता ॥

महर्षि दयानन्द जी महाराज के मन में आर्यावर्त के लिए असीम दया भरी हुई थी । उन्होंने ब्रह्मानन्द जैसे उपलब्ध आनन्द को आर्यावर्त के उपकारार्थ त्याग कर दिया था और सांसारिक कष्ट क्लेशों में पड़ना स्वीकार किया था । आर्यावर्त के प्रति उनका हृदय करुणा से इतना कोमल हो गया था कि वे इसके सम्पूर्ण दुःखों को दूर करना चाहते थे। जब कभी देश की दुर्दशा-सूचक कोई घटना उनके सम्मुख आ जाती तो उनका हृदय रो उठता और वे इस पर दुःख मानते थे । एक दिन महाराज ने कहा था कि कुछ काल से परदेशी राजाओं ने हमारे देश का इतना धन हरण कर लिया है कि यह सर्वथा धनहीन हो गया है, किन्तु इस देश की वसुन्धरा इतनी उपजाऊ है कि स्वराज्य पाने से थोड़ी ही देर में इस देश को पुनः धनधान्य से पूरित कर देगी ।

२. दानापुर में एक रात्रि महाराज उठ कर इधर-उधर टहलने लगे । इनके पांव की आहट पा कर एक कर्मचारी की आंख खुल गई। उसने पूछा महाराज कोई कष्ट है, महाराज ने लम्बी सांस लेकर कहा-कि ईसाई लोग दलितों को ईसाई बनाने का भरसक यत्न कर रहे हैं और रुपया पानी की तरह बहा रहे हैं । इधर हिन्दुओं के धर्म-नेता हैं जो कुम्भकर्ण की नींद सो रहे हैं । यही चिन्ता मुझे विकल कर रही है । किसी शायर ने ठीक कहा है ।

इक टीस जिगर में उठती है इक दर्द सा दिल में होता है ।
हम रात को उठ कर रोते हैं, जब सारा आलम सोता है ॥

३. काशी में एक दिन पण्डित हरिश्चन्द्र ने कहा कि आपके खण्डन से विरोध बढ़ता है तो महाराज ने समझाया कि मेरा उद्देश्य सब को ऐसे आपस में मिलाना है, जैसे जुड़े हुए हाथ हैं । कोल से ब्राह्मण तक मैं जातीयता की ज्योति जगाना चाहता हूं । मेरा खण्डन देशहित और सुधार के लिए है ।

४. एक जगह एक अंग्रेज कलैक्टर स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर कहने लगा कि अगर लोग आपके कहने अनुसार चलने लगें तो

हमें तो भारत छोड़ना पड़ेगा ।

५. बम्बई में एक पेन्शनर ब्राह्मण जो कुछ संस्कृत भी जानता था, स्वामी जी के पास आया । महाराज ने इससे कहा-कि देखो तुमने ब्राह्मण कुल में जन्म लिया है और तुम्हारी पेन्शन भी हो गई है । ऐसे वक्त में आपको देशहित के काम में लग जाना चाहिए । आज कल ईसाई लोग कोल, भील और गोण्ड आदि जातियों को ईसाई बना रहे हैं । आप को इन्हें ईसाई होने से बचाना चाहिए परन्तु वह न माना ।

स्वामी जी के देश-सुधार कार्य में धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक, आर्थिक, राजनैतिक शिक्षा सम्बन्धी सब प्रकार के सुधार सम्मिलित थे, वे चाहते थे कि आर्य जाति और आर्यावर्त सब प्रकार से उन्नति के शिखर पर पहुंचे ।

६-उदयपुर में एक दिन पाण्ड्या मोहनलाल ने महाराज से प्रश्न किया कि भारत का पूर्ण हित और जाति उन्नति कब होगी। महाराज ने जो उत्तर दिया था उसका सार यह है कि "एक धर्म, एक भाषा, और एक लक्ष्य बनाये बिना ऐसा होना दुश्वार है । इसलिए मैं चाहता हूं कि देश के राजा गण अपने राज्य में धर्म भाषा और भाव में एकता उत्पन्न करें । पण्डित मोहनलाल ने इस पर आपत्ति की कि जब आप का उद्देश्य एकता उत्पन्न करने का है तो आप मत-मतान्तरों का खण्डन क्यों करते हैं । इससे तो ना इत्तफ़ाकी बढ़ती है, महाराज ने उत्तर दिया कि धर्माचार्यों और नेताओं की असावधानी और प्रमाद से जाति के आचार व्यवहार, रहन सहन, दूषित हो जाते हैं और भाव एक नहीं रहते । आर्यजाति की यही दशा हुई है, इसे सम्भाला न गया तो यह नष्ट हो जायेगी । धर्माचार्यों के प्रमाद के कारण करोड़ों मुसलमान हो गये, अब ईसाई हो रहे हैं। यदि जाति को कड़वे उपदेशों के कोड़े से जगाया न गया और कुरीतियों, कुनीतियों को नष्ट न किया गया तो इस की मृत्यु में सन्देह नहीं है । मैं यह काम किसी स्वार्थ से तो कर नहीं रहा । इसके कारण मैं कष्ट सहता हूं । गालियां और ईंट पत्थर खाता हूं । विष तक भी मुझ को दिया जा चुका है परन्तु जाति और देशहित के लिए सब कुछ सहन कर रहा हूं ।" महाराज के वचन सुन कर वे गद्गद हो गये, और निहायत श्रद्धा-भक्ति से कहने लगे कि यदि दो चार धर्माचार्य भी

आप के विचार के हों तो अत्यल्प समय में ही आर्य जाति का बेड़ा पार हो सकता है ।

११३. निष्कलंक

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में उन पर उनके विरोधियों ने कितने ही कलंक लगाने की कोशिश की । परन्तु महर्षि जी पूर्ण ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी और ईश्वर के परम भक्त होने के कारण विरोधियों के भरपूर यत्न करने पर भी निष्कलंक जीवन ही बिता गये। जिस समय महर्षि जी ने भौतिक देह का त्याग कर ब्रह्मलोक को प्रस्थान किया तो रावलपिण्डी का एक ब्राह्मण यह समाचार सुनकर जार जार रोने लग गया, लोगों ने पूछा कि जब महर्षि यहां आए थे तो आप उनका सब से अधिक विरोध करते थे और उनको अपना सब से बड़ा दुश्मन समझते थे, परन्तु अब जब कि वे इस संसार से चले गये तो आप जार जार रो रहे हैं । अत: आप को तो प्रसन्न होना चाहिए था कि आप का शत्रु चला गया । इस पर वह ब्राह्मण कहने लगा, मैं इसलिए नहीं रोता कि दयानन्द मर गया है बल्कि मैं तो इसलिए रोता हूं कि वह निष्कलंक मर गया है और अब उसके बाद उसका लगाया हुआ पौधा आर्यसमाज और उसके ग्रन्थ जब तक सूरज चांद हैं पाखण्ड का खण्डन करते रहेंगे। और हम कोई जवाब न दे सकेंगे । "परन्तु दुश्मन बात करे अनहोनी," की लोकोक्ति के अनुसार महर्षि के जीवन पर घृणित से घृणित कलंक लगाने की चेष्टा उनके शत्रु करते रहे, परन्तु भगवान् अपने भक्त की हर समय रक्षा करते रहे । किसी कवि ने ठीक कहा है–

जाको राखे साईयां मार सके न कोय ।
बाल न बांका कर सके जो सब जग वैरी होय ॥

१–जब जब उनके विरोधी उनकी युक्तियों का कोई उत्तर न दे सकते थे, और उनके सामने अपने आप को हर तरह असमर्थ पाते थे । यह मशहूर करते थे कि यह तो अंग्रेजों ने हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए एजेण्ट रखा हुआ है परन्तु महर्षि इंजील का पुरजोर खण्डन करते तो विरोधियों का यह हथियार बिल्कुल निकम्मा हो कर रह जाता था।

२–काशी के पण्डितों ने एक दुष्टा स्त्री को महर्षि के पास भेज कर कलंक लगाना चाहा परन्तु महर्षि उनकी चाल को भांप गये । और

पण्डित लोग इस बार भी महर्षि को कलंक लगाने में असफल रहे ।

३–मथुरा के पण्डों ने तो महर्षि को बदनाम करने के लिए सब हथियार बर्ते । पहले एक वैश्या को लालच देकर भेजा जिसका वर्णन "अर्जुन" शीर्षक में दिया गया है ।

४–जब मथुरा के पण्डों का वैश्या भेजकर महर्षि को कलंकित करने का प्रयत्न असफल रहा । तब उन्होंने एक कसाई और एक शराब बेचने वाले को तैयार किया कि वे स्वामी जी के व्याख्यान-स्थल पर जाकर उनको बदनाम करें जिसका वर्णन निम्नलिखित है–"अतः ये दोनों दुष्ट आत्मा वहां पहुंचे जहां महर्षि व्याख्यान दे रहे थे । और ऊंची आवाज में शोर गुल करके कहने लगे बाबा हमारे शराब मांस के दाम तो दीजिए । स्वामी जी ने हंस कर कहा–बहुत अच्छा, व्याख्यान के बाद तुम्हारा हिसाब भी चुका दूंगा । व्याख्यान के बाद स्वामी जी ने दोनों को अपने पास स्टेज पर बुलाया कि आओ आपका हिसाब करके आपको दाम देवें । जब वे दोनों स्टेज पर पहुंचे तो महर्षि एक हाथ से एक का और दूसरे हाथ से दूसरे का सिर पकड़ कर एक दूसरे के साथ टकराने लगे, और कहा कि बतलाओ तुम्हारे कितने कितने दाम हैं । जब एक दो टक्करें दोनों के सिरों में महर्षि ने लगाईं तब उनके होश ठिकाने हुए और हाथ जोड़कर क्षमा मांगी, और कहा कि हम को अमुक पुरुषों ने सिखला पढ़ा कर आपको कलंक लगाने को भेजा था । दयालु दयानन्द ने उनको छोड़ दिया और क्षमा प्रदान कर दी ।

११४. निष्कलंक कर गया

महर्षि जहां स्वयं निष्कलंक जीवन बिता गये, वहां उन्होंने पूर्वज ऋषि, मुनियों पर लगे हुए कई कलंक धोकर उनके उज्ज्वल स्वरूप संसार के सामने रखे ।

१–भगवान् कृष्ण पर जितने कलंक उनके भक्तों की तरफ से लगाये जाते हैं और श्रीमद् भागवत पुराण में उनके जीवन को जिस घिनावने तरीके से कलंकित किया गया है, इसका उदाहरण संसार भर में नहीं मिलता । ईसाई और मुसलमान प्रचारक भगवान् कृष्ण पर चीरहरण, राधा-रमण, गोपी वल्लभादि लगे आरोपों को लेकर हिन्दुओं को अपने पूर्वजों के जीवनों से घृणा उत्पन्न कर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे।

और हजारों लाखों हिन्दू भगवान् कृष्ण पर लगाए इन कलंकों को ठीक समझते हुए ईसाई और मुसलमान बनते जा रहे थे । परन्तु महर्षि जी महाराज ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है कि "कृष्ण जी का जीवनचरित्र महाभारत में आप्त पुरुषों जैसा लिखा है कि उन्होंने जन्म से मरण पर्यन्त कोई अधर्म का काम नहीं किया ।"

२–पुराणों में एक कथा आती है कि प्रजापति अपनी लड़की के पीछे भागा और उसको गर्भवती कर दिया । इससे कितना भयानक कलंक हमारी सभ्यता पर आता है परन्तु महर्षि जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका निराकरण अत्यन्त उत्तम रीति से करके हमारी प्राचीन सभ्यता पर लगे इस कलंक को बिल्कुल साफ़ कर दिया । महर्षि लिखते हैं–

"प्रजापति कहते हैं सूर्य को और उसकी दो कन्याएं हैं । एक प्रकाश दूसरी ऊषा, क्योंकि जो जिससे उत्पन्न होता है, वही उस की सन्तान कहलाता है। इसलिए उषा जो कि तीन चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर पूर्व दिशा में लाली दिखाई देती है वह सूर्य की किरण से उत्पन्न होने से इसकी कन्याएं कहलाती हैं । उन में उषा के सम्मुख जो प्रथम सूर्य की किरण जाकर पड़ती है वही वीर्य-स्थापना के समान है उन दोनों के समागम से दिवस रूपी पुत्र उत्पन्न होता है ।

३–पुराणों की इस कलंकित कथा को अलंकार रूप में निरुक्त में इस प्रकार खोला गया है ।

पिता के समान जल रूप मेघ है । इसकी पृथ्वी रूप दुहिता अर्थात् कन्या है क्योंकि पृथ्वी की उत्पत्ति जल से होती है । अब जल रूप मेघ वृष्टि द्वारा जल रूप वीर्य को धारण करता है, तब इस पृथ्वी में गर्भ रह कर औषधि वनस्पति आदि अनेक अन्न, पुष्प, फल आदि उत्पन्न होते हैं । इस कलंक को कैसी वैज्ञानिक खोजकर महर्षि ने प्रजापति को निष्कलंक किया है ।

४–एक और कलंक इन्द्र अहिल्या की कथा में लगाया गया। देवों का राजा इन्द्र देवलोक में देहधारी देव था । वह गौतम ऋषि की स्त्री अहिल्या के साथ जार कर्म किया करता था । एक दिन जब उन दोनों को गौतम ने देख लिया, तब इस प्रकार शाप दिया । हे इन्द्र तू हजार भग वाला हो जा और अहिल्या को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा । परन्तु

जब उन्होंने गौतम से प्रार्थना की कि हमारे शाप का मोक्ष कैसे होगा, तब इन्द्र को तो कहा–कि तुम्हारे हजार भग की जगह हजार नेत्र हो जावें, और अहिल्या को वचन दिया कि जिस समय रामचन्द्र जी अवतार लेकर तेरे पर अपना चरण रखेंगे उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आ जावेगी, इस प्रकार पुराणों में यह कथा बिगाड़ कर लिखी है। सत्य ग्रन्थों में ऐसा नहीं लिखा है। अपितु इस प्रकार लिखा है–सूर्य का नाम इन्द्र है, रात्रि का नाम अहिल्या तथा चन्द्रमा गौतम है। यहां रात्रि और चन्द्रमा स्त्री पुरुष के समान रूपक अलंकार है। (वैसे आजकल भी आम तौर पर पूर्णमासी की रात को सुहागन रात कहते हैं। चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनन्दित करता है और उस रात्रि का जार आदित्य अर्थात् सूर्य है। जिसके उदय होने से रात्रि के वर्तमान रूप श्रृंगार को बिगाड़ने वाला है यानि तारा गण जिससे रात्रि की शोभा होती है सूर्योदय पर सब छिप जाते हैं। इसलिए यह स्त्री पुरुष का अलंकार बांधा है कि जैसे स्त्री पुरुष मिल कर रहते हैं। वैसे ही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ साथ रहते हैं, चन्द्रमा का नाम गौतम है, इसलिए है कि यह अत्यन्त वेग से चलता है और रात्रि को अहिल्या इसलिए कहते हैं कि इसमें दिन लय हो जाता है। अर्थात् सूर्य रात्रि को निवृत्त कर देता है इसलिए वह उसका 'जार' कहाता है। इस उत्तम रूपक अलंकार को अल्प बुद्धि पुरुषों ने बिगाड़ कर पूर्वजों पर कितने कलंक लगाए। जिससे ईसाई मुसलमान प्रचारक फ़ायदा उठा कर लाखों करोड़ों हिन्दुओं को ईसाई और मुसलमान बनाने में सफल हुए और रामचन्द्र के अहिल्या रूपी पत्थर पर पांव रखने से उसका उड़ जाना, इस रूपक का स्पष्ट रूप से समर्थन करता है। क्योंकि जब रामचन्द्र जी अयोध्या से निकल कर नदी पार करने को नदी पर पहुंचे तो उस समय दिन निकल आया था और रात्रि उड़ गई थी। यानि नदी किनारे रामचन्द्र के पांव पड़ने से रात्रि समाप्त हो गई। यानि 'अहिल्या उड़ गई' किसी कवि ने इसको इस तरह बांधा है।

मशरक से निकला ज्योंहि शाहे खावर।
परी रात की उड़ गई पर लगा कर॥

'अहिल्या' जिसमें दिन लय होता है उसको अहिल्या यानि रात्रि कहते हैं।

इस तरह महर्षि खुद भी निष्कलंक थे और अपने सब पूर्वजों

को भी निष्कलंक कर गये। जितनी भी पुराणों में ऊटपटांग कथाएं आती हैं, जिनसे हमारे किसी भी ऋषि, मुनि, महात्मा पर कोई कलंक का आरोप होता है। इन सब को महर्षि जी ने आलंकारिक कथाएं सिद्ध कर के सब कलंक एक ही असूल बना कर एकदम धो डाले हैं।

५–पं० नीलकण्ठ शास्त्री जो ईसाइयों के प्रश्नों का उत्तर न दे सकने के कारण ईसाई हो गए और उन्होंने इंजील का संस्कृत में भाष्य भी किया। महर्षि को मिले और उनके व्याख्यान सुन कर एक दिन महर्षि जी से बोले कि अगर आप जैसा गुरु हम को पहले मिल जाता तो हम कदाचित् ईसाई न होते। महर्षि जी ने कहा कि–अब क्या बिगड़ा है, वापस आ जाओ। तब नीलकण्ठ कहने लगा कि महाराज अब तो पानी सिर से गुजर चुका है। लड़के लड़कियां सब ईसाइयों के घर विवाहे गये हैं और ईसाइयों की तरफ से सब को काफ़ी तनख़ाहें मिल रही हैं। अब वापस आना मुश्किल है।

११५. जीवन मुक्त महर्षि दयानन्द

अभयं मित्रादभयममित्रात्, अभयं ज्ञातादभयं पुरो यः ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः, सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥

शब्दार्थ–(मित्रात् अभयं) मुझे मित्र से भय न हो (अमित्रात्) अमित्र से (अभयं) अभय हो (ज्ञाताद् अभयं) जो मालूम हो गया है उससे भय न हो और (यः) जो (पुरः) आगे आने वाला है उससे (अभयम्) अभय हो। (नः नक्तम् अभयं, दिवा अभयं) हमें रात में भी अभय हो, दिन में भी अभय हो (सर्वा आशाः) सब दिशाएं सब दिशाओं के वासी प्राणी (मम मित्रं भवन्तु) मेरे मित्र हो जाएं, मेरे मित्र रूप रहें।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी जीवनमुक्त थे, क्योंकि जीवनमुक्त का एक लक्षण अभय होना भी है। वह पूर्ण रूप से महाराज के जीवन में वर्तमान था।

१. जब महाराज जयपुर पधारे और व्याख्यान-माला शुरू की तो जयपुर के महाराजा को इस के पण्डितों ने महाराज के विरुद्ध किया हुआ था। एक दिन श्री प्रसाद जिन्होंने जयपुर में स्वामी जी का आतिथ्य किया था ने ठाकुर फ़तहसिंह जी मन्त्री से कहा कि एक दिन महाराज

साहब का स्वामी जी से वार्तालाप कराया जावे । ठाकुर साहब ने महाराज साहब से निवेदन किया, कि बड़े विद्वान् संन्यासी आए हुए हैं यदि इच्छा हो तो उनसे साक्षात् कीजिए । महाराज ने कहा कि क्या तुम्हारा आशय स्वामी दयानन्द से है ठाकुर जी के 'हां', कहने पर महाराजा साहब कहने लगे, यदि मुझ में शक्ति हो तो इसे कुत्तों से फड़वा डालूं । ठाकुर साहब ने यह बात श्री प्रसाद को कह दी । श्री प्रसाद ने स्वामी जी की सेवा में आ कर प्रार्थना की कि महाराज ऐसी अवस्था में आप का जयपुर में रहना ठीक नहीं है । परन्तु महाराज ने निर्भीक भाव से कहा—कि तुम राजा के नौकर हो तो उसकी आज्ञा मानो, हम राजा के नौकर नहीं हैं । इसके पश्चात् स्वामी जी नौ दिन जयपुर में ही रहे, और पहले की तरह ही निर्भय होकर व्याख्यान देते रहे ।

२. मेरठ में कुछ पण्डितों ने स्वामी जी के खण्डन से चिढ़ कर षड्यन्त्र रचा और एक दिन कुछ गुण्डे हाथों में लाठियां लेकर एक गली में छिप गये । जहां से स्वामी जी हर रोज व्याख्यान स्थल से अपने डेरे पर आया करते थे । इस बात का पता महर्षि के भक्तों को लग गया। तब उन्होंने प्रस्ताव किया कि आज महाराज को बन्द गाड़ी में लाया जावे, महाराज ने इस बात को अस्वीकार कर दिया और पूरी निर्भीकता से हर रोज की भांति इसी गली में से चले आए परन्तु किसी गुण्डे को उन पर वार करने का साहस न हुआ ।

३. स्वामी जी ने एक दिन मसूदा में मौलवी इमदाद हुसैन से कहा था कि एक दिन मैं शौच करने बैठा था, कि एक मनुष्य नंगी तलवार लेकर मेरे पीछे खड़ा हो गया मैंने उससे कहा कि मैं शौच से निवृत्त हो लूं तब मेरा सिर काट लेना, इस पर वह राजी हो गया । जब मैं शौच से निवृत्त हो गया तो मैंने अपनी गर्दन उसके आगे झुका दी परन्तु वह ऐसा प्रभावित हुआ कि बिना कुछ कहे मुझे छोड़ कर चला गया ।

४. महाराणा साहब ने चित्तौड़ में महाराज के दर्शन किये तो महाराज ने उन्हें राजनीति का उपदेश भी दिया और राजाओं में वैश्यागमन के दोष भी बताए । महाराज की निर्भय वाणी का महाराणा साहब पर बहुत प्रभाव पड़ा और उन्होंने अपने कर्मचारियों से कहा कि एक यही मनुष्य है जो बिना लाग लपेट सत्य कहता है ।

५. अजमेर में पादरी शूल ब्रेड स्वामी जी के बाईबल के खण्डन से चिढ़ कर कहने लगे–आप को कैद करवा दिया जायेगा । तब महाराज ने कहा कि कैद के भय से मैं सत्योपदेश नहीं छोड़ सकता ।

६. फ़र्रूखाबाद में लाला जगन्नाथ ने कहा–कि आप विश्रान्त के निचले भाग में रहे, क्योंकि वह सुरक्षित है । महाराज ने कहा कि यहां तो आप मेरी रक्षा करेंगे, दूसरी जगह कौन करेगा । मैं तो भगवान् की रक्षा के सहारे, निर्भय विचरता हूं । मुझे किसी मनुष्य की रक्षा की आवश्यकता नहीं है और जहां-जहां भी स्वामी जी के भक्तों ने उनकी रक्षार्थ प्रबन्ध करने का प्रस्ताव किया । महाराज ने यही उत्तर सब को दिया था ।

७. फ़र्रूखाबाद में पादरी लूक्स ने स्वामी जी को कहा कि यदि आपको तोप के मुंह पर रखकर आपसे कहा जावे कि यदि आप मूर्ति को मस्तक नहीं झुकायेंगे तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा, तब आप क्या कहेंगे। तब स्वामी जी ने उत्तर दिया कि मैं कहूंगा कि उड़ा दो । पादरी लूकस कहते हैं कि इस बात को सुनकर मैं स्वामी जी के विषय में यह प्रभाव लेकर उठा था कि दयानन्द एक निर्भय और बलवान् पुरुष है । और मूर्तिपूजा से इन्हें प्रबल और सच्ची घृणा है ।

८. एक जगह स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे और उस दिन ईसाई मत की परीक्षा कर रहे थे । कि लैक्चर में जनरल राबर्ट्स कमाण्डर इन चीफ़ अर्थात् जंगी लाट भी आए थे। व्याख्यान सुनते रहे, अन्त में स्वामी जी को टोपी उतार कर सलाम किया और कहने लगे कि आप जैसा निर्भय पुरुष हम ने नहीं देखा । हमारे सामने ही आप ईसाई मत का खण्डन करते रहे ।

९. मैडम ब्लोवट्स्की ने अपनी किताब में लिखा है कि स्वामी दयानन्द सैकड़ों हजारों की संख्या में उपस्थित घोर विरोधियों के मध्य में संगमरमर की मूर्ति की तरह अचल होकर खड़े रहते थे और बड़े से बड़े भय से भी भयभीत न होते थे । इस तरह महर्षि ने उपरोक्त वेद मन्त्र को अपने जीवन में चरितार्थ कर जीवनमुक्त की पदवी प्राप्त की हुई थी ।

विशेष गुण-कीर्तन काण्ड समाप्त ।

* * *

१२. प्रचार-काण्ड

११६. पूर्ण पुरुष के जीवन पर वार

योगियों की तलाश करते हुए वनों और पर्वतों में फिरते समय जो वार जंगली हिंसक पशुओं की ओर से हुए परन्तु संसार को सन्मार्ग दिखाते हुए नगरों में प्रचार के समय जो वार नर-पशुओं ने किए उनकी कथाएं निम्नलिखित हैं–

१. सन् १८६८ गाजी घाट में निवास करते थे तो एक दिन एक ठाकुर और उसके तीन साथी जिनमें से दो के हाथ में तलवारें और दो के हाथ में लाठियां थीं, महाराज के निवास-स्थान पर आकर गुण्डापन दिखाने लगे । महर्षि के मना करने पर भी जब वे बाज न आये, तो महर्षि के शिष्य बलदेव भक्त ने जो पहलवानी के सब दाव पेच जानता था, इन चारों को वहां से भगा दिया ।

२. अम्बागढ़ में महर्षि की मूर्तिपूजा के खण्डन से रुष्ट होकर कुछ दुष्टों ने सलाह की कि रात को सोते समय दयानन्द को पकड़ कर गंगा में डुबो दें । जहां स्वामी जी सोया करते थे । इनके समीप एक और साधु भी सो रहा था । गुण्डों ने इसे दयानन्द समझकर दरिया में फेंक दिया । जब वह चिल्लाया कि मुझे बचाओ तब गुण्डों को ज्ञात हुआ कि उन्होंने दयानन्द की जगह किसी और साधु को फेंक दिया है।

३. अम्बागढ़ में ही एक उजड्ड जाट हाथ में मोटा सा लट्ठ लेकर मारने को आया था ।

४. सन् १८६८ में करणवास में राव करणसिंह ने स्वामी जी के खण्डन से चिढ़ कर म्यान से तलवार निकाल कर उन पर वार करना चाहा परन्तु महाराज ने इससे तलवार छीन कर जमीन पर दबाकर दो टुकड़े कर दिये ।

५. करणवास में ही जब राव करणसिंह खुद स्वामी जी के

प्राणहरण करने में असफल हुआ तो उसने गुण्डों को तलवारें देकर रात के दो बजे स्वामी जी के निवासस्थान पर भेजा और कहा कि जाओ स्वामी जी का सिर काट लाओ, परन्तु जब वे स्वामी जी के निवास-स्थान पर पहुंचे और आवाज दी कि कुटिया में कौन है इस पर स्वामी जी जाग पड़े और कुटिया के दरवाजे पर आकर इतने जोर से हुंकार लगाई कि तीनों गुण्डे जमीन पर औंधे मुंह गिर पड़े। और तलवारें उनके हाथ से छूट कर दूर जा गिरीं, और वे उलटे पैरों दौड़ गये।

६. इसी वर्ष शाहजहानपुर में दो वैरागी साधु स्वामी जी के प्राणहरण की नीयत से आए थे। परन्तु उनको स्वामी जी के निवास-स्थान तक भी जाने की हिम्मत न पड़ी।

७. फ़र्रूखाबाद में पाण्डे ठाकुरदास २०-२५, लठबन्द लोगों को साथ लेकर स्वामी जी के प्राणहरण की नीयत से उनके निवास-स्थान में पहुंचे परन्तु स्वामी जी को कुछ कहने का हौंसला उनको न हुआ।

८. कानपुर में कुछ गुण्डे लाठियां और ढेले लेकर स्वामी जी को मारने के लिए आए। ढेले मारने लगे, एक ने लाठी से प्रहार किया परन्तु महाराज ने लाठी उसके हाथ से छीन ली और उसको गंगा में धकेल दिया।

९. काशी-निवास में दो मुसलमानों ने महाराज को गंगा में डुबो देने की इच्छा से घाट पर बैठे हुए धक्का देना चाहा पर स्वामी जी ने उन दोनों को बगल में दबा कर स्वयं गंगा में डुबकी लगा दी। और उनको खूब गोते दिए।

१०. काशी में ही एक ब्राह्मण स्वामी जी के लिए भोजन लाया। जब वह भोजन करने लगे तो उसने पानी में विष मिला दिया जो स्वामी जी ने न्योली कर्म द्वारा निकाल दिया।

११. मिर्जापुर में छोटूगिर गोसाईं जो एक मन्दिर का पुजारी था और हृष्ट-पुष्ट था स्वामी जी के मूर्तिपूजा खण्डन से रुष्ट होकर उनके प्राणहरण करने की नीयत से अपने कुछ साथियों को लेकर महाराज के निवासस्थान पर उनको मारने आया था।

१२. सन् १८७० में जब स्वामी जी अनूपशहर आये तो एक ब्राह्मण इनके लिए विष मिश्रित भोजन लाया, जो स्वामी जी ने खा लिया, प्रतीत

होने पर विष न्योली कर्म द्वारा निकाल बाहर किया ।

१३. प्रयाग निवास के समय एक ब्राह्मण भोजन और पान में विष मिला कर लाया, स्वामी जी को पहले तो भोजन पाने को कहा-जब उन्होंने कहा कि तुम भी इसमें कुछ खाओ तो उसने न कर दी और फिर कहा-कि आप पान को ही खा लें। तब स्वामी जी जब पान को खोल कर देखने लगे तो वह आंख बचा कर भाग गया ।

१४. बम्बई निवास में जीवन जी गोसाईं ने मूर्तिपूजा खण्डन से चिढ़ कर स्वामी जी के बलदेव रसोइये को लालच दिया कि तुम को एक हजार रुपया देंगे, अगर स्वामी जी के प्राणहरण कर दो तो और पांच रुपया बतौर पेशगी दे दिये, पांच सेर मिठाई भी पेशगी दे दी, बाद में स्वामी जी के पूछने पर बलदेव ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

१५. फिर जीवन जी गुसाईं ने चार गुण्डे स्वामी जी को मारने के लिए काफी लालच दे कर तैयार किये ।

१६. अमृतसर निवास के समय निहंग सिखों ने चैलेंज किया, कि स्वामी जी के पास बहुत से आदमी सोते हैं, अगर वे अकेले सोवें तो हम अवश्य ही उनका सिर काट लें । यह बात सुनकर उस दिन अपने सब आदमियों को कहा-कि आप मेरे पास मत सोओ, मैं आज अकेले ही सोऊंगा परन्तु किसी निहंग में साहस न हुआ कि महाराज की ओर आंख उठा कर भी देखता ।

१७. जब स्वामी जी एकाएकी विचरते थे तो एक जगह वाममार्गी साधुओं ने उनको देवी पर बलि चढ़ाने की नीयत से अपने पास रख कर उनकी खूब खातिर की, पर वे बच निकले । (देखो शुनाशेप)

१८. जब स्वामी एकाएकी फिरते थे तो एक जगह वैरागी लोगों ने इन की घास की कुटिया को जिसमें स्वामी जी सोए थे आग लगा दी । (देखो प्रह्लाद भक्त)

१९. बंगाल की तरफ प्रचार के समय स्वामी जी एक मन्दिर के पास गये, जहां युवा लड़कियां मन्दिर में देवदासी के तौर पर चढ़ाई जाती थीं । जबरदस्त प्रचार करके इस कुप्रथा का तीव्र खण्डन किया, इस खण्डन से रुष्ट होकर उस मन्दिर के पुजारी ने एक मिट्टी के बड़े से बर्तन में रखे हुए एक बहुत जहरीले कोबरा सांप को स्वामी जी की

देह पर दे मारा ।

२०. सन् १८७० मिर्जापुर में स्वामी जी का प्राणहरण करने के लिए पण्डितों ने तन्त्र ग्रन्थों में लिखे, मारण मन्त्र का उपचार भी किया परन्तु ऐसा करने वालों पर ही उल्टा असर हुआ । सारांश यह है कि स्वामी जी के प्राणहरण करने के लिए हर भांति के तरीके बरते गये। लाठियों तलवारों से हमले किये गये । विष दिये गये । सांप फैंके गये। दरिया में फैंकने के षड्यन्त्र रचे गये ।

२१. सन् १८६६ किशनगढ़ राजस्थान निवास समय एक दिन ठाकुर गोपालसिंह ३०-४० मनुष्यों और ५-६ पण्डितों को साथ लेकर स्वामी जी पर वार करने के लिए उनके डेरे पर पहुंचे । सायंकाल पांच बजे का समय था तब स्वामी जी ने शौच आदि से निवृत्त होकर स्नानकर विभूति रमाई और लकड़ी के तख्त पर विराजमान हो गये और इन लोगों से पूछा कि आप कैसे आये हैं ? तब एक वल्लभ सम्प्रदाय की पुस्तक एक पण्डित ने इनको पढ़ने के लिए दी । स्वामी जी ने कहा कि आप ही पढ़ें, मैं इस का उत्तर दूंगा । उसने पुस्तक में से कुछ पढ़ा । तब स्वामी जी ने वल्लभ सम्प्रदाय का तीव्र खण्डन आरम्भ कर दिया । इस पर ये सब लोग स्वामी जी पर आक्रमण करने को उद्यत हुए । तब स्वामी जी तख्तपोष पर खड़े हो गये और कहने लगे तुम मुझे निरा साधु ही मत समझो, मैं अकेला ही तुम सब पर भारी हूं । अगर शास्त्रार्थ करना चाहो तो मैं शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं वरना तुम सब मिलकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकते । इतने में कुछ और लोग भी आ गये और ये सब अपना सा मुंह लेकर वापस चले गये ।

२२. सन् १८७० में प्रयाग निवास के समय कुछ मुसलमानों ने महाराज के प्राणहरण की चेष्टा की थी । माधवराव नामक एक बंगाली सज्जन को इस षड्यन्त्र का पता लग गया और वे सफल न हो सके।

२३. सन् १८७२ आगरा निवास के समय महाराज ने अपने भक्त रजनीकान्त को बताया कि एक दिन मैं समाधि लगाये बैठा था कि एक दुष्ट तलवार लेकर मुझे वध करने की नीयत से आया । जब मेरी समाधि खुली तो मैंने जोर से हुंकार मारी तब वह डर कर भाग गया ।

२४. बम्बई निवास के समय वल्लभ सम्प्रदाय वालों ने एक बार

और स्वामी जी के वध का यत्न किया था। उन्होंने इस कार्य पर दो गुण्डे नियत किये, एक दिन वे मौका पाकर स्वामी जी के कमरे में रात्रि के समय घुस आये। लाला कृष्णदास इस समय स्वामी जी के पास बैठे थे, उन्होंने इन घातकों को कमरे में आए हुए देख लिया और इन्हें पकड़ लिया, धमकाने पर इन गुण्डों ने स्वीकार कर लिया कि स्वामी जी का वध करने के लिए इन्हें २००/-रुपये मिले हैं।

२५. प्रिन्स आफ़ वेल्ज जब भारत आए तो आगरा में बहुत से राजा उनके स्वागत को इकट्ठे हुए थे, महाराज ने ऐसे अवसर पर प्रचार करने का प्रोग्राम बनाया। एक दिन एक ऐसी सभा में जिस में राजा गण बहुत बड़ी तादाद में उपस्थित थे, महाराज का व्याख्यान हुआ, इसमें उन्होंने और बहुत सी अवैदिक बातों का खण्डन करने के साथ-साथ शैव मत का जबरदस्त खण्डन किया। तब एक राजा आवेश में आकर अपने स्थान से उठा और म्यान से तलवार निकाल कर स्टेज पर जहां महाराज व्याख्यान दे रहे थे। चढ़ आया और स्वामी जी पर तलवार चलाना ही चाहता था, कि महाराज ने अपनी दृष्टि डाली और कहा कि आप क्षत्रिय हैं, और क्षत्रिय का काम तलवार चलाना है और मैं संन्यासी हूं। मेरा काम धर्म-प्रचार करना है। आप अपना काम करें। (यानि तलवार चलाएं) और मैं अपना काम करता हूं। इतना कह कर महाराज ने व्याख्यान देना फिर से आरम्भ कर दिया परन्तु राजा पर महाराज का इतना आतंक छाया कि चुपचाप तलवार को म्यान में डालकर स्टेज से नीचे उतर गया।

२६. बटाला निवास में एक दिन व्याख्यान में मूर्तिपूजा का खण्डन सुनकर हरीसिंह रईस तिलमिला उठे, और कहने लगे कि अगर अंग्रेजों का राज्य न होता तो तेरा सिर काट लेता।

२७. बटाला में काक इंजीनियर पिशावर पधारे हुए थे, एक दिन स्वामी जी ने व्याख्यान में कहा कि अंग्रेजों को इस देश में आए कितनी देर हो गई परन्तु अभी तक इनको शुद्ध हिन्दी बोलनी भी नहीं आई, तुम की जगह टुम ही बोलते हैं। इस पर काक साहब बहुत नाराज होकर कहने लगा, अगर आप पिशावर की तरफ आओ तो तुम्हारी खबर ली जावेगी।

२८. अमृतसर में एक भंगी चरसी ब्राह्मण ने महाराज के खण्डन

से चिढ़ कर उनको एक मोटा सा सोटा मारना चाहा परन्तु लोगों ने इसको पकड़ लिया। महाराज ने इसको क्षमा प्रदान कर दी।

२९. मेरठ में महाराज के खण्डन से ब्राह्मण और महाब्राह्मण बहुत चिढ़ गए थे। एक दिन कुछ गुण्डे हाथों में लाठियां लेकर महाराज को मारने की नीयत से उस गली में छिप कर बैठ गये, जहां स्वामी जी व्याख्यान देकर वापस अपने डेरे पर आया करते थे। गुण्डों का हौसला न हुआ कि महाराज पर आक्रमण करें।

३०. हरद्वार में कुछ साधुओं ने साजिश की कि एक पत्थर मार कर स्वामी जी का सिर फोड़ दो। कुछ परवाह नहीं यदि एक को फांसी लग जाय।

३१. अजमेर में कुछ ब्राह्मणों ने स्वामी जी के प्राणहरण करने के लिए शास्त्रार्थ करने का बहाना बना कर उनको शैव बाग में निमन्त्रित किया। स्वामी जी ने एक आदमी को भेज कर मालूम करना चाहा कि वहां कोई विद्वान् भी आया है। तब मालूम हुआ कि वहां शैव बाग का पुजारी और दस बारह गुण्डे भंगी चरसी बैठे हुए हैं, इस पर महाराज वहां नहीं गये।

३२. अन्त में २९ सितम्बर १८८३ को जोधपुर में नन्हीं जान और अंग्रेजों की मिली भगत से स्वामी जी को दूध में कांच पीस कर पिलवा दिया। जिससे ३० अक्तूबर दीवाली की सायं को उन्होंने अपना भौतिक शरीर वैदिक धर्म की बलि वेदी पर बलिदान कर दिया। किसी कवि ने ठीक कहा है–

पराई आग में जलना मरीजों की दवा होना।
कोई सीखे दयानन्द से धर्म पर जां फिदा होना॥

११९. शास्त्रार्थों की सूची

यूं तो महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन काल में करोड़ों मनुष्यों के हर प्रकार के प्रश्नों के युक्तियुक्त उत्तर दिए। कोई भी व्यक्ति जो महाराज के दरबार में किसी किस्म का भी प्रश्न लेकर आया उसका सन्तुष्टि-जनक उत्तर लेकर ही गया। जटिल से जटिल प्रश्नों का समाधान भी महाराज अपनी तीव्र बुद्धि और स्मरण-शक्ति से कर दिया

करते थे । जिसके लिए उनके जीवन की दो घटनाएं ही पर्याप्त हैं ।

२. मेरठ निवास के समय एक दिन तीन चार पण्डित आपस में सलाह मशवरा करके आये कि स्वामी जी से एक ही प्रश्न पूछेंगे कि आप विद्वान् हैं या अविद्वान् । अगर तो वह कहेंगे कि हम विद्वान् हैं तो हम कह देंगे कि आप अहंकार करते हैं, जो विद्वानों का गुण नहीं। और अगर वह कह देंगे कि हम अविद्वान् हैं तब हम कहेंगे कि आप को प्रचार करने का क्या हक है । उन्होंने अपने मन में यह विचार निश्चय किया था कि दोनों बातों में से एक को तो स्वीकार करेंगे ही, बस हमारा मनोरथ सिद्ध हो जावेगा । यह धारणा करके बड़ी खुशी खुशी वे आकर महर्षि के सम्मुख बैठ गये और भी कई सज्जन वहां बैठे थे । महर्षि का यह तरीका था कि वह हर आने वाले से पूछते थे । यदि कोई प्रश्न करना हो तो पूछो, अत: महर्षि ने उनसे भी यही बात कही । तब उन्होंने अपना वह प्रश्न उनके सामने उपस्थित किया । तब महाराज हंस कर बोले कि मैं संस्कृत वेद विद्या आदि में तो विद्वान् हूं परन्तु मुझ को पकौड़े तलने नहीं आते इसमें आप मुझे अविद्वान् समझ लें । इस पर वे सब दंग रह गये और उनका विचार कि हम महर्षि को पराजित कर लेंगे धरा का धरा रह गया ।

२. दूसरा वाकया हरद्वार के कुम्भ का है और वह इस से भी विचित्र है, कुम्भ के मौका पर निरन्तर तीन महीने १४-१४ घण्टे नित्य प्रति प्रचार करने शंका-समाधान करने के कारण महाराज का शरीर रुग्ण हो गया था और उनको दस्त आने शुरू हो गये थे । जिस कारण कुछ कमजोरी भी आ गई थी । यह बात जब मेले में फैल गई तो नवीन वेदान्ती साधुओं ने सोचा कि चलो महर्षि के पास चलें और शास्त्रार्थ करने का चैलेंज उनको देवें । अगर वे कह देंगे कि हम बीमार हैं और शास्त्रार्थ नहीं कर सकते तो हम मेले में मशहूर कर देंगे कि स्वामी जी शास्त्रार्थ से भाग गए । यह विचार करके ६-७ नवीन वेदान्ती साधु महाराज के डेरे पर जा पहुंचे । महाराज उस समय पलंग पर लेटे हुए थे, उन साधुओं को आते देख कर उठ बैठे और ६-७ मूढ़े उनके बैठने के लिए मंगवा कर अपने सामने रखवा दिए । आए हुए साधुओं को आदर सत्कार से बिठाया । जब उन्होंने अपने आने का अभिप्राय बताया कि हम शास्त्रार्थ

करने आए हैं आप हमारे साथ शास्त्रार्थ करें। तब महर्षि जी ने यह नहीं कहा कि मैं बीमार हूं शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। जैसा कि वे साधु अपने मन में विचार कर आए थे। बल्कि उनसे पूछा कि आप किस बात को मानते हैं। उन्होंने कहा नवीन वेदान्त को। तब महाराज ने कहा नवीन वेदान्त का क्या सिद्धान्त है। तब वे बोले—"ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या" तब महाराज ने कहा आप जगत् मिथ्या किसको मानते हैं। तब वे बोले कि सब जो दृश्यमान है सूर्य से ले कर कंकर तक सब जगत् में ही है। तब महर्षि ने कहा कि आप का मत भी जगत् में है और आप की पुस्तकें भी जगत् में हैं। उन्होंने कहा कि हां, यह सब कुछ जगत् में शामिल हैं। तब महाराज ने कहा कि जब आप ही अपनी पुस्तकों और अपने मत को मिथ्या स्वीकार कर रहे हैं तो मैं किस बात पर आपसे शास्त्रार्थ करूं। इस पर वे सब शर्मिन्दा होकर वापस चले गए। यह थी महाराज की अलौकिक प्रतिभा। जिसके सामने किसी वक्त कोई भी, किसी भी विचारधारा का बड़े से बड़ा अभिमानी न ठहर सका और हर शास्त्रार्थ में महर्षि दिग्विजयी ही रहे। शास्त्रार्थों की सूची निम्न प्रकार है—

महर्षि के अनेकों शास्त्रार्थों में से कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थों का नक्शा यहां दिया जाता है। ताकि ऋषि के भक्तों को पता लग सके कि उन दिनों जब हवाई जहाज और मोटरकार की ईजाद नहीं हुई थी और जब कि रेलवे लाईन भी इतनी विस्तृत नहीं थी। वैदिक धर्म पर होने वाले हमलों का जवाब और इन्सानी मत मतान्तरों पर भरपूर वार करने में आर्यसमाज के प्रवर्तक को कितना प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ा था।

वर्ष व मास	*स्थान*	*किसके साथ*
१८६६	अजमेर	पादरी ग्रेइबसन और शूलब्रेड
१८६७	करनवास	पं० अम्बादत्त अनूपशहर
,,	दाम घाट	पं० कृष्णानन्द
,,	करनवास	पं० हरिवल्लभ
,,	सोरों	पं० अंगद शास्त्री

१८६८		काकोरी का मेला	पं० उमादत्त
,,		फर्रूखाबाद	पं० श्री गोपाल
१८६९		,,	पं० हलधर ओझा
,,		कन्नौज	पं० हरिशंकर
	जौलाई	कानपुर	पं० हलधर ओझा
	नवम्बर	बनारस	पं० ताराचरण तर्करत्न स्वामी शुद्धानन्द पं० बाल शास्त्री, पं० राजाराम शास्त्री,पं०माधवाचार्य,पं० वामनाचार्य
१८७२		मिर्जापुर	पं० गोविन्द भट्ट, पं० जैसीराम
,,		डुमराओं	पं० दुर्गादत्त
,,		आरा	पं० रुद्रदत्त, पं० चन्द्रदत्त
	सितम्बर	पटना	पं० रामजीवन भट्ट, पं० रामअवतार
	अप्रैल	हुगली	पं० ताराचरण तर्करत्न
१८७३	मार्च	कलकत्ता	पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती, पं० महेश-चन्द्र न्यायरत्न
	मई	छपरा	पं० जगन्नाथ
	अक्तूबर	कानपुर	पं० गंगाधर
	नवम्बर	लखनऊ	पं० गंगाधर
१८६४	फरवरी	इलाहाबाद	पं० काशीनाथ शास्त्री
२५	नवम्बर	सूरत	पं० इच्छाराम शास्त्री
,,		भड़ोच	पं० माधोराव शास्त्री
,,		राजकोट	पं० महीधर
१८७५	मार्च	बम्बई	पं० खेमचन्द्र, बाल जी शास्त्री
,,	जून	बम्बई	पं० कवंल नैन आचार्य
,,		बड़ौदा	पं० यज्ञेश्वर, पं० अप्पा शम्भू
१८७६	जून	बम्बई	पं० रामलाल
	नवम्बर	मुरादाबाद	पादरी पारकर
१८७७	मार्च	चान्दापुर मेला	पादरी स्काट, मौलवी मुहम्मद कासम
२४	सितम्बर	जालन्धर	मौलवी अहमद हसन

१८७६	फरवरी	गुजरांवाला	ईसाइयों के साथ
	नवम्बर	अजमेर	पादरी ग्रे, पादरी हसबैंड
१८७८	अगस्त	बदायूं	पं० रामप्रसाद
	अगस्त २५	बरेली	पादरी स्काट
१८८१	जून	ब्यावर	पादरी शूलब्रेड
१८८२	सितम्बर ११	उदयपुर	मौलवी अब्दुल रहमान

यह बात काबले ग़ौर है कि पहला शास्त्रार्थ १८६६ में अजमेर में ईसाइयों के साथ और आखरी उदयपुर में मुसलमानों के साथ हुआ था ।

महर्षि के देहावसान के बाद सैकड़ों आर्य विद्वानों ने उनके चरण चिह्नों पर चलते हुए स्वाध्याय का आश्रय लेकर विधर्मियों के साथ शास्त्रार्थ के मैदान में लोहा लिया । अनेकों गिरतों को सम्भाला । हजारों गुमराह भाइयों को सन्मार्ग दिखलाया और लाखों को वैदिकधर्मी बनाया। इन विद्वानों में से निम्नलिखित महानुभावों के नाम स्मरणीय हैं—१. बाल ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी, २. धर्मवीर पं० लेखराम जी, आर्य मुसाफिर, ३. विचित्र दार्शनिक स्वामी दर्शनानन्द, ४. स्वामी योगेन्द्रपाल जी, ५. पं० रामचन्द्र जी देहलवी, ६. पं० धर्मभिक्षु जी, ७. पं० मुरारीलाल शर्मा, ८. बुद्धदेव जी, विद्यालंकार, ९. पं० बुद्धदेव मीरपुरी, १०. श्री ठाकुर अमरसिंह जी आर्य पथिक, ११. पं० मनसाराम जी वैदिक तोप, १२. पं० भगवद्दत्त जी रिसर्चस्कालर, १३. पं० रामगोपाल जी शास्त्री, १४. पण्डित कालीचरण शर्मा, १५. पं० जगदीशचन्द्र जी न्यायरत्न, १६. पं० देवप्रकाश जी अमृतसरी, १७. पं० शान्तिप्रकाश जी ।

आर्यसमाज में फिर से शास्त्रार्थ युग लाने की आवश्यकता है, शास्त्रार्थ ही एक ऐसी संस्था है जिससे सत्य असत्य का निर्णय शीघ्र हो सकता है और जब आर्यसमाज शास्त्रार्थ करता था तो हजारों की हाजिरी होती थी और सैकड़ों हजारों जिज्ञासु शास्त्रार्थों को सुन कर ही वैदिक धर्मी बनते थे और साथ ही आर्यसमाज के विद्वान् ही नहीं बल्कि आम सभासदों को भी स्वाध्याय का शौक रहता था । और वैदिक साहित्य का प्रचार भी होता था । जब से शास्त्रार्थ प्रथा बन्द हुई है तब से स्वाध्याय छूट गया है । दूसरों को आर्य बनाने की तो क्या कथा । आर्यसमाज

के मेम्बरान बल्कि बाज हालतों में आर्यसमाजों के मन्त्री और प्रधान भी स्वाध्यायहीन होकर आपस में लड़ लड़ कर संसार को तमाशा दिखा रहे हैं। आर्यसमाजों से सब झगड़े दूर करने के लिए भी शास्त्रार्थ युग फिर से लाने की आवश्यकता है ताकि आर्यसमाजी स्वाध्यायशील होकर अपने धर्म का पालन कर सकें।

११८. मर्यादा पुरुषोत्तम

१. सन् १८७४ सूरत निवास के समय उनके चौथे व्याख्यान ७ दिसम्बर को रघुनाथपुरे के सेठ ठाकुर भाई चुन्नीलाल चिक वाले के शिव मन्दिर से मिले हुए एक मकान में होने की घोषणा की गई थी। परन्तु जब व्याख्यान का समय हुआ और लोग वहां पहुंचे तो देखा कि मकान अन्दर से बन्द है, लोगों ने बहुतेरे बाहर से द्वार खटखटाये और आवाजें दीं, परन्तु किसी न न सुना। श्रोतागण कहने लगे कि हम दूसरी जगह इन्तजाम कर देते हैं। आप व्याख्यान वहां चलकर देवें। महर्षि ने कहा कि नहीं इसी जगह की घोषणा की गई है, व्याख्यान यहीं होगा। अतः उन्होंने इस मकान के बाहर ही व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया और श्रोता गण भूमि पर बैठे महाराज का व्याख्यान सुनते रहे।

२. लाहौर आर्यसमाज की एक सभा ६ नवम्बर १८७७ को उपनियम स्वीकार करने को हो रही थी, स्वामी जी इस सभा में विराजमान थे। अन्तरंग सभा की बैठक में महाराज को सम्मति देने की प्रार्थना की गई परन्तु उन्होंने स्वीकार न किया। और कहा कि मैं आपकी अन्तरंग सभा का सभासद नहीं हूं। इसलिए मुझे सम्मति देने का कोई अधिकार नहीं है। तब महाराज को विधिपूर्वक अन्तरंग का सभासद बनाया गया, फिर उन्होंने अपनी सम्मति प्रकट की।

३. ८ मई १८७७ को आर्यसमाज लाहौर की अन्तरंग सभा का अधिवेशन हो रहा था, महाराज इसमें उपस्थित थे। एक सभासद ने प्रस्ताव किया कि महाराज को इस सभा का प्रधान नियत किया जावे परन्तु महाराज ने यह कह कर कि सभा के प्रधान उपस्थित हैं, "उनकी उपस्थिति में मैं प्रधान नहीं बन सकता।" इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

४. रुड़की में एक दिन जब आप नियत समय पर व्याख्यान स्थल पर आए तो केवल दो ही श्रोता बैठे थे। आपने अन्य श्रोताओं की प्रतीक्षा न करते हुए पूरे समय पर व्याख्यान आरम्भ कर दिया।

५. दानापुर आर्यसमाज के ठाकुरदास सभासद को आर्यसमाज से इसलिए निकाल दिया कि उसने एक सभासद को दुर्वचन कहे थे। जब महाराज दानापुर आए तो उसने पुनः आर्यसमाज का सदस्य बनने की इच्छा प्रगट की, और जब महाराज ने आर्यसमाज के अधिकारियों से इसके विषय में कहा तो उन्होंने कहा कि यदि आप उसे नियमों के विरुद्ध सभासद बनाने की आज्ञा दें तो हम उसको पालन करने पर उद्यत हैं। नहीं तो इसको अपने पूर्व अपराध की क्षमा-याचना करनी चाहिए। और पुनः प्रविष्ट होने के लिए आवेदन पत्र देना चाहिए। महाराज ने उत्तर दिया आप लोग ठीक कहते हैं। नियम विरुद्ध काम करने के हम पक्षपाती नहीं हैं।

६. महाराज ने जो सिद्धान्त निश्चित किये हुए थे, उनके विपरीत किसी बड़े से बड़े व्यक्ति से भी समझौता न करते थे। कर्नल अल्काट और मैडम ब्लोवट्स्की ने अमरीका में एक समाज बनाया, जिसका नाम उन्होंने थ्योसाफ़ीकल सोसाईटी रखा। इन्हीं दिनों महाराज ने यहां आर्यसमाज स्थापित करने आरम्भ कर दिये थे। इन दोनों महानुभावों ने महाराज की आज्ञा पा कर अपनी सभा का नाम रखा थ्योसाफ़ीकल सोसाईटी आफ़ दी आर्यसमाज आफ आर्यावर्त्त। और उन्होंने अमरीका में बैठे ही स्वामी जी से पत्रव्यवहार करना आरम्भ कर दिया। वे अपने पत्रो में स्वामी जी को गुरु शब्द से सम्बोधन करते थे। बड़े लम्बे-लम्बे पत्र दोनों तरफ से आते जाते रहे और महर्षि जी अपने पत्रों में जो वह उनको अमरीका में भेजते थे अपने सिद्धान्त स्पष्ट रूप से लिखते रहते थे। बहुत पत्र-व्यवहार होने पर ये दोनों महानुभाव अमरीका से चलकर भारत महाराज से साक्षात् करने को आए परन्तु यहां आकर पहले तो वे स्वामी जी के अनुकूल ही अपने विचार प्रकट करते रहे। वास्तव में ये लोग स्वामी जी की विद्या और ख्याति को अपना मतलब सिद्ध करने की नीयत से इनको Exploit करने यहां आए थे परन्तु जब देखा कि इन तिलों में तेल नहीं। और स्वामी जी अपने निश्चित सिद्धान्तों से

इधर उधर होने को किसी भी सूरत में तैयार नहीं तो फिर उन्होंने अपने आन्तरिक भाव खोल दिये, और कहने लगे कि हम तो ईश्वर को भी नहीं मानते और भूत प्रेत को मानते हैं। जब स्वामी जी ने इनको शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया तो उन्होंने स्वीकार न किया। तब स्वामी जी ने विज्ञापन निकालकर उनसे सम्बन्ध-विच्छेद की घोषणा कर दी। हालांकि कई लोगों ने स्वामी जी से कहा कि ये लोग आर्यसमाज का प्रचार संसार में कर देंगे। अगर इनके साथ समझौता कर लिया जावे परन्तु महर्षि अपने सिद्धान्त पर अटल रहे, और किसी प्रकार भी सिद्धान्त-विरुद्ध समझौता करने को तैयार न हुए। जो मर्यादा उन्होंने बांध रखी थी, उस पर ध्रुव की भांति अटल होकर चलते रहे।

७. अहमदाबाद में एक दिन एक विद्यार्थी स्वामी जी की ओर पैर करके सो गया, स्वामी जी ने सब कर्मचारियों को उपदेश किया कि तुम जिस से विद्या ग्रहण करते हो और जो मान्य व्यक्ति हैं, उनके सामने बिना बुलाये बोलना वा उनकी बातों के बीच में बोलना वा पैर करके सोना, आर्यमर्यादा का उल्लंघन करना है।

८. आगरा में बिशप साहब के बुलाने पर सब से बड़े गिर्जाघर गये। बिशप साहब से वार्तालाप करके उन्होंने गिर्जा देखना चाहा, परन्तु गिर्जे के चौकीदार ने कहा कि आप पगड़ी उतार कर ही गिरजे के अन्दर जा सकते हैं वरना नहीं। स्वामी जी ने कहा कि जूता तो उतारना हमारी मर्यादा के अनुकूल है परन्तु पगड़ी हमारी मर्यादा में प्रतिष्ठा का चिह्न है, इसे उतार कर मैं अपने देश की मर्यादा भंग नहीं कर सकता। इस तरह गिरजा अन्दर से देखे बिना चले आये। परन्तु मर्यादा को कायम रखा।

११९. पतित पावन

ओ३म् अवहितं देवा उन्नयथा पुनः। ऋग्वेद १०।१३७।१

जो गिरे हुए हैं उन्हें ऊपर उठाओ। जैसा किसी कवि ने कहा है–

शराब पिला के गिराना तो सब को आता है।
मजा तब है जब गिरतों को थाम ले साकी॥

महाराज के संसर्ग और उपदेशों का लोगों पर असाधारण प्रभाव पड़ता था। लाखों मूर्तिपूजकों ने इनके संसर्ग से मूर्तिपूजा छोड़ कर विशुद्ध ईश्वरभक्ति को स्वीकार किया। कितने ही नास्तिक आस्तिक बन गये। कितने ही दुराचारी सदाचारी बन गये। महाराज में मनुष्यों के चित्त को आकृष्ट करने की विलक्षण शक्ति थी और वेद की उपरोक्त आज्ञा-पालन करते हुए लाखों पतितों का उद्धार कर गये। कुछ घटनाएं निम्नलिखित हैं-

१. हरिद्वार पहले सं० १८२४ के कुम्भ में प्रचार आरम्भ किया तो स्वामी महानन्द दादू पन्थी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। उन्होंने वेद के दर्शन प्रथम वार स्वामी जी के पास किये थे। वे महाराज के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये और प्रचारक बन गये। देहरादून आर्यसमाज में जो महानन्द पुस्तकालय है, वह उन्हीं के नाम पर स्थापित है।

२. फर्रूखाबाद के एक प्रतिष्ठित सज्जन का नौजवान लड़का वेश्यागामी हो गया, उसने स्वामी जी से प्रार्थना की कि मेरे सुपुत्र को आप बचावें, स्वामी जी ने कहा-उस लड़के को मेरे पास लाओ, अतः वह स्वामी जी के पास लाया गया। स्वामी जी ने मीठे शब्दों में उसका स्वागत किया और अपने पास बिठाया प्यार किया। फिर उससे कहा कि अगर कोई आदमी वेश्यागामी हो, उससे वेश्या को गर्भ रह जावे और उस गर्भ से लड़की पैदा हो तो, वह लड़की किसकी होगी, उस युवक ने कहा कि वह लड़की उसी वेश्यागामी की होगी। तब महाराज ने कहा-कि फिर वह लड़की बड़ी होकर क्या करेगी, वेश्या ही बनेगी न, जब उस युवक ने इस बात को स्वीकार किया, तब महाराज ने कहा कि क्या कोई भद्र पुरुष अपनी लड़की को वेश्या बनाना पसन्द करेगा। तो युवक ने कहा हरगिज नहीं, तब वह युवक महाराज के चरणों में गिर पड़ा और उस दिन से उसने यह व्यसन छोड़ दिया।

३. जब स्वामी जी प्रयाग आये तो इन दिनों कुछ लोग ईसाई बनने की तैयारियां कर रहे थे। इन्हें स्वामी जी के पास लाया गया। महाराज के संसर्ग और उपदेश से वे सब लोग ईसाई बनने से बच गये।

४. प्रयागराज में माधोचन्द्र चक्रवर्ती बंगाली सज्जन P. W. D.

में ओवरसीयर थे। जब महाराज प्रयाग पहुंचे तो वे पेन्शन लेकर वहीं ठेकेदारी करते थे, बड़े तीक्ष्ण बुद्धि पुरुष थे। अंग्रेजी के साथ उन्हें फारसी का भी अच्छा ज्ञान था। वे अपने आप को बड़ा तार्किक समझते थे। और अपनी तर्कशक्ति पर बड़ा घमण्ड था। वे कहा करते थे कि मेरी युक्तियों का कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। अतः उन्होंने १०१ प्रश्न लिख रखे थे। जो कोई प्रसिद्ध धर्मोपदेशक प्रयाग में आता, वे अपने प्रश्न उनके सामने रखते, और उनको निरुत्तर करके चले आते थे, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के सामने अपने वही प्रश्न रखे। परन्तु उनके उत्तरों से भी उनको सन्तोष न हुआ। माधो बाबू जन्म के ब्राह्मण थे परन्तु हिन्दू धर्म से उनका विश्वास उठ गया था। और वे ईश्वर के विश्वास तक को भी तिलाञ्जलि दे चुके थे। उनके विचार मुसलमानी मत की ओर झुके हुए थे। और उन्होंने एक मुसलमान वेश्या भी रखी हुई थी। और शराब मांस अण्डे सब कुछ खा पी जाया करते थे।

सन् १८७० में जब महाराज प्रयाग पहुंचे तो यही माधोचन्द्र चक्रवर्ती अपने १०१ प्रश्न लेकर महर्षि की सेवा में भी उपस्थित हुआ। और लगा स्वामी जी से उत्तर प्रश्न करने परन्तु थोड़ी देर तर्क करने के बाद इनकी तर्कशक्ति ने जवाब दे दिया। इनका सारा घमण्ड चूर-चूर हो गया। और उसके हृदय-मन्दिर का सब अन्धेरा दूर हो कर उसमें आस्तिकता की चमक पैदा हो गई। और अन्त में श्री चरणों में अपना सिर रखकर सब दुर्व्यसनों को छोड़ कर सन्ध्या, गायत्री, हवन आदि क्रियाएं जो महर्षि ने बताईं करने लग गया। (इसी माधोचन्द्र ने मुसलमानों के षड्यन्त्र को जो वे स्वामी जी के प्राणहरण करने के लिए कर रहे थे निष्फल बना दिया था।)

५. कलकत्ता निवास के समय ब्रह्मसमाज के लीडर केशवचन्द्र सेन ने ब्रह्मसमाजियों में यज्ञोपवीत पहनने के विरोध में बड़ा आन्दोलन उठा रखा था। अतः चक्रवर्ती बाबू ने स्वामी जी से पूछा कि यज्ञोपवीत पहनना चाहिए या नहीं तो स्वामी जी ने उत्तर दिया कि अवश्य पहनना चाहिए। इस व्यवस्था को सुन कर अनेक ब्राह्मण और अनेक यज्ञोपवीत धारियों ने अपने यज्ञोपवीत न उतारे। हालांके केशव बाबू उनको पतित करने का पूरा-पूरा यत्न करते रहे।

६. रामशरण गौड़ ब्राह्मण लुधियाना में पादरियों के पास नौकर हो गया था और वे उसको ईसाई बनाने का यत्न कर रहे थे। बल्कि उसके ईसाई बनाने की तारीख भी निश्चित हो चुकी थी कि महाराज लुधियाना पधारे और उसको ईसाई होने से बचा लिया ।

७. मारवाड़ का एक राजा १५ सेर रुद्राक्ष की मालाएं पहनता था और हर रोज ५ सेर मिट्टी के शिवलिङ्ग बनाया करता था । जो एक ब्राह्मण पानी में डुबो दिया करता था । महाराज के उपदेश से इस क्लेश से छूट और महाराज को कोटानुकोटि धन्यवाद देता था ।

८. जेहलम निवास में मेहता अमींचन्द गान विद्या विशारद थे। जो महाराज के पास आकर भजन गाया करते थे । एक दिन महाराज को किसी ने कह दिया कि भक्त अमीचन्द तो व्यसनी आदमी है, इस पर स्वामी जी ने भक्त अमीचन्द की जब वह उनके पास फिर आये तो कहा–"अमीचन्द हो तो हीरे पर कीचड़ में पड़े हो ।" बस महाराज के मुखारविन्द से यह शब्द निकलने की देर थी कि अमीचन्द की काया पलट गई । घर पर आ कर शराब की बोतल तोड़ दी, वेश्या को जवाब दे दिया अपनी पत्नी को जो बहुत देर से मैके गई हुई थी, जाकर ले आए और सचमुच हीरे बन गये । आज तक आर्यसमाजों में उनके भजन बड़े प्रेम से गाये जाते हैं ।

९. मुलतान निवास के समय सागरचन्द इञ्जीनियर पक्का नास्तिक था । वह कहा करता था कि मैं १४०० पुस्तकें पढ़ कर नास्तिक बना हूं । जब महाराज के दर्शन किये तो तीन दिन तक उनसे वार्तालाप करके महर्षि के प्रताप से आस्तिक बन गये और ईश्वर की सत्ता को स्वीकार कर लिया ।

१०. अमृतसर में लगभग ४० हिन्दू नौजवान मिशन स्कूल में पढ़ने के कारण ईसाई मत की ओर झुक गये थे । वे नाम मात्र के हिन्दू रह गये थे । वे अपने आपको बपतिस्मा के बगैर ईसाई कहने लग गये थे । उन्होंने अपनी एक अलग सभा बना ली थी, जिसका नाम उन्होंने Prayer Meeting रख छोड़ा था और प्रति रविवार इसका अधिवेशन हुआ करता था । जब महाराज अमृतसर पधारे तो उनके व्याख्यान सुन कर उनके सब भ्रम निवृत्त हो गये और वे पतित होने से बच गये ।

११. पादरी खड़कसिंह जिनको ईसाइयों ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने को बुलाया था, शास्त्रार्थ से पहले स्वामी जी से मिले और वार्तालाप करके ईसाई मत त्याग कर आर्य बन गये ।

१२. रुड़की में एक दिन आवागमन विषय पर महाराज का व्याख्यान सुन कर बाबू सुरेशचन्द असिस्टेंट इञ्जीनियर ने कहा कि मैंने आज तक ऐसा युक्तियुक्त व्याख्यान आवागमन के समर्थन में अपनी सारी आयु में कभी किसी से न सुना था । मेरा आवागमन पर विश्वास न था परन्तु आज मेरा पक्का विश्वास हो गया है कि आवागमन सिद्ध सिद्धान्त है ।

१३. हरिद्वार कुम्भ प्रचार के समय दो नागे साधु महाराज के डेरे पर आए । और बड़ी असभ्यता से बातें करने लगे । परन्तु महाराज की तेवरी पर बल भी न आया । और उनकी बेतुकी बातों का सभ्यता पूर्वक उत्तर देते रहे । जब नागों ने देखा कि किसी प्रकार भी महाराज की शान्ति भंग नहीं होती तो स्वामी जी के इनके प्रति व्यवहार का इन पर इतना प्रभाव पड़ा कि उनका आत्मा स्वयम् उनको धिक्कारने लग गया । तब वे लज्जित होकर श्री चरणों में गिर पड़े और उसी वक्त नागा बाना उतार फैंका और नागा पन्थ के सब चिह्न पीतल के कड़े, माला कफ़नी और जटा वगैरह सब गंगा में फैंक दी और महाराज से दीक्षा लेकर नमस्ते कर विदा हो गये ।

१४. हरिद्वार में एक निर्मला साधु जोतसिंह नाम का महाराज के पास वार्तालाप करने आया परन्तु अत्यन्त कड़वी बोली में बातें करने लगा, रुड़की के हकीम थानसिंह जी स्वामी जी के श्रद्धालु भक्त थे, वे पास बैठे थे, उनसे साधु की बातें असह्य हो गईं तो उन्होंने साधु से कहा—आदमियों की तरह बात करो वरना मुंह तोड़ दूंगा । महाराज ने हकीम साहब को कहा—आप ऐसा मत कहो । इस पर वह रुष्ट हो गया, और तीसरे दिन फिर वह आया तो स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे, जब महाराज व्याख्यान से उठे तो साधु के अश्रुपात हो गये और महाराज के चरण पकड़ कर क्षमा-प्रार्थना करने लगा । महाराज ने उसको उठाया और तसल्ली दी, फिर वह महाराज का अनुगत हो गया ।

१५. देहरादून के एक रईस के दो पुत्र अंग्रेजी पढ़े थे, उन पर

ईसाइयों का रंग बहुत गहरा चढ़ गया था और वे ईसाई होने को तैयार हो चुके थे। इन्होंने इश्तिहार दे रखा था कि छः महीने के अन्दर-अन्दर अगर कोई हम को सन्तुष्ट कर दे कि वैदिक धर्म ईसाई धर्म से श्रेष्ठ है तो हम ईसाई नहीं होंगे वरना ईसाई हो जावेंगे। इस छः महीने की अवधि में केवल दो चार दिन ही शेष थे कि महाराज देहरादून पहुंच गये और उन्होंने इन दोनों नवयुवकों को बुलाकर इनकी सन्तुष्टि कर दी कि वैदिक धर्म ईसाई धर्म से बहुत श्रेष्ठ है। पादरियों ने उन लड़कों को कई प्रकार की धमकियां देनी शुरू कर दीं, पर वे दोनों नवयुवक महाराज के उपदेश से दृढ़ वैदिक धर्मी बन चुके थे। महाराज के इस अनुग्रह से इन लड़कों के पिता ने महाराज को कुछ धन भेंट करना चाहा, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया और कहा कि इस धन से संस्कृत पाठशाला खोल दो।

१६. बरेली के लाला लक्ष्मीनारायण जी स्वामी जी का आतिथ्य किया करते थे। उन्होंने एक वेश्या रखी हुई थी। महाराज को इस बात का पता लग गया। एक दिन महाराज ने उनसे पूछा कि आप का क्या वर्ण है, उन्होंने कहा आप तो वर्णव्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव अनुसार मानते हैं, मैं क्या उत्तर दूं। महाराज ने उत्तर दिया यूं तो सब वर्ण संकर हैं परन्तु लोक के अनुसार तुम अपने आपको क्या कहते हो। उन्होंने उत्तर दिया कि मैं क्षत्रिय हूं। तब महाराज ने कहा कि यदि क्षत्रिय के वीर्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो तो उसे क्या कहेंगे। खजाञ्ची जी ने लज्जा से सिर झुका लिया। तब महाराज ने कहा सुनो भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते, हम तो सत्य ही कहेंगे। महाराज के उपदेश से खजांची जी ने उसी रात उस वेश्या को निकाल दिया।

१७. मिर्जापुर में विद्या विषय पर महाराज का एक व्याख्यान हुआ, जिसमें उन्होंने, हिन्दू-मुसलमान, ईसाई, अंग्रेज आदि सब जातियों के पण्डितों को खूब धिक्कारा कि ये लोग जनता जनार्दन को अविद्या में रखते हैं। महाराज की वक्तृताशक्ति इतनी अद्‌भुत थी कि श्रोतागण सत्य मानने पर बाधित हो जाते थे। श्रोताओं में एक सेठ जी और उनके पुरोहित भी थे, वक्तृता समाप्त होने पर सेठ जी ने पुरोहित जी से पूछा कि वक्तृता कैसी रही ? पुरोहित जी ने कहा बहुत अच्छी। इस पर

महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से विद्या मन्दिर पर लगे ताले को तोड़कर विद्या मन्दिर के द्वार मनुष्य मात्र पर खोल दिए ।

मारवाड़ी सेठ ने कहा कि तो फिर आपने हमें भ्रांति के कुएं में क्यों डाल रखा है। तब से वे स्वामी जी के भक्त बन गये ।

१८. आगरा में एक नास्तिक बंगाली जिसको अपनी तर्क-शक्ति पर बड़ा घमण्ड था, लोग भी इसको बड़ा तार्किक मानते थे । जब वह महाराज के सामने आया तो लोगों के आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने देखा कि बंगाली बाबा दो चार उत्तर पाकर ही सट्टी पट्टी भूल गये, और उसके मुख से झाग निकलनी शुरू हो गई। श्री चरणों पर गिर पड़ा और आस्तिक बन गया ।

१९. फर्रूखाबाद में कुछ विदेशी लोगों ने प्रसाद नामी एक बड़े हृष्ट पुष्ट गुण्डे को लालच देकर स्वामी जी पर आक्रमण करने को भेजा। वह एक मोटा सा लठ्ठ लेकर स्वामी जी के डेरे पर पहुंच गया । और बकवास करके कहने लगा, बाबा देवमूर्तियों को साक्षात् परमात्मा मानते हो कि नहीं । स्वामी जी ने कहा कि देवमूर्तियां ईश्वर नहीं, तुम ईश्वर का स्वरूप नहीं जानते । वह कहने लगा मैं जानता हूं ईश्वर सच्चिदानन्द और भक्त वत्सल है, और भक्तों के कारण जन्म लेता है । स्वामी जी ने कहा ईश्वर अजन्मा है, यह शब्द तुमने रामायण में भी सुना होगा, उसने कहा हां सुना तो है । तब महाराज ने उसको कुछ देर उपदेश किया, और उसके सब हिंसा भाव नष्ट हो गये । तब महाराज के चरणों में गिर पड़ा और उसके पश्चात् जब तक जीता रहा एक सदाचारी ब्राह्मण की तरह रहता रहा ।

२०. श्री रामदयालसिंह रईस चन्द्रावली जिला मुरादाबाद शराब के बड़े व्यसनी थे, एक दिन महाराज ने व्याख्यान में शराब पीने का दोष कुछ ऐसे ढंग से वर्णन किया कि उक्त रईस ने उसी वक्त शराब त्याग दी और फिर सारी आयु न पी ।

२१. अजमेर में एक हिन्दू युवक ईसाई बनने ही वाला था कि महाराज वहां पहुंच गये और वह पतित होने से बच गया ।

१२०. बेजबानों का वकील

१. उदयपुर में दसहरा के मौके पर सैकड़ों बकरे और भैंसे मारे जाते थे । महर्षि दयानन्द सरस्वती इस हिंसाकार्य को देखकर बहुत दुःखी

हुए । एक दिन जब महाराणा उदयपुर दशहरे के उत्सव से लौटते हुए श्री सेवा में हाजिर हुए तो स्वामी जी महाराज ने हंसी का भाव धारण करते हुए कहा–कि आप राजा हैं, न्यायाधीश हैं, मैं भैंसों और बकरों का वकील बनकर एक मुकदमा आपके सामने रखता हूं कि उन बेजबानों का मारना अन्याय है और इससे पाप के सिवाय और कोई लाभ नहीं है । महाराणा जी ने स्वामी जी की बात तो मान ली, परन्तु यह कहा कि पशु–हत्या बन्द कर देने से एकदम कोलाहल मच जायेगा । इसे धीरे धीरे ही बन्द करना होगा और इस पर महाराणा साहब ने किसी हद तक पशु–हत्या बन्द कर देने की आज्ञा भी दे दी थी ।

२. महर्षि जी अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दशम समुल्लास में उपकारी पशुओं की हिंसा का निषेध शीर्षक कायम कर के लिखते हैं–"जो ज्ञो 'बुद्धि का नाश करने वाले पदार्थ हैं उन का सेवन कभी न करे और जितने सड़े बिगड़े दुर्गन्ध आदि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए मद्य मांसाहारी म्लेच्छ कि जिन का शरीर मद्य मांस के परमाणुओं से पूरित है उनके हाथ का न खावे जिसमें उपकारक पशुओं की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर हजार छः सौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है, ऐसे पशुओं को न मारें और न मारने दें ।

वैसे भैंस भी हैं, परन्तु गाय के दूध से जितनी बुद्धि–वृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं । इसलिए मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को ही माना है और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा । बकरी के दूध से ३१९२० आदमियों का पालन होता है । वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गधे आदि से बड़े उपकार होते हैं। (जिसकी विशेष व्याख्या गोकरुणानिधि में लिखी है । इन पशुओं को मारनेवालों को मनुष्यों की हत्या करने वाला जाने । देखो ! जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे । तभी आर्यावर्त व अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणी रहते थे । क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की अधिकता होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे । जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले सिद्ध यानि राज्याधिकारी हुए तब

से धीरे-धीरे आर्यों के दुख की बढ़ती होती जाती है । क्योंकि-

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् । (बृहदारण्यक १।१०)

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय, तो फल फूल कहां से हों ।

३. संवत् १९३६ हरिद्वार के कुम्भ में प्रचार करते-करते एक दिन महर्षि जी बैठे-बैठे सहसा लेट गये, लोगों को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ, थोड़ी देर बाद महाराज उठ बैठे और लम्बी सांस ले कर कहा-कि विधवाओं और गौओं की आह से यह देश नष्ट हो गया ।

१२१. नारी अधिकार-रक्षक

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

महर्षि दयानन्द जी के आने से पहले न न केवल भारतवर्ष में अपितु संसार भर में नारी जाति अपने अधिकारों से वञ्चित थी । सभी बड़े-बड़े फ़लासफ़री और भक्तों ने भी नारीजाति के प्रति निहायत ही घटिया दर्जे के विचारों को अपनाया और प्रचार किया जिससे संसार भर में नारी जाति अपमानित हो रही थी परन्तु महर्षि दयानन्द जी महाराज ने नारी-संसार के अधिकारों की रक्षा के लिए वह जोरदार आन्दोलन उठाया कि अब सकल संसार की नारी अपने अधिकारों को प्राप्त करने में कटिबद्ध हो चुकी है । इंग्लैण्ड जैसे प्रसिद्ध प्रजातन्त्र राज्य में भी स्त्रियों को अपने अधिकार प्राप्त करने के लिए घोर परिश्रम और प्रयत्न करने पड़े थे । कई साल के निरन्तर प्रयत्न से ही अब इनको वोट का अधिकार प्राप्त हुआ है । हमारे इस भारत देश में तो "स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्" की मनगढ़न्त श्रुति रच कर नारी जाति को विद्या अधिकार से एकदम वञ्चित कर दिया हुआ था । महर्षि ने बड़े परिश्रम से 'यथेमाम् वाचम् कल्याणीमावदानि जनेभ्यः' की श्रुति का शस्त्र हाथ में लेकर हजारों सालों से विद्या के इस बन्द द्वार पर लगे हुए बड़े भारी कफ़ल को तोड़ कर विद्यामन्दिर का द्वार सब मनुष्य मात्र के लिए खोल दिया । महर्षि के अतिरिक्त संसार भर के आदरणीय महापुरुषों के स्त्री जाति के प्रति कितने घृणाप्रद विचार थे । वे उनके निम्नलिखित वाक्यों से स्पष्ट ही

हो रहे हैं–

१. स्वामी शंकराचार्य–स्त्री को नरक का द्वार समझते थे और शायद इसीलिए इन्होंने विवाह न किया था।

२. गुसाईं तुलसीदास तुलसी रामायण में लिखते हैं–
ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी ।

फिर भीलनी के मुंह से कहलवा दिया है–

अधम ते अधम अधम अति नारी ।
ताहि में मैं मतिमन्द गंवारी ॥

३. भगत सूरदास से जब किसी ने नारी के विषय में पूछा कि आप के क्या विचार हैं तो वे उत्तर देते थे–

"कि मेरी फूटी आंखों को देख कर भी मुझ से यह सवाल पूछते हो । मेरा तो सारा जीवन ही स्त्री के कारण तबाह हो गया है, सदा के लिए आंखें खो बैठा हूं ।"

यह कथा इस तरह है कि भगत सूरदास जी भिक्षा मांगने जाया करते थे । एक दिन एक द्वार पर एक निहायत ही सुन्दर युवती नारी इनको भिक्षा देने के लिए आई, भगत जी इसको निहायत ही ग़ौर से देखने लग गए । जिससे उसका सुन्दर रूप उनकी आंखों द्वारा उनके मन में उतर गया । जब अपने डेरे पर आए तो कुछ होश आया और सोचा कि आंखों के रास्ते वह रूप मेरे अन्दर आ कर मेरी गिरावट का कारण बना है । इसलिए आंखों को ही निकाल देना चाहिए । सो उन्होंने अपनी दोनों आंखें निकाल दीं और अन्धे हो गए । अब तनिक विचारिए कि इसमें स्त्री जाति का क्या दोष है । सुन्दर और जवान होना क्या स्त्री का दोष है ? ये तो वही बात हुई "मारूं घुटना फूटे आंख" दोष आपका है कि स्त्री के रूप यौवन को सहन न कर सके । होता कोई महर्षि दयानन्द जैसा योगीराज जो एकदम योग द्वारा मन का शीशा साफ कर लेता । जैसा कि उन्होंने मथुरा निवास के समय ७२ घण्टे की लगातार समाधि लगा कर किया था । यह तो भगत जी से बन न सका और आंखें फोड़ कर स्त्री जाति की निन्दा करना शुरू कर दी ।

गिला औरत का करते थे, कसूर अपना निकल आया ।

४. भगत कबीर कहते हैं ।

नारी की छाया पड़त, अंधे होत भुजंग ।
कबीरा ताकि कौन गत, जो नित नारी के संग ॥

५. हजरत मुहम्मद साहब–औरतें तुम्हारी खेतियां हैं । आओ जिस तरह से चाहो । इसलाम में एक मर्द के लिए चार औरतों को रखने का विधान है मर्द औरत को तलाक दे सकता है परन्तु औरत मर्द को तलाक नहीं दे सकती ।

६. हजरत ईसा–बाईबल ने कहा है कि, औरत के तो आत्मा ही नहीं होती (सैकड़ों सालों तक ईसाइयों में यह विचार फैला रहा।) कि यह तो मांस और हड्डी का लोथड़ा है । बेजान चीज है । जैसे चाहो इस्तेमाल करो क्योंकि हजरत आदम ने जब खुदाबन्द से अकेलेपन की शिकायत की तो खुदा ने हजरत आदम की एक पसली निकालकर हव्वा बना दी । ताकि आदम की दिल्लगी होती रहे ।

७. यूनान का मशहूर फ़िलासफ़र सुकरात–कहता है कि औरत से अधिक फ़ितना वा फ़साद की चीज कोई नहीं । यह एक ऐसा पेड़ है जो बहुत ही सुन्दर और खुशनुमा नजर आता है, लेकिन जब कोई चिड़िया इसका फल खाती है तो मर जाती है । मालूम होता है कि सुकरात ने स्त्री जाति के प्रति ऐसे विचार अपनी धर्मपत्नी से तंग आकर बनाए थे, क्योंकि सुकरात की स्त्री बहुत लड़ाकी तबीयत की थी । सुकरात को बहुत गालियां भी निकाला करती थी। कहते हैं कि एक दिन सुकरात जब घर आया तो उसकी स्त्री उसे कठोर वचन कहने लगी । सुकरात चुप करके सुनता रहा, और बिल्कुल न बोला । इस पर उसकी स्त्री को और भी गुस्सा आ गया । और उसने भरी भराई पानी की बाल्टी सुकरात पर फैंक दी । इस पर सुकरात ने हंस कर कहा "सुना करते थे कि जो गरजते हैं वह बरसते नहीं परन्तु आज यह लोकोक्ति भी व्यर्थ हो गई ।"

८. अफ़लातून ने कहा–जालिम और जलील आदमी मरने के बाद औरत बना दिये जाते हैं ।

९. योहना–औरत अमन और सलामती की दुश्मन है ।

१०. नेपोलियन बोनापार्ट–जब जजीरा हैलना मैं कैदी था तो उसने कहा था कि औरत कुदरत की तरफ से एक अतिया है ताकि बच्चे पैदा

करें ।

११. शापनहार–जर्मन का मशहूर फ़िलासफर–औरतों को किसी हुनर में दिलचस्पी नहीं होती। जिस तरह हाथी का सूंड, और शेर को पंजे दिये गये हैं ताकि वह अपनी हिफ़ाजत कर सकें । इसी प्रकार औरत को मक्कारी दी गई है ताकि वह अपने मकसद को हासिल करने के लिए फ़रेब से काम लें और इस नियम के मुताबिक इनको विरासत से महरूम रखना चाहिए । औरत अत्यन्त तंग नजर होती हैं ।

१२. जर्मन का मशहूर मुसन्नफ़ नैटशे–यदि तुम संसार भर में तबाही का खतरा मोल लेना चाहते हो तो औरत को आजादी दे दो ।

१३. इंग्लैंड का मशहूर शायर लार्ड बायरन लिखता है–औरतों को सिर्फ घरेलू बातों का ध्यान रखना चाहिए । इनको तालीम भी खाने पकाने तक सीमित रहे । सोशल लाइफ के साथ इनका कोई सम्बन्ध न होना चाहिए ।

१४. इस तरह नारी जाति के प्रति सैकड़ों हजारों सालों से घृणित विचारों का प्रवाह चलता रहा । औरत को अत्यन्त घिनावने रूप में रखा जाता रहा और इसे तमाम बुराइयों का अड्डा बताया जाता रहा परन्तु जमाने ने पलटा खाया । और भगवान् की कृपा से एक ऐसा पूर्ण पुरुष संसार में पैदा हुआ जिसने नारी जाति को इसके सब अधिकार दिलाने के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी । इस पूर्ण पुरुष ने स्त्री जाति को मातृ-शक्ति के रूप में देखा । जो उनके जीवन की निम्नलिखित घटना से पूर्ण रूप से प्रत्यक्ष हो रहा है ।

१५. जब महर्षि दयानन्द राजपूताना में प्रचार कर रहे थे, तो एक दिन बहुत श्रद्धालु भक्तों के साथ बाहर सैर को जा रहे थे । रास्ते में एक पीपल का पेड़ था । जिसके नीचे कुछ बच्चे खेल रहे थे, इन बच्चों में एक छोटी से कन्या थी । महर्षि जी ने इस मातृशक्ति रूपी छोटी सी कन्या को सिर झुका कर नमस्कार किया । उसी पीपल के नीचे कुछ पत्थरों को इकट्ठा कर और सिन्दूर लगा कर देवता बनाया हुआ था । महर्षि के साथ वाले उनके श्रद्धालु भक्त महर्षि के नमस्कार करने के रहस्य को समझ न सके । अनायास ही एक श्रद्धालु ने कहा–महाराज चाहे आप मूर्तिपूजा का कितना ही खण्डन करें परन्तु

पीपल के नीचे पड़े हर पत्थर के देवता ने आप का सिर झुका ही दिया। इस पर महर्षि चलते चलते खड़े हो गये। और उंगली से इस छोटी कन्या की तरफ संकेत करके बोले, देखते नहीं हो वह मातृशक्ति है, मैंने तो उसको नमस्कार किया है। आपके पत्थर के देवता में कहां शक्ति है कि वह मेरा सिर झुका सके। इस पर सब लोगों की श्रद्धा महर्षि की मातृशक्ति की भक्ति देखकर और भी बढ़ गई। कहा भी है।

नारी निन्दा मत करो, नारी नर की खान।
नारी से ही उपजे ध्रुव प्रह्लाद समान ॥

फिर महर्षि जी ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मनुस्मृति के बहुत से श्लोक उद्धरण करके नारी जाति की महिमा गाई है। महर्षि ने स्त्री-जाति के अधिकारों की रक्षा करके जो स्त्री-जाति का उपकार किया है। वह नारी संसार कभी नहीं भुला सकता। संसार के बड़े-बड़े पुरुषों, फ़िलासफ़रों, खुदा के पैगम्बरों और खुदा के इकलौते पुत्र के प्रचार के खिलाफ़ खड़े होकर महर्षि जी ने अपूर्व साहस का परिचय दिया है। और इसलिए अनायास ही मुंह से निकल पड़ता है-
(नारी संसार के अधिकारों की रक्षा करने वाले की सदा जय हो)

१२२. संसार भर के साईंसदानों को चैलेंज करने वाला

उन वेदों को जिनको योरुपियन लोगों ने अपनी अल्प बुद्धि और अज्ञान से गडरियों के गीत कह कर घोषित किया था। महर्षि दयानन्द जी ने उनको सब सत्य विद्याओं का पुस्तक सिद्ध करके दिखाया। महर्षि जहां फ़िलासफ़ी का पूर्ण ज्ञान रखते थे। इतिहास और तत्त्वज्ञान के भी विद्वान् थे। वहां विज्ञान यानि साईंस के भी पूर्ण ज्ञानी थे। अतः सन् १८७५ में जब महर्षि जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पुस्तक लिखी तो उसमें नाव, विमान, विद्या पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला है।

१. महर्षि लिखते हैं कि "तीन प्रकार के यान बनाने चाहिए। पृथ्वी पर, समुद्र में और आकाश में चलने वाले और नगरों की सड़कों पर चलने वाली (मोटर) गाड़ियां और वह सवारियां मन से भी अधिक वेग वाली हों।" "फिर वह सवारी कैसे बनानी चाहिए जिन

सवारियों से हमारा भूमि, जल और आकाश में प्रतिदिन आनन्द से आना जाना बनता है । वह लोहा, तांबा, चांदी आदि तीन धातुओं से बनती हैं । और जैसे नगर वा गांव की गलियों में झटपट जाना आना बनता है, ऐसे दूर देश में भी उन सवारियों से शीघ्र शीघ्र आना जाना होता है । इस प्रकार विद्या के निमित्त उपरोक्त जो अश्वी हैं (आग, पानी इनको अश्वी कहते हैं) उनसे बड़े बड़े कठिन मार्गों में भी सहज से आना जाना होता है । जैसे मन के वेग के समान शीघ्र गमन करने के लिए सवारियों से प्रतिदिन सुख से सब भूगोल में आवें जावें । जो उपरोक्त अश्वतरीयुक्त यान बनते हैं । वह जो रथ बड़े बड़े समुद्रों के मध्य से भी पार पहुंचाने में श्रेष्ठ होते हैं जो विस्तरित आकाश तथा समुद्र में आने जाने के लिए अत्यन्त उत्तम होते हैं । जो मनुष्य इन रथों में यन्त्र सिद्ध करते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं । फिर एक वेद मन्त्र का अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं कि "हे मनुष्य लोगो जैसा मन का वेग है वैसे वेग वाले यान सिद्ध करो और जो इस प्रकार शिल्प विद्या रूप श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले सब भोगों से युक्त होते हैं वे कभी दुखी होकर नष्ट नहीं होते । क्योंकि कलाकौशल से युक्त मन से भी वेगवान् सवारियों पर चढ़ कर सर्व भूगोल में आते जाते हैं । इन्हीं से मनुष्यों का सुख भी बढ़ता है । इस तरह महर्षि जी ने सन् १८७५ में वेद मन्त्रों के आधार पर संसार के वैज्ञानिकों को हवाई जहाज बनाने का तरीका बताया है परन्तु जब संसार के वैज्ञानिकों के सामने यह प्रश्न आया तो उन्होंने एकदम उसको रद्द कर दिया और कहने लगे कि जब तक ज़मीन की आकर्षण शक्ति कायम है । तब तक किसी आदमी का हवा में उड़ना कैसे सम्भव हो सकता है । यह कानून कुदरत के खिलाफ बात है और इस पर महर्षि का उपहास भी किया गया । ऋषिवर से जब किसी ने कहा कि क्या आप हवाई जहाज बना सकते हैं ? तो उन्होंने कहा अगर मुझको पर्याप्त सामान मिल जाए तो मैं हवाई जहाज बना कर दिखा सकता हूं ।

आश्चर्य जनक घटना

आपको यह जान कर आश्चर्य और हर्ष होगा कि संसार में सब से पहला हवाई जहाज बनानेवाला महर्षि जी का चेला ही था ।

महर्षि दयानन्द जी के अनुवेशन में श्रद्धा रखने वाले उनके शिष्य

आर्यसमाज बम्बई के सभासद श्री ताल्पादे ने सन् १९०३ में एक हवाई जहाज बनाया। उसका नाम मरुत्सखा रखा गया और महाराजा बड़ौदा के सम्मुख बम्बई चौपाटी पर उड़ाकर इसका परीक्षण किया गया। जो कामयाब रहा। लेकिन अफ़सोस कि ताल्पादे बहुत दिन तक जीवित न रह सके। और उनका सारी खोज का साहित्य आर्यसमाजियों से न सम्भाला गया। और जर्मन देश के लोग ले गए। इसके बाद सन् १९०४ में अमरीका के दो सगे भाई राईट ब्रादर्ज ने गुब्बारा उड़ा कर हवाई जहाज का तजुरबा किया। और फिर जर्मन के काऊंट जैपलन ने हवाई जहाज सन् १९१० में बनाया। और अब हवाई जहाज जैसा कि महर्षि ने लिखा है मन के वेग वाले बनाए जा रहे हैं। महर्षि जी को जिस बात पर सन् १८७५ में संसार के साईंसदानों ने उपहास किया था अब उसी महाराज के कहने अनुसार हवाई जहाज, राकेट आदि कई प्रकार के यन्त्र बना रहे हैं।

३. प्राचीन काल में वेदों के आधार पर भारत में विज्ञान का कितना फैलाव था। महर्षि सत्यार्थप्रकाश में लिखते हैं "कि राजा भोज के पास एक काठ का घोड़ा था जो एक घड़ी में कोसों चलता था। और एक पंखा था जो किसी मनुष्य की सहायता के बिना आप ही आप खूब चलता था। और खूब हवा देता था।" इसी तरह धम्मपद के कथा वासुदत्त वित्थु पृष्ठ ६८ में लिखा है "कि कौशाम्बी के राजा उदयन की उज्जैन के राजा से शत्रुता थी। उसने राजा को पकड़ने के लिए एक लकड़ी का हाथी बनाया जो यन्त्र के सहारे चलता था। इसमें साठ योद्धा बैठ सकते थे। इस हाथी को सफेद रंग में रंगा कर उज्जैन के जंगलों में छोड़ दिया और वह यन्त्र के जोर से इधर उधर फिरने लगा। सफेद हाथी की खबर पाकर राजा इसको पकड़ने को आया परन्तु खुद पकड़ा गया।" फिर उसी ग्रन्थ के सफ़ा १९५ में लिखा है "कि विशाखा ने महालता नाम का एक आभूषण बनवाया था। चार महीने में ५०० सुनार उसे बना पाये थे। उसकी कीमत उस समय के सिक्का के अनुसार ९ करोड़ थी। इस आभूषण में एक मोर लगा था जो हर समय विशाखा के मस्तक पर नाचा करता था।" इस तरह महाभारत के आदिपर्व में अन्तक राजा के घोड़े का वर्णन है। वह भी यन्त्र के सहारे चलता था।

शाहबाजगढ़ी पिशावर में एक पत्थर पर रेल का इशारा भी है ।

विमान कला

महर्षि दयानन्द जी के अन्वेषण के अनुसार इस देश में विमान कला का बहुत विस्तार था । विमान नामक यन्त्र वैदिक काल से ही इस देश में प्रचलित था । वेद में विमान के बनने बनाने की विधि का कुछ वर्णन महर्षि जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में किया है । कहा गया है कि जो आकाश में पक्षियों के उड़ने की स्थिति को जानता है । वह समुद्र, आकाश की नाव, विमान को जानता है । संस्कृत में "वी" पक्षी को कहते हैं और "मान" का अर्थ है अनुरूप अथवा सदृश । इसलिए विमान का अर्थ हुआ पक्षी के सदृश और अब आपके सामने जो विमान उड़ते हैं वे सब पक्षियों की शक्ल के ही होते हैं । पञ्चतन्त्र में लिखा है कि एक धूर्त मनुष्य विष्णु का रूप धारण करके आया करता था और गरुड़ की आकृति का ही वाहन लाया करता था । विष्णु का तो वाहन ही गरुड़ की आकृति जैसा विमान जिसमें विष्णु विचरते थे । गया चिन्तामणि नामा में मोर की आकृति वाले हवाई जहाज का वर्णन मिलता है । वाल्मीकि रामायण सुन्दरकाण्ड में पुष्पक विमान का वर्णन आता है । भागवत पुराण में शैल राजा के विमान का वर्णन आया है । जो भूमि, जल, आकाश और पहाड़ पर भी आसानी से चलता था । (आजकल ऐसे जहाजों को हेलीकोप्टर कहते हैं) ऐसे ही हेलीकोप्टर पर हनुमान् लंका से हिमालय पर संजीवनी बूटी लाने के लिए आया था । सब से विशाल और शानदार विमान कर्दम ऋषि का था । विमानों के बनानेवाले कारीगर इस देश में बौद्धकाल तक यानि आज से २५०० वर्ष पहले तक मौजूद थे । धम्मपद में बौद्ध राजकुमार वथु पृष्ठ ४१० में एक कारीगर का हाल इस प्रकार लिखा है–"बौद्ध राजकुमार ने एक महल बनवाया। बनाने वाले कारीगर ने उसे बड़ा ही विचित्र बनाया । बौद्ध राजकुमार ने सोचा कि कहीं यह कारीगर किसी दूसरे राजा का महल भी इस प्रकार का न बना देवे । इसलिए इसके हाथ कटवा देने चाहिए । राजा ने यह बात अपने किसी सलाहकार से कह भी दी । इस आदमी ने यह खबर उस कारीगर तक पहुंचा दी । कारीगर ने, अपनी स्त्री से कहा कि वह अपना मकान तथा कुल सामान बेच कर इंस महल को देखने के लिए

राजा को दरख्वास्त देवे । स्त्री ने वही किया और राजा की आज्ञा से महल देखने गई । कारीगर इसको दिखाने के लिए साथ गया था । कारीगर इसको एक कमरे में ले गया । और स्त्री पुत्र व सब सामान के साथ इस कमरे में लगाये गये गरुड़ यन्त्र पर चढ़कर भाग गया और नेपाल के काठमाण्डु नगर में जा कर रहने लगा । इससे सिद्ध होता है २००० वर्ष तक इस देश में विमान बनाने वाले मौजूद थे । इन विमानों से सम्बन्ध रखने वाला एक प्राचीन पुस्तक है । उसका नाम है आशुबोधनी । यह भारद्वाज ऋषि की बनाई हुई है । इस पुस्तक में अनेक विद्याओं का वर्णन है । प्रत्येक विद्या के लिए एक एक अधिकरण (चेप्टर) रखा गया है। इन अधिकरणों में एक विमान अधिकरण भी है । इस अधिकरण में आए हुए एक सूत्र पर बोधायन ऋषि व्याख्या इस प्रकार है–

इन श्लोकों में विमान की रचना आकाश संचारी गति के आठ विभाग इस प्रकार लिखे हैं–

(१) बिजली से चलने वाले, (२) अग्नि, जल, वायु आदि से चलनेवाले, (३) भाप से चलने वाले, (४) पच चखी के तेल से चलने वाले (५) सूर्य की किरणों से चलने वाले । (६) चुम्बक से चलने वाले। (७) सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त आदि मणियों से चलनेवाले, (८) मरुत् सखा केवल वायु से चलने वाले । आजकल भारत सरकार को भी एक इसी प्रकार की पुस्तक पेश की गई थी परन्तु हमारी सरकार ने इस पुस्तक से कोई लाभ न उठाया । इसको अलमारी में बन्द कर रखा है ।

बोलनेवाली पुतलियां

पुराने जमाने में एक ऐसा यन्त्र भी बनवाया गया था जो मनुष्य की भाँति बोलता था । महाराज विक्रमादित्य के सिंहासन की पुतलियां बराबर बोलती थीं । वाल्मीकि रामायण लंकाकाण्ड सर्ग ८० में लिखा है कि रावण ने एक बनावटी सीता बनाई थी जो राम का नाम लेकर विलाप किया करती थी ।

४. महाभारत काल में टेलीवीजन जैसे यन्त्र का स्पष्ट वर्णन है कि राजा धृतराष्ट्र के पास बैठा हुआ संजय ६० कोस दूर पर हो रहे कुरुक्षेत्र युद्ध का आंखों देखा और कानों सुना हाल बतला रहा है ।

इस तरह विज्ञान में भी महर्षि दयानन्द जी के कथनानुसार भारत

जगत् गुरु ही सिद्ध होता है ।

१२३ जगत् गुरु

स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगत् गुरु और सुधारक थे । जैसा कि इंगलैंड के मिस्टर फाक्स पिट जनरल सैक्रेटरी ने कहा था ।

१. महर्षि जी के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर अब ईसाई पादरी इञ्जील, मुसलमान मौलवी कुरान शरीफ का, और हिन्दू पण्डित पुराणों का अर्थ बदलने में बाधित हुए हैं । और स्वामी जी के तर्क की रोशनी में अब नये नये तर्जुमे इन पुस्तकों के हो रहे हैं । एक बार आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी दर्शनानन्द जी रेलगाड़ी में सफर कर रहे थे । कुछ ईसाई पादरी भी इस कमरे में आ गये । जहां स्वामी जी बैठे थे । बातों ही बातों में आपस में प्रश्न उत्तर होने लगे। जब स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा–कि इञ्जील में तो लिखा है कि सूरज चौथे दिन पैदा हुआ । और दिन रात का सम्बन्ध सूरज से ही है तो जब सूरज न था, तो दिन कैसे हुआ । तब पादरी साहबान कहने लगे कि चौथे दिन का मतलब है चौथे दर्जे पर । तब स्वामी दर्शनानन्द जी ने कहा–कि यह हेरा फेरी कब से हुई तो ईसाई पादरी फौरन कहने लग गये, जो गुरु आप को पढ़ा गया है । वह हम को भी सिखा गया है इस तरह कुरान शरीफ बहिश्त की दोजख के विषय में वह पुराने विचार बिल्कुल बदल चुके हैं । पुराणों की अश्लील और असम्भव कथाएं अब महर्षि के तर्क से अलंकार बनते जा रहे हैं । यह तो हुई मजहबी दुनिया में महर्षि को गुरु मानने की बात । अब संसार में अमन कायम रखने के लिए जो अनुभूत नुस्खा महर्षि ने तजवीज किया था, वही सारा संसार मानने पर बाधित हो रहा है । वेद के अन्य भक्त महर्षि ने वेद के आधार पर संसार के अन्दर आर्यों के चक्रवर्ती राज्य की कामना की है। अपनी लघु पुस्तक आर्याभिविनय में जगह जगह हम ऐसी ही प्रार्थना करते हुए महर्षि को पाते हैं जैसा कि निम्नलिखित वेद मन्त्र में हैं ।

हमारा चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन बढ़े
ऋषि दयानन्द की हार्दिक प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे ।
अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्रशत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुजा ॥

ऋ० १।७।१४।४

अर्थ–हे इन्द्र परमात्मन् ! (त्वया युजा वयं जयेम) आपके साथ वर्तमान आप की सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें। कैसा वह शत्रु ? कि (आवृतम्) हमारे बल से घिरा हुआ । हे महाराजाधिराजेश्वर! (भरे भरे अस्माकमंशमुदवा) युद्ध में हमारे अंश (बल) सेना का (उदवा) उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को प्राप्त न हों । जिनको आप की सहायता है उनका सर्वत्र विजय ही होता है । (इन्द्र मघवन्) महाधनेश्वर ! (शत्रूणां वृष्ण्या) हमारे शत्रुओं के वीर्य पराक्रमादि को (प्ररुजा) प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट कर दे । (अस्मभ्यं वरिवः सुगं कृधि) हमारे लिए चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को (सुगं सुख से प्राप्त कराओ अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को ही प्राप्त हो ।

३. महर्षि जी ने अपनी दिव्य दृष्टि से यह देख लिया था कि जब तक संसार में वैदिक धर्म का प्रचार होकर आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा, तब तक संसार में अमन चैन रहा । परन्तु जब से आर्यों का चक्रवर्ती राज्य न रह कर माण्डलिक राज्य स्थापित हुए तब से संसार जंग का अखाड़ा बना हुआ है । यदि संसार को फिर से युद्ध के भय से निर्भय करके शान्ति स्थापित करनी है तो यही एक उपाय है कि संसार में आर्यों का एक अखण्ड चक्रवर्ती राज्य होवे । परन्तु उस वक्त महर्षि की इस बात पर किसी ने ध्यान न दिया । शायर के कथनानुसार–'अक्ल आती है वशर को ठोकरें खाने के बाद' । सन् १९१४-१८ के महायुद्ध की भट्टी में जल कर संसार उसी रास्ते पर चलने पर विवश हो गया । जो जगत् गुरु ने आज से १०० वर्ष पहले बतलाया था ।

४. सन् १९१४-१८ का युद्ध समाप्त हुआ तो इस युद्ध में हुई भयानक हानि को देखकर उस वक्त के अमरीका के प्रेजीडेण्ट के मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ जो महर्षि बतला गये थे । उन्होंने

यूरोप के सब मुल्कों को सुझाव दिया, कि सब देश इकट्ठे हो जाओ और एक ऐसी संस्था कायम करो जो भावी युद्ध की सम्भावना को रोक-सके। अतः यूरोप में एक लीग आफ़ नेशन्ज़ नाम की संस्था कायम की गई परन्तु अमरीका इसमें शामिल न हुआ और यह लंगड़ी सी संस्था संसार में अमन कायम करने में असमर्थ रही और पहले महायुद्ध के थोड़े ही दिन बाद इटली ने एबेसीनिया पर हमला कर दिया और भी कई मुल्कों में छोटी-छोटी लड़ाइयां शुरू हो गईं। क्योंकि यह लीग आफ़ नेशन्ज एक चक्रवर्ती राज्य न हो कर एक संस्था के रूप में ही बनाई गई और वह भी अधूरी। इसलिए यह युद्ध टालने में असमर्थ रही। महर्षि जी का विचार एक चक्रवर्ती राज्य का था और राज्य वह होता है जिसके पास अपनी शक्तिशाली सेना हो और बड़ा समृद्ध कोष हो, परन्तु लीग आफ़ नेशन्ज के पास ये दोनों चीजें न थीं। इस वास्ते यह बुरी तरह फ़ेल हुई। महर्षि के विचार को पूर्ण रूप से मिस्टर एच. जी. वेल्ज ने जाहिर किया है-जो निम्न प्रकार है-

Mr. H. G. Wells in his book Salvaging of Civilisation writes A league from which large sections of world are excluded is no contribution to that need. It may be worse than nothing, if man is to be saved from destruction there must be a WorldControl-Such a world Government that Should have might to Supersede the British Artillery, to Surpass the French Artillery and Air force superseding all navy and air forces, For many flags there must be one Sovereign flag."

अर्थात्-यदि मनुष्य को तबाही से बचाना है तो सार्वभौमिक अध्यक्षता होनी चाहिए। इसके पास इतनी सेना होनी चाहिए कि वह ब्रिटिश व फ्रेंच सेनाओं से अधिक हो। तथा समस्त राजकीय झण्डों के स्थान पर एक ही सार्वभौम झण्डा लहराता हो।

५. सन् १९३९-४५, में संसार का दूसरा महायुद्ध हुआ, इसमें पहले महायुद्ध से भी अति भयंकर हानि हुई तब फिर वही महर्षि का विचार संसार के सामने आया और अब के U. N. O. नाम की एक संस्था स्थापित हुई। जिसमें संसार के करीबन सभी देश शामिल हुए। अब भी महर्षि के विचार पूर्ण रूप से क्रियात्मक रूप में नहीं लाए गए। इस संस्था के पास भी न अपनी सेना है, न ही कोई कोष है। और यह

भी चक्रवर्ती राज्य न होकर एक चक्रवर्ती संस्था का रूप ही धारण किये हुए है। इसलिए अब भी संसार में छोटे बड़े झगड़े बखेड़े खड़े होते ही रहते हैं। अत: इस संस्था के होते हुए भी बर्तानिया और फ्रांस ने मिश्र पर हमला कर दिया था। जब तक महर्षि का चक्रवर्ती राज्य पूर्ण रूप से संसार में स्थापित नहीं होता तब तक संसार में अमन कायम नहीं हो सकता। और अब संसार के सारे ही पोलिटीशन इस एक बात पर सहमत होते जा रहे हैं कि One world govt. की स्थापना के बिना संसार में अमन नहीं हो सकता। जैसा कि मिस्टर वेल्ज के ऊपर के लेख से बिल्कुल स्पष्ट है। और संसार के विचारक अब इन्हीं दो बातों पर सहमत हो रहे हैं।

१. संसार में चक्रवर्ती राज्य की स्थापना।

२. संसार में सार्वभौमिक धर्म की स्थापना।

परन्तु चक्रवर्ती राज्य के साथ महर्षि जी ने जो आर्य शब्द का विशेषण लगाया है, वैसा ही होगा तो इन्सान और इन्सानियत बच सकेगी। अनार्यों का चक्रवर्ती राज्य हुआ तब तो संसार में अनर्थ ही अनर्थ हो जायेगा। क्योंकि आर्य और दस्यु दो ही किस्म के मनुष्य वेद ने कहे हैं। आर्य यानि श्रेष्ठ, दस्यु यानि दुष्ट। इसलिए आर्यों का ही चक्रवर्ती राज्य संसार के अमन का जामन हो सकता है दस्युओं का नहीं। और दूसरी बात की भी महर्षि जी महाराज ने ही घोषणा की थी कि वैदिक धर्म ही सार्वभौमिक धर्म पहले करोड़ों वर्षों तक रहा है, और अब संसार का भावी धर्म भी होने का श्रेय वैदिक धर्म को ही हो सकता है। अत: महर्षि की इन दोनों घोषणाओं को संसार भर के राजनैतिक लीडर और फिलास्फर शिरोधार्य करने पर विवश हो चुके हैं। क्योंकि संसार के कल्याण का और कोई मार्ग उनको नजर नहीं आता है और नजर आवे तब जब कोई और मार्ग संसार कल्याण का उपस्थित हो। अत: महर्षि दयानन्द जगत् गुरु सिद्ध होते हैं।

बोलो जगत् गुरु दयानन्द की जय !

१२४. दादा गुरु

१. भारत माता के हर दुःख को दूर करने और भारत के पतन के हर कारण के विरुद्ध जितने भी आन्दोलन इस देश में हुए इन सब आन्दोलनों में दयानन्द से प्रेरणा पाये हुए युवक छाती तान कर आगे होकर लड़ते रहे । धार्मिक क्षेत्र, सोशल बुराइयों को दूर करने, अविद्या अन्धकार को मिटाने, विधर्मियों से देशवासियों को बचाने और अंग्रेजों को देश निकाला देने के लिए दयानन्द के वीर सैनिक बढ़ चढ़ कर बलिदान देते रहे हैं । धर्म-प्रचार की खातिर गोलियां और ईंटें खाने वाले, देश को गुलामी से आजाद कराने की खातिर हंस हंस कर फांसी के तख्तों पर चढ़ जाने वाले अंग्रेजी राज्य में जेलों को भर देने वाले दयानन्द के वीर सैनिक ही तो थे, कांग्रेस के कर्णधार महात्मा गांधी जी ने भी दयानन्द के शिष्य महादेव गोविन्द रानाडे के शिष्य, गोपाल कृष्ण गोखले और महर्षि के शिष्य रूस के काउण्ट टाल्सटाय से प्रेरणा लेकर इतने बड़े आन्दोलन चलाये थे । और दूसरी तरफ क्रान्तिकारी दल के सब से प्रथम नेता पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा भी तो महर्षि के ही सच्चे शिष्य थे । इस तरह महर्षि हर क्षेत्र से कार्य करने वाले वीरों के दादा गुरु ही सिद्ध होते हैं ।

२. सबसे पहला क्रान्तिकारी योद्धा

श्याम जी कृष्ण वर्मा

श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा का भारत की इन्कलाबी तहरीक में एक निहायत ही नमायां मुकाम है । वे इस देश के उन मुहब्बे वतन और इन्क्लाब पसन्दों में से थे, जिन्होंने अंग्रेजों के घर में बैठ कर उनके बरखिलाफ़ बग़ावत की नई कई योजनाएं बनाई थीं । वे अपने जमाने में इन्कलाबी तहरीक के नेता थे और इस वक्त के कई इन्कलाब पसन्द इनसे प्रभावित हुए थे, लाला हरदयाल, श्री वी० डी० सावरकर, भाई परमानन्द आदि ने इन से बहुत कुछ सीखा था । श्री मदनलाल ढींगड़ा जिन्होंने लण्डन में सर कर्जन वायली नाम के अंग्रेज को गोली से उड़ाया था, श्याम जी कृष्ण के ही एक साथी थे । श्याम जी ने लण्डन में "इण्डिया हाऊस" क़ायम किया था, जहां हिन्दुस्तानी नौजवान जमा हुआ करते

दयानन्द सरस्वती
महादेव गोविन्द रानाडे
गोपाल कृष्ण गोखले
महात्मा गांधी
जवाहरलाल नेहरू
लाला लाजपत राय
Servant of the people Society
लालबहादुर
सत्यार्थप्रकाश
दादा भाई नारोजी
तिलक महाराज
श्याम जी कृष्ण वर्मा
(पहला क्रान्तिकारी)
वीर सावरकर
भगतसिंह
लाला हरदयाल
रामप्रसाद बिस्मिल
सुभाषचन्द्र बोस
आदि आदि ।
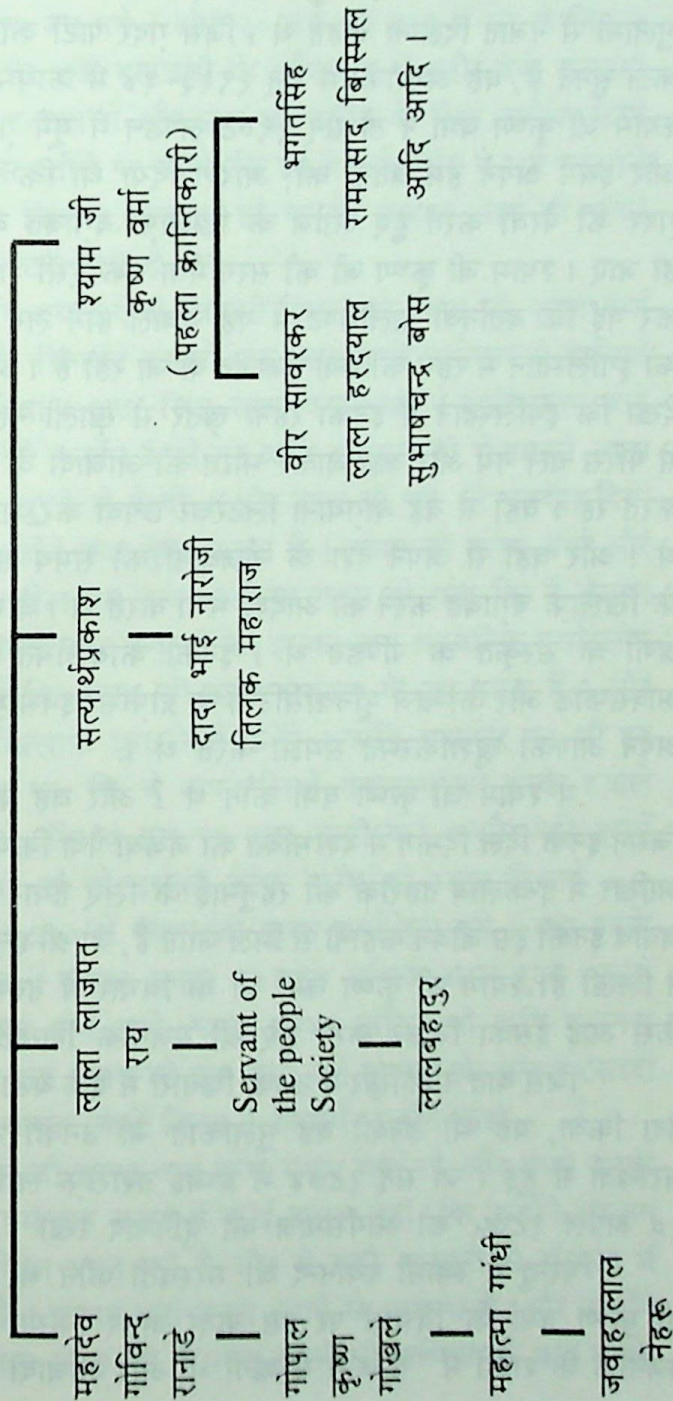
थे, जो अपने देश को एक मुसल्लाह इन्कलाब के जरिये अंग्रेजों की गुलामी से नजात दिलाना चाहते थे । जिस ग़दर पार्टी का नाम हम आज कल सुनते हैं, वह अमरीका में सन् १९१३-१४ में कायम हुई थी, परन्तु श्याम जी कृष्ण वर्मा ने तो सन् १९०८ लण्डन में यूमे ग़दर मनाया था। और इसमें अपने हम वतनों को, आदेश दिया था कि वह १८५७ के ग़दर की पैरवी करते हुए अंग्रेज के खिलाफ़ बग़ावत करने को तैयार हो जाए । श्याम जी कृष्ण जी की सरगर्मियां एक ऐसी शक्ल अखतियार कर गईं कि बर्तानवी पार्लीमेण्ट में यह सवाल होने लगे कि इस शख्स को इंगलिस्तान में रहने की क्यों इजाजत दी जा रही है । अतः जब उन्होंने देखा कि इंगलिस्तान में इनका रहना ख़तरे से ख़ाली नहीं तो वह वहां से पेरिस चले गये और वहां जाकर भारत की आजादी के लिए जद्दोजहद करते रहे । वहीं से वह बाग़याना लिटरेचर छपवा कर भारत भेजा करते थे । और वहीं से अपने देश के नौजवानों को समय समय पर अंग्रेज के खिलाफ़ बग़ावत करने का आदेश भेजा करते थे । वे एक अति उत्तम श्रेणी के संस्कृत के पण्डित थे । इनको काबलीयत मुसल्लमा थी, आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर इनसे मुलाकात करके अपने आपको खुशकिस्मत समझा करते थे ।

ये श्याम जी कृष्ण वर्मा कौन थे ? और वह कौन व्यक्ति था जिसने इनके दिल दिमाग में देशभक्ति का जजबा पैदा किया । और जिसने आखिर में इन्कलाब तहरीक की रहनुमाई के लिए तैयार किया । इसका जवाब इनकी इस जीवन कहानी से मिल जाता है, जो श्री इन्दुलाल यजनीक ने लिखी है। श्याम जी कृष्ण वर्मा जी के विचार में तबदीली क्यों और कैसे आई इसका जिकर करते हुए श्री यजनीक लिखते हैं ।

जिस बात ने आख़िर में उनके विचारों में एक बड़ा भारी इन्कलाब पैदा किया, वह थी उनकी वह मुलाकात जो उनकी स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई । जो सन् १८७४ में बम्बई तशरीफ़ लाए और जिन्होंने १० अप्रैल १८७५ को आर्यसमाज की बुनियाद रखी ।

परन्तु ये स्वामी दयानन्द जी सरस्वती कौन थे, जिंन्होंने श्याम जी कृष्ण वर्मा के विचारों पर इस कदर असर किया । श्री इन्दुलाल यजनीक के शब्दों में "वे जन्म से बागी थे, और आजादी के लिए उनके

दिल में बेनजीर तड़प थी। वे १४ वर्ष की आयु में ही मूर्तिपूजा के जबरदस्त मुखालिफ़ बन गये। और २० वर्ष की आयु में घर से निकल पड़े थे। पहले बतौर एक ब्रह्मचारी के और बाद में बतौर एक संन्यासी के वे रोशनी की तलाश में और ज्ञान की प्राप्ति के लिए तपस्या करते रहे और आखिर इस नतीजे पर पहुंचे, कि इस देश के लोग वे राजे महाराजे हों या मजदूर या किसान, ब्राह्मण हों या गैर ब्राह्मण, सब ही सच्चे धर्म की राह से भटक गये हैं।

ये वे ऋषि दयानन्द थे जिनकी शिक्षा का श्याम जी कृष्ण वर्मा पर असर हुआ और जिन्होंने उसको एक कालेज के प्रोफेसर से बागियों का सरदार बना दिया। अतः जिस समय श्याम जी ने इंगलिस्तान जाने का निश्चय किया तो उन्होंने अपने गुरु ऋषि दयानन्द जी से इसकी आज्ञा मांगी, जो उन्होंने खुशी से दे दी। और साथ ही यह भी उपदेश दिया कि वहां जाकर उन्होंने क्या कुछ करना है। श्याम जी कृष्ण वर्मा और ऋषि दयानन्द का मेल इस कदर अधिक गहरा हो गया कि न केवल इनके नजदीकी दोस्तों और बन्धुओं को इसका ज्ञान था बल्कि दूसरे लोग भी यह समझते थे कि श्याम जी ऋषि दयानन्द के जेर असर हैं। और उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं करेंगे। ऋषि दयानन्द का भी इन पर इतना विश्वास था, कि वे अपने लिखे वेदभाष्य को इनके हवाले करने को तैयार थे, कि वे इस पर नजर सानी करें। और यदि इसमें कोई कसर रह गई हो तो उसकी तरफ़ ऋषि का ध्यान दिलायें।

मई सन् १८७७ में श्याम जी कृष्ण वर्मा पूना गये। वहां इनके कई भाषण भी हुए। इसका जनता पर बहुत अधिक असर हुआ। चारों तरफ़ इनकी तारीफ़ होने लगी, परन्तु इसका क्रेडिट भी ऋषि दयानन्द को ही दिया गया। जब श्याम जी पूना जाने लगे तो वहां के चन्द सरकरदा शहरियों ने एक बयान जारी किया। जिसमें उन्होंने कहा–

पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा कुछ समय यहां रहे और हमने उनके व्याख्यान सुने। हमें यह कहने में कोई तामल नहीं, कि उन्होंने संस्कृत की अति उत्तम विद्या प्राप्त की है और वे बड़ी आसानी से संस्कृत में भाषण दे सकते हैं। इनका एक उत्तम घराने से सम्बन्ध है, और उन्होंने विद्या भी अति उत्तम प्राप्त की है परन्तु इससे भी अधिक जो बात उनके

विषय में जानी है वह यह है कि उन्होंने पण्डित दयानन्द सरस्वती के चरणों में बैठ कर बहुत कुछ सीखा है ।

श्याम जी कृष्ण वर्मा अपने देश के लिए तप और त्याग के लिए कैसे तैयार हुए । उनके जीवनचरित्र के लेखक श्री इन्दुलाल याजनीक लिखते हैं । "ऋषि दयानन्द की मिसाल ने इन्हें भी त्याग का जीवन बसर करने और मिशनरी बनने के लिए तैयार कर दिया ।"

अक्तूबर १८७८ में श्याम जी आर्यसमाज लाहौर की दावत पर वहां गये, और उन्होंने कई भाषण दिए । जब वे वापस चले गये तो आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री ने उन्हें एक पत्र लिखा जिसमें लाहौर के आर्यसमाजियों के जजवात को इन शब्दों में प्रकट किया ।

"आर्यसमाज लाहौर की ऐग्जैक्टिव कमेटी ने मुझे यह आदेश किया है कि मैं आप को लिखूं कि आपने जो आलमाना लैक्चर दिए हैं उनका बहुत असर हुआ है । आर्यसमाज को यह देखकर बहुत ही हर्ष हुआ कि आपने अपने व्याख्यानों को जो अंग्रेजी, हिन्दी, संस्कृत में दिए हैं, जनता ने उसे बहुत ही पसन्द किया है । आर्यसमाज की यह तमन्ना है कि इस देश में आप जैसे और भी ऐसे विद्वान् पण्डित पैदा हों जो इस रवानी से संस्कृत और दूसरी भाषाओं में भाषण दे सकें । जैसा कि आप देते हैं, इस हालत में हमारा प्रचार और सुधार का काम और भी तेजी से चल सकेगा ।

ये थे पण्डित श्री श्याम जी कृष्ण जिन्होंने पहले इंग्लिस्तान में बाद में फ्रांस में एक इन्कलाबी तहरीक को तन्जीम शुरू की । उन्होंने वहां हिन्दुस्तानी युवकों को रहने के लिए एक "इण्डिया हाउस" कायम किया और भारत की आजादी की तहरीक चलाने के लिए जनवरी १९७५ में इण्डिया होम रूल सोसाईटी कायम की, उन्होंने ऋषि दयानन्द के नाम पर कुछ इनाम भी रखे । वे इनाम उन नौजवानों में तकसीम करना चाहते थे, जो ऐसे विधान की रूपरेखा तैयार करें । जो भारत से अंग्रेजों को निकाल सकें, अगर श्याम जी चाहते तो अपने बुद्धि बल से यूरोप में लाखों रुपये कमा सकते थे, परन्तु महर्षि दयानन्द की फूंकी हुई देशभक्ति की स्प्रिट उनको चैन न लेने देती थी । सरकार अंग्रेजी ने इनकी बैरिस्ट्री की डिग्री भी जब्त कर ली थी । क्रान्तिकारियों का यह प्रथम नेता सारी

आयु देश की आजादी के लिए लड़ता रहा। श्याम जी का जन्म सन् १८५० में कच्छ के एक वैश्य घराने में हुआ था और उन्होंने आयु का अधिक हिस्सा यूरोप के देशों में अंग्रेजों के खिलाफ़ बग़ावत का प्रचार करने में लगा दिया और आखिर ८० वर्ष की आयु में १९३० में स्विट्जरलैंड में देशहित में अपने प्राण भी त्याग दिये। विदेशों में जलाई हुई इस महान् क्रान्तिकारी नेता की जोत पर भारत के सैकड़ों नौजवान जो यूरोप आदि देशों में गये, परवानों की तरह बलिदान होते रहे। श्याम जी के विषय में उनके प्यारे शिष्य वीर सावरकर जी ने क्या खूब लिखा है कि मन्दिर के कलश की तरफ़ तो सब देखते हैं परन्तु मन्दिर की आधारशिला को सब भूल जाते हैं। श्याम जी भारत की आजादी के मन्दिर की आधारशिला बन गये थे।

नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

ये भी श्याम कृष्ण जी वर्मा के जीवन से बहुत प्रभावित हुए थे और उन्होंने भी सन् १९३२ में अंग्रेजों की कैद से निकलने का वही तरीका अखतियार किया जो श्याम जी ने सन् १८९६ में किया था, वह इस तरह कि २२ जून १८९७ में जब बम्बई में दो मराठा वीरों ने दो अंग्रजों को कत्ल कर दिया तो अंग्रेजों को पूरा पूरा शक हो गया कि यह हत्या श्याम जी कृष्ण वर्मा के नौजवानों में क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार का ही परिणाम है। इसलिए अंग्रेज सरकार श्याम जी को गिरफ्तार करना चाहती थी, श्याम जी को भी इस बात का पता लग गया और उन्होंने अपने आप अपने घर में नजरबन्द हो कर दाढ़ी केस बढ़ा कर भेष बदल कर अंग्रेजों की आंखों में धूल डालकर भारत से निकल यूरोप जाने में सफलता प्राप्त की थी, ठीक इसी तरह नेता जी सुभाषचन्द्र बोस को जब अंग्रेजों ने इनके अपने घर में नजरबन्द किया था तो वे भी दाढ़ी केस बढ़ा कर, भेष बदल कर अंग्रेजों की आंखों में धूल डाल कर भारत से निकल कर अफ़गानिस्तान के रास्ते जर्मनी पहुंच गये और वहां से अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ें काटने में मसरूफ़ हो गये और फिर जर्मनी से डुबकनी किश्ती में चढ़ कर जापान आ गये और यहां आकर आजाद हिन्द फ़ौज बना कर अंग्रेजों के बरखिलाफ़ बाकायदा जंग शुरू कर दिया था और इसी आजाद हिन्द फ़ौज और दूसरी फ़ौज में बगावत का प्रचार

हो जाने के डर से ही अंग्रेज १९४७ में भारत छोड़ने पर मजबूर हुआ था । महर्षि को श्रद्धांजलि भेंट करते हुए सुभाष बाबू कहते हैं–

"दयानन्द सरस्वती महान् क्रान्तिकारी थे, उनकी विद्या, उनकी बुद्धि अपार थी । उनके दिव्य नेत्रों ने भारत के अतीत को देखा था और वे भारत को फिर से जगत् गुरु बनाने के इच्छुक थे । उनके चलाए हुए आर्यसमाज ने जहां विद्या-प्रचार में अद्वितीय कार्य किया है, वहां सैकड़ों हजारों नौजवान देशसेवा में भी भाग लेने वाले पैदा किये हैं । जो देश को स्वतन्त्र कराने के लिए बड़े से बड़ा बलिदान कर रहे हैं। दयानन्द सरस्वती को मेरा प्रणाम है । जिसने सब से पहले स्वराज्य का नारा लगाया था ।"

१२५. गुरुओं के गुरु

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर जिनको गीताञ्जलि पुस्तक लिखने पर एक लाख बीस हजार रुपये का नोबल प्राईज भी मिला था । हमारे देश के महापुरुषों में से एक थे । उन्होंने गुरुकुल प्रणाली के तरीके पर शान्ति-निकेतन नामी एक संस्था बंगाल में जारी की थी जो अब भी अच्छी तरह चल रही है । इनमें कई पढ़े लिखे भारतीयों को इतनी श्रद्धा है कि आम तौर पर पढ़े लिखे भारतीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर (जिनको आम भाषा में टैगोर कहते हैं) को इनकी जिन्दगी में भी गुरुदेव के नाम से याद करते थे और अब भी जब कभी इनका नाम लेते हैं तो गुरुदेव टैगोर करके ही सम्बोधन करते हैं । परन्तु गुरुदेव टैगोर महर्षि दयानन्द जी महाराज को अपना गुरु मानते थे जो इनकी निम्नलिखित श्रद्धाञ्जलि से स्पष्ट है । इसलिए महर्षि गुरुओं के भी गुरु ही ठहरते हैं । गुरुदेव टैगोर कहते हैं–

"मेरा प्रणाम हो !

उस महान् गुरु दयानन्द को जिसकी दिव्य दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया । जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्त्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार

प्रणाम है ।

......मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदर पूर्वक श्रद्धाञ्जलि देता हूं जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया ।" —डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुर

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय

(१) **ऋग्वेद-भाष्य**—इसमें मूल मन्त्र, पदपाठ, संस्कृत में पदार्थभाष्य, अन्वय और भावार्थ देकर पुनः आर्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दे दिया गया है । महर्षि ने तो केवल संस्कृत भाष्य की रचना की थी । उसकी भाषा पण्डितों ने बनाई है यह भाष्य केवल मण्डल ७। म० २ तक ही हुआ है । ऋषि दयानन्द अपने जीवनकाल में इसे समाप्त नहीं कर सके ।

(२) **यजुर्वेद भाष्य**—इसमें ऋग्वेद के समान मूलमन्त्र, पदपाठ, पदार्थभाष्य, अन्वय, भावार्थ संस्कृत में और, आर्यभाषा में अन्वयानुसार अर्थ और भावार्थ दिये गये हैं ।

(३) **यजुर्वेद भाषा-भाष्य**—इसमें ऋषि दयानन्द रचित संस्कृत भाग को हटा कर केवल भाषा में अन्वयानुसारी पदार्थ और भावार्थ संकलित किया गया है ।

(४) **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**—ऋषि दयानन्द जिस वेदभाष्य की रचना कर रहे थे । उसकी यह भूमिका है । यह सम्पूर्ण संस्कृत में है और इसका अनुवाद आर्यभाषा में भी किया गया है । वेद की उत्पत्ति, रचना, प्रामाण्य-अप्रामाण्य, वेदोक्त धर्म आदि अनेक विषयों पर स्पष्ट विचार किया गया है । पूर्व के वेदभाष्यकारों के अनेक अनार्ष मतों का विवेचन करके सप्रमाण वैदिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है । वेद के सिद्धान्तों को समझाने के लिए यह ग्रन्थ अपूर्व है ।

(५) **सत्यार्थप्रकाश**—इस ग्रन्थ में १४ समुल्लास हैं । प्रथम १० समुल्लासों में आर्यवैदिक सिद्धान्तों का युक्ति, तर्क, और वेद, शास्त्र, दर्शनों और स्मृति के आधार पर मण्डन किया गया है । और पिछले ४ समुल्लासों में आर्यावर्त्तीय मतों और बाइबल और कुरान के मतों की समीक्षा की गई है । यह एक युगान्तरकारी पुस्तक है, इसने भारतवर्ष में जनता की विचारधारा को ही परिवर्तित कर दिया है ।

(६) **संस्कारविधि**—इसमें गृह्यसूत्रों के अनुसार गर्भाधान से अन्त्येष्टि कर्म तक १६ संस्कारों को वैदिक रीति के अनुसार करने की पद्धति और वर्णों और आश्रमों के नित्य धर्म-कर्मों का विधान किया गया है ।

(७) **आर्य्याभिविनय**—इस ग्रन्थ में ऋषि ने ईश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना के लिए चारों वेदों से कुछ मन्त्रों का संग्रह करके उनको अर्थ सहित दिया है ।

(८) **पञ्चमहायज्ञविधि**—इसमें ऋषि ने सन्ध्या (ब्रह्मयज्ञ) अग्निहोत्र (देवयज्ञ) बलिवैश्वदेव (भूतयज्ञ) पितृयज्ञ और अतिथियज्ञ इन पांचों के करने की विधि और मन्त्रों पर संस्कृत भाष्य और सरल अनुवाद भी दिया है ।

(९) **संस्कृत वाक्य-प्रबोध**—संस्कृत की आरम्भिक शिक्षा के लिए व्यावहारिक विषयों पर सरल संस्कृत वाक्यों द्वारा बालकों को शिक्षा दी गई है । इससे संस्कृत वाक्यों का सुगमता से बोध हो जाता है ।

(१०) **व्यवहारभानु**—बालकों को शिष्ट, आर्यव्यवहार को शिक्षा देने और अज्ञान की कुशिक्षा के निवारण करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की है ।

(११) **शास्त्रार्थ काशी**—इसमें, काशी में ऋषि दयानन्द के साथ जो श्री विशुद्धानन्द का शास्त्रार्थ हुआ है उसका विवरण दिया गया है । जो इस पुस्तक के पृष्ठ १७७ पर है । यह ग्रन्थ संस्कृत में है । इसका भाषानुवाद साथ ही है ।

(१२) **वेदविरुद्धमतखण्डनम्**—इस ग्रन्थ में वल्लभ आदि मतों के प्रति प्रश्न और उनका खण्डन किया गया है । यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका अनुवाद हिन्दी में पण्डित भीमसेन शर्मा ने किया है ।

(१३) **शिक्षापत्री-ध्वान्तनिवारणम्**—इस ग्रन्थ में सहजानन्द आदि के मतों का खण्डन किया गया है । यह ग्रन्थ संस्कृत में है और इसका हिन्दी अनुवाद स्वामी नारायण खण्डन के नाम से प्रसिद्ध है ।

(१४) **भ्रमोच्छेदन**—इस ग्रन्थ में बनारस के राजा शिवप्रसाद जी की ओर से श्री स्वामी विशुद्धानन्द की प्रश्नावली के कारण उत्पन्न हुए भ्रम को दूर किया गया है । उक्त भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजा जी

के दूसरे निवेदन के उत्तर में पण्डित भीमसेन का उत्तर अनुभ्रमोच्छेदन नाम से छपा है ।

(१५) **भ्रान्ति-निवारण**—इस ग्रन्थ में ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य पर पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न (आफ़िशियेटिङ्ग प्रिन्सिपल संस्कृत कालिज कलकत्ता) के किये भ्रान्ति युक्त आक्षेपों का खण्डन किया है। यह ग्रन्थ संस्कृत में है, साथ ही अनुवाद भी दिया गया है ।

(१६) **वेदान्तध्वान्तनिवारणम्**—इस ग्रन्थ में नवीन वेदान्त के मत का अच्छी प्रकार विवेचन किया गया है ।

(१७) **सत्यधर्मविचार (मेला चांदापुर)**—चांदपुर के मेले के अवसर पर धर्म-चर्चा करने के लिए जो आर्य, ईसाई और मुसलमानों के बड़े-बड़े विद्वान् सत्य निर्णय के लिए एकत्र हुए थे उसका विस्तृत विवरण म० दयानन्द जी च० पृ० २२ से ३५ में है ।

(१८) **आर्योद्देश्यरत्नमाला**—इस ग्रन्थ में आर्यों के १०० उद्देश्यों का संग्रह किया गया है ।

(१९) **गोकरुणानिधि**—इस ग्रन्थ में स्वामी जी ने गौ आदि उपकारी पशुओं का वध बन्द करने और उनके पालने पर बल दिया गया है । गौ आदि पशुओं की ओर से एक प्रकार से मर्मस्पर्शी अपील है। इसके अन्त में गो-कृष्यादि-रक्षिणी सभा की योजना भी सम्मिलित है।

(२०) **वेदाङ्गप्रकाश**—पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया-भाग को स्पष्ट करने के लिए लौकिक और वैदिक व्याकरण के अंशों को एक साथ लेकर भाषा में व्याकरण के विषय को अति सुगम कर दिया है। सिद्धान्तकौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थों के भीतर आये अनेक अवैदिक अनार्ष बातों को दूर करके व्याकरण को स्वच्छ कर दिया है और भट्टोजी दीक्षित आदि की अनेक त्रुटियों को भी दर्शाया है—

१. वर्णोच्चारणशिक्षा
२. नामिक
३. सन्धिविषय
४. कारकीय
५. सामासिक
६. सौवर
७. आख्यातिक
८. पारिभाषिक
९. स्त्रैणताद्धित
१०. धातुपाठ
११. अव्ययार्थ
१२. गणपाठ

१३. उणादिकोष १४. निघण्टु
१५. निरुक्तम्

इन खण्डों में पठन-पाठन विषय में एक विशेष क्रम है, उस क्रम से पढ़ने से व्याकरण और संस्कृत विद्या और वेद-विद्या का विशेष रूप से बोध हो जाता है ।

(२१) **अष्टाध्यायीभाष्यम् ।**

पाणिनीय अष्टाध्यायी के ऊपर सूत्र क्रमानुसार ऋषि दयानन्द का यह उत्तम भाष्य है । इसका प्रकाशन उनके जीवन काल में न हो सका । लाहौर में श्री डा० पण्डित रघुवीर एम० ए० (डी० लिट्) द्वारा सम्पादित करा कर श्रीमती परोपकारिणी सभा ने इसको दो भागों में प्रकाशित किया है । यह भाष्य स्थान स्थान पर खण्डित है । बड़े खेद से लिखना पड़ता है कि ऋषि दयानन्द के इस अमूल्य ग्रन्थ की रक्षा यत्नपूर्वक नहीं की गई । इस भाष्य में ही दीक्षित और काशिकाकार जयादित्य आदि की व्याकरण विषयक अनेक त्रुटियां दर्शाई हैं । संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में यह एक अद्भुत पुस्तक है ।

(२२) इनके अतिरिक्त–**स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश** सत्यार्थप्रकाश के अन्त में तथा पृथक् भी प्रकाशित होता है । इसी प्रकार स्वीकार-पत्र आर्यसमाज के नियम भी पृथक् छपे हैं ।

श्री परोपकारिणी सभा ने वेदभाष्य को छोड़कर समस्त ग्रन्थों को संकलित कर श्रीमद्दयानन्द जन्म-शताब्दी के अवसर पर (संवत् १९८१ वि० अर्थात् १९२५ ई०) पर दो भागों में प्रकाशित किया था ।

प्रचार काण्ड समाप्त ।

❋ ❋ ❋

१३. संघटन-काण्ड

१२७. पूर्ण पुरुष की मनोकामना

१. पूर्ण पुरुष की मनोकामना थी कि यह जननी भारतभूमि सचमुच स्वर्गभूमि बन जावे और अपना खोया हुआ गौरव प्राप्त कर फिर से जगद्गुरु की पदवी पर विराजमान हो जावे और इस के प्रधान लालकिला के मंच पर खड़े होकर संसार भर को यह सन्देश दे सकें जैसा कैकय देश के राजा ने (जिसकी कथा छान्दोग्य उपनिषद् के प्रपाठक ७वां खण्ड १२ में है) पूरे अभिमान के साथ कहा था ।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्न अविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ॥

अर्थात् न मेरे देश में कोई चोर है, न कोई कृपण, न शराबी, न कोई अग्निहोत्र रहित, न कोई व्यभिचारी पुरुष तब स्त्री व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है ।

अपनी इस मनोकामना को सिद्ध करने के लिए महर्षि ने दिन रात परिश्रम किया । लाठियां, गालियां, ईंट-पत्थर, ज़हर खाये, अपमान सहे, गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास, दुःख, रंज-गम, सब सहन किये, और इस को पूरा करने के लिए निम्नलिखित सिद्धान्त निश्चित किये ।

१. विदेशी राज्य कितना भी अच्छा क्यों न हो स्वराज्य का मुकाबला नहीं कर सकता ।

२. देश को संगठित करने के लिए एक भाषा का होना आवश्यक है और वह हिन्दी भाषा ही हो सकती है ।

३. देश में से छूत-छात, ऊंच-नीच, रंग-नस्ल का भेदभाव मिटाये बिना देश संगठित नहीं हो सकता ।

४. छोटी आयु का विवाह, अनमेल विवाह, देश के लिए घातक प्रथाएं हैं, इन को हटाना होगा ।

५. एक समय में एक ही स्त्री से युवा-अवस्था में विवाह की प्रथा प्रचलित करनी होगी ।

६. देश में पञ्चायती राज्य स्थापित करना होगा ।

७. विद्या की वृद्धि और अविद्या का नाश करना होगा । सब को विद्या का अधिकार समान देना होगा । (६ या ७ वर्ष की आयु के बाद जो गृहस्थी अपनी सन्तानों को पाठशाला न भेजे उस को दण्ड देना होगा ।)

८. देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने का जो प्रतिबन्ध है उसको हटाना होगा ।

९. देश में कल कारखाने खोलने से देश उन्नत होगा ।

१०. मातृभूमि मातृ-सभ्यता और मातृभाषा से प्यार करना होगा । स्वदेशी कपड़ा और स्वदेश में बनी वस्तुओं का प्रयोग करना होगा ।

११. गौ, विधवाओं और अनाथों का संरक्षण करना होगा ।

इन सिद्धान्तों के प्रचार के लिए पहले तो महाराज ने पाठशालाएँ स्थापित करनी आरम्भ कीं । अतः फर्रुखाबाद, छलेसर, काशी आदि कई स्थानों पर पाठशालाएं जारी कीं, परन्तु जब उनसे अपना मनोरथ सिद्ध होते न देखा तो ये पाठशालाएं बन्द कर दीं, इस के बाद महर्षि ने अपनी मनोकामना पूर्ण करने के निमित्त आर्यसमाज रूपी ट्रेनिंग कालेज बनाने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया और साथ-साथ ट्रेनिंग कोरस तथा सत्यार्थप्रकाशादि ग्रन्थ-रचना भी आरम्भ कर दी । जिसने एकदम इस देश में जागृति की एक लहर पैदा कर दी ।

१२८. ट्रेनिंग कालेज

महर्षि दयानन्द का आर्यसमाज जहां लीडरों का ट्रेनिंग कालेज बना और सैकड़ों ही लीडर भारतवर्ष और भारतवर्ष के बाहर के देशों में भारत को आजाद कराने के लिए दिये, वहां आर्यसमाज के कालेजों, गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं ने हजारों की तादाद में वर्कर दिये जो भारत उत्थान के हर क्षेत्र में अगुआ बन के काम करते रहे । इन्कलाबी पार्टी, क्रान्तिकारी दल, गदर पार्टी, आल इण्डिया कांग्रेस, आल इण्डिया हिन्दू महासभा, आल इण्डिया जनसंघ, ब्राह्मण सभा, क्षत्री सभा, अरोड़ वंश सभा, राजपूत सभा, जाट सभा, विद्याप्रचार, सामाजिक सुधार, अकाल पीड़ितों की सेवा, दुःखी-दीनों की रक्षा,

देश में आने वाली हर प्रकार की आपत्तियों के समय आपत्ति-ग्रस्त लोगों की सेवा, यतीम और बेवाओं की रक्षा, विधर्मियों से वरगलाई हुई अबलाओं की रक्षा, शुद्धि क्षेत्र, दलितोद्धार क्षेत्र, गोरक्षा आदि सभी क्षेत्रों में आर्यसमाज के ट्रेण्ड किये हुए लीडर और आर्यसमाज के विद्यालयों से शिक्षा प्राप्त नौजवान हमेशा सब से आगे छाती तान कर निकलते रहे। विधर्मियों की गोलियों और तलवार की चोटें खाते रहे। अंग्रेज की जेलों को भर कर फांसी के तख्तों पर बिना झिझक चढ़ जाने वाले आर्यवीर ही तो थे। आर्यसमाज के ट्रेनिंग कालेज की तीन सब से बड़ी विशेषताएं रहीं। जो संसार के इतिहास में और कहीं आपको नहीं मिल सकेंगी।

१. दिमाग़ी आज़ादी जितनी इस समाज में है और किसी समाज, सभा, मज़हब में नहीं मिल सकती। जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है कि हर संस्था में आर्यसमाज के ट्रेण्ड लीडर और वर्कर एक ही समय में हिस्सा लेते रहे। ग़दर पार्टी में भी, इन्कलाबी पार्टी में भी, अदम तशद्दुद मानने वाली कांग्रेस में भी, हिन्दू सभा में भी, गरज़े के मुखतलिफ़ विचारधारा रखने वाली, संस्थाओं में यदि कोई काम कर सका तो वह आर्यसमाज का ट्रेण्ड सिपाही ही था। क्योंकि इसके गुरु ने इस को दिमाग़ी आजादी का पाठ पढ़ाया था, दिमाग़ी आजादी दुनिया की सब से बड़ी नियामत है, जो सिवा आर्यसमाज के और कहीं नहीं मिल सकती।

२. इतने थोड़े से अर्से में जितना कि आर्यसमाज को बने हुआ है, इतने बलिदान धर्म और देश के लिए किसी और सोसाइटी या मज़हब ने न किये होंगे।

३. जितना विद्या का प्रचार करके आर्यसमाज ने इस अल्प समय में और अपनी अल्पशक्ति से इस देश में जागृति पैदा की है किसी और संस्था ने क्या करनी है। गवर्नमेण्ट से दूसरे दर्जे पर आर्यसमाज की विद्या संस्थाएं इस समय भी देश में विद्यमान हैं। जितनी समाजें बनीं, सभाएं बनीं, स्कूल और कालेज बने हैं। ये सब आर्यसमाज के बाद और आर्यसमाज से उत्साह प्राप्त करके ही बन पाये। आर्यसमाज हर मैदान में देश को लीड Lead देता रहा है। महर्षि दयानन्द ने यह एक अनोखा ट्रेनिंग कालेज खोल दिया। जिस में हर किस्म की सेवा करने की ट्रेनिंग मिलती है और इस ट्रेनिंग कालेज के ट्रेण्ड महानुभाव हमेशा पहली श्रेणी में ही रहे हैं। किसी शायर ने शायद

इन्हीं के लिए यह शेर कहा है–

गुलशन में सरव फ़ौज में मिसले निशां रहे ।
दुनिया में सर बुलन्द रहे यह जहां रहे ॥

१२९. बीज बोया

१. सब से पहले महर्षि के मन में आर्यसमाज स्थापन करने का विचार सन् १८७२ में उत्पन्न हुआ और सब से पहले उन्होंने आरा (बिहार) में एक सभा की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य आर्य धर्म और रीति नीति का संस्कार करना था । परन्तु उसके एक दो अधिवेशन ही हुए थे कि स्वामी जी आरा से प्रस्थान कर गये । और महाराज के चले जाने के कुछ ही दिन बाद यह सभा समाप्त हो गई ।

२. फिर दूसरी बार जनवरी १८७५ राजकोट (महाराष्ट्र) में आर्यसमाज स्थापित हो गया । इसके तीस प्रतिष्ठित पुरुष सभासद् बन गये, आर्यसमाज राजकोट ५-६ मास चलता रहा, फिर एक खास कारण से यह समाज बन्द हो गया । क्योंकि इन्हीं दिनों अंग्रेजों ने महाराजा मल्हार राव गायकवाड़ को राज पद से हटा दिया था । इस पर घोर आन्दोलन आरम्भ हो गया था । और आर्यसमाज राजकोट के सभासदों पर अंग्रेजों की कड़ी दृष्टि हो गई । जिस पर समाज का काम बन्द हो गया था परन्तु इस पर स्वामी जी निराश न हुए । और आर्यसमाज स्थापना के अपने शिवसंकल्प पर दृढ़ता से डटे रहे और परमात्मा की कृपा से सफलता प्राप्त कर ली ।

१३०. अंकुर फूटा

३. गुजरात प्रान्त में जाने से पहले जब महाराज बम्बई में विराजमान थे तो उनके श्रद्धालुओं ने आर्यसमाज-स्थापन करने का प्रस्ताव किया था परन्तु स्वामी जी के चले जाने से यह प्रस्ताव, प्रस्ताव ही रहा । अब फिर गुजरात के प्रचार से वापस आने पर पुनः वह प्रस्ताव स्वामी जी के सामने आया और ५ अप्रैल १८७५ शनिवार, चैत्र शुक्ला पञ्चमी सन् १९३२ को गिरगाम रोड प्रार्थनासमाज के निकट डाक्टर मानक जी की बागबाड़ी में सायंकाल के ५.३० बजे एक सभा करके आर्यसमाज स्थापित किया गया। इस समय २८ नियम स्वामी जी ने स्वयं बनाये । जिनमें पहला नियम यह था, आर्यसमाज का सब मनुष्यों के हितार्थ होना आवश्यक है । क्योंकि

इन २८ नियमों में उपनियम भी मिश्रित थे। इसलिए लाहौर आर्यसमाज की स्थापना पर नियम और उपनियम अलग अलग करके दस नियम निर्धारित किये गये। जो अब आर्यसमाज में प्रचलित हैं। बम्बई में पहले १०० के लगभग सभासद बने।

४. पूना में भी आर्यसमाज स्थापित हुआ था पर वह कुछ दिन ही चलकर समाप्त हो गया।

५. १४ जून १८७७ मुताबिक, जेठ शुक्ला १३, सं० १९३४ आर्यसमाज लाहौर डा० रहीम खां की कोठी पर ही स्थापित हो गई। और बम्बई आर्यसमाज की स्थापना पर जो २८ नियम बनाये थे। उनमें से उपनियमों को पृथक् करके अब दस नियम स्वीकार हुए। और अल्प समय में ही समाज के १०० सभासद् हो गये। और जौलाई महीने में ही सभासदों की संख्या ३०० हो गई। फिर धड़ाधड़ आर्यसमाजें स्थापित होनी शुरू हो गईं। अमृतसर, गुरदासपुर, फ़िरोजपुर, रावलपिण्डी, जेहलम, गुजरांवाला, मुलतान, जालन्धर, लुधियाना, रुड़की, मेरठ, देहरादून, मुरादाबाद, फ़र्रुखाबाद, लखनऊ, कानपुर, दानापुर, काशी, मैनपुरी, आगरा, जयपुर इत्यादि करीबन १०० आर्यसमाजें महर्षि के जीवनकाल में स्थापित हो चुके थे।

१३१. वृक्ष फैला

जो बीज महाराज ने १८७२ में बोया जिसका अंकुर १८७५ में बम्बई में फूटा और जो महाराज के जीवन में एक वृक्ष का रूप धारण कर रहा था, अब इतना फैला कि इसकी शाख़ें चारों तरफ छाकर तप्त हृदय देशवासियों को अपनी शान्तिदायिनी छांव में वास देने लगीं। अतः इस समय आर्यसमाजों का विस्तार और आर्यसमाज के प्रबन्ध में चलने वाली संस्थाओं का कुछ ब्यौरा निम्नलिखित है।

आर्यसमाज सम्बन्धी

कुछ तथ्य तथा आंकड़े

(FACTS & FIGURES)

१. भारत में आर्यसमाज सर्वप्रथम संस्था है जिसकी कार्यपद्धति और संगठन लोकतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित है।

२. सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् भारत के सार्वजनिक जीवन

में जिन प्रमुख संस्थाओं और आन्दोलनों का प्रादुर्भाव हुआ, उन सब का ब्रह्मसमाज को छोड़ कर, आर्यसमाज की स्थापना के बहुत पीछे जन्म हुआ।

३. आर्यसमाज एक सुसंगठित संस्था है जिसकी शिरोमणि संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली है। सार्वदेशिक सभा के अधीन भारत में १० आर्य प्रतिनिधि सभाएं हैं–

१. आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब
२. ,, ,, ,, उत्तरप्रदेश
३. ,, ,, ,, राजस्थान
४. ,, ,, ,, मध्यप्रदेश वा विदर्भ
५. ,, ,, ,, बिहार
६. ,, ,, ,, बंगाल व आसाम
७. ,, ,, ,, बम्बई
८. ,, ,, ,, बड़ौदा
९. ,, ,, ,, हैदराबाद स्टेट
१०. ,, ,, ,, मध्य भारत

४. इन प्रतिनिधि सभाओं से सम्बन्धित आर्यसमाजों की संख्या ४००० है जिसकी प्रादेशिक तालिका निम्नांकित है–

१. आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरप्रदेश से सम्बन्धित १००० आर्यसमाजें
२. ,, ,, पंजाब ,, १००० ,,
३. ,, ,, राजस्थान ,, १४८ ,,
४. ,, ,, मध्यप्र० विदर्भ ,, १३४ ,,
५. ,, ,, बिहार ,, ३०० ,,
६. ,, ,, बम्बई ,, ११६ ,,
७. ,, ,, बड़ौदा ,, २१ ,,
८. ,, ,, मध्यभारत ,, ६४ ,,
९. ,, ,, बंगाल-आसाम ,, २१४ ,,
१०. ,, ,, हैदराबाद ,, ३०० ,,

५. इन आर्यसमाजों के अतिरिक्त लगभग ४०० आर्यसमाजें आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित हैं। २१ आर्यसमाजें मद्रास प्रान्त में हैं कुछ आर्यसमाजें स्वतन्त्र भी हैं। इस प्रकार भारत में आर्यसमाजों की

संख्या ४००० के लगभग है ।

६. इन प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्त भारतवर्ष से इतर देशों में भी ५ भिन्न आर्य प्रतिनिधि सभाएं हैं जिनसे सम्बन्धित अनेकों आर्यसमाजें हैं ।

१. आर्य प्रतिनिधि सभा नेटाल (दक्षिण अफ़्रीका)
२. ,, ,, पूर्वी अफ़्रीका
३. ,, ,, मारीशस
४. ,, ,, फ़िजी
५. ,, ,, दक्षिणी अमरीका

७. विदेशों में इन आर्य प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्त अन्य देशों में कई और आर्यसमाजें भी हैं जिनकी संक्षिप्त सूची निम्न है–

१. आर्यसमाज Chaguaus (Trinidad) ब्रिटिश वैस्ट इण्डीज
२. ,, सान्फरनैण्डो (ब्रिटिश वैस्ट इण्डीज)
३. ,, बग़दाद (इराक)
४. ,, अदन (अरब)
५. ,, बंगकाक (स्याम)
६. ,, रौवल रोड (सिंगापुर)
७. ,, रंगून (बर्मा)
८. ,, मांडले (बर्मा)
९. ,, लण्डन

८. देश के विभिन्न भागों में आर्यसमाज की छत्रछाया में चलने वाली विविध संस्थाओं की संक्षिप्त सूची निम्नांकित है–

बालकों के कालिज	संख्या	२०
बालिकाओं के कालिज	,,	१०
बालकों के हाईस्कूल	,,	१५०
बालिकाओं के हाईस्कूल	,,	१००
मिडिल स्कूल	,,	२००
पुत्री पाठशालाएं मिडिल	,,	४००
प्राइमरी स्कूल	,,	५००
हिन्दी पाठशालाएं	,,	२८०

रात्रि पाठशालएं	,,	१४२
गुरुकुल (बालकों के लिए)	,,	५३
कन्या गुरुकुल	,,	७
आयुर्वैदिक कालेज	,,	५
मैडिकल कालेज	,,	२
ट्रेनिंग कालेज	,,	१०
शिल्प कन्या संस्थाएं	,,	१५

९. शिक्षा-क्षेत्र में आर्यसमाज के सुविस्तृत कार्य और उल्लिखित संस्थाओं से प्रभावित होकर ही महात्मा गांधी जी ने मार्च १९२७ में गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर भाषण देते हुए कहा था–

"गवर्नमेंट के बाद आर्यसमाज के शिक्षा विस्तार के कार्यों की मैं विशेष प्रशंसा करता हूं। शिक्षा, आध्यात्मिक क्षेत्र में आर्यसमाज ने देश की सब से अधिक सेवा की है।"

१०. शिक्षा सम्बन्धी इन संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य आर्यसामाजिक संस्थाओं की सूची इस प्रकार है–

अनाथालय	संख्या	२५
विधवाश्रम	,,	४०
औषधालय	,,	१३५
बड़े-बड़े पुस्तकालय	,,	४९
व्यायामशालाएं	,,	२००
योग-शिक्षणालय	,,	५
अन्धविद्यालय	,,	२

११. आर्यसमाजों के अतिरिक्त आर्य युवकसमाजों, आर्यकुमार-सभाओं, आर्य वीर दलों तथा आर्य वीरांगना दलों की भी प्रचुर संख्या है।

१२. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय की सूचनानुसार १९४१ में आर्यसमाजियों की जनसंख्या ४५ लाख थी जो कि अब लगभग एक करोड़ हो चुकी है।

१३. अछूतोद्धार के लिए दयानन्द दलितोद्धार मण्डल।

१४. आल इण्डिया शुद्धि सभा जिसने लाखों मलकाना राजपूत शुद्ध किये।

१५. आल इण्डिया दयानन्द सालवेशन मिशन जो इस समय सारे भारतवर्ष में ईसाइयों का प्रतीकार करने वाली एकमात्र संस्था है जिसके प्रधान श्री महात्मा देवीचन्द जी एम० ए० हैं।

१६. भाई परमानन्द जी ने जात-पांत तोड़क मण्डल भी बनाया था।

१३२. छूतछात नाशक आन्दोलन

छूतछात नाशक कानून भी स्वतन्त्र भारत की सरकार ने बना दिया है । अतः छूतछात को हटाने के लिए महर्षि और आर्यसमाज को कितना घोर प्रयत्न करना पड़ा उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन कराना चाहता हूं । क्योंकि इस विषय का सम्बन्ध जनता जनार्दन के धार्मिक सिद्धान्त से टक्कर खाना था, इसलिए इस विषय में आर्यसमाज को विशेष यत्न करना पड़ा । और कितने ही बलिदान देने पड़े । सब से पहले तो आर्यसमाजियों को अछूतोद्धार का प्रयत्न करने पर बिरादरियों से खारिज किया जाने लगा । रिश्ते-नाते टूटने लगे । हुक्का पानी बन्द कर दिया गया । कहार, धोबी, नाई आदि के बाईकाट सहन करने पड़े । गरज़ कि सोशल तौर पर आर्यसमाजियों का नाक में दम लाया जाता था, परन्तु महर्षि के शेर भी मैदान में डटे रहे और सारी मुख़ालफ़तों के बावजूद मोरचा सर कर लिया और अब सरकार ने भी कानून बना दिया है ।

लुत्फ़ की बात यह है कि सब से ज्यादा मुख़ालफ़त अछूतोद्धार में कांग्रेसी किया करते थे । जो अब हरेक बात का क्रेडिट लेने के लिए सब से आगे आ जाते हैं । मैं अपने निजी अनुभव की एक घटना आप को सुनाता हूं । जिस से आपको मालूम हो जायगा कि यह कांग्रेसी कहलाने वाले अछूतोद्धार के रास्ते में किस प्रकार रुकावटें डालते रहे, सन् १९२१-२२ की बात है कि दयानन्द दलितोद्धार मण्डल की तरफ से एक उपदेशक हकीम मुकन्दीलाल आया और हम ने शहर चुनियां में अछूतोद्धार आन्दोलन शुरू किया । मुझे अच्छी तरह याद है कि जब हम ने पहले दिन वाल्मीकि भाइयों को साथ लेकर और ओम् का झण्डा हाथ में लेकर शहर में जलूस निकाला तो सारे शहर में तहलका मच गया और लोग मुंह में उंगलियां डाले हमारे जलूस को देख रहे थे । जलूस बड़ी शान से निकला । सारे शहर में घूमा और वाल्मीकि मुहल्ले में जाकर खत्म हुआ । उसी रात सारे शहर के हिन्दुओं ने एक बड़ी विशाल सभा करके हमारा हुक्का पानी बन्द तथा बाईकाट घोषित कर दिया। प्रातः जब हम उठे तो शहर में कोई हमारे साथ बात करने को भी रवादार

न था । कहार भी पानी देने न आया, हमारे जो बड़े मित्र और रिश्तेदार थे वे भी हम से कन्नी कतराने लगे । जब दो चार दिन के बाद हमने देखा कि अब हिन्दुओं का सोडावाटर का जोश ठण्डा हो गया है तो फिर एक जलूस निकाल कर एक ऐसे कूएं पर वाल्मीकियों को चढ़ाना था, जहां हिन्दू मुसलमान इकट्ठे पानी भरते थे । जब हमारा यह निश्चय हमारे शहर की कांग्रेस कमेटी को पता लगा (जिस का सारे शहर में केवल एक ही मुसलमान मेम्बर था और वह भी जासूसी करने के लिए क्योंकि हम इस मुसलमान को निहायत अच्छी तरह जानते थे तो कांग्रेस के अधिकारी मेरे पास आए और कहने लगे कि आपने जो आज का प्रोग्राम बनाया है वह मुलतवी कर दें । मैंने कहा--क्यों? तब वे कांग्रेसी भाई कहने लगे कि इस तरह हिन्दू मुसलमानों में तफ़रका पड़ता है । जब मैंने पूछा कि वह किस तरह तो कहने लगे कि मुसलमान कहते हैं कि हम वाल्मीकियों को इस कूएं पर न चढ़ने देंगे । मैंने कहा--कुआं सब का सांझा है, इस पर चढ़ने से कोई रोक नहीं सकता, परन्तु वह हिन्दू मुस्लिम सवाल पर अड़ गये । हम ने भी निश्चय कर लिया था । हम ने वह जलूस निकाला और उसी कूएं पर गये तो क्या देखते हैं कि मुसलमान तो कोई नहीं परन्तु हिन्दू कांग्रेसी लाठियां लेकर कूएं पर खड़े हैं और ऐलान कर रहे हैं कि हम कूएं पर वाल्मीकियों को नहीं चढ़ने देंगे । भला दयानन्द के वीर सैनिक ऐसी गीदड़ भभकियों से कब दबने वाले थे । हम ने वाल्मीकियों को कूएं पर चढ़ा दिया और अपना प्रोग्राम पूरा करके ही दम लिया ।

छूत-छात को दूर करने के लिए जहां हर एक आर्यसमाज और हर एक आर्यसमाजी कोशिश करना अपना धर्म समझता था । वहां पर महात्मा देवीचन्द जी एम०ए० ने हुशियारपुर में एक दयानन्द दलितोद्धार नाम की संस्था कायम करके बड़ा उपकार किया और इस काम में बड़ा योग दिया । इस के अतिरिक्त जिन विशेष व्यक्तियों ने इस छूत-छात के विनाश के लिए जीवन अर्पण कर दिये । उन के संक्षिप्त विवरण ये हैं--

१. पण्डित गंगाराम जी बिजवाड़ा में पौराणिक परिवार में पैदा हुए। सन् १८७६ में ओवरसीयर का इम्तिहान दिया । जिस में वे अव्वल रहे । लुधियाना में महर्षि जी के व्याख्यान सुने और मन में महर्षि के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई । आप जिला मुज़फ्फ़र गढ़ में ओवरसियर बनकर गये । उन्होंने इस इलाका में आर्यसमाज का बहुत प्रचार किया । कई जगह आर्यसमाज
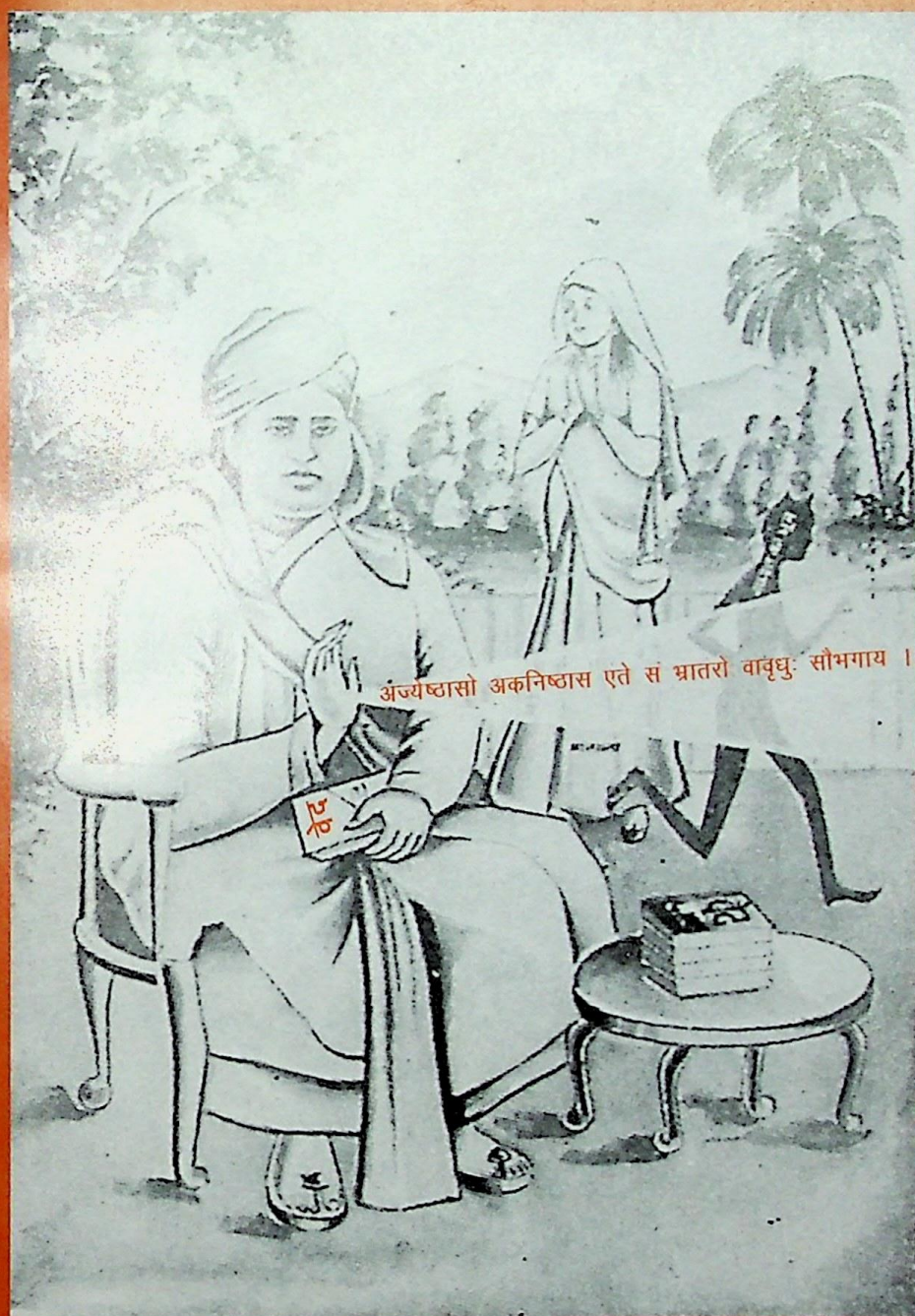
महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से मानव जाति को चिमटे हुए नफ़रत के भूत को वेद प्रचार से दूर भगा कर मानवता को मुक्त कराया ।

स्थापित किये। उन्होंने देखा कि जिला मुजफ्फरगढ़, मुलतान, मियां वाली, डेरा ग़ाजी खां और रियासत बहावलपुर में एक ओड जाति रहती है, जिनके पूर्वज अकाल से तंग हो बीकानेर से आकर इन जिलों में बस गये थे। बाकी इनका सब काम काज तो हिन्दू रीति से होता था परन्तु ये अपने मृतकों को बजाए जलाने के दबाते थे। जिस से ये हिन्दू मुसलमान दोनों के दरमियान समझे जाते थे और हिन्दू इन को अछूत ही समझते थे। अतः गंगाराम जी ने देखा कि हिन्दुओं के नफ़रत करने से यह बहादुर जाति कहीं मुसलमान न बन जाये। उन्होंने इनके उद्धार के लिए पूरा जोर लगाना शुरू कर दिया और इस कारण नौकरी से भी त्यागपत्र दे दिया। पुरुषार्थ और परिश्रम करके इस सारी जाति को मुसलमान होने से बचा लिया। और हिन्दुओं के अन्दर से इनके प्रति छूतछात के भाव मिटाने में भी समर्थ हो गये, और इस तरह प्रभु कृपा से हजारों बहादुर राजपूतों को फिर से अपने धर्म पर कायम कर दिया।

२. पं० गंगाधरराम जी एडवोकेट सियालकोट ने भी अपना जीवन अछूत उद्धार में लगा दिया। अपनी कमाई का बहुत सा हिस्सा वे इस छूतछात नाश करने में ही लगा दिया करते थे और उनकी कोशिशों से जिला सियालकोट, रियासत जम्मू व काशमीर के तकरीबन सारे चर्मकार जो मेघ कहलाते थे और अछूत समझे जाते थे। शुद्ध होकर हजारों लाखों की तादाद में मुसलमान ईसाई होने से बच गये और अब वे लोग भक्त कहलाते हैं। बंटवारे के बाद उनकी बहुत बड़ी तादाद जालन्धरनगर भारगो कैम्प में आ बसी है।

३. श्री पं० रामभजदत्त जी एडवोकेट ने जिला गुरदासपुर और रियासत जम्मू में रहने वाली अछूत जाति के हजारों मनुष्यों को फिर से हिन्दू धर्म में लाकर उनको महाशय बना दिया।

४. वीर रामचन्द्र जी खजांची, अछूतोद्धार का कार्य करते थे, राजपूतों को इनका यह काम एक आंख न भाता था। अतः एक दिन राजपूतों ने मौका पाकर इनको लाठियां मार मार कर मार दिया और वीर रामचन्द्र अछूतोद्धार करता वीर गति को प्राप्त कर गया।

५. श्री मेघराज जी ने इन्दौर में अछूतों को मन्दिर में प्रवेश कराते हुए अपना बलिदान दे दिया।

६. भक्त फूलसिंह जी का जन्म मौजा माहरा, तहसील सोनीपत, जिला

रोहतक में हुआ। उनके छूतछात निवारक आन्दोलन से चिढ़ कर मुसलमानों ने उनको कत्ल कर दिया।

इस तरह आर्यसमाज ने छूतछात नाशक आन्दोलन में इतना महान् कार्य किया है। यदि आर्यसमाज अछूतोद्धार के लिए इतना यत्न न करता तो स्वराज्य प्राप्ति के लिए जो अछूतोद्धार का सिद्धान्त निश्चित किया गया था वह कभी सफल न होता। महर्षि दयानन्द जी और आर्यसमाज ने भरपूर यत्न कर इतनी कुर्बानियां देकर वह मैदान साफ़ किया था।

१३३. संन्यास मण्डल

१. **बाल ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी और स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी**—ये दोनों महानुभाव इकट्ठे ही रहते थे। महर्षि दयानन्द जी के बाद स्वामी नित्यानन्द जी ने ठीक महर्षि जी के पदचिह्नों पर चलते हुए पूरे ३० वर्ष तक कार्य किया और दक्षिण देश में जहां महर्षि जी को जाने का अवकाश न मिल सका था। वहां जाकर आर्यसमाज का डंका बजाने वाले ये दोनों ही महानुभाव थे परन्तु शोक है कि आर्यसमाजियों ने बाल ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी की कोई कदर न की। न कभी इनका नाम किसी अखबार में आता है और न ही कभी जलसे जलूस में इनके नाम का जिकर है। इनके जीवन का थोड़ा सा वृत्तान्त इस पुस्तक में दिया गया है। आप पढ़ेंगे तो गद्गद हो जायेंगे और विश्वेश्वरानन्द जी के नाम से ट्रस्ट कायम किया गया था। जो अब हुशियारपुर के नजदीक बिजवाड़ा में चलता रहा है, परन्तु इसका अध्यक्ष आर्यसमाज की जड़ों में तेल दे रहा है।

२. **स्वामी दर्शनानन्द जी**—आप पहले कृपाराम शर्मा जगरानवी के नाम से प्रसिद्ध थे, फिर संन्यास लेकर स्वामी दर्शनानन्द के नाम से विख्यात हुए। इन्होंने कितने ही गुरुकुल स्थापित किये, जिन में से एक महाविद्यालय ज्वालापुर है, जिस के अध्यक्ष पण्डित नरदेव जी शास्त्री, बड़े विद्वान् और त्यागी पुरुष थे। इस विद्यालय के एक विद्यार्थी श्री प्रकाशवीर शास्त्री ने अपनी वाक्-शक्ति से पार्लियामेण्ट का मैम्बर बन कर अपनी विद्वत्ता की धाक बिठा रखी थी। स्वामी दर्शनानन्द ने सैकड़ों छोटे-छोटे ट्रैक्ट उर्दू में लिखे। उपनिषदों और दर्शनशास्त्रों का उर्दू में भाष्य भी किया। आप बड़े ओजस्वी शास्त्रार्थ महारथी थे और ईसाई पादरी तो आप से ऐसे चलते जैसे

गधे के सिर से सींग । आप को ७५ हजार रुपयों की पैतृक सम्पत्ति मिली थी वह सब की सब और अपना जीवन भी आर्यसमाज के अर्पण कर दिया । सर्वस्व निछावर करने वाले ऐसे ही महानुभावों के कारण आर्यसमाज का इतना प्रचार हुआ है ।

३. **स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी** जाट घराने में पैदा हुए । परन्तु आर्यसमाज की जब लगन लगी तो अद्वितीय प्रचारक बन गये । आप कई वर्ष तक वेद विद्यालय गुरुदत्त भवन के अध्यक्ष रहे और कितने ही नौजवानों को आर्यसमाज में लाने में कामयाब हुए । हैदराबाद सत्याग्रह आप की ही देखरेख में सफलता पूर्वक सम्पन्न हुआ था । आपने दीनानगर जिला गुरदासपुर में दयानन्द मठ बनाया था । जो अब स्वामी सर्वानन्द जी की देख रेख में वैदिक धर्म के प्रचार का साधन सिद्ध हो रहा है ।

४. **स्वामी आत्मानन्द जी** पहले मुक्तिराम जी के नाम से गुरुकुल पोठोहार के आचार्य रहे । फिर संन्यास ग्रहण कर आत्मानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए । विभाजन के बाद यमुनानगर में अपना आश्रम बना कर बैठ गये । हिन्दी सत्याग्रह आप की ही अध्यक्षता में आरम्भ हुआ था । इन का वैदिक साधनाश्रम यमुनानगर आर्यसमाज और वैदिक धर्म प्रचार के लिए ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासी तैयार करता है ।

५. **स्वामी सर्वदानन्द जी** बिजवाड़ा के रहने वाले थे । पहले नवीन वेदान्ती थे । भ्रमण करते बीमार हो गये । तिलहर निवासी श्री चमनलाल वैश्य एक दृढ़ आर्यसमाजी सज्जन ने आप की सेवा की । आप नीरोग हो गये तो श्री चमनलाल जी ने इन को एक रेशमी कपड़े में लपेट कर सत्यार्थप्रकाश भेंट करते हुए इन से प्रतिज्ञा ले ली कि एक बार इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जायें । तब स्वामी जी ने इस प्रतिज्ञा के अनुसार सत्यार्थप्रकाश पढ़ा तो रंग ही बदल गया और पूर्ण रूप से वैदिक धर्मानुयायी हो कर वैदिक धर्म प्रचार का डंका बजा दिया । उनकी सब से बड़ी खूबी यह थी कि वे आर्यसमाज की पार्टीबाजी से अलग रह कर प्रचार करते रहे । बिल्कुल सादा, एक काला कम्बल उठाये फिरते थे, परन्तु उनकी प्रचार शैली इतनी मनोरंजक और आकर्षक होती थी कि श्रोतागण सुनते सुनते थकते नहीं थे ।

६. **स्वामी वेदानन्द जी** भी बड़े विद्वान् थे । उन्होंने वेद के स्वाध्याय को सरल बनाने के लिए कितने ही पुस्तक लिखे हैं । आप ऋषि दयानन्द

के परम श्रद्धालु थे, और अपने नाम के साथ दयानन्द तीर्थ लगाया करते थे ।

७. **स्वामी भूमानन्द जी** एम० ए० ने वेद के मन्त्रों का अंग्रेजी में बड़े रोचक ढंग से तर्जुमा किया था । आप अंग्रेजी और संस्कृत के बड़े विद्वान् थे ।

८. **स्वामी सत्यानन्द जी** जैनी थे, फिर आर्यसमाज में प्रवेश कर सत्यानन्द नाम से प्रसिद्ध हुए । बड़े मितभाषी थे । इनके व्याख्यानों में दूर दूर से लोग आया करते थे, बहुत वर्षों तक आर्यसमाज का प्रचार करते रहे, परन्तु बाद में कुछ गुरु बनने की भावना पैदा हो गई थी।

९. **महात्मा नारायण स्वामी जी** बड़े विद्वान्, महात्मा, लेखक, उपदेशकों, और सब से बढ़ कर Administrator सिद्ध हुए । आप कई वर्षों तक सार्वदेशिक सभा के प्रधान रहे । आप आर्यसमाज के सारे महासम्मेलनों में योग देते रहे । परन्तु शोलापुर का आर्यसम्मेलन जिसमें हैदराबाद सत्याग्रह का निश्चय हुआ । यह तो केवल आपकी ही दक्षता से सम्पन्न हुआ । और आपने सब से पहले जत्थे को लेकर हैदराबाद सत्याग्रह आरम्भ किया । जो निरन्तर आठ महीने चलता रहा, और अन्त में विजय दुन्दभि बजाते हुए सत्याग्रही घरों को लौटे ।

१०. इन महानुभावों के अतिरिक्त और भी कई संन्यासी आर्यसमाज का प्रचार करते रहे । जैसे **स्वामी अच्युतानन्द जी, स्वामी अनुभवानन्द जी,** इत्यादि इत्यादि और अब भी बहुत से संन्यासी आर्यसमाज का प्रचार कर रहे हैं । **स्वामी ध्रुवानन्द जी** जो सार्वदेशिक सभा के प्रधान थे । इस तरह और भी कई संन्यासी महानुभाव हैं जो वैदिक धर्म के प्रचार में यथाशक्ति योग दे रहे हैं ।

११. **श्री आनन्द स्वामी जी** ने विभाजन के बाद श्री स्वामी आत्मानन्द जी से संन्यास लिया और अब देश विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं इनकी कथाएं बहुत रोचक होती हैं । हजारों की तादाद में लोग सुनते हैं। संन्यास लेने से पहले श्री खुशहालचन्द खुरसन्द के नाम से प्रसिद्ध थे । आप महात्मा हंसराज जी के कृपापात्र बने रहे थे । आर्य गजट के सम्पादक भी कई साल रहे हैं । आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान रह कर भी सेवा करते रहे हैं ।

१२. **महात्मा टेक चन्द जी** प्रभु आश्रित और विज्ञानभिक्षु जी वानप्रस्थी भी समाजसेवा में संलंग्न रहते हैं ।

१३. **आचार्य रामदेव जी** संन्यास लेकर स्वामी सत्यानन्द नाम से यमुनानगर का आश्रम चला रहे हैं ।

सर्वमुखी प्रतिभासम्पन्न
शास्त्रार्थ महारथी ब्र० नित्यानन्द जी

(१) महर्षि दयानन्द सरस्वती महाराज के परमपदारूढ़ होने के उपरान्त आवश्यकता थी कि कोई उनके उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने आपको सर्वात्मना अर्पण कर दे । परमात्मा की अपार कृपा से वह व्यक्ति ब्रह्मचारी स्वामी नित्यानन्द जी महाराज सिद्ध हुए । आप का जन्म जालोर (राजस्थान) में अनन्त चतुर्दशी सं० १९१७ को हुआ । पिता जी और नाना जी से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की और ज्ञानवर्धन की लालसा लिये गृह त्याग कर अहमदाबाद, बम्बई, नासिक, पूना आदि स्थानों में होते हुए काशी पहुंच कर विद्यार्जन किया और १९३८ वि० अर्थात् २१ वर्ष की आयु में काशी त्याग कथा वार्ता करने लगे । काशीनिवास में स्वामी गोपाल गिरि जी ने आप को महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज का परिचय दिया । बरेली में पण्डित यज्ञदत्त जी से शिक्षा प्राप्त कर आपने सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पढ़ी और तिलहर में नारायणी शिक्षा के रचयिता सुप्रसिद्ध आर्य श्री चिमनलाल जी के यहां गीता की कथा और बृहद् यज्ञ करा कर उन्हें आश्वासन दिया कि मैं शीघ्र ही महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती महाराज के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपने आपको समर्पित कर दूंगा ।

(२) तिलहर से प्रस्थान कर ब्रह्मचारी जी आर्यसमाजों में ठहरने और प्रचार करने लगे, यत्र तत्र शास्त्रार्थों और शंकासमाधनों का क्रम चल पड़ा। देशी नरेशों, जागीरदार, समाजसुधारकों और राजनैतिक नेताओं को उपदेश देते हुए विचरण करने लगे । आपकी ख्याति भारत भर में व्याप गई । मैसूर नरेश श्री चामराज बाडियार, बड़ौदा नरेश श्री सयाजी राव गायकवाड़ आपको गुरु मानते थे । इन्दौर नरेश शिवा जी राव होल्कर आपको अपने ही राज्य में निवास करने की बारम्बार प्रार्थना करते रहे । महामति माधव गोविन्द रानाडे आपको महर्षि दयानन्द के पश्चात् आये हुए कार्यकर्त्ताओं में सर्वशिरोमणि मानते थे। और अपका परिचय (Gifted Preacher) करके देते थे । महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर

अपना शान्तिनिकेतन विद्यालय आपको भेंट करने को उद्यत थे। मनस्वी मदनमोहन मालवीय भी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक विषयों पर आप से सतत परामर्श, करते थे। उदयपुर के महाराणा श्री फतहसिंह जी, ईडर नरेश सर प्रतापसिंह जी, शाहपुराधीश श्री नाहरसिंह जी, नाभा नरेश श्री हीरासिंह जी, पटियाला नरेश श्री रिपुदमनसिंह जी ब्रह्मचारी के उपदेशामृत पान करने को उत्सुक रहते थे।

(३) आर्यसमाजों के तो आप प्राणाधार थे, पंजाब, सिन्ध, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, महाराष्ट्र, गुजरात, सौराष्ट्र, बम्बई, हैदराबाद, मैसूर, मद्रास, उड़ीसा, बिहार, बंगाल, आसाम सारे भारतवर्ष को आपने अपने वेद नाद से गुंजा दिया। आर्यसमाज का तत्कालीन प्रत्येक नेता आपकी महत्ता और विद्वत्ता का कायल था। जब सार्वदेशिक आ० प्र० सभा का वैधानिक संगठन नहीं हुआ था, तब व्यावहारिक रूप से भारतवर्ष भर में सर्वत्र आर्यसमाज की प्रगतियों आन्तरिक विवादों और कठिन प्रसंगों पर आप ही पहुंचते थे। इस कार्य में आप के सहयोगी लाला मुंशीराम जी (स्वा० श्रद्धानन्द जी) मास्टर आत्माराम जी अमृतसरी और अजमेर के राव साहिब रामविलास जी शारदा थे। गो-रक्षा के निमित्त नीमच में आपने अन्त्यज जनों की घिनौनी बस्तियों में रातों चक्कर काट उनकी पंचायतें करा उनसे गोमांस त्याग के प्रण करवाये। और इस प्रकार नीमच में प्रतिवर्ष होने वाले २५०० गऊओं के वध को रुकवाया। अन्त्यजजनों के प्रति दुर्व्यवहार को, आपने सक्रिय रूप में बंगलौर की सभाओं में समान स्थान दिला, हटाने का उद्योग किया।

दक्षिण भारत में हिन्दी की सुगमता और उसके सुबोध होने की मान्यता प्रतिष्ठित की।

४. महापुरुषों के जीवन में नाना दैवी गुणों का समावेश हुआ करता है। ये दैवी गुण (विभूतियां) ही उन्हें सामान्य जीवों से ऊपर उठा कर महात्मा, सन्त देवता बना देती हैं। पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी भी ऐसी महान् विभूतियों में से एक थे। यदि महात्मा नित्यानन्द जी को सर्वगुण सम्पन्न एक आदर्श संन्यासी या परम सन्त कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उनकी विद्वत्ता, उनका अखण्ड ब्रह्मचर्य, निर्लोभता, सौम्य तथा शान्त स्वभाव, तेजस्वी शरीर, उनका योग-बल ये सब दैवी विभूतियां उनके महात्मापन की प्रबल परिचायक हैं।

पूज्य स्वामी जी के प्रबल विरोधी भी उनके विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों

को सुनकर भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगते थे। हैदराबाद (दक्षिण) में पूज्य स्वामी जी के कई विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए। उनमें एक व्याख्यान की सभा के सभापति मद्रास के कट्टर पौराणिक श्री कृष्ण आयंगर थे। नित्यानन्द जी के विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान को सुनकर वे गद्गद हो गए। उन्होंने अपने सभापति भाषण में कहा-

"मैं सुनता था कि हजारों में एक पण्डित होता है, किन्तु श्री ब्रह्मचारी जी तो लाखों में एक हैं।" जब बम्बई में स्वामी नित्यानन्द जी के कई विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान हुए तो बम्बई की प्रसिद्ध पत्रिका "गुजराती" के सम्पादक ने ५ अगस्त १८९३ के अंक में 'स्वामी नित्यानन्द के व्याख्यान' इस शीर्षक की अपनी सम्पादकीय टिप्पणी में लिखा-

'आजकल बम्बई नगरी स्वामी नित्यानन्द जी के व्याख्यानों से गूंज रही है। उनके भाषणों से क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या फारसी सब आश्चर्यान्वित हो रहे हैं। इन स्वामी जी के उपदेशों को सुनने के लिए लोगों के झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो जाते हैं। पीछे आने वालों को बैठने का स्थान तक भी नहीं मिलता, इत्यादि'।

दक्षिण भारत में जो कि पौराणिकता का गढ़ माना जाता है। जब महाराज के मद्रास और मैसूर आदि में वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान हुए तो वहां के बड़े बड़े धुरन्धर विद्वान् उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो गये और वहाँ के समाचारपत्रों ने उनकी विद्वत्ता की भूरि-भूरि प्रशंसा की। मैसूर के अंग्रेजी पत्र, मैसूर हैरल्ड ने अपने सम्पादकीय लेख में स्वामी जी की विद्वत्ता के सम्बन्ध में लिखा-

स्वामी नित्यानन्द जी आजकल मैसूर में हैं। दोनों स्वामी (विश्वेश्वरानन्द, नित्यानन्द) हिन्दू धर्मशास्त्रों के पूर्ण ज्ञाता हैं। वेद, वेदांग तथा स्मृतियों का इन्हें पूर्ण ज्ञान है। दर्शन, पुराण और ऐतिहासिक ग्रन्थों के तो ये दोनों स्वामी असाधारण ज्ञाता हैं इत्यादि। बम्बई के पत्रों ने तो स्वामी जी के व्याख्यानों से प्रभावित होकर उनके कारटून तक निकाले। ता० १४ 'हिन्दीपञ्च' ने स्वामी जी का एक चतुर्भुज आकार अर्थात् चार भुजाओं वाला कारटून प्रकाशित किया। जिसमें मुखमण्डल के चारों ओर सूर्य की किरणें देदीप्यमान हो रही थीं। एक हाथ में वेद, दूसरे में मनुस्मृति, तीसरे में तर्कशास्त्र आदि ग्रन्थ दिए गये थे। इन्हीं ग्रन्थों के समीप ज्ञान ज्योति, सम्मान, कीर्ति

आदि शब्द शोभायमान थे। कारटून के नीचे लिखा था–

बम्बई के आर्यों की पूजा की मूर्ति–

स्वामी नित्यानन्द जी महाराज

पाठक उपर्युक्त उद्धरणों से अनुमान लगा सकते हैं कि पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी महाराज कितने उच्चकोटि के अद्वितीय विद्वान् थे। प्रायः देखा गया है कि अपनी विद्वत्ता का घमण्ड मनुष्य को अभिमान के नशे में चूर-चूर कर देता है। किन्तु ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी विद्या के अथाह सागर होते हुए भी उनमें अभिमान का लेश भी नहीं था। वे सरल तथा शान्त स्वभाव और सौम्यता की मूर्ति थे। उनका प्रतिपक्षी उन्हें चाहे कितने अपशब्द या बुरा भला कहता वे उसके कटु वचनों पर कुछ भी ध्यान न देकर उसे अपने शान्त तथा हंसमुख चेहरे से प्रेमपूर्वक उत्तर दिया करते।

५. बहुधा देखा गया है कि ऐसे महापुरुषों के सम्मुख कामिनी और काञ्चन के प्रलोभन भी अक्सर आया करते हैं। और इन प्रलोभनों में बड़े-बड़े महापुरुष भी फंस जाया करते हैं। और अपने धैर्य और ध्रुव ध्येय की धारणा से विचलित हो जाते हैं परन्तु पूज्य ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी अपने पूज्य गुरु ऋषि दयानन्द के समान कामिनी काञ्चन के प्रलोभन से कोसों दूर थे। उनके सम्मुख कई बार ऐसे प्रलोभन आए किन्तु उनको ब्रह्मचारी जी ने एक-दम ठुकरा दिया। एक बार एक सुन्दरी जिसका कि पति कहीं चला गया था महाराज के सुन्दर तथा तेजस्वी चेहरे को देखकर मुग्ध हो गई और लोगों में यह फैला दिया कि मेरे तो यही पति हैं जो कि मुझे छोड़कर अब साधु बन गए हैं। अन्य लोगों ने भी उस युवती के कथन का समर्थन किया और स्वामी जी महाराज से उसे अपने पास रखने के लिए आग्रह करने लगे। किन्तु उस अखण्ड ब्रह्मचारी ने सब को डांट दिया और उस स्थान से प्रस्थान कर दिया।

इन्दौर, बड़ौदा, शाहपुर के नरेशों ने इस शर्त पर कि ये उनके राज्य में रहकर प्रचार करें, अन्यत्र कहीं न जाएं हजारों रुपये मासिक देने का वचन दिया किन्तु उस परम त्यागी नित्यानन्द ने यह कहकर कि साधु सर्वत्र विचरता है उनके इन भारी प्रलोभनों को ठुकरा दिया। मैसूर नरेश ने तो उनकी विद्वत्ता पर मुग्ध होकर उनके सामने अपने हीरे, मोती तथा जवाहरातों के भण्डार खोल दिये और कहा ब्रह्मचारी जी इनमें से जितने हीरे, मोती, जवाहरात चाहिए

आप ले लें, आपको खुली छुट्टी है । किन्तु उस आदर्श त्यागी नित्यानन्द ने उनकी ओर दृष्टिपात भी नहीं किया । उनके त्याग की एक दो घटनाएं पाठकों के सम्मुख रखना अप्रासंगिक न होगा । अहमदाबाद के सप्रसिद्ध सेशन जज श्री लल्लू भाई सांवलदास ने अपने एक लाख रुपये के विशाल बाग को महाराज से भेंट स्वरूप स्वीकार करने की सविनय प्रार्थना की । किन्तु उस त्यागमूर्ति ब्रह्मचारी ने यह कहकर कि साधुओं को बाग से क्या लाग, इस विशाल बाग को लेने से साफ इन्कार कर दिया । आज जहां हमारे संन्यासी तथा नेतागण साधारण सी संख्याओं के मोह से भी मुक्त नहीं होना चाहते, वहाँ महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने उनकी विद्वत्ता और प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें अपनी विश्व विख्यात संस्था 'शान्ति-निकेतन' अर्पण करनी चाही किन्तु उस विरक्त महात्मा ने उसे लेना स्वीकार नहीं किया । यह है उस परमहंस के परम त्याग की पराकाष्ठा ।

६. उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त ब्रह्मचारी नित्यानन्द में यदि कोई महान् तथा अद्‌भुत गुण था तो वह था शास्त्रार्थ का कौशल । वे शास्त्रार्थ करने में परम प्रवीण थे । उन्होंने जीवन-काल में प्रायः सभी धर्मावलम्बियों से पचराव, नरसिंहगढ़, कोल्हापुर, बूंदी, बम्बई, हैदराबाद, बड़ौदा, इन्दौर, आदि स्थानों में सैकड़ों शास्त्रार्थ किए और सभी शास्त्रार्थों में अभूतपूर्व विजय प्राप्त की। उन के शास्त्रार्थ-कौशल को देख कर प्रतिपक्षी अवाक् रह जाते थे । और कट्टर से कट्टर विधर्मी भी अपने मत को छोड़कर पवित्र वैदिक धर्म को स्वीकार कर लेते थे । नरसिंहगढ़ में सच्चा गुरु मन्त्र कौन है जब इस विषय पर पौराणिक पण्डितों से शास्त्रार्थ हुआ तो उस का उपस्थित जनता पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि न केवल साधारण जनता अपितु ५०० से अधिक प्रतिष्ठित राजपूतों सहित नरसिंहगढ़ के महाराजा ने भी पवित्र वैदिक धर्म को स्वीकार कर लिया और वहां दूसरे ही दिन आर्यसमाज स्थापित हो गया । ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी अपने प्रतिपक्षी के प्रश्नों के उत्तर इतनी विद्वत्ता और योग्यता से देते थे कि दुबारा उसके बोलने का साहस ही नहीं होता था । बड़ौदा के गोविन्द विष्णुदेव नामक एक प्रसिद्ध पौराणिक विद्वान् ने स्वामी महाराज के पास १५ प्रश्न लिखकर उत्तर के लिए भेजे और दावा किया कि प्रश्नों के उत्तर स्वामी नित्यानन्द जी त्रिकाल में भी नहीं दे सकते । स्वामी नित्यानन्द जी महाराज ने सभी प्रश्नों का उत्तर एक एक करके ऐसा युक्तियुक्त दिया

कि फिर उपर्युक्त विद्वान् को कुछ बोलने या लिखने का साहस भी नहीं हुआ।

यूं तो पूज्य स्वामी जी के सभी शास्त्रार्थ बड़े महत्त्वपूर्ण हैं किन्तु सब से अधिक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ बूंदी शास्त्रार्थ है । जो कि पुस्तकाकार में छप चुका है । खेद है कि वह मुद्रित शास्त्रार्थ आज उपलब्ध नहीं है । बूंदी शास्त्रार्थ में जब वहां के रामानुज सम्प्रदायी राजा द्वारा बुलाये गये सभी धुरन्धर तथा दिग्गज विद्वान् पूज्य स्वामी जी के सम्मुख परास्त हो गए, तब उन विद्वानों ने बहुत ओछे हथियारों से काम लिया । जैसे कि काशी के पण्डितों ने ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ में पराजित हो कर किया था । उन्होंने बूंदी के महाराजा को बहका कर उन दोनों महात्माओं को बूंदी राज्य से बाहर निकलवा दिया और उनके लिए अपशब्दों का प्रयोग किया गया। किन्तु पूज्य स्वामी विश्वेश्वरानन्द तथा नित्यानन्द की विद्वत्ता की धाक बूंदी के समस्त नर नारियों के हृदय में बैठ गई । बूंदी के महाराज तथा उन पौराणिकों की सर्वत्र निन्दा होने लगी । अखबारों में बूंदी के महाराज के विरुद्ध लेख निकले । जिनमें उनकी तीव्र आलोचनाएं की गईं । अजमेर से प्रकाशित होने वाले "राजस्थान समाचार" ने जो कि राजस्थान के नरेशों का कट्टर पृष्ठपोषक था, अपने चैत्र सुदि ४ सं० १९४५ के अङ्क में लिखा ।

"हमारी समझ में नहीं आता कि आर्यसमाज जैसी प्रतिष्ठित और बलवान् संस्था जिसने कि भारतवर्ष भर को प्रबल और दृढ़ उपदेशों द्वारा बहुत लाभ पहुंचाया है उसके विश्वेश्वरानन्द तथा नित्यानन्द दोनों संन्यासियों के साथ महाराज ने ऐसा दुर्व्यवहार क्यों किया ? ऐसा अनुचित व्यवहार करते हुए राजपूताना के सब से वृद्ध महाराजा बूंदी नरेश की नीति और विद्वत्ता कहां चली गई ? हम सत्य कहते हैं कि महाराज रामसिंह जी ने उपर्युक्त दोनों महात्माओं का अपमान करके अपनी आज तक की सम्मान और प्रतिष्ठा को बट्टा लगा दिया है । आर्यसमाज और बूंदी राज्य के इतिहास में यह बात लिखी जाएगी और सदा विद्यमान रहेगी कि बूंदी के राजा ने अपने साम्प्रदायिक पक्षपात के वश में होकर आर्यसमाज के दो साधुओं के साथ दुर्व्यवहार किया था । इत्यादि ।

प्रिय पाठक इसी से अनुमान लगा सकते हैं कि पूज्य स्वामी नित्यानन्द जी की विद्वत्ता तथा शास्त्रार्थ की प्रवीणता का सिक्का न केवल सर्व-साधारण अपितु बड़े-बड़े विचारकों तथा विद्वानों के हृदय पर कितनी प्रबलता

से बैठ चुका था। इसलिए मैं पूज्य स्वामी जी को शास्त्रार्थ विजेता व शास्त्रार्थ महारथी के नाम से सम्बोधित करता हूं।

७. स्वामी नित्यानन्द जी महाराज न केवल अद्वितीय विद्वान्, शास्त्रार्थ विजेता तथा सफल वक्ता ही थे। प्रत्युत वे अखण्ड ब्रह्मचारी तथा पूर्ण योगी भी थे। जहां उनकी विद्वत्ता आदि का सिक्का लोगों के हृदय में बैठा हुआ था, वहां उनके ब्रह्मचर्य तथा योगबल का प्रभाव भी उनके तेजस्वी मुखमण्डल को देखते ही प्रत्येक नर नारी के हृदय में अङ्कित हो जाता था। मैसूर में जब एक ब्राह्मण विद्वान् ने उन्हें अपने गृह पर भोजन का निमन्त्रण दिया तो उस विद्वान् की विदुषी धर्मपत्नी ने पूज्य स्वामी जी की प्रशस्ति में संस्कृत में जो श्लोक लिखकर उनकी सेवा में भेंट किये थे, वे स्वामी जी के त्याग तथा ब्रह्मचर्य के प्रभाव को स्पष्ट प्रकट करते हैं। लेख विस्तार भयं से हम यहां उन सब श्लोकों को उद्धृत न कर केवल प्रारम्भ का एक श्लोक ही पाठकों के दिग्दर्शनार्थ अङ्कित कर रहे हैं जो कि निम्न प्रकार है।

अष्टाङ्गयोगनिरतो यतिसार्वभौमः।
दुर्वादखण्डनविधौ चतुरोऽयमद्य ॥
यस्मात् समस्तजनदृष्टिपथं जगाम।
गायन्ति तद् यतिपतेरवदानपद्यम् ॥

अर्थात् स्वामी नित्यानन्द महाराज यम नियम आदि अष्टांग योग में सदा निरत एक सार्वभौम अखण्ड ब्रह्मचारी हैं। वे मिथ्या सिद्धान्तों के खण्डन करने में महान् चतुर हैं। चूंकि उनके ये उपर्युक्त सब गुण समस्त जनों के भली प्रकार से विदित हैं। इसलिए आज उस यतिवर के समस्त नर नारी गुणवाद गा रहे हैं।

ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी ने अपने जीवनकाल में कई ग्रन्थों की भी रचना की है। जिनमें पुरुषार्थप्रकाश सब से अधिक प्रसिद्ध है। जिसके सम्बन्ध में पंजाब के प्रसिद्ध आर्य नेता पं० ठाकुरदत्त धवन ने अपनी सम्मति देते हुए लिखा था—सत्यार्थप्रकाश के दूसरे दर्जे पर पुरुषार्थप्रकाश है।

८. खेद है कि विश्वेश्वरानन्द और नित्यानन्द अपनी इन दोनों महान् विभूतियों को जिन्होंने अपने जीवन-काल में अपने व्याख्यानों, उपदेशों और शास्त्रार्थों द्वारा सर्वसाधारण से लेकर बड़े बड़े विद्वानों तथा राजाओं महाराजाओं के हृदय में आर्यसमाज की धाक बैठा दी थी आर्यसमाज बिल्कुल भूल गया

है। अन्य नेताओं तथा महात्माओं को उनके स्मृति-दिवस मनाकर तथा उसके सम्बन्ध में विशेषांक आदि निकाल कर याद भी कर लेता है। किन्तु इन दोनों महापुरुषों का तो कभी स्मृति-दिवस ही नहीं मनाया जाता और न ही इनके सम्बन्ध में कभी विशेषांक आदि ही निकाले जाते हैं। वास्तव में यह हमारी उनके प्रति बड़ी भारी कृतघ्नता है।

९. ब्रह्मचारी जी ने इस प्रकार महर्षि दयानन्द जी के परमपदारूढ़ होने के उपरान्त ३० वर्षों तक उनके उद्देश्यों की पूर्ति में अपने को अर्पण कर पौष १८७० में बम्बई में नश्वर शरीर त्याग दिया।

महर्षि दयानन्द का उपकार

दयानन्द ने किया वेद प्रचार, दयानन्द ने किया वेद उद्धार।
दयानन्द का महान् उपकार, कृतज्ञ है अब सारा संसार॥

ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी

दयानन्द के पीछे चलकर, उन्हीं के सांचे में ढल कर।
नित्यानन्द बन गये ओजस्वी, विज्ञ तेजस्वी वर्चस्वी॥
दयानन्द ने तो बीज रोपा, "नित्य" ने बना वृक्ष सौंपा।
दयानन्द के दृढ़ अनुयायी, नित्यानन्द स्वामी हैं आर्य॥

१३४. पण्डित मण्डल

महर्षि की कृपा से समाज ने बहुत बड़े प्रकाण्ड पण्डित पैदा किये—पं० लेखराम जी, पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, महामहोपाध्याय पं० आर्य मुनि जी, पं० शिवशंकर काव्यतीर्थ, पं० क्षेमकरणदास त्रिवेदी, जिन्होंने ४० वर्ष की आयु में संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर अथर्ववेद का भाष्य किया। पं० जयदेव विद्यालंकार जिन्होंने चारों वेदों का हिन्दी में सरल भाष्य किया। पं० भोजदत्त जी जिन्होंने आगरा में आर्य मुसाफिर विद्यालय कायम कर सैकड़ों शास्त्रार्थ महारथी पैदा किये। पं० बुद्धदेव विद्यालंकार, पं० मनसाराम वैदिक तोप, पं० तुलसीराम स्वामी मेरठ के, पं० घासीराम जी, गुरुकुलों, कालेजों, दयानन्द ब्राह्ममहाविद्यालय और दयानन्द उपदेशक विद्यालयों ने हजारों पण्डित शास्त्रार्थ महारथीं पैदा किये परन्तु पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से केवल चार महापण्डितों का ही जिकर कर रहे हैं।

१. पं० रामचन्द्र जी देहल्वी, जिन्होंने अपनी विद्या और शास्त्रार्थ

चतुरता से आर्यसमाज की धाक जमाने भर में बिठा रखी है । एक पैसा भी आर्यसमाज से लिये बगैर अपने गुजारे के लिए खुद कमाई करके, आर्यसमाज की शान को बढ़ाया है । बड़े से बड़ा ईसाई पादरी, शास्त्रार्थ में इनके सामने न ठहर सका । जो भी आया शिकस्त खा कर गया । कुरान शरीफ का पं० जी ऐसा शुद्ध उच्चारण करते हैं कि मुसलमान उनकी बलाएं लेते हैं, अब भी आर्यसमाज के इस बूढ़े जरनेल के सामने किसी को आने की हिम्मत नहीं होती ।

२. पं० भगवद्दत्त जी बी० ए० जिन्होंने रिसर्च करके ऐसा बढ़िया साहित्य आर्यसमाज के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए लिखा है कि देश विदेश में इनकी विद्या का डंका बज रहा है । आजकल आप भी देहली में ही रहते हैं । विभाजन से पहले डी० ए० वी० कालेज के रिसर्च स्कालर थे ।

३. महर्षि दयानन्द जी महाराज से प्रेरणा पाकर अनेक पण्डितों ने वैदिक धर्म का प्रचार किया और अनेक प्रकार का साहित्य भी रचा है परन्तु श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी का उत्साह अत्यन्त सराहनीय है जो इस समय ९७ वर्ष की आयु होने पर भी निरन्तर वेद-व्याख्यान में जुटे होते हैं।

(४) वेद और संस्कृत के महान् विद्वान्

पद्मभूषण पण्डित ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

पद्म भूषण पण्डित श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु आधुनिक युग के वेद और संस्कृत के एक महान् विद्वान् थे । आप को संस्कृत के व्याकरण पर असाधारण अधिकार प्राप्त था । वेद और संस्कृत की शिक्षा में अष्टाध्यायी की प्रणाली को बड़ा महत्त्व प्राप्त है । पण्डित श्री ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु ने अष्टाध्यायी-प्रणाली के द्वारा हजारों विद्यार्थियों को संस्कृत भाषा का पण्डित बनाया। हाल ही में २१ दिसम्बर १९६४ की रात को हृदय गति बन्द हो जाने से उनके देहान्त-समाचार से न केवल आर्य जगत् में ही बल्कि संस्कृत साहित्य के सारे क्षेत्र में शोक छा गया है और उनके इस महाप्रयाण से एक अपूरणीय क्षति अनुभव की जा रही है ।

अभी गत मंगलवार १५ दिसम्बर की बात है कि वाराणसी महा-विद्यालय मोतीझील में श्री जिज्ञासु की लिखी हुई 'अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति के प्रकाशन के सिलसिले में डॉक्टर श्री मंगलदेव की अध्यक्षता में एक बहुत बड़ा समारोह हुआ । इस समारोह में भारत भर के बड़े-बड़े संस्कृत विद्वान्

सम्मिलित हुए जिन्होंने स्वर्गीय पण्डित श्री ब्रह्मदत्त जिज्ञासु को उनकी अष्टाध्यायी-प्रणाली को प्राथमिकता देने और 'अष्टाध्यायी प्रथमावृत्ति' की रचना करने के सिलसिले में उनका अभिनन्दन किया। इस समारोह में स्वयं श्री जिज्ञासु जी भी सम्मिलित थे। इस अवसर पर उन्होंने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा–

"मैं ५ जून १९१२ को घर से निकला। मेरे माता-पिता अनपढ़ थे। मैंने हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा सर्वप्रथम रह कर पास की परन्तु मैंने कालिज की शिक्षा के बजाय आर्ष ग्रन्थ (प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ) पढ़ने का विचार कर लिया। अतः अष्टाध्यायी पढ़ने के लिए मैं हरिद्वार पहुंचा। ज्वालापुर महाविद्यालय के संचालक से मैंने अपना विचार व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि अष्टाध्यायी पर मैं अधिकार प्राप्त नहीं कर सकता। यह एक बहुत कठिन प्रणाली है। मैंने उत्तर दिया कि अष्टाध्यायी में ३२ पाद हैं यदि मैंने जीवन भर में एक पाद पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया तो उसे बहुत समझूंगा और शेष भाग अगले जीवन में देखूं और समझूंगा। खैर ! मैं स्वर्गीय श्री पूर्णानन्द जी के साथ रहने और पढ़ने लगा। उन्हीं से मैंने अष्टाध्यायी और कुछ महाभाष्य पढ़ा इसके बाद बहुत विद्वानों से मैंने शिक्षा प्राप्त की। इसी बीच साधु-आश्रम पुल काली नदी अलीगढ़ में पहुंचा। वहां जाने का पहले मेरा विचार नहीं था। अकस्मात् एक बारात के साथ मैं वहां चला गया था। यह साधु-आश्रम स्व० पण्डित श्री सर्वदानन्द जी का था। मैं उनसे मिला। उन्होंने मुझ से पूछा–सिद्धान्तकौमुदी पढ़ा सकते हो ?' मैंने उत्तर दिया–'जिस चीज में श्रद्धा न हो उसको पढ़ाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। उन्होंने कहा, अष्टाध्यायी पढ़ाने का सिलसिला हो नहीं सकता क्योंकि हम ने हजारों रुपया खरच किया। सैकड़ों विद्यार्थी और बीसियों अध्यापक रखे परन्तु सरलता प्राप्त नहीं हुई।

मैंने उत्तर दिया, 'आप ही की यह शिक्षा है कि जहां स्वामी दयानन्द जी सरस्वती और दूसरे विद्वानों में मतभेद हो वहां स्वामी दयानन्द की बात ही माननी चाहिए। इसलिए मैं तो उनकी ही बात मानता हूं। आप आर्यसमाज के एक प्रमुख पण्डित हैं। आप ही का यह कर्त्तव्य है कि यहां अष्टाध्यायी पद्धति चलाएं। इस चरण पर उस समय हमारी वार्ता समाप्त हो गई। फिर रात के समय जब श्री सर्वदानन्द जी लेटे हुए थे और दूसरे कुछ लोग उनके पांव और टांगों को दबा रहे थे। मैंने भी उन्हें दबाना शुरू कर दिया। उन्होंने

मुझे बहुतेरा मना किया पर मैं दबाता ही रहा । इसी बीच उन्होंने व्याकरण की कोई बात पूछी और मैंने महाभाष्य के आधार पर उसका उत्तर दिया। वे बहुत प्रसन्न हुए उन्होंने मुझे कहा कि मैं उनके यहां रह जाऊं परन्तु मेरा वहां रहने का विचार नहीं था तो भी उन्होंने दो तीन बार हठ किया और बड़े प्रेम से कहा । अन्ततः मैंने उनसे पूछा-क्या आप सचमुच चाहते हैं कि मैं आपके यहां रहूं । उन्होंने कहा हां !

तब मैंने कहा, मेरी तीन शर्तें हैं । पहली यह कि इस साधु-आश्रम में श्री दयानन्द जी की पाठविधि जारी की जाए । जिन ग्रन्थों का विरोध ऋषि दयानन्द जी ने किया है उन्हें यहां न चलाया जाए । दूसरी शर्त यह है कि मैं किसी समिति के आधीन नहीं रहूंगा, आप जो आज्ञा देंगे वह करूंगा । तीसरी शर्त यह है कि मधुकरी भिक्षा पर निर्वाह करूंगा ।

स्वामी सर्वदानन्द जी ने शर्तें मान लीं और अगले दिन ही से कौमुदी आदि पढ़ने वाले विद्यार्थियों को बाहर भेज दिया और आदर्श पाठविधि (प्राचीन पाठ्य प्रणाली) आरम्भ कर दी गई और उसी गुरुकुल साधु-आश्रम में मैंने नियमित रूप से प्रथमावृत्ति पढ़ाना आरम्भ किया । और आज चालीस वर्ष से अष्टाध्यायी की प्रथमावृत्ति का एक मुख्य लक्ष्य पूरा हुआ । इसमें सहयोगियों की प्रेरणा, प्रोत्साहन और सहयोग प्राप्त रहा । इस प्रथमावृत्ति में प्रज्ञादेवी की तपस्या और सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है । विद्वानों से मेरा नम्र निवेदन है कि मूल अष्टाध्यायी को व्याकरण वालों के लिए अनिवार्य घोषित कर दें । इससे संस्कृत का कल्याण हो सकता है । प्रथमावृत्ति प्रत्येक भारतवासी को पढ़नी चाहिए । स्व० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के अतिरिक्त और भी जिन संस्कृत विद्वानों ने इस समारोह में भाषण दिए उनमें से ये नाम उल्लेखनीय हैं–

प्रथम–पण्डित कृष्णमोहन जी प्रधानाचार्य जिन्होंने अष्टाध्यायी प्रणाली को बहुत सरल किया । और जिस प्रकार दैनिक भोजन में पानी महत्ता के साथ मौजूद है उसी प्रकार अष्टाध्यायी में संस्कृत का सब कुछ मौजूद है ।

द्वितीय–संस्कृत विद्वान् श्री सुब्रह्मण्य, मीमांसा अध्यापक हिन्दू विश्वविद्यालय, जिन्होंने अपने भाषण में श्री जिज्ञासु जी का अभिनन्दन करते हुए कहा कि अष्टाध्यायी की अन्त्याक्षरी देखकर बहुत प्रसन्नता हुई है । यह

अन्त्याक्षरी हमने पहले कहीं नहीं देखी । सब कुछ जिज्ञासु जी के कारण से है ।

उनके बाद संगीत विद्यालय के श्री रतिनाथ झा, सुप्रसिद्ध संगीत मार्तण्ड पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ने अपने विचार व्यक्त किये । फिर पण्डित श्री दुण्ढीराज और मोतीझील के स्वत्वाधिकारी श्री बाबू ज्योतिभूषण ने भी श्री जिज्ञासु जी की पद्धति की बहुत प्रशंसा की ।

डॉ० प्रेमलता शर्मा, उपकुलपति, संगीत विद्यालय ने भाषण देते हुए कहा कि आज से बारह वर्ष पूर्व श्री गुरु जी के द्वारा मुझे श्री जिज्ञासु जी का परिचय प्राप्त हुआ । अष्टाध्यायी और काशिकादि के पढ़ने का कुछ अवसर मिला और काफी लाभ भी हुआ । इसके बाद चालीस पाठ्य पुस्तकें लिखी गईं । बाद में प्रथमावृत्ति की रचना के सिलसिले में विचार विमर्श होता रहा। इन दोनों पुस्तकों के सिलसिले में मेरा भी कुछ सहयोग है । मुझे इस बात की अत्यन्त प्रसन्नता है कि यह प्रथमावृत्ति तैयार हुई । अध्यापकों के लिए जिज्ञासु जी एक आदर्श थे मैं पढ़ते समय उनका उदाहरण अवश्य देती हूं।

इस समारोह में श्री डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का भाषण भी उल्लेखनीय है । उन्होंने बताया कि पाणिनि से पूर्व ६८ वैयाकरणी हो चुके थे । डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि जिज्ञासु जी की प्रथमावृत्ति हम लोगों के लिए एक बहुत बड़ी देन है । यह सौभाग्य की बात है कि श्री जिज्ञासु जी कि लिखी हुई प्रथमावृत्ति का पहला भाग प्रकाशित हो गया है । आशा है कि दूसरे भाग भी शीघ्र प्रकाशित हो जाएंगे। इनके परामर्श से स्वामी दयानन्द जी के वेद भाष्य का बनारस विश्वविद्यालय में कोर्स बनाया गया है ।

स्वर्गीय पण्डित जी ७३ वर्ष के थे । इतनी आयु होने के बावजूद इन बाल ब्रह्मचारी महात्मा का स्वास्थ्य बहुत अच्छा था । वह पूरी लग्न के साथ न केवल वेद प्रचार करते रहे बल्कि वेदवाणी नामक एक पत्र भी प्रकाशित करते रहे । उन्होंने अष्टाध्यायी के आधार पर हजारों विद्यार्थियों को संस्कृत के विद्वान् बनाया । उनकी इस अपूर्व सेवा के दृष्टिगत ही भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किया तथा डेढ़ हजार रुपये का वार्षिक पुरस्कार भी दिया । पूज्य पण्डित जी में अनुपम गुण यह था कि न केवल स्वयं विद्वान् थे बल्कि उन्होंने दूसरों को भी विद्वान् बनाने में सफलता प्राप्त

की। उन्होंने श्री रामलाल कपूर ट्रस्ट की मदद से संस्कृत के कितने ही ग्रन्थों को हिन्दी में अनुवादित कराया तथा बहुत सी पुस्तकें भी प्रकाशित कराईं। हजारों युवकों को संस्कृत का प्रकाण्ड पण्डित बना दिया।

इस महान् विद्वान् का देहान्त हृदयगति के रुक जाने से हुआ तथा २२ दिसम्बर को उनके पवित्र शरीर को अज़मत गढ़ पैलेस स्थित उनके निवासस्थान से विशाल जलूस के साथ वाराणसी के घाट पर ले जाया गया तथा वहां अन्तिम संस्कार किया गया।

विशेष कार्यकर्ता

१. **राजा नाहरसिंह** शाहपुर अधीश महर्षि के परम श्रद्धालु शिष्य थे। उन्होंने मथुरा जन्म-शताब्दी महोत्सव को सफल बनाने में बड़ा प्रयास किया था। उनके पुत्रों के यज्ञोपवीत स्वामी नित्यानन्द जी ने करवाये थे और इस शुभ अवसर पर उन्होंने पुरुषार्थप्रकाश पुस्तक तैयार करवाई थी। मलकाना राजपूतों की शुद्धि में उनका बड़ा योग रहा और शुद्ध हुए राजपूतों के सह-भोजों में भाग लेकर मलकाना शुद्धि को बड़ा प्रोत्साहन दिया। और उनके इस प्रोत्साहन के कारण ढाई तीन लाख मलकाना राजपूत दो तीन महीनों में ही शुद्ध कर लिये गये। और उनके सुपुत्र राजा उमीदसिंह जी अजमेर दयानन्द निर्वाण अर्द्धशताब्दी महोत्सव के प्रधान बन कर उसकी सफलता में सहायक हुए थे। इनके महल में महर्षि के वक्त की जलाई हुई अग्नि आज तक जल रही है।

२. **श्री पण्डित मेहरचन्द जी** ने जालन्धर में आर्यसमाज की बहुत सेवा की, दयानन्द कालेज जालन्धर जो बहुत विस्तार पकड़ चुका है, इन्हीं की कुर्बानी का फल है। वह भी सारी आयु महात्मा हंसराज की भांति विद्या-प्रचार में प्रयत्नशील रहे।

३. **पण्डित लखपतराय जी** एडवोकेट हिसार ने हरयाना प्रान्त यानि जिला रोहतक, हिसार, करनाल में अपने दूसरे सहायकों के साथ आर्यसमाज का बड़ा प्रचार किया। और हरयाना प्रान्त के गांव-गांव में आर्यसमाज का प्रचार हो जाना और सब जाटों का आर्यसमाजी बन जाना भी पं० लखपतराय जी की कोशिश से हुआ है। इसका महत्त्व इस बात से लग सकता है, कि जहां पंजाब के दूसरे जिलों में देहातों के हिन्दुओं में आर्यसमाज का प्रचार

न हुआ और वह आहिस्ता-आहिस्ता सब सिख बनकर अब पंजाबी सूबे की समस्या खड़ी कर रहे हैं । वहां पं० लखपतराय और उनके दूसरे साथी और हरयाना प्रान्त के देहात में प्रचार न करते तो आज हरियाणा प्रान्त के जाट भी जट सिख बने होते । सारे देश में केवल हरियाणा प्रान्त ही ऐसा है जहां हर गांव में आर्यसमाज का प्रचार है । और यह सिर्फ पं० लखपतराय और उनके सहायक सज्जनों के वैदिक धर्म के प्रचार की लग्न का उज्ज्वल उदाहरण पेश करता है । आजकल पं० लखपतराय जी के सुपुत्र पं० नानकचन्द जी बैरिस्टर चण्डीगढ़ आर्यसमाज के स्तम्भ हैं ।

४. जालन्धर के **श्री देवराज जी** ने महात्मा मुन्शीराम जी के सहयोग से जालन्धर कन्या महाविद्यालय स्थापित करके देश में स्त्री-शिक्षा के प्रचार का कार्य आरम्भ किया था । जिसकी देखा देखी अनेक कन्या पाठशालाएं बन गईं और यह देवराज जी का विद्यालय देश में सब से शिरोमणि माना जाता है ।

५. लाहौर के **डॉ० चिरञ्जीव भारद्वाज** ने मारीशस जजीरा में जाकर वैदिक धर्म का प्रचार किया और अब वहां करीबन सारे जजीरा की हिन्दू आबादी वैदिक धर्मी बनी हुई है ।

६. **मास्टर आत्माराम जी** अमृतसरी तहसीलदार के पद को ठोकर लगा कर आर्यसमाज की सेवा में जुट गये थे । पं० लेखराम जी ने जो सामग्री महर्षि जीवन की इकट्ठी की थी वह उसमें से केवल ५०० ही लिख पाये थे कि जनूनी मुसलमान के हाथों बलिदान हो गए । तब यह काम मास्टर जी को सौंपा गया जिसको उन्होंने बड़ी लगन से पूरा किया । तभी महर्षि जी का सब से पहला जीवनचरित्र सभा की ओर से छापा गया । उसके बाद जब महाराज बड़ौदा ने आर्य प्रतिनिधि सभा से एक विशेष कार्यकर्ता की मांग की ताकि उनके राज्य में सुधार कार्य किया जा सके । तब सभा की नजर मास्टर जी पर पड़ी और उनको वहां भेजा गया । वहां जाकर उन्होंने इतनी लगन से काम किया कि महाराज साहब ने उनको राव बहादुर की उपाधि प्रदान की । वहां उन्होंने अपनी किस्म का निराला कन्या महाविद्यालय खोला जिस में कन्याओं को शस्त्र चलाना भी सिखलाया जाता है । मास्टर जी सारी आयु आर्यसमाज का काम करते रहे । अब उनके सुपुत्र श्री अनन्दप्रिय जी भी मास्टर जी के पद-चिह्नों पर चल कर समाजसेवा कर रहे हैं ।

७. **आचार्य रामदेव जी** बड़े स्वाध्यायशील थे, व्याख्यान देते तो प्रमाणों का ढेर लगा देते थे। बीसियों पुस्तकें खोल कर सुनाते तो श्रोतागण मुग्ध हो जाते। आप पक्के देशभक्त थे, कई साल तक गुरुकुल कांगड़ी के मुख्य अधिष्ठाता रहे। कन्या गुरुकुल देहरादून इनके परिश्रम का परिणाम है। आर्यसमाज के लिए प्रायः उन्होंने जीवनदान दे रखा था।

८. अजमेर का **शारदा परिवार** भी आर्यसमाजी परिवार है। इस परिवार के सभी मैम्बरों ने राजपूताने में ही नहीं अर्थात् सारे देश में आर्यसमाज के प्रचार में प्रचुर सहायता दी है। श्री हरबिलास जी शारदा के परिश्रम से छोटी उमर के विवाह की मनाही का कानून बनाया गया जिसको शारदा एक्ट कहते हैं। रामविलास जी शारदा, चांदकरण जी शारदा भी तन, मन, धन से वैदिक धर्म-प्रचार में अग्रसर रहे हैं।

९. **श्री पं० ठाकुरदत्त जी** अमृतधारा वाले भी आर्यसमाज के कार्यों में विशेष भाग लेते रहे। अब उनके नाम से एक ट्रस्ट बना हुआ है जो वैदिक साहित्य के प्रचार और गरीबों की सहायता का सराहनीय काम कर रहा है।

१०. **श्री बावा पुरदमनसिंह ट्रस्ट** भी बड़ा सराहनीय काम कर रहा है। बावा गुरमुखसिंह जी ने एक दफा वेदप्रचार के लिए आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा-लाहौर को एक लाख रुपया इकमुश्त दान किया था। देहरादून में ट्रस्ट की तरफ से वैदिक साधन-आश्रम बना हुआ है। जिससे वैदिक धर्म का प्रचार विशेष रूप से सम्पन्न हो रहा है।

११. **श्री नानू जी भाई कालीदास मेहता** ने डेढ़ लाख रुपये टंकारा ट्रस्ट के लिए दान किया है।

१२. **श्री प्रकाशवीर जी शास्त्री** महर्षि दयानन्द जी के परम भक्त हैं। ये अपने शुद्ध चरित्र, धार्मिक आचरण, विद्या और वाक्-शक्ति के बल पर कांग्रेस और जनसंघ दोनों का विरोध होते हुए भी लोकसभा का चुनाव जीत कर लोकसभा के सदस्य बनें हैं और देशहित में हर प्रकार की बातें सभा में कहकर सरकार का ध्यान दिलाते हैं।

महर्षि दयानन्द जी की फोटो लोकसभा में लगवाना इनका ही काम है। ईसाई और मुसलमानों की देशविरुद्ध सब बातों पर कड़ी निगाह रखते हैं, और भारत सरकार को चेतावनी देते रहते हैं। भ्रष्टाचार के खिलाफ़ पूरा जोरदार आन्दोलन उठाते हैं, पंजाब के श्री प्रतापसिंह को गद्दी से उतारने में

उनका विशेष भाग है । दयानन्द का एक ही वीर लोकसभा में शेर की भांति गर्जना करता था । यदि दयानन्द के वीर सैनिक लोकसभा के बहुत सारे मेम्बर बन जायें तो देश की काया चन्द दिनों में ही पलट जाये ।

१३. **श्री दीवानचन्द जी** एम० ए० जिनकी कृपा से महर्षि जी की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आगरा यूनीवर्सिटी में एम० ए० के कोर्स में लगाई गई थी; प्रसिद्ध फ़िलासफ़र हैं, सारी आयु आर्यसमाज की सेवा करते रहे हैं । अब बुढ़ापे में भी प्रचार के साथ-साथ मौलिक उत्तम साहित्य का निर्माण भी करते रहते हैं । जहां आप की वाणी में रस है वहां अपकी लेखनी भी बड़ी रोचक और मनोरंजक होती है ।

१३५. सत्याग्रह सूची

१. सन् १९१८ धौलपुर रियासत में आर्यसमाज मन्दिर का एक हिस्सा गिरा कर राज्य की ओर से आम आदमियों के लिए टट्टियां बना दी गईं । वहां के आर्यसमाज के अधिकारियों की प्रार्थनाओं को राज्य सरकार ने न माना । जब यह प्रयत्न निष्फल हुआ तब आर्य संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सत्याग्रह की घोषणा कर दी । जगह-जगह से आर्यसमाजों के जत्थे धौलपुर जाने शुरू हो गए । तब रियासती सरकार की अकड़ खतम हो गई और फिर रियासत ने अपने खर्चे से आर्यसमाज मन्दिर का वह हिस्सा जो गिराया था बनवा दिया ।

२. रियासत हैदराबाद में हिन्दुओं और आर्यों पर कई तरह की धार्मिक पाबन्दियां थीं । कोई नया मन्दिर बनाना तो एक तरफ़ पुराने मन्दिर की मरम्मत भी नहीं करा सकता था । ओ३म् का झण्डा नहीं लहरा सकता था । हवन नहीं कर सकता था । अपनी धार्मिक शिक्षा के लिए कोई स्कूल पाठशाला स्थापित नहीं कर सकता था। किसी मुसलमान को शुद्ध नहीं किया जा सकता था । यह और इसी किस्म कि कई प्रकार के प्रतिबन्धों को दूर कराने के लिए जब समस्त उपाय असफल हुए तो रियासत हैदराबाद में एक महान् आर्य सम्मेलन करने की योजना बनाई गई परन्तु वहां सम्मेलन करने की आज्ञा न मिली । तब २५ से १९ दिसम्बर १९३८ को शोलापुर में आर्य सम्मेलन विनायक श्री माधवराव अणे जी के सभापतित्व में सम्पन्न हुआ और २७ दिसम्बर १९३८ को सत्याग्रह करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार

हो गया। उस समय के हिन्दू महासभा के प्रधान वीर सावरकर ने सत्याग्रह में सहायता करने की घोषणा कर दी। और महात्मा नारायण स्वामी जी प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पहले डिक्टेटर नियत किये गये। महात्मा नारायण स्वामी जी ने रियासत हैदराबाद को २५ दिन का अल्टीमेटम दे दिया कि अगर हिन्दुओं और आर्यों पर रियासत में लगाये सब प्रतिबन्ध न हटाये गये तो सत्याग्रह शुरू कर दिया जायेगा। वीर सावरकर ने भी रियासत हैदराबाद को नोटिस दे दिया कि हिन्दुओं की मांगें पूरी करो नहीं तो सत्याग्रह किया जायेगा। रियासत ने अल्टीमेटम पहुंचाने पर पहले से भी ज्यादा सख़्तियां आरम्भ कर दीं। अत: २२ जनवरी १९३९ का दिन सत्याग्रह दिवस मनाने की घोषणा की गई। और समस्त भारत में यह दिवस निहायत धूमधाम से मनाया गया परन्तु १९।१।३९ तक रियासत हैदराबाद में ८०० सत्याग्रही गिरफ़्तार हो चुके थे। ३१।१।३९ को पहले सर्वाधिकारी महात्मा नारायण स्वामी जी ने ४० सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह का श्रीगणेश कर दिया। बस फिर क्या था सत्याग्रहियों के झुण्ड के झुण्ड सारे भारतवर्ष से पहुंचने शुरू हो गये और ८।८।३९ को निज़ाम सरकार ने हथियार डाल दिये और आर्यसमाज की सब मांगें स्वीकार कर लीं। उस वक्त तक १३००० तेरह हजार सत्याग्रही निज़ाम की जेलों में पहुंच चुके थे। ९०० नौ सौ आर्य वीर सत्याग्रह के केन्द्रों में इकट्ठे हुए थे। स्पेशल गाड़ियां सत्याग्रहियों को हैदराबाद की ओर ले जा रहीं थीं और हजारों आर्य वीर सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार थे। आठ महीने तक सत्याग्रह चलता रहा। इस सत्याग्रह पर आर्यसमाज का ८-९ लाख रुपया खर्च हुआ। तेरह हजार सत्याग्रही बन्दी हुए और तीस सत्याग्रही बलिदान हो गये परन्तु आर्यसमाज की इस शानदार विजय का सर्टिफिकेट भारत के प्रसिद्ध लौह पुरुष सरदार पटेल ने उस वक्त दिया था जब कि निज़ाम के ख़िलाफ़ पोलीस एक्शन किया गया। और दो दिन में ही निज़ाम सरकार ने हथियार डाल दिये थे। उस समय सरदार पटेल ने मुक्तकण्ठ से कहा था कि यदि आर्यसमाज ने सत्याग्रह करके निज़ाम के होश ठिकाने न लगाये होते तो निज़ाम इतनी जल्दी हथियार न डाल देता। इससे बढ़ कर आर्यसमाज की शानदार विजय का और क्या सबूत हो सकता है परन्तु खेद की बात है कि श्री राजगोपालाचार्य जो इन दिनों मद्रास की कांग्रेस मिनिस्ट्री के मुख्य मन्त्री थे ने मद्रास प्रान्त में आर्यसमाज के उत्सवों पर दफा १४४ लगा दी

थी । यही राजगोपाल साहब अब हिन्दी के खिलाफ़ लठ लिये फिरते हैं । और कह रहे हैं कि काश्मीर पाकिस्तान को दे दो ।

३. सन् १९४६ सिन्ध प्रान्त में मुस्लिम लीग मिनिस्ट्री ने सत्यार्थप्रकाश के पढ़ने सुनने पर प्रतिबन्ध लगा दिया । इसके खिलाफ़ महाशय खुशहालचन्द जी खुरसन्द (महात्मा आनन्द स्वामी जी) ने जो उस समय आर्य प्रादेशिक सभा के प्रधान थे, और महात्मा नारायण स्वामी प्रधान सार्वदेशिक सभा ने सत्याग्रह किया और सिन्ध सरकार को यह प्रतिबन्ध वापस लेना पड़ा ।

४. हिन्दी सत्याग्रह–

सन् १९५७ में पंजाब में हिन्दी सत्याग्रह शुरू हुआ जो करीबन ६–७ मास चलता रहा, हजारों आर्य वीर जेलों में गये और इस सत्याग्रह में फ़िरोजपुर जेल में सैकड़ों आर्य वीरों को लाठियों से जख्मी किया गया । और एक वीर सुमेरसिंह तो जेल में ही शहीद हो गया । करीबन आठ हजार सत्याग्रहियों ने इसमें भाग लिया ।

१३७. पांच महासम्मेलन

यूं तो विभाजन से पहले लाहौर आर्यसमाजों के वार्षिकोत्सव और गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव एक बड़े मेले और महासम्मेलन का रूप धारण करते थे । परन्तु कुछ महासम्मेलन भी किये गये । जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे । जिससे सारे देश में आर्यसमाज की धाक बैठ गई ।

१. सब से पहले सन् १९२४ में मथुरा में दयानन्द शताब्दी का महासम्मेलन हुआ । जिसमें ढाई लाख के करीब स्त्री पुरुष इकट्ठे हुए । सम्मेलन का प्रबन्ध अति उत्तम था । क़िसी किस्म की गड़बड़ इस मेले में न हुई। प्रत्येक वस्तु स्वच्छ और पवित्र उचित दामों पर मिलती थी । जब इस सम्मेलन के सम्बन्ध में बहुत बड़ा जलूस निकाला गया तो सर जेम्स मिस्टन लेफ्टीनेंट गवर्नर यू० पी० खुद देखने आये थे । कार्यकर्ताओं के प्रबन्ध को देखकर अति प्रसन्न हुए, सम्मेलन के यात्री रात को खुली चीजें छोड़कर खुले मैदान में सो जाते थे परन्तु क्या मजाल जो किसी की चोरी हुई हो । सरकार की ओर से पुलिस की नफरी मौजूद रहती थी, फिर भी सारा प्रबन्ध आर्यसमाज का अपना था । इस सम्मेलन को सफल बनाने में पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी, महात्मा हंसराज जी और महात्मा नारायण स्वामी जी का हाथ था । बहुत

से राजे महाराजे भी इसमें सम्मिलित हुए थे।

२. मालाबार विद्रोह में आर्यसमाज की ओर से बलात्कार मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं की शुद्धि और लाखों की तादाद में मलकाना शुद्धि से मुसलमान घबरा उठे। और उसके साथ ईसाइयों ने भी सुर मिलाकर सरकार से सत्यार्थप्रकाश की जब्ती की मांग की और इसके बाद २३ दिसम्बर १९२६ को एक जनूनी मुसलमान ने बीमार पड़े स्वामी श्रद्धानन्द पर गोलियां चलाकर उनका बलिदान कर दिया तो सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक महासम्मेलन करने की योजना बनायी और महात्मा हंसराज जी को इस सम्मेलन का प्रधान बनाया गया। जो ३ नवम्बर १९२७ को महात्मा जी अन्य प्रति-निधियों के साथ दिल्ली स्टेशन पर पहुंचे तो उनका अत्यन्त शानदार स्वागत हुआ, सरकार ने जलूस निकालने की मनाही कर दी थी। जोश और उत्साह का ठाठें मारता हुआ समुद्र नजर आता था। श्री पं० मदनमोहन मालवीय, श्री जमनालाल बजाज, खजाञ्ची आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, पंजाब केसरी लाल लाजपतराय जी, भाई परमानन्द जी, लाला दीवानचन्द जी, एम० ए० आचार्य रामदेव जी, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, राय बहादुर हरबिलास शारदा, मेरठ के पं० घासीराम जी आदि आदि महानुभाव उपस्थित थे, ५० हजार की हाजरी से पण्डाल खचाखच भरा हुआ था। महात्मा हंसराज जी ने जो एडरेस इस महासम्मेलन के मंच से अध्यक्ष के रूप में पढ़ा वह अत्यन्त विद्वत्ता पूर्ण निर्भीकता का प्रदर्शक और आर्यसमाज का वास्तविक स्वरूप दिखलाने वाला था, जिससे सरकार अंग्रेजी और ईसाई मुसलमान विरोधियों के दिमाग़ साफ़ हो गये।

३. तीसरा महासम्मेलन

सन् १९३३ में महर्षि दयानन्द की निर्वाण अर्ध शताब्दी के अवसर पर तीसरा महासम्मेलन अजमेर में हुआ। इसके अधिपति राजाधिराज उमेदसिंह जी शाहपुरा थे। यह सम्मेलन भी बड़ा महत्त्वपूर्ण था, ढाई तीन लाख यात्री इसमें सम्मिलित हुए और इस महासम्मेलन का जलूस भी निराली शान का था। जलूस जलसा के स्थान से आरम्भ होकर सारे अजमेर के बाजारों में घूमता हुआ भिनाये की कोठी पर जहां महर्षि ने इस भौतिक देह को त्यागा था करीबन दस घण्टे में जाकर खतम हुआ और अजमेर नगर निवासी जहां चिश्ती साहब की कबर पर हर वर्ष उर्स होते हैं। आर्यसमाज के इस महत्त्वपूर्ण

सम्मेलन और जलूस को देख कर दंग रह गये ।

४. आर्य महासम्मेलन

२५ दिसम्बर से २९ दिसम्बर १९३८ को शोलापुर में श्री अणे की अध्यक्षता में हुआ । जिसमें हैदराबाद रियासत में हिन्दुओं और आर्यसमाजियों पर हो रहे अन्याय के खिलाफ़ बड़ा जोश खरोश देखने में आया । हैदराबाद रियासत में अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिए सत्याग्रह करने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया । यह सम्मेलन महात्मा नारायण स्वामी जी की देख रेख में हुआ था । क्योंकि स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान हो चुका था और महात्मा जी का भी स्वर्गवास हो चुका था परन्तु यह जंगी सम्मेलन अति उत्तम रीति से सम्पन्न हुआ । इसमें भी हजारों की संख्या में प्रतिनिधि सम्मिलित थे । इस निश्चय के अनुसार फिर हैदराबाद का सत्याग्रह चला, जिसका वर्णन पृथक् दिया गया है ।

५. पांचवां आर्य महासम्मेलन

सन् १९६० में पांचवां महासम्मेलन आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० की ओर से मथुरा में दयानन्द दीक्षा शताब्दी के रूप में सम्पन्न हुआ । जिसके अध्यक्ष राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद बने थे । लाखों स्त्री पुरुषों की हाजरी इस सम्मेलन में थी । जलूस की निराली शान थी और राष्ट्रपति जी ने अपने सभापति के भाषण में मुक्त कण्ठ से गुरुकुल प्रणाली की, भूरि-भूरि प्रशंसा की । और अन्त में स्पष्ट शब्दों में कहा कि महर्षि दयानन्द जी महाराज के शुरू किये हुए कार्य को महात्मा गांधी जी ने सम्पूर्ण किया था ।

और भी छोटे बड़े सम्मेलन तो वक्त पर होते ही रहे पर आर्यसमाज के इतिहास में यह पांच महासम्मेलन बड़े महत्त्व का स्थान रखते हैं । इसलिए इनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है ।

१३८ अंग्रेजों का षड्यन्त्र और उसका निराकरण

जब भारत देश में महात्मा गांधी जी ने सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किये तो उन आन्दोलनों में बहुधा हिन्दु ही भाग लेते रहे, और इसलिए अंग्रेज हिन्दुओं से बहुत चिढ़ गये थे । अंग्रेजों ने यह सिद्ध करने के लिए कि हिन्दुओं के

अन्दर बहुत सी कुरीतियां और कुप्रथाएँ हैं। जिससे वह अभी स्वराज्य के योग्य नहीं हैं। अमरीका की एक कंवारी लडकी मिस म्यो को अपने खर्चे पर भारत बुलवाया इसको अपने खर्चे पर सारे भारत का दौरा करवा कर एक पुस्तक लिखवाई जिसका नाम मदर इण्डिया था। इस पुस्तक को गवर्नमेण्ट ने अपने खर्चे पर छपवा कर अमरीका आदि सब देशों में बांटा। पार्लियामेण्ट के हर मैम्बर को इस पुस्तक की एक एक कापी दी गई ताकि वह भारत की स्वतन्त्रता का विरोध करने में तत्पर रहें। इस पुस्तक में मिस म्यो ने हिन्दुओं के सम्बन्ध में जी भर कर जहर उगला है और आप यह जानकर हैरान होंगे कि इस पुस्तक में मुसलमानों के विषयों में एक शब्द भी नहीं लिखा गया। जिससे अंग्रेजों की कूटनीति का दिग्दर्शन होता है कि वह किस तरह हिन्दू मुसलमानों में विरोध उत्पन्न करके अपना उल्लू सीधा करते थे। इस पुस्तक के विषय में लन्दन के अखबार दी न्यू स्टेटमैन के १६।७।२७ के पर्चा में एक लम्बा चौड़ा रिव्यू प्रकाशित हुआ था, वह सारा रिव्यू न लिखकर सिर्फ़ उसके कुछ आखिरी शब्द लिखता हूं जिससे इस पुस्तक के लिखवाने का अंग्रेजों का षड्यन्त्र स्पष्ट होता है। वे शब्द यूं हैं–

She makes the claim for swaraj seems nonsense and the will to grant it almost a crime. If the language of this review seems violent. it is not, we are certain more violent than the feelings that are likely to be aroused in the mind of every normal western reader of Miss Maya's book.

भावार्थ–मिस म्यू ठीक कहती है कि भारतीयों की स्वराज्य की मांग वाहयात है और इसको मंजूर करना पाप है। आगे चलकर अख़बार लिखता है कि हमारी राय के मुतलिक कोई कहे कि यह उत्तेजना पूर्ण है तो यह ठीक नहीं, मिस म्यो की पुस्तक जो भी पश्चिमी पढ़ेगा वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचेगा। देखा आपने अंग्रेजों ने भारतीयों की स्वराज्य की मांग को वाहयात घोषित करने के लिए यह सब प्रयत्न किया था।

और अंग्रेजों के इस षड्यन्त्र को तार-तार करने के लिए भी समस्त भारत में महर्षि दयानन्द और उसकी शिक्षा के अतिरिक्त कोई ढाल न बन सका, अतः इसके जवाब में जो एक ही किताब भारत भर में छपाई गई, वह मिस्टर सी० एस० रंगा आयर M.L.A मद्रास की तरफ से फ़ादर इण्डिया के नाम से छपी जिसके पृष्ठ ११५-११६ पर वे लिखते हैं–

Dayanand Saraswati was the Martin Luther of India. His teachings which millions of his follwers accept and observe in their lives. rejected all pouranic accretions and asked the peopel to go back to the religion of vedas. The Arya Smajists recognise no caste or creed. They live amongst the depressed classes and work for their improvement both moral and material. They have got rid of the curse of early marriage They educate the girls. Who have given up pardah in their thousand. Their schools Colleges are not supported by Government but by public the Samaj send out missionaries in their hundreds. Bold spirited, splendid workers they go among the People preaching and teaching in open day light the need of reform and reganer ation on vedic lines. Their social reform propaganda was out no longer viewed with hostility by a Government which read in every social upheavel a political danger. Dayanand Saraswati brushed aside all un-meaning superstitions. The Arya Smajists nor worship Idol nor wear caste marks. They are true followers of Vedas, whose greatness and glory have been brought to light and life, as a result of mission are propagandists both Christians and muslims have received a set back. The American Tourist (Miss Mayo) could not be unaware of the work of Arya Smajists. Yet she dose not notice their great work and increasing popularity. She quotes as her authority some hindu books which are special pleadings of interested pandits of thousand years ago and omits to quote the authoritative texts of an earlier period and also misses to quote Satyarath-Prakash the authority of millions today.

भावार्थ निम्न प्रकार है–दयानन्द सरस्वती भारत के मार्टन लूथर थे। इनके हजारों लाखों शिष्य पुराणों की घिनावनी कथाओं को नहीं मानते, वे सब वैदिक धर्म में आवाहन करते हैं । आर्यसमाजी जन्म से जात-पांत नहीं मानते । छोटी आयु के विवाह का निषेध करते हैं । छूत-छात के विरुद्ध उन्होंने बड़ा आन्दोलंन उठाया है । वह लड़कियों को तालीम देते । पर्दे की मुखालफ़त करते हैं । उसके स्कूल और कालेज गर्वनमेण्ट से सहायता न लेकर जनता जनार्दन के सहारे चलाये जा रहे हैं । वह रोज रोशन में हर किस्म की कुरीतियों और कुप्रथाओं का खण्डन करते हैं । आर्यसमाजी मूर्तिपूजा नहीं करते, न ही किसी किस्म के भ्रमजाल को मानते हैं । शायद मिस मेयो ने आर्यसमाजियों के इस काम की ओर ध्यान नहीं दिया । मिस म्यू ने पुराणों

और दूसरे स्वार्थी लोगों के लिखे हुए पुस्तकों का हवाला दिया परन्तु सत्यार्थप्रकाश जो इस समय का शास्त्र है । जिस को लाखों करोड़ों लोग अपना रहे हैं उसको नहीं देख सकी । यह तो हुआ मिस म्यू की किताब के जवाब में एक भारतीय की लिखी हुई किताब का उद्धहण । जो अंग्रेजों के षड्यन्त्र से रची हुई किताब का पुरजोर खण्डन करके भारतीयों को स्वराज्य का अधिकारी सिद्ध करती है ।

१३९. जादू वह जो सिर चढ़ कर बोले

आप यह जान कर प्रसन्न होंगे, और साथ ही प्रसन्न होकर गौरव से अपना सिर भी ऊंचा कर सकेंगे कि जिस मिस म्यू को सारे भारतवर्ष में हिन्दुओं के अन्दर बुराइयां ही बुराइयां नजर आईं । वही मिस म्यू आर्यसमाज के काम से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकी । अत: उसने अपनी उसी पुस्तक मदर इण्डिया में लिखा है:—

Perhaps the most influential person I have met in the Punjab was a lady who has been now for many years Headmistress of an Arya Smaj Girls school. the Arya samaj schools aim at fostering Nationalism. They are open to criticism from some point of view, but even the critics recogniee that they are genuine education institutions, very different from the political mushooms, which nonco-operation called into existence The Aryas have girls schools scattered all over Puniab and this school supplies the teachers.'

भावार्थ—पंजाब में मैं एक अत्यन्त ही प्रभावशाली देवी से मिली हूं। जो बहुत वर्षों से आर्यसमाज कन्या महाविद्यालय की मुख्य अध्यापिका है। आर्यसमाज के स्कूल भारतीयता का प्रचार करते हैं । यह निहायत अच्छे विद्यालय हैं, और नान कारपोरेशन वालों की तरफ से चलाये जाने वाले विद्यालयों के बिल्कुल उल्टा हैं । आर्यसमाज के कन्याविद्यालय सारे पंजाब भर में फैले हुए हैं और यह विद्यालय अध्यापिकाएं तैयार करता है । (यह बात कन्या महाविद्यालय जालन्धर और उसकी मुख्याध्यापिका श्रीमती लज्जावती जी के सम्बन्ध में प्रतीत होती है) ।

१४०. कश्मीर की समस्या

कश्मीर की समस्या जो इस समय तक हल होने में नहीं आ रही,

यह कोई समस्या न होती यदि महर्षि दयानन्द जी महाराज को कश्मीर जाने दिया जाता। परन्तु कशमीरी पण्डितों ने अपने पांव कुल्हाड़ा चलाकर महर्षि को कशमीर के महाराजा रणबीरसिंह जी की अत्यन्त इच्छा होने के बावजूद भी वहां पांव न रखने दिया।

१. कशमीर नरेश महाराजा रणबीरसिंह जी स्वयं महर्षि जी को मिलने के बड़े इच्छुक थे और इसी अभिप्राय से उन्होंने देहली दरबार के मौका पर अपने मन्त्री नीलाम्बर बाबू और दीवान अनन्तराम को स्वामी जी की सेवा में भेजा था। इन दोनों महानुभावों ने स्वामी जी से कशमीर नरेश की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने महाराजा से मिलना स्वीकार कर लिया, परन्तु पण्डितों के सिखलाने बहकाने पर महाराजा स्वामी जी से न मिल सके। पण्डित गणेश शास्त्री ने जो जम्मू में धर्मशास्त्र के जज थे, पण्डित लेखराम के सामने सन् १८८७ में यह स्वीकार किया था, कि महाराजा रणबीरसिंह जी की स्वामी जी को मिलने की उत्कट इच्छा थी, परन्तु हम लोगों ने नहीं मिलने दिया। जब स्वामी जी लाहौर आए तो उस समय भी महाराजा साहब ने स्वामी जी को श्रीनगर बुलाने का विचार प्रकट किया था, तब भी पण्डितों ने यह कहकर कि यदि आप दयानन्द को बुलाना चाहते हैं तो पहले देव मन्दिरों को गिरा दीजिए और इस तरह स्वामी जी को निमन्त्रित करने से रोक दिया था।

२. फिर महाराजा रणबीरसिंह ने स्वामी जी से अनुमति मांगी कि मुसलमान हो गये हिन्दुओं को शुद्ध करने की शास्त्र में आज्ञा है या नहीं। इस पर स्वामी जी ने स्पष्ट लिख दिया कि हिन्दुओं से मुसलमान होने वालों की क्या कथा शास्त्रों में तो हजारों सालों से बिछड़े भाइयों को वापस इस विशाल धर्म में ले लेने की भी आज्ञा है। इस पर महाराजा साहब ने अपने पण्डितों से विचार प्रकट किया कि लाखों हिन्दु विशेष तौर पर ब्राह्मण लोग जो जबरदस्ती या लालच से मुसलमान बनाए गए हैं उनको शुद्ध कर लेना चाहिए। तब भी पण्डितों ने महाराजा साहब से कहा कि यदि आप इन को शुद्ध करने की योजना बनायेंगे तो हम लोग आप के महल के सामने भूख हड़ताल करके अपने प्राण त्याग देंगे। परन्तु महर्षि को जम्मू कशमीर जाने से रोकने और शुद्धि न करने के परिणाम स्वरूप अब कशमीर की यह समस्या कितनी जटिल हो गई है कि अरबों रुपया खर्च करने और हजारों जवानों की बलि देने पर भी यह हल नहीं हो रही। यदि महर्षि के चरण-कमल कशमीर

में पड़ जाते और महर्षि की आज्ञानुसार शुद्धि का चक्कर चलाया जाता तो अब कशमीर की कोई समस्या ही न रहती। पण्डितों के बहकाने पर महाराजा कशमीर ने रियासत में आर्य समाज का प्रचार और आर्यसमाज की स्थापना की मनाही भी कर रखी थी। जो कि सन् १८९२ में एक विचित्र घटना से यह मनाही हटाई गई।

३. जब ईसाईयों ने देखा कि कशमीर राज्य में तो आर्यसमाज का प्रचार ही नहीं हो सकता तो उन्होंने महाराजा को चैलेंज दिया कि वह अपने पण्डितों से इनका शास्त्रार्थ करावे, क्योंकि ईसाई पादरी जानते थे कि महाराजा कशमीर बड़े धार्मिक विचारों के पुरुष हैं अगर वे ईसाई बन जावें तो, सारी रियासत में ईसाइयत का प्रचार बहुत आसानी से हो जावेगा। अतः शास्त्रार्थ का आयोजन हुआ। नियत तिथि और समय पर महाराज के पण्डितों और ईसाई पादरियों में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। महाराजा स्वयम् इस शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। ईसाइयों ने बड़े-बड़े पादरी इस शास्त्रार्थ के लिए मंगवाये थे। क्योंकि उनको पूरा निश्चय था कि शास्त्रार्थ में इनकी विजय हो जाने से महाराजा साहब अवश्य ईसाई बन जावेंगे। हजारों की हाजरी में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। ईसाई पादरियों के प्रश्नों का उत्तर देने का महाराज के किसी पण्डित में साहस न था और पण्डित विचारे एक दूसरे का मुंह देख रहे थे और महाराज साहब मन ही मन में अपने पण्डितों की शिकस्त को देखकर घबरा रहे थे, कि दैव योग से इस शास्त्रार्थ स्थल में आर्यसमाज के महोपदेशक पण्डित गणपति शर्मा जी उपस्थित थे। जब उन्होंने देखा कि ईसाइयों का पलड़ा भारी हो रहा है और पण्डित निरुत्तर होते चले जा रहे हैं तो वे अपनी जगह से उठ खड़े हुए। बिल्कुल साधारण वेश में एक दुबले पतले आदमी को शास्त्रार्थ स्थल में उठता देख कर सब चकित रह गये। पण्डित गणपति शर्मा ने महाराजा को सम्बोधन करके कहा—यदि मुझ को आज्ञा हो तो मैं आपके पण्डितों का पक्ष लेकर पादरी साहबान से शास्त्रार्थ करूं। पण्डित जी शास्त्रार्थ के मैदान से भागने वाले ही थे, और महाराजा जो मन में पण्डितों की शिकस्त से घबरा रहे थे। उन सब के मन में धैर्य बंधा, और उन्होंने पण्डित गणपति शर्मा को शास्त्रार्थ करने की अनुमति दे दी।

पण्डित गणपति शर्मा का शास्त्रार्थ स्थल में खड़ा होना था कि शास्त्रार्थ का पलड़ा ही पलट गया। जब पण्डित जी ने पादरियों के प्रश्नों का उत्तर

देने के साथ-साथ, ईसाई मत पर प्रश्न किये तो पादरी घबरा गये। क्योंकि अब पादरियों के घबराने की बारी थी, बस फिर क्या था चन्द ही मिनटों में पादरी साहब निरुत्तर होकर शास्त्रार्थ स्थल छोड़ गये। और महाराजा की जय जयकार होने लग गई। शास्त्रार्थ खतम हो गया सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। पण्डित गणपति शर्मा जी जम्मू के रघुनाथ मन्दिर में जा कर फ़र्श पर लेट गये। महल में पहुंच कर महाराज साहब को खयाल आया कि उस पण्डित को जिसने हमारी पराजय को जय में (बदल) परिवर्तित कर दिया, कुछ पारितोषिक देना चाहिए। अतः उन्होंने अपने पण्डितों को पण्डित गणपति शर्मा को बुलाने भेजा। और वे रघुनाथ मन्दिर से पण्डित गणपति शर्मा को बुलाकर राजमहल में ले गये। महाराजा साहब ने बड़े आदर सम्मान से उनको बिठाया और एक हजार रुपया उनको भेंट किया परन्तु पण्डित गणपति जी ने महाराजा साहब से कहा कि यदि आप मुझे पारितोषिक देना ही चाहते हैं, तो यह चीजें मुझे नहीं चाहिए। आप अपनी रियासत में आर्यसमाज- स्थापना करने की घोषणा कर देवें। फिर आपको न कोई ईसाई पादरी और न ही मुसलमान मौलवी शास्त्रार्थ के लिए चैलेंज करेगा। सो महाराजा साहब ने स्वीकार कर लिया और तब से ही किसी विधर्मी को शास्त्रार्थ का चैलेंज करने की हिम्मत नहीं हुई। धन्य थे पण्डित गणपति शर्मा जो अपने लिए कुछ न लेकर धर्म और आर्य जाति हित का पुरस्कार स्वीकार कर सके।

और

अब आप यह सुनकर भी हर्षित होंगे कि विभाजन के बाद रियासत जम्मू और काश्मीर को भारत के साथ मिलाने का काम भी महर्षि दयानन्द के एक श्रद्धालु श्री मेहरचन्द जी महाजन रिटायर्ड चीफ जज सुप्रीम कोर्ट जो इस वक्त महाराज हरिसिंह जी कशमीर नरेश के प्रधानमन्त्री थे और जिनकी महाराज साहब बहुत इज्जत करते थे, की प्रेरणा से हुआ। और महाराजा साहब ने भारत के साथ रियासत का सम्बन्ध करने वाले पत्रों पर हस्ताक्षर किये थे।

१४१. पांच हजार वर्ष से सोने वाले जागो

वाल्मीकि रामायण में एक कथा आती है कि जब नल, नील इंजीनियर लंका पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र पर पुल बांध रहे थे, तो एक गिलहरी

भी अपने छोटे-छोटे पंजों में रेत के कुछ कण उठा-उठा कर पुल बनानेवालों के पास पहुंचा रही थी तब किसी ने गिलहरी से पूछा कि तुम यह काम क्यों कर रही हो ? तुम्हारे इस प्रयत्न से पुल बनाने में क्या सहायता मिल रही है। तब उसने जो जवाब दिया—वह हर एक मनुष्य का सर्वदा स्मरण रखने योग्य है। "गिलहरी ने कहा—कि धर्म के काम में जितनी भी सहायता जिससे हो सके, उतनी सहायता करने से कभी पीछे न हटे। यह न समझे कि मेरी थोड़ी सी सहायता से क्या होगा। परन्तु अपनी शक्ति के अनुसार धर्म के कार्यों में योग देना ही धर्म है।"

और

महर्षि दयानन्द जी महाराज जब मुरादाबाद प्रचार कर रहे थे तो उनके सत्संग में एक ऐसा निर्धन आदमी अत्यन्त श्रद्धा से आया करता था। जो रात को चौकीदारी की नौकरी करके अपना निर्वाह करता था। महर्षि जी के सत्संग से वह इतना प्रभावित हुआ कि रात को अपने चौकीदारी का धर्म निभाते हुए वह यह शब्द उच्चारण किया करता था—"पांच हजार वर्ष के सोने वालो जागो !" जब कोई इसका कारण पूछता तो वह महर्षि के अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश पढ़ने की प्रेरणा करता था, और अपनी सारी आयु में उसने कितने ही मनुष्यों को सत्यार्थप्रकाश पढ़ा कर वैदिक धर्मी बना दिया था। रामायण की गिलहरी की भांति इस चौकीदार ने भी अपनी शक्ति के अनुसार धर्म-प्रचार में योग दिया था। क्या हम भी इस तरह धर्म-प्रचार में यथाशक्ति योग नहीं दे सकते। (अवश्य दे सकते हैं यदि इस ओर प्रवृत्ति हो तो) महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश के ११वें समुल्लास में भारतवर्ष के ह्रास का हेतु महाभारत का युद्ध ही बताया। महर्षि जी लिखते हैं—"ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया है कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई-भाई को मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह है।" "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः।" यह किसी कवि का वचन है। जब नाश होने का समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सीधा समझावे तो उल्टा मानते हैं। और जो उल्टा समझावे वह सीधा समझते हैं। जब बड़े-बड़े विद्वान् राजा महाराजा ऋषि महर्षि लोग महाभारत युद्ध में मारे गये। और बहुत से मर गये तब विद्या और वैदिक धर्म का प्रचार नष्ट हो गया। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान

आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दबा कर राजा बन बैठा। सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड बण्ड राज्य हो गया । पुनः द्वीप द्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे । ब्राह्मण लोग विद्या से हीन होने लगे । और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के होने में तो कथा ही क्या कहनी, जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना था वह भी छूट गया । वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म से न रह कर जन्म से सिद्ध होने लगी जिस से ब्राह्मण लोग मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट आदि हो गए । और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः का घोष जारी कर दिया, यानि जो ब्राह्मण कह दे वही ठीक है । इससे सारा भारत अविद्या की गहरी निद्रा में चला गया और ऐसी निद्रावस्था में इस भारतभूमि पर बाहर से आक्रमण होने शुरू हो गए । पहले यूनानियों ने फिर मुसलमानों ने हमले पर हमले करके इस देश को खूब लूटा और फिर अंग्रेजों ने । हजारों वर्ष तक यह देश ग़ैरों की गुलामी तले फंसा रहा । और विदेशी न केवल अनगिनत धन की राशि ही यहां से लूट कर ले गये अपितु लाखों करोड़ों हिन्दुओं को मुसलमान और ईसाई भी बना लिया । इस तरह भारत में लूट मची रही । अब पांच हजार वर्ष के बाद बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द जी ने आकर इस सोई हुई भारतीय जाति को हिलोरे दे देकर जगाया है । किसी कवि ने महर्षि के इस उपकार की तरफ़ संकेत करते हुए कहा है–

धन्य है तुझ को ऐ ऋषि तूने हमें जगा दिया ।
सो सो के लुट चुके थे हम तूने हमें बचा लिया ॥

और महर्षि का वह श्रद्धालु चौकीदार ठीक ही कहता था–

पांच हजार वर्ष के सोने वाले जागो ।

१४२. नमस्ते

देश की एकता और संगठन के लिए जहां स्वामी जी महाराज ने एक भाषा, एक देश, यानि देशी वेश और अछूतोद्धार, गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण-व्यवस्था की स्थापना का उपदेश किया, वहां उन्होंने आपस में मिलते वक्त अभिवादन के लिए "जो भिन्न-भिन्न बोलियां बोली जाती थीं, इस भिन्नता को दूर करके एकता और समानता का भाव देशवासियों में पैदा करने के लिए वेद भगवान् से एक सुन्दर और छोटा सा आसानी से बोला और समझा जाने वाला अति उत्तम, सार्थक शब्द 'नमस्ते' का प्रयोग आरम्भ करा कर

भी देश का बहुत बड़ा उपकार किया है और अब यह शब्द इतना प्रचलित हो गया है कि विदेश से आने वाले बड़े-बड़े उच्चाधिकारी रूस के ख्रुश्चेव जैसे भी यहां आ कर और यहां से रूस जाने वाले महानुभावों का इस उत्तम शब्द से अभिवादन करते हैं। सिक्किम, नेपाल और भूटान में तो सरकारी तौर पर भी यह अभिवादन प्रचलित कर दिया गया है। यजुर्वेद का सोलहवां अध्याय ही नमस्ते अध्याय कहलाता है। हमारे सारे संस्कृत साहित्य में नमस्ते शब्द से ही सब ऋषि मुनि अभिवादन करते चले आए हैं। रामायर्ण महाभारत उपनिषद् सब में इसी शब्द का प्रयोग है। नम धातु से यह शब्द सिद्ध होता है, जिस के तीन अर्थ हैं--(क) सत्कार करना, (ख) अन्नदान करना, (ग) दण्ड देना। इसलिए जहाँ वेद में चोर के लिए नमस्ते आया है वहां इसका अर्थ दण्ड देना है। जहां कुत्ते आदि के लिए आया है उसका अर्थ है अन्न दान करने और बाकी आपस में एक दूसरे का सत्कार करने अर्थ में चलता है। इस एक शब्द के प्रयोग से छोटाई, बड़ाई, अमीरी, गरीबी, ऊंच, नीच सब का भेद भाव मिटकर, एकता-प्रेम और मित्रता की भावना हर एक में जागृत हो जाती है। और हरेक पढ़ा अनपढ़ा किसी भी देश का हो निहायत आसानी से इसका उच्चारण कर सकता है। महर्षि की दूरदर्शिता का इससे बढ़कर और कोई उदाहरण नहीं मिल सकता परन्तु आप हैरान होंगे कि इस शब्द के प्रयोग को वेदानुकूल सिद्ध करने के लिए भी कई सनातन-धर्मी पण्डितों से शास्त्रार्थ करने पड़े। जब पहले स्वामी जी ने इस शब्द का प्रयोग शुरू किया तो सब से पहले आर्यसमाजी भाइयों ने ही इस पर आपति उठाई थी।

१. मुरादाबाद में मुन्शी इन्द्रमन से स्वामी जी का इस बात पर कि आर्यों का अभिवादन का क्या शब्द होना चाहिए। कुछ विवाद हुआ था। स्वामी जी इससे पहले ही नमस्ते शब्द निर्धारित कर चुके थे। और इसका प्रचार करते आते थे, मुन्शी इन्द्रमन चाहते थे कि जब दो आर्य आपस में मिलें तो एक कहे "परमात्मा जयते और दूसरा उत्तर दे "जयते परमात्मा" बात यह थी कि मुन्शी जी ने यह अभिवादन विधि मुसलमानों के अनुकरण में निर्धारित की थी। क्योंकि एक मुसलमान जब दूसरे मिलता है तो कहता है, "सलाम वालेकम" और दूसरा जवाब देता है--'वालेकम सलाम' इस पर स्वामी जी से निम्न प्रकार वाद प्रतिवाद हुआ। मुन्शी जी--हमने पहले जै गोपाल

शब्द प्रचलित करना चाहा था फिर परमात्मा जयते प्रचलित किया । इस पर लोगों ने बहुत उपहास किया परन्तु अब विवाद ठण्डा पड़ गया है । यदि अब नमस्ते शब्द प्रचलित किया जायेगा तो फिर उपहास होगा, इसके अतिरिक्त अभिवादन में परमेश्वर का शब्द अवश्य आना चाहिए । नमस्ते करने में यह बुराई भी है कि जो राजा से नमस्ते कहा जावे तो राजा भी उसके उत्तर में नमस्ते कहे चाहे वह मनुष्य बहुत छोटा कोली व चमार हो ।

स्वामी जी—मुन्शी जी बड़ा किसे कहते हैं, जिस मनुष्य ने यह अभिमान किया कि वह बड़ा है, अर्थात् राजा, विद्वान्, शूरवीर, होगा तो उसकी बड़ाई में दोष आयेगा । देखिये जितने महाराजाधिराज, विद्वान् शूरवीर हुए हैं । उन्होंने अपने मुख से अपने को कभी बड़ा नहीं कहा—नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार का है । इससे राजा और प्रजा दोनों को आपस में नमस्ते कहना ठीक है, अब हम आप से यह पूछते हैं कि जब कोई मनुष्य आपके घर आता है या आपको मिलता है तो आप के मन में क्या विचार आता है, तब मुन्शी जी तो चुप रहे परन्तु स्वामी जी कहने लगे कि कौन नहीं जानता कि किसी प्रतिष्ठित को देख कर उसका सम्मान और छोटे को देख कर उससे सद् व्यवहार का भाव अनायास ही उस समय उत्पन्न होता है । फिर बतलाइये ऐसे अवसर पर परमेश्वर के नाम का क्या सम्बन्ध है । मनुष्य को चाहिए कि जो इसके मन में हो वही अपने मुख से कहे, यह आपका दोष है कि पहले आप ने जै गोपाल और अब परमात्मा जयते प्रचलित किया । विचार करके ऐसा शब्द क्यों न प्रचलित किया जावे । जो पहले इस देश में प्रचलित रहा । अतः सब आर्यसमाजियों को नमस्ते कहना ही ठीक है जैसा कि सदा से महर्षि लोग करते चले आये हैं । नमस्ते शब्द वेदों में भी आया है, स्वामी जी ने बहुत से संस्कृत साहित्य से प्रमाण भी दिये, मुन्शी इन्द्रमन स्वामी जी को कोई उत्तर तो न दे सके । परन्तु अपनी हठ पर अड़े रहे, देश को एक सूत्र में पिरोने के लिए महर्षि का एक यह भी प्रयत्न था कि आपस में मिलते समय एक ही सर्वोत्तम वाक्य सब के मुख से निकले और महर्षि के प्रताप से इस का पूर्ण रूप से प्रचार हो चुका है । अब छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, मिलते समय नमस्ते करते हैं ।

२. अखबार ट्रिब्यून में १४।९।६४ पृष्ठ ८ । डाक्टर राधाकृष्णन के रूस में जाने और उन के स्वागत के विषय में लिखते हुए रूस से पत्रकार

लिखता है कि जब राष्ट्रपति जी लैनिनग्राड देखने गये तो एक दस वर्षीय रूसी कन्या ने उन को एक फूलों का गुलदस्ता पेश करके हाथ जोड़कर नमस्ते कहकर उनका स्वागत किया। यह लड़की लैनिनग्राड स्कूल में हिन्दी पढ़ रही है।

१४३. राजा बीरबल की मूर्खता की कहानी

राजा बीरबल अकबर बादशाह का वजीर था, उसकी दानाई होने की कहानियां तो आपने बहुत सुनी होंगी। आज हम आपको उसकी मूर्खता की कहानी सुनाते हैं।

"कहते हैं एक दिन अकबर बादशाह ने बीरबल को कहा कि मैं हिन्दू होना चाहता हूँ। क्या तुम मुझे हिन्दू बना सकते हो। बीरबल ने कहा इस का उत्तर कल आप को दूंगा। दूसरे दिन सवेरे ही बीरबल एक गधे को जमना के घाट पर ले जाकर साबुन से मल मल कर नहलाने लगा। इतने में अकबर बादशाह भी सैर करता उधर आ निकला। बीरबल को गधा नहलाते देखकर पूछने लगा, बीरबल यह क्या कर रहे हो? बीरबल ने कहा, कि गधे की गौ बना रहा हूँ। अकबर ने कहा मूर्ख आदमी कभी गधे की भी गौ बन सकती हैं। तब बीरबल ने हाथ जोड़कर कहा–"तो महाराज कभी मुसलमान भी हिन्दू बन सकता है।" इस जवाब को सुनने से अकबर हिन्दू बनने से रुक गया। यदि बीरबल ऐसा मूर्खतापूर्ण उत्तर न देता बल्कि जैसा अकबर ने प्रस्ताव किया था उसको हिन्दू बना लिया जाता तो भारत का इतिहास ही बदल जाता। और जिस बीरबल को इतना भी पता न था कि गधे और गौ की तो योनि ही अलग अलग है। और योनि नहीं बदल सकती परन्तु मनुष्य मनुष्य की योनि तो एक ही है, उसने मनुष्य के विचार परिवर्तन को योनि परिवर्तन के साथ उपमा दी। उस बीरबल से बड़ा मूर्ख सारे संसार में दीपक लेकर तलाश करने से भी नहीं मिल सकता। बीरबल भी जन्म से ब्राह्मण था और उन्हीं पौराणिक संस्कारों में पला था, जिन संस्कारों ने इस देश जाति को एक हजार साल तक दूसरों का गुलाम बनाए रखा। यह तो भला हो दयानन्द सरस्वती स्वामी का जिन्होंने अपने सत्योपदेशों से इस मूर्खता के जाल को तोड़कर फैंक दिया। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

'जब ऋषि आए जहालत से भरा संसार था।'

एक मूर्ख कारख़ानादार की कहानी

दीयासलाई के एक कारख़ानादार ने एक अख़बार में एक Accountant की जरूरत का विज्ञापन दिया जिसमें लिखा कि प्रार्थी कम से कम वेतन और अपनी योग्यता लिखे एक Chartered Accountant ने जवाब दिया कि मैं पहली तारीख को एक दूसरी को दो तीसरी को चार इस तरह हर रोज दुगनी के हिसाब से दीयासलाइयां लेकर आपके पास काम करने को तैयार हूं। कारखाने के मालिक ने उसको इस शर्त पर रख लिया, वह भी बड़ी मेहनत से काम करता रहा। पहला महीना ३१ दिन का था। जब महीना समाप्त हुआ तो उसने अपना वेतन मांगा। मालिक ने कहा हिसाब करके ले लो उसने कहा कि मेरा वेतन ४, २९, ४५१/- रुपया बनता है, दे दीजिए। मालिक यह आंकड़ा सुनकर चकित रह गया। कहने लगा मुझे हिसाब करके समझाओ ! उसने निम्न प्रकार हिसाब मालिक के सामने करके रख दिया।

१=१	१७=६५, ५३६
२=२	१८=१, ३१, ०७२
३=४	१९=२, ६२, १४४
४=८	२०=५, २४, २८८
५=१६	२१=१०, ४८, ५७६
६=३२	२२=२०, ९७, १५२
७=६४	२३=४१, ९४, ३१४
८=१२८	२४=८३, ८८, ६२८
९=२५६	२५=१, ६७, ७७, २५६
१०=५१२	२६=३, ३५, ५४, ५१२
११=१,०२४	२७=६, ११, ०९, ०२४
१२=२,०४८	२८=१३, ४२, १८, ०४८
१३=४,०९६	२९=२६, ८४, ३६, ०९६
१४=८.१९२	३०=५३. ४५. ७२. १९२
१५=१६,३८४	३१=१,०७, ३६, ४४, ३८४
१६=३२,७६८	

५० दीयासलाई की एक डब्बी के हिसाब से २, १४, ७२, ८८७
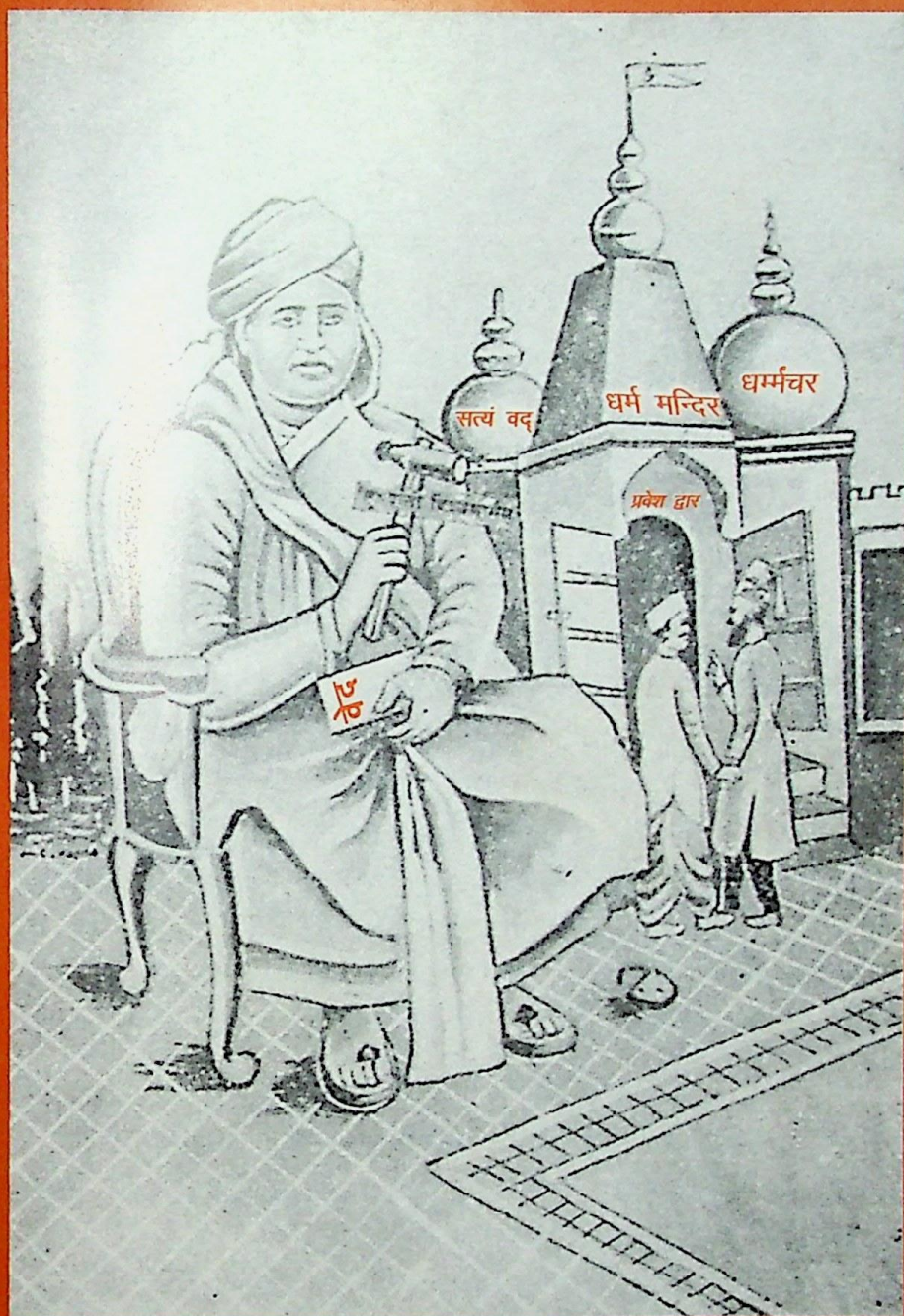
महात्मा गान्धी के लड़के की शुद्धि
महर्षि दयानन्द ने शताब्दियों से बन्द धर्ममन्दिर के प्रवेश द्वार पर लगे ताले को तोड़कर धर्मद्वार को मनुष्य मात्र के लिए खोल दिया ।

डब्बी बनती हैं और २ नये पैसे फी डब्बी के हिसाब से मेरा वेतन ४, २९, ४५ प्रतिशत रुपया बनता है। यह हिसाब का चमत्कार देख कर मालिक के होश उड़ गये और लगा मिन्नत करने। तब अपना आधा कारखाना देकर Accountant से राजी नामा कर लिया क्या हिन्दू जाति ने भी इसी तरह मूर्खता का व्यवहार कर अपने भारत का बंटवारा करवा कर पाकिस्तान नहीं बनवाया? मुसलमान बहुत थोड़ी संख्या में बाहर से आए करोड़ों हो गए और पाकिस्तान लेकर भी अभी ४/५ करोड़ भारत में दनदना रहे हैं और अब ईसाई भी बढ़ते बढ़ते १ करोड़ तो हो गए हैं और वह भी ईसाईस्तान मांगेंगे। नागालैंड में भी तो ईसाई पादरी माइकल स्कॉट की कृपा से बगावत फैल रही है। हिन्दू जाति ने अपनी मूर्खता के कारण कभी हिसाब के जमा जरब के काइदे नहीं पढ़े, तफ़रीक और तकसीम ही करती चली आ रही है। एक हजार साल के बाद महर्षि दयानन्द ने जाति के इस ह्रास को अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि निकास द्वार तो खुला पड़ा है जाति के लाल धड़ाधड़ मुसलमान वा ईसाई हो रहे हैं और प्रवेश दरबार बन्द पड़ा है तब महाराज ने कृण्वन्तो विश्वमार्यम् के वेद मन्त्र से इस बन्द पड़े प्रवेश दरबार को खोल कर जाति में मची हुई लूट को बन्द करने और लूटे माल को वापस लाने का उपदेश दिया। जिससे लाखों करोड़ों जाति के लाल मुसलमान वा ईसाई होने से बच गये और लाखों हुए वापस भी लाये गये। किसी कवि ने ठीक ही कहा है।

धन्य है तुझको ए ऋषि तूने हमें बचा लिया।
सो सो के लुट चुके थे हम तूने हमें जगा दिया॥

१४५. महात्मा गान्धी के लड़के की शुद्धि

एक हजार वर्ष तक मुसलमान इस देश में राज्य करते रहे, और उन्होंने अपनी राज्य-शक्ति के बल पर करोड़ों हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया। और दो सौ वर्ष तक अंग्रेज शासक रहे, और उनके राज्य काल में भी दो करोड़ के लगभग हिन्दू ईसाई बनाए गए। इतने लम्बे समय में इस देश में कितने ही सन्त महात्मा, भक्त विद्वान् हुए जो ईश्वर-भक्ति का, एकता का ऊंच नीच मिटाने का उपदेश तो करते रहे परन्तु एक भी महात्मा के मन में जाति के इस निकास को रोकने का विचार उत्पन्न न हुआ। और यह निकास अधिक से अधिक तेज होता चला गया। जिसके परिणाम स्वरूप मुसलमानों ने अपने लिए अब अलग पाकिस्तान बना लिया है। इस बारह

सौ साल के समय में केवल एक ही महापुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती ऐसा हुआ है जिसने जाति की इस घोर हानि की ओर ध्यान दिया । और न केवल इस निकास को रोकने के लिए जोरदार आवाज उठाई । बल्कि वैदिक धर्म के प्रवेश द्वार पर बारह सौ साल से लगे हुए ताले को "कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" के वेद मन्त्र रूपी हथौड़े से तोड़ कर वैदिक धर्म का द्वार मनुष्य मात्र के लिए खोल दिया । और सब से पहले १८७८ में देहरादून निवास के समय मुहम्मद उमर नामी जन्म के मुसलमान को शुद्ध कर, अलखधारी नाम रखकर, वैदिक धर्म में प्रवेश करा कर एक उदाहरण कायम कर दिया।

महर्षि के उपदेश से जहां लाखों करोड़ों हिन्दू विधर्मी होने से बच गये, वहां महर्षि की आज्ञानुसार आर्यसमाज ने लाखों विधर्मियों को वापस वैदिक धर्म में प्रवेश कराया । यदि महर्षि के बताये हुए मार्ग पर चलते तो पाकिस्तान कदाचित् नहीं बन सकता। क्योंकि जिस समय महर्षि ने यह घोषणा की थी उस समय ब्राह्मण और सनातनधर्मी हिन्दू विरोध न करते तो लाखों करोड़ों विधर्मी वैदिकधर्मी बनने को तैयार हो सकते थे । अफ़सोस कि हिन्दुओं ने महर्षि के इस उपकार की कदर न की और अब पछता रहे हैं । महर्षि के उपकार का ही यह नतीजा है कि महात्मा गांधी जी का लड़का हीरालाल गान्धी जो मुसलमान होकर अब्दुल्ला गान्धी बन गया था, पुनः वापस लाया गया । यदि महर्षि वैदिकधर्म का प्रवेश द्वार न खोलते और आर्यसमाज स्थापित न करते तो न जाने लाखों करोड़ों हीरालाल गान्धी, अब्दुल्ला आदि बने हुए होते । महात्मा गान्धी जी का लड़का हीरालाल गान्धी व्यसनी था। बुरी संगत में पड़कर मुसलमान हो गया । और इसका नाम अब्दुल्ला गान्धी रखकर मुसलमानों ने इस घटना को खूब उछाला । जगह-जगह इसको ले जाकर बड़े-बड़े जलसे किये गये । जलूस निकाले गये । क्योंकि आम जनता को गान्धी जी के लड़के का व्यसनी होना मालूम न था और गान्धी जी का नाम सारे देश में गूंज रहा था । इसलिए हीरालाल के मुसलमान बन जाने पर और भी हजारों आदमियों के मुसलमान हो जाने का डर पैदा हो जाना कुदरती था। क्योंकि जनता जनार्दन आम तौर पर बड़े आदमियों की पैरवी करती है । यह एक मानी हुई बात है–जैसा कि श्रीमद्भगवद्गीता में भी लिखा है–

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥

यानि बड़े आदमी जैसा आचरण करते हैं, जनता जनार्दन भी वैसा ही आचरण करती है, जिसको बड़े लोग प्रमाण या प्रचलित कर देते हैं। आम लोग उसकी पैरवी करते हैं। मुसलमानों के इस तरह हीरालाल गान्धी के मुसलमान हो जाने को और अपने मत की श्रेष्ठता का सिक्का जमाने के लिए जलसे और जलूस निकालते हुए देखकर आर्यसमाजियों के मन में इसको वापस वैदिक धर्म में लाने का बड़ा जोश पैदा हो गया। और दूसरी ओर माता कस्तूरबा ने भी बम्बई में आर्यसमाजियों को प्रेरणा दी कि वह हीरालाल को अवश्य शुद्ध कर लें क्योंकि इस तरह उनकी बहुत बदनामी हो रही है। अतः आर्यसमाजियों ने अपना पूरा यत्न करना आरम्भ कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप आर्यसमाज बम्बई ने अब्दुल्ला गान्धी को फिर हीरालाल गान्धी बनाकर जहां माता कस्तूरबा की मनोकामना पूरी कर दी वहां वैदिक धर्म की जय का झण्डा भी संसार में गाड़ दिया।

बोलो वैदिक धर्म की जय, दयानन्द की जय।

संघटन-काण्ड समाप्त।

१४. बलिदान-काण्ड

१४५. "धर्म पर बलिदान"

सीस जिनके धर्म पर चढ़े हैं ।
झण्डे दुनिया में उनके गड़े हैं ॥

१. **महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ।** अंग्रेजों और मुसलमानों के षड्यन्त्र से जहर दिया गया ।

२. **पं० लेखराम जी** को ६।३।१८९७ में मिर्जा कादयानी की साजिश से एक नामालूम मुसलमान ने पेट में छुरा मार दिया ।

३. **पं० तुलसीराम जी ।** १९०३ में फ़रीदकोट में स्टेशन मास्टर थे। आर्यसमाज के जलसे के उपलक्ष्य में बाजारों में प्रचार करते जा रहे थे कि जैनियों ने आंखों में लाल मिर्च पिसी हुई डालीं और छुरा मार दिया । स्थान फरीदकोट । आयु ३२ वर्ष ।

४. **वीर रामचन्द्र जी ।** २०।१।२३ अछूतोद्धार करते हुए जम्मू के राजपूतों ने भटेरा गांव में लाठियां मार मार कर मार डाला ।

५. **स्वामी श्रद्धानन्द जी ।** २३।१२।२६ अब्दुल रशीद कातल ने पिस्तौल की गोलियां मार का मार डाला ।

६. **ला० नन्दलालजी ।** १२।११।२७ । आर्यसमाज के प्रचार से चिढ़कर लाहौर के नजदीक गला घोंटकर मार दिया और लाश दरिया रावी में बहा दी । आयु १९ वर्ष ।

७. **स्वामी सत्यानन्द जी व महाशय राजपाल जी ।** ६।१०।२७। को भी उनकी दुकान पर लाहौर में अब्दुल अजीज नामी मुसलमान ने छुरे से हमला करना था, लेकिन वह दुकान पर न थे । स्वामी सत्यानन्द को ही, राजपाल समझ कर उसने छुरा मार दिया पर वह मरने से बच गये परन्तु बहुत देर तक इनको हस्पताल में रहना पड़ा ।

८. **महाशय राजपाल जी ।** ६।४।२९ । लाहौर के प्रसिद्ध पुस्तक

विक्रेता को इलमदीन कातल ने छुरा मार कर मार दिया ।

९. **धुन्नासिंह जी** । १९३० । बताला जिला लुधियाना में सिख खानदान में पैदा हुए परन्तु आर्यसमाज का रंग चढ़ गया । अकाली दुश्मन हो गये, और धुन्नासिंह को आर्यसमाज का प्रचार करने से रोकने लगे । जब वह न रुका तो उसको लाठियां मार-मार कर कत्ल कर दिया ।

१०. **लोड़िन्दाराम जी** । एम०ए० एल०एल०बी० । ५।११।३४ को किसी नालूम मुसलमान ने बन्नू में गोली मार कर कत्ल कर दिया ।

११. **विद्यासागर जी** । १५।४।३९ । एक मुसलमान ने छुरा मार कर कत्ल कर दिया ।

१२. **सुनेहरा** । बुटाना जिला रोहतक, जब सत्याग्रह का निश्चय हुआ तो इसके गौने का निश्चय हो चुका था परन्तु वह सत्याग्रह करने चले गये। और औरंगाबाद जेल में जेल अधिकारियों के अत्याचारों से इनका बलिदान हो गया । आयु २० वर्ष । ८ जून ३९ ।

१३. **श्री वेदप्रकाश जी** । गन्जोरी रियासत हैदराबाद के रहने वाले थे । १८।३९ को ७०-८० जनूनी मुसलमानों ने घेर लिया और लाठियां मार मार कर मार डाला ।

१४. **श्री भीमराव पटेल** । हुवला ग्राम हैदराबाद के मुखिया थे ।

१५. **श्री मानकराव जी** भी उसी गांव के रहने वाले थे । बहलोल खां नामी पठान ने मानकराव जी की बहिन को अपने पंजे में फंसा लिया। भीमराव जी ने फौरन उसको मुसलमान के चंगुल से निकाल कर शुद्ध कर लिया । इसी अपराध पर २००-३०० मुसलमानों ने आपके घर पर हमला कर दिया । श्री भीमराव जी तलवार लेकर इनका मुकाबला करने निकले परन्तु उनको गोली से मार दिया गया । इनकी चाची इन्हें बचाने दौड़ी उसको भी गोली मार दी गई और उसी दिन भीमराव जी को भी निर्दयता पूर्वक मुसलमानों ने कत्ल कर दिया ।

१६. **श्री धर्मप्रकाश नागपाल** । कल्याणी रियासत हैदराबाद के उत्साही नवयुवक थे । २७।६।३८ को जब आप आर्यसमाज मन्दिर से घर को जा रहे थे तो मुसलमानों की भारी भीड़ ने आप पर हमला कर दिया और लाठियां मार-मार कर मार डाला । आपके शरीर पर १६ घाव थे ।

१७. **श्री महादेव जी** । आप निज़ाम राज्य की अकोमक सैदां नामी

जागीर के निवासी थे, आर्यसमाज के सेवक होने के कारण आप मुसलमानों की आंखों में कांटे के समान चुभते थे। अत: १४।७।३८ को २५ वर्ष की भरपूर जवानी में किसी जनूनी मुसलमान ने छुरा घोंप कर आपका बलिदान कर दिया।

१८. **श्री उमा जी।** आप निज़ाम राज्य में तापती ग्राम के अस्पृश्य कहे जाने वाले परिवार में से थे। आप दृढ़ आर्यसमाजी बड़े निडर और साहसी थे, इसी ग्राम के पठानों ने मन्दिर को तोड़ना चाहा। आप मन्दिर की रक्षा के लिए उनके सामने खड़े हो गये। किसी को मन्दिर तोड़ने का साहस न हुआ। परन्तु आपका बन्दूक की गोली से बलिदान कर दिया गया।

१९. **श्री सत्यनारायण जी।** अम्बोलगा जिला बीदर के रहने वाले थे। आप आर्यसमाज के बड़े उत्साही कार्यकर्त्ता थे। मुहर्रम के दिनों में धोखे से मुसलमानों ने हमला करके आपको कत्ल कर दिया।

२०. **श्री अर्जुनसिंह जी।** २६।६।३९ आप कुछ स्वयंसेवकों के साथ शहर हैदराबाद में जा रहे थे कि मुसलमानों ने छाती में छुरा घोंप दिया।

२१. **श्री श्यामलाल जी वकील।** निजाम राज्य के जिला बीदर झालकी नामक ग्राम में १९०३ में पैदा हुए। सन् २५ में आप वकील बन गये। आपकी रुचि आर्यसमाज के सिद्धान्तों की ओर विशेष रूप से थी जिससे मुसलमान तड़प उठे। १६।२।३९ को बीदर जेल अधिकारियों के अत्याचारों से आपका बलिदान हो गया।

२२. **श्री वेकंट राव जी।** सत्याग्रह के दौरान जेल अधिकारियों के अत्याचारों का शिकार हो गये।

२३. **श्री परमानन्द जी।** आप हरद्वार के निवासी थे। सत्याग्रह में भाग लेकर कैदी हुए और चंचल गुंडा जेल में आपका देहान्त हो गया।

२४. **स्वामी सत्यानन्द जी महाराज।** ८० वर्ष के त्यागी संन्यासी बंगलौर के रहने वाले थे। सत्याग्रह किया। आपने जेल में जेल अधिकारियों के विरुद्ध भूख हड़ताल कर दी, तब आपको कालकोठड़ी में डाल दिया गया। मार मार कर मार डाला।

२५. **श्री विष्णु भगवन्त।** निज़ाम राज्य के तान्दूर नामी ग्राम के निवासी थे। आप जनसेवा के लिए आजन्म ब्रह्मचारी रहे। सत्याग्रह में भाग लेने से आपका बलिदान जेल में ही हो गया।

२६. **श्री छोटेलाल जी** का देहान्त गुलबर्गा जेल में ३। ५। ६८ को हुआ ।

२७. **श्री पांडुरंग जी** का देहान्त गुलबर्गा जेल में १७। ५। ३९ को हुआ ।

२८. **श्रीमाधवराव जी** का २८ मई ३९ को जेल में देहान्त हो गया।

२९. **श्री नानूमल जी** । १।६।३९ को हैदराबाद जेल में जेल अधिकारियों ने लाठी से हमला करके मार डाला ।

३०. **श्री फ़कीरचन्द जी** । आप पंजाब के श्रद्धाग्राम तहसील कैथल के निवासी थे । ३०। ६। ३९ को जेल में आपका देहान्त हो गया ।

३१. **श्री मलखानसिंह जी** । आप रुड़की के नजदीक रामपुर गांव के निवासी थे । १।७।३९ को जेल के अत्याचारों के कारण आपको बलिदान देना पड़ा ।

३१. **श्री स्वामी कल्याणानन्द जी** । ७५ वर्ष के संन्यासी थे । मुजफ्फर नगर यू० पी० के रहने वाले थे । सत्याग्रह में आए तो जेल में ८ जुलाई को उनका देहान्त हो गया ।

३२. **श्री शान्तिप्रकाश जी** । आप देहली के एक टिकट कलक्टर श्री रामरतन जी शर्मा जी के सुपुत्र थे । आपने २४१ सत्याग्रहियों के एक जत्थे के साथ सत्याग्रह किया । आपको उस्मानाबाद जेल में रखा गया । आपको निमोनिया हो गया । माफी मांगने पर मुक्त कर देने का प्रस्ताव उनके पिता जी के सामने रखा गया परन्तु उन्होंने न माना । और १८ वर्ष का नौजवान १७ जुलाई को बलिवेदि पर कुर्बान हो गया ।

३३. **श्री भानुराम जी** । मलकपुर जिला हिसार के रहने वाले थे औरंगाबाद जेल में उनका बलिदान हो गया ।

३४. **श्री राधेकिशन जी** । आपको निज़ामाबाद में गंजरोड के थाने के सामने कुछ अरब मुसलमानों ने छुरों से हमला करके मार डाला ।

३५. **श्री भगत अरुड़ामल जी** । भगत जी सरगोधा के निवासी थे। १३ मार्च को बीमार हो गये । और ५६ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हो गया ।

३६. **श्री गोविन्दसिंह जी** । आप निज़ाम राज्य के नलगीर स्थान के निवासी थे । आप का ३० जुलाई को उस्मानिया जेल हस्पताल में देहान्त

हो गया ।

३७. **श्री बदनसिंह जी ।** आप मुजफ़्फ़राबाद जिला मुलतान के निवासी थे । १७ जून को आपने सत्याग्रह किया । वारंगल जेल में आप बीमार हो कर मर गये ।

३८. **श्री रतीराम जी ।** २३ अगस्त को हैदराबाद जेल से बीमारी की हालत में छोड़ दिया गया परन्तु वे अपने जन्म ग्राम सांपला जिला रोहतक में पहुंच कर बलिदान हो गये ।

३९. **श्री अशर्फ़ीलाल जी ।** आप चम्पारन के सत्याग्रही थे । २६ अगस्त को आपका देहान्त हो गया ।

४०. **श्री शान्तिप्रकाश जी ।** आप का जन्म कलानौर जिला गुरदासपुर पंजाब में हुआ । आपने सत्याग्रह किया । जेल की सख्तियों से बीमार हो गये । क्षमा मांग कर मुक्त होने का प्रस्ताव न माना । २७।७।३९ को मनमाद जेल में उनका शरीर छूट गया ।

४१. **चौधरी मातुराम जी ।** आप मानकपुर तहसील हांसी जिला हिसार के निवासी थे । आप सीधे साधे पवित्र विचारों के आर्यसमाजी थे। सत्याग्रह किया २८।७।३९ को ५० वर्ष की आयु में धर्म की बलिवेदि पर औरंगाबाद जेल में बलिदान हो गये ।

४२. **श्री खांडेराव दत्तात्रेय जी ।** सत्याग्रह किया । औरंगाबाद जेल में जेल अधिकारियों के अत्याचारों से बलिदान हो गये ।

४३. **भगत फूलसिंह जी** का जन्म ग्राम माहरा तहसील सोनीपत जिला रोहतक में हुआ । ये पटवारी थे, और कुछ साथी पटवारियों की संगत से आर्यसमाजी बने थे, आप पर भी आर्यसमाज का रंग चढ़ गया । आप ने नौकरी छोड़ दी और आर्यसमाज के कार्यों में अग्रसर होने लगे । छूतछात निवारण आन्दोलन आदि में तपस्या से काम करने लगे । १३।५।३९ को स्वामी ब्रह्मानन्द जी के जत्थे को ४०० रुपये की थैली भेंट करने आ रहे थे कि रोहतक शहर की एक मस्जिद से मुसलमानों ने इन पर हमला कर दिया । इस तरह आर्यसमाज का काम करते हुए मुसलमानों की आंखों में चुभते रहे। और १४।८।४२ रात के करीबन ८ बजे गुरुकुल खानपुर में ५९ वर्ष की आयु में कातिलों ने गोलियों से इनका बलिदान कर दिया ।

४४. **श्री परमानन्द जी ।** लाहौर में जिल्द बन्दी का काम करते

थे। और कुछ मुसलमान इनकी दुकान पर नौकर थे। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा ने उर्दू सत्यार्थप्रकाश छपवाया। वह जिल्दबन्दी के लिए उनकी दुकान पर जो लाहौर चौक मत्ती में थी लाया गया। मुसलमान नौकरों ने अपने घर ले जाकर काम करने की आज्ञा मांगी, जो उनको दे दी गई। २५।५।४४ को हथ रेढ़ी पर किताब के फर्मे उनकी दुकान पर लाये गये। परमानन्द जी दुकान बन्द करके घर जा चुके थे, उनको घर से बुलाया गया। इस पर उन्होंने कहा कि मुसलमान हम से कहते हैं कि यह काम मत करो। तब मुसलमानों ने सत्यार्थप्रकाश के फ़र्मों में आग लगा दी। और एक मुसलमान ने श्री परमानन्द पर चाकू से हमला करके उसका बलिदान कर दिया।

४५. **देवकीनन्दन जी।** कैम्बलपुर तहसील पिण्डी घेप, मुखड ग्राम के निवासी थे। आपने एक सैयद लड़की को शुद्ध करके, उसके साथ विवाह कर लिया। इस पर मुसलमानों ने हमला करके उसका कत्ल कर दिया।

४६. **श्री छोटेलाल जी।** अलालपुर जिला मैनपुरी के निवासी थे। सत्याग्रह किया। ३।५।३९ को गुलबर्गा जेल में जेलरों के अत्याचार से इनका देहान्त हो गया।

४७. **चौधरी ताराचन्द जी लम्बू।** जिला मेरठ के निवासी थे। सत्याग्रही बने और जेल के अत्याचारों से इनका बलिदान हो गया।

४८. **ब्रह्मचारी दयानन्द जी।** सरसा ग्राम जिला हरदोई यू०पी० के निवासी थे। महाविद्यालय ज्वालापुर के तीसरे सत्याग्रही जत्थे के साथ सत्याग्रह किया। जेल में इन पर बड़े अत्याचार हुए। और जब सत्याग्रह में सफलता प्राप्त कर वापस आए तो जेल में झेली यातनाओं के कारण उनका शरीर ६।३।४० को छूट गया।

४९. **श्री बाबू नारायणसिंह जी** ने आर्यसमाज से अनाथों का उद्धार किया, अबलाओं की रक्षा, जाति सुधार और वैदिकधर्म का प्रचार सीखा और अपना जीवनध्येय बना लिया था। दुष्ट लोगों के मन में ये कांटे की भांति खटकते थे। एक दिन, दिनदहाड़े दुष्ट लोगों ने पटना के बाजार में गोलियां मार कर इन की बलि दे दी।

५०. **श्री वैद्यनाथ जी।** जिला चम्पारन के रहने वाले थे। आप हैदराबाद सत्याग्रह में कूद पड़े और २५।६।३९ को इन का देहान्त हो गया।

५१. **श्री बृजलाल जी आर्य।** चंचोली जिला बैतूल मध्यभारत के

निवासी थे। आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्ता थे। आर्यसमाज के प्रचार से चंचोली के हिन्दुओं ने ताजिये निकालने बन्द कर दिये और फिर एक हिन्दू लड़की जो मुसलमान हो गयी थी, उस को भी शुद्ध कर लिया। इस पर मुसलमान बहुत नाराज हो गये। क्योंकि बृजलाल जी ने इन दोनों कार्यों में बहुत योग दिया था। इसलिए मुसलमान इन की जान के लागू हो गये। अतः १२।१०।२८ को अबास खां नामी मुसलमान ने इनकी छाती में छुरा घोंप दिया।

५२. **श्री नन्हूसिंह जी**। बुन्देलखण्ड के निवासी थे। हैदराबाद सत्याग्रह में गिरफ्तार हुए। चंचल गुड्डा जेल में २९।५।३९ को स्वर्गवासी हो गये।

५३. **श्री पुरुषोत्तम जी ज्ञानी**। बुरहानपुर मध्यप्रान्त के निवासी थे, कर्मठ आर्य थे, भजन गा गाकर वैदिक धर्म का प्रचार करते थे। हैदराबाद सत्याग्रह में कैद हुए, जेल में रुग्ण होने से और बूढ़ा होने से उन को छोड़ दिया गया, परन्तु उसी जेल की लगी बीमारी के कारण २६।८।३९ को उनका देहान्त हो गया।

५४. **माधोराव, सदाशिवराव जी लातूर**। ३० वर्ष की आयु में हैदराबाद में सत्याग्रह किया और जेल के कष्टों के कारण बीमार हो गये और गुलबर्गा जेल में २६।५।३९ को इन का देहान्त हो गया।

५५. **श्री लक्ष्मण राव जी** ने हैदराबाद सत्याग्रह किया और हैदराबाद जेल में २।८।३९ को इन का देहान्त हो गया।

५६. **श्री शिवचन्द राव जी**। ५७. **श्री लक्ष्मण राव जी**।
५८. **श्री नृसिंह राव जी**। ५९. **श्री राव जी अंगडे**।

ये चारों आर्यसमाज के अनथक प्रचारक और प्रेमी थे। ३।३।४२ को हुमनाबाद रियासत हैदराबाद में आर्यसमाज के होली के अवसर पर जलूस निकल रहा था कि जुनूनी मुसलमानों के एक बड़े गिरोह ने हमला कर दिया, और इन चारों आर्यवीरों को गोली का निशाना बना दिया।

६०. **श्री मानकराव जी**। हुपला निवासी थे, इनकी बहिन को मुसलमानों ने अगुवा करके मुसलमान बना लिया। इस वीर पुरुष ने अपनी बहिन को वापस लाकर शुद्ध किया, इस पर मुसलमानों ने इनको गोली का निशाना बना दिया।

६१. **श्री महादेव जी ।** निजाम राज्य के ही निवासी थे और सत्याग्रह में निजाम राज्य में ही इनका देहान्त हो गया ।

६२. **श्री पुरुषोत्तम मगनलाल शाह** B.A., L.L.B. बम्बई प्रान्त के जिला पंचमहल के गोधरा शहर में रहते थे । वहां के मुसलमान हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार करते थे । मुसलमान हिन्दुओं को चिढ़ाने के लिए जलूस निकाला करते थे । और हिन्दुओं के मुहल्लों में से गुजरते समय यह गीत गाते थे, हम हिन्दुओं को मुसलमान बनावेंगे, हम हिन्दुआनियों को बीवी बनायेंगे। ऐसे जलूसों से तंग आकर कुछ नौजवान हिन्दुओं ने संगठन कायम किया। जिसके प्रधान श्री पुरुषोत्तमदास जी चुने गये । इससे हिन्दुओं के अन्दर कुछ साहस पैदा हो गया । और मुसलमान ऐसे गीत गाने छोड़ गये परन्तु मुसलमानों के दिल में श्री पुरुषोत्तमदास जी कांटा बनकर खटकने लगे । और सितम्बर १९२८ में जैनियों के एक पर्व के सिलसिले में हिन्दुओं का जलूस निकला जिस पर मुसलमानों ने हमला कर दिया और २० हिन्दुओं को कत्ल कर दिया। पुरुषोत्तमदास जी को भी सख्त चोटें आईं और वे दूसरे तीसरे दिन स्वर्गवासी हो गये ।

६३. **श्री खाण्डेराव जी जनपा राव ।** दृढ़ आर्यसमाजी थे । इनके शरीर में जब तक श्वास रहा । इन्होंने विधवाओं की रक्षा की, अछूतों को गले लगाया। भूलों को मार्ग बताया, असहायों के सहारा बने, चलते फिरते वैदिकधर्म का प्रचार करते रहे, आपका जन्म हेर तालुका वारदौली जिला सूरत में हुआ था । १९१४ में आर्यसमाज के सदस्य बन गये और आर्यसमाज का हर काम बड़े उत्साह से करते रहे । जब कभी हिन्दुओं पर अन्याय अत्याचार मुसलमानों की ओर से होता, आप छाती तान कर खड़े हो जाते । इससे आप मुसलमानों की आंखों में खटकने लग गये । और एक दिन मुसलमानों ने साजिश करके ६।३।१९३० को जबकि वे अपने स्कूल को जा रहे थे । दो तीन मुसलमानों ने उन पर हमला कर दिया और तेजधार हथियारों से उनकी हत्या कर दी।

६४. **सदा शिवराम जी पाठक** । शोलापुर जिला के सदूला ग्राम के निवासी थे । मराठी भाषा का वीर रस गान बड़ा उत्तम गाया करते थे । हैदराबाद में सत्याग्रह किया तो जेलर ने इनको यह गान करने से मना किया । जेल अधिकारियों ने इन पर बहुत अत्याचार किये, जिस से २३।८।३९ को इनका देहान्त जेल में ही हो गया ।

६५. **श्री रामनाथ जी** । असरावर जिला अहमदाबाद में १९१७ को पैदा हुए । गुरुकुल नवसारी में ८ वीं जमात में पढ़ते थे जब छुट्टियों में घर आए तो गांव में प्लेग फैला हुआ था । रोगियों की सेवा में जुट गये । वे फिर गुरुकुल कांगड़ी में चले गये । और सत्याग्रहियों के पहले जत्थे में गये थे। जेल में बीमार हो गये । क्षमा मांगकर मुक्त होना स्वीकार न किया। इतने में हैदराबाद सत्याग्रह की विजय होने पर इनको छोड़ दिया गया परन्तु जेल की बीमारी के कारण ८।९।३९ को इनका देहान्त हो गया ।

६९. **श्री नाथूराम जी** । ९।४।१९०८ को हैदराबाद सिन्धु के सम्भ्रान्त सारस्वत ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए । १९२७ में आप आर्यसमाज की ओर आकर्षित हुए । आपके पिता जी और अन्य सम्बन्धी आप के आर्यसमाजी बनने पर रुष्ट हो गये । १९३१ में अहमदी फिर्क़े की एक अंजमन हुई, कुछ इश्तिहार निकाले गये । जिस में हिन्दू धर्म और हिन्दू वीरों पर गन्दे आक्रमण किये गये । श्री नाथूराम जी इस को सहन न कर सके और इसके जवाब में तारीख इसलाम का हिन्दी तर्जमा प्रकाशित किया और एक ट्रैक्ट निकाल कर मुसलमान मौलवी पर बहुत से सवालात किए, दोनों किताबें मुफ्त बांट दीं । इस पर मुसलमान बहुत उत्तेजित हो उठे, और उनके बरखिलाफ़ इतना हल्ला गुल्ला किया कि १९३३ में उनके खिलाफ़ मुकद्दमा सरकार ने चला दिया । श्री नाथूराम जी ने अपने मुकदमे में यह सिद्ध कर दिया कि यह पुस्तक तो ईसाइयों की लिखी हुई है, मैंने तो केवल अनुवाद ही किया है, सेशन जज ने डेढ़ वर्ष सख्त कैद की सजा दे दी । २०।९।३४ को हाईकोर्ट में अपील की तारीख थी, सारी कचहरी आदमियों से भरी हुई थी, अभी जज फैसला सुनाने ही वाले थे कि श्री नाथूराम के पास बैठे अब्दुल कयूम नामी मुसलमान ने कचहरी के कमरे में ही इन के पेट में छुरा घोंप दिया और नाथूराम जी हाईकोर्ट में ही अमर हो गये । इनकी आयु इस समय केवल २६ वर्ष की थी ।

६७. **श्री नारूमल जी** । कराची के रहने वाले थे, आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्त्ता थे । १९१४ में श्री नाथूराम जी के बलिदान के बाद मौलवियों ने हिन्दुओं के बरखिलाफ़ मुसलमानों को बड़े जोर से भड़काना शुरू कर दिया था । अतः एक मुसलमान खोजे ने मौका पाकर श्री नारूमल जी को यह कहते हुए कि तुम आर्यसमाज़ी काफिर हो उसकी दुकान पर ही छुरा घोंप कर कत्ल कर दिया ।

६८. **श्री भैरोंसिंह जी ।** जैपुर के निकटवर्ती पाखर गांव के रहने वाले थे और आर्यसमाज के प्रचार में बड़ा उत्साह दिखलाते थे । जिस क्वार्टर में वे रहते थे उसी लाइन में अब्दुल रशीद नामी एक मुसलमान भी रहता था । वह श्री भैरोसिंह जी के आर्यसमाजी होने से बहुत बिगड़ा हुआ था । कई बार वह भैरोसिंह जी से बातचीत में भी झगड़ा करता था । १९३४ में एक दिन शाम के वक्त उस ने गोली मार कर भैरोसिंह जी को कत्ल कर दिया । उनकी आयु केवल २७ वर्ष थी ।

६९. **श्री मेघराज जी,** नारायण गढ़ होल्कर राज्य के निवासी थे, इनका जाट घराने में जन्म हुआ । आप श्री विनायक राव जी के सत्संग से आर्यसमाज में प्रविष्ट हुए । १९३८ में इन्दौर नरेश ने अछूतों को मन्दिर प्रवेश की घोषणा कर दी परन्तु जाति अभिमानी हिन्दुओं ने इस की भरपूर मुखालफ़त की, फिर आर्य वीर मेघराज जी ने अछूतों को कहा कि अगरचे मैं मूर्तिपूजा के विरुद्ध हूं परन्तु आपके नागरिक अधिकार दिलाने में आप के साथ हूं और अगर आप देवदर्शन करना चाहें तो मैं सब से आगे आपके साथ चलूंगा। यह बात सुन कर कट्टरपन्थी लोग इन की जान के लागू हो गये और रामनौमी के दिन जब श्री मेघराज जी जंगल में गये हुए थे । दुष्टों को सुयोग मिल गया और सात दुष्टों ने अकेले श्री मेघराज जी पर आक्रमण कर दिया और लाठियां मार मार कर मार डाला । जब इस घटना का गांव में पता लगा तो उन की धर्मपत्नी और दूसरे व्यक्ति घटना स्थल पर पहुंचे, उस समय वे अन्तिम सांस ले रहे थे । इस पर लोगों ने कहा कि आर्य वीर हम आपको इस अवस्था में देखकर बहुत दुःखी हैं। तब उन्होंने कहा मुझे अपनी इस स्थिति पर तनिक भी खेद नहीं है । भगवान् भूलों को सुपथ दिखावें और आर्य जाति का कल्याण हो ।

७०. **श्री जैराम जी ।** इन का जन्म कच्छ मोरवी में हुआ परन्तु वे अपनी माता के साथ जोधपुर आ गए और अपना कार्य यहां ही आरम्भ कर दिया । एक बार कार्यवश कराची गये । वहां आर्यसमाज का उत्सव देखकर बड़े प्रभावित हुए और वापस जोधपुर आकर आर्यसमाज के सदस्य बन गए। और हैदराबाद सत्याग्रह के दिनों में जोधपुर में बड़ा प्रचार करते रहे । इस पर मुसलमान बहुत नाराज हो गए और एक दिन मौका पाकर बहुत से मुसलमानों ने जैराम जी पर हमला कर दिया । पहले तो जैराम जी लाठी से इनका मुकाबला

करते रहे पर वे बहुत ज्यादा थे । यह अकेले थे और उनकी लाठी भी टूट गई । आक्रमणकारियों ने लाठियां मार मार कर मार डाला । ३०।५।१९३९ को इनका देहान्त हो गया ।

७१. **श्री राधाकृष्ण जी ।** राजस्थान निवासी थे । हैदराबाद सत्याग्रह में भाग लिया और निजामाबाद जेल में २।८।३९ को इनका देहान्त हो गया।

१. हिन्दी सत्याग्रह में बहु अकबरपुर जिला रोहतक के निवासी नौजवान **सुमेरसिंह** को फिरोजपुर जेल में निहत्थे सत्याग्रहियों पर दूसरे कैदियों से हमला करवा कर शहीद कर दिया गया । बाकी भी तकरीबन २००/३०० सत्याग्रहियों को सख्त चोटें आईं, इसके अतिरिक्त सत्याग्रही जब अम्बाला जेल से रिहा होकर अम्बाला से दिल्ली जाने वाली गाड़ी पर सवार हुए तो गाड़ी की टक्कर हो जाने से छः-सात सत्याग्रही शहीद होगये और एक सज्जन जालन्धर में श्री घनश्यामदास गुप्ता के जलूस में पोलिस की गोलियों से शहीद हुआ था ।

१४५. देशहित बलिदान

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर वर्ष मेले ।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा ॥

भारत देश को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद कराना महर्षि का मुख्य उद्देश्य था । इस के लिए वे हर प्रकार के प्रयत्न का समर्थन करते थे । अतः धार्मिक, सामाजिक और पोलीटिकल जागृति उत्पन्न करके भारतीयों को स्वराज्य के लिए तैयार करने का काम आर्यसमाज, कांग्रेस और हिन्दू महासभा ने संभाल लिया परन्तु महर्षि जी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए शस्त्र-क्रान्ति के भी समर्थक थे । उनके मन में सन् १८५७ की स्वतन्त्रता की पहली लड़ाई के बाद अंग्रेजों ने जो निहत्थे भारतीयों पर जुल्म किये थे, उनको बहुत आघात लगा था । क्योंकि इस युद्ध में वे खुद भी भाग ले रहे थे । यह बात अब निश्चयात्मक हो चुकी है । मेहता पृथ्वीसिंह आजाद ने सं० २००७ में हमारा राजस्थान नामी किताब छपवा कर २५ पृष्ठ इस बात के समर्थन में लिखे थे कि महर्षि सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेते रहे । क्योंकि १८५७ से १८६० तक जबकि वह महर्षि विरजानन्द जी के पास आए तीन वर्ष उनके अज्ञातवास में ही गुजरे प्रतीत होते हैं । और फिर सत्यार्थप्रकाश के १२वें

समुल्लास में उनके हृदय से निकले हुए शब्द इस बात को पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि वह १८५७ के युद्ध में भाग लेते रहे और वह अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए हथियार बन्द क्रान्ति के भी समर्थक थे। महर्षि के वे शब्द जरा गौर से पढ़ने योग्य हैं। "जब संवत् १९१४ के वर्ष तोपों के मारे मन्दिर मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं। तब मूर्ति कहां गई थीं। प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु कोई मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते।"

अब इसमें एक तो यह विचारणीय है कि महाराज ने बाघेर लोगों को अंग्रेजों से लड़ते वा मारते देखा था। दूसरे महाराज अंग्रेजों के लिए दुश्मन शब्द का प्रयोग कर रहे हैं, तीसरे उनके धुर्रे उड़ते देखना चाहते हैं। यह तीनों निष्कर्ष सिद्ध करते हैं कि महाराज १८५७ के स्वतन्त्रता युद्ध में अवश्य भाग लेते रहे हैं और वह अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए शस्त्र-क्रान्ति के पूर्ण रूप से समर्थक थे। महाराज के इस अभिप्राय को जानकर अपने देश से अंग्रेजों को निकालने के लिए जिन जिन महानुभावों ने जेलों की यातनाएं सहीं और फ़ांसी पर चढ़ अंग्रेजों की गोलियां और लाठियां खाईं, देश निकाला भी भोगा, इनमें कुछेक का संक्षिप्त वर्णन पढ़िये।

१. शेरे पंजाब लाला लाजपतराय जी

लाला लाजपतराय जी भी क्रान्तिकारी गुरु के क्रान्तिकारी शिष्य थे और अंग्रेजों को देश से निकालने के लिए हर तरीका इस्तेमाल करने के हक में थे। लाला जी का जन्म २८।१।१८६५ को मौजा ढड्डे की तहसील मोगा, जिला फिरोजपुर में हुआ, आप की माता जी का नाम गुलाबदेवी था और पिता जी का नाम मुन्शी राधाकृष्ण था। उनके पिता जी पर मुसलमानी मजहब का रंग बहुत चढ़ा हुआ था। अतः वे तीन वक्त नमाज भी पढ़ा करते थे। उनको कुरान शरीफ़ जबानी याद था। लाला जी की परवरिश और तालीम एक दरम्याना दर्जे के युवक की भांति हुई। जब आप लाहौर में पढ़ने गये तो उनकी मित्रता पण्डित गुरुदत्त और महात्मा हंसराज से जो कि उस समय गवर्नमेंट कालेज में पढ़ते थे हो गई। ये तीनों गहरे दोस्त बन गए। इस वक्त आर्यसमाज का बहुत जोर था। लाला जी महर्षि दयानन्द जी से भी मिल चुके थे। और इस तरह इन तीनों नौजवानों ने आर्यसमाज का बड़ा काम

किया । दयानन्द कालेज बनाने में भी लाला जी का बहुत हाथ था । और सन् १९०० तक कई आश्रम खोले और हजारों हिन्दू बच्चों को विधर्मी होने से बचा लिया। इसके बाद लाला जी ने देश की सियासत में भी हिस्सा लेना शुरू कर दिया । क्योंकि क्रान्तिकारी दयानन्द का चेला भला कैसे चुप बैठ सकता था । और थोड़े अर्से में ही इनका शुमार कांग्रेस के चोटी के लीडरों में होने लग गया। और वे कांग्रेस के दल के नेता बन गए । सन् १९०७ में नहरी मामला की जियादती के खिलाफ बड़ी जबरदस्त तहरीक चलाई । जिससे अंग्रेज हकूमत कांप उठी । और उन्होंने लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को गिरफ्तार करके मांडले जेल में भेज दिया । लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह दोनों आर्यसमाजी थे । इसलिए इन दिनों आर्यसमाज पर अंग्रेज सरकार का बहुत कोप था । और आर्यसमाज के उपदेशक और वर्कर बिना किसी कसूर के गिरफ्तार कर लिये जाते थे । डी०ए०वी० कालेज पर अंग्रेजों की खास नजर थी । मांडले से वापस आने पर फिर भी अंग्रेज सरकार इनको बहुत तंग करती थी । तब सन् १९०९ में आप अमरीका चले गये और वहां भारत की आजादी की तहरीक का प्रचार करते रहे और १९१६ तक वे अमरीका रहे । और जगह जगह लैक्चर दिए । यंग इण्डिया नाम का अखबार निकाला। इण्डिया होम रूल लीग कायम की । जिस की ब्रांचें अमरीका के बड़े-बड़े शहरों में खोली गईं । और अमरीका के बड़े-बड़े आदमियों से मिल कर भारत को आजाद कराने की तरफ़ इनका ध्यान दिलाते रहे । सन् १९२० में जब वापस आए तो इनका शानदार स्वागत हुआ और कलकत्ता कांग्रेस के स्पेशल इजलास के प्रधान चुने गए । लाला जी ने तिलक स्कूल आफ पालिटैक्स कायम किया । और यही स्कूल फिर सरवैन्ट्स आफ़ दी पीपल सोसाइटी के नाम से काम करता रहा । लाला जी इन्कलाबी स्प्रिट के थे । एक बार कांग्रेस से इनका मतभेद हो गया और सेण्ट्रल असैम्बली का चुनाव आया तो पंजाब के दोनों शहरी हल्कों से चुनाव में कांग्रेसी उम्मीदवार दीवान चमनलाल और रायजादा हंसराज को पराजित करके कामयाब हो गये। आप की तकरीर में जादू भरा होता था । लाला जी सचमुच शेरे पंजाब थे। यहां तक कि जब महात्मा गांधी जी को किसी ने कहा कि आप पंजाब चलें तो उन्होंने साफ कह दिया कि जब तक लाला लाजपतराय मुझे नहीं बुलाते मैं नहीं जाऊंगा । सन् १९२८ में साइमन कमीशन आया तो इसका बाइकाट

करने का निश्चय किया गया । अत: ३० अक्तूबर १९२८ को जब साइमन कमीशन लाहौर आया तो इस के ख़िलाफ़ मुजाहिरा करने के लिए लाला लाजपतराय जी स्वयम् एक बहुत बड़ा जत्था और हाथ में काली झण्डियां लिये हुए लाहौर के रेलवे स्टेशन पर पहुंच गये । जब कमीशन को लाने वाली गाड़ी लाहौर स्टेशन पर आई तो पुलिस ने लाठी चार्ज शुरू कर दिया । चूंकि लाला लाजपतराय जी सब से आगे थे इसलिए सब से पहले लाठियां इन को ही लगीं । अगरचे जत्थे के दूसरे मैम्बरों ने लाला जी को घेरे में ले लिया था । तब भी लाठियों की काफी चोटें लाला जी को लग चुकी थीं । मिस्टर साइमन स्टेशन की दूसरी ओर से निकल कर खिसक गए । और इन्हीं लाठियों की जरबात से १७ नवम्बर १९२८ को लाला जी देश की खातिर बलिदान हो गए । लाला जी ने कहा था कि मेरे जिस्म पर लगी हुई अंग्रेज की लाठियों की चोट अंग्रेजी राज्य के कफ़न में कील साबित होंगी और वही हुआ । लाला जी कहा करते थे कि आजादी मांगने से नहीं मिलती बल्कि इस के लिए लड़ना होगा, कुर्बानी देनी होगी और खून देना होगा । यह था वह पाठ जो लाला जी ने अपने गुरु महर्षि दयानन्द से सीखा । और आर्यसमाज रूपी माता की गोद में बैठकर इस पर अमल किया । लाला लाजपतराय ने अपने जीवन चरित्र में स्पष्ट शब्दों में लिखा है ।

"जो मेरे जीवन में कमजोरियां हैं वे मेरी अपनी हैं परन्तु जो कुछ भी गुण मेरे में हैं वे महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की देन हैं । मैं जो कुछ भी देश जाति के लिए कर पाया हूं यह गुरुदेव की कृपा से कर पाया हूं।

२. भगतसिंह

लाला लाजपतराय जी के अंग्रेजों द्वारा किए गए इस अपमान और फिर अंग्रेजी लाठियों से घायल होकर देश पर बलिदान होने पर पंजाब के शेर नौजवान सरदार भगतसिंह जी जो इनकलाबी पार्टी के लीडर थे उन्होंने इसका बदला लेने की ठान ली । और डी०ए०वी० कालेज लाहौर के सामने ही पुलिस के दफ्तर से निकलते हुए पुलिस कप्तान सांडरस और उस को बचाने की कोशिश करने वाला चाननसिंह पुलिस वाला दोनों ही भगतसिंह की गोलियों का निशाना बन गए । इन दोनों पुलिस अफसरों को गोलियां मार कर सब पार्टी डी०ए०वी० कालेज के अन्दर घुस कर निकल गईं । और इसलिए डी०ए०वी० कालेज वालों को पुलिस अफ़सरान कई दिनों तक तंग

करते रहे । पर वहां से पुलिस वालों को कोई पता न मिल सका परन्तु जब उन्होंने असैम्बली हाल में जाकर बम फेंका तब भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव तीनों गिरफ्तार कर लिये गए । और फिर इन पर मुकदमा चलाया गया । मुकदमे की पैरवी भगतसिंह स्वयं किया करते थे । जिस मजिस्ट्रेट की ड्यूटी इस मुकदमा के सुनने पर लगाई गई थी वह हर वक्त भयभीत रहता था कि कहीं मुझ को गोली का निशाना न बना दिया जावे । एक दिन जब मुकदमा के दौरान में ही किसी ने समोसे भेजे । जब पुलिस ने समोसे खोले तो उनमें से एक बम निकल आया । पुलिस ने वह मजिस्ट्रेट की मेज पर रख दिया। मजिस्ट्रेट ने पुलिस से पूछा यह बम कारामद है या चला हुआ तो भगतसिंह झट बोल उठे, मिस्टर मैजिस्ट्रेट पोलीस से क्या पूछते हो हमें दिखाओ हम आपको बता देंगे कि यह बम चला हुआ है या चलने वाला है ।

भगतसिंह जी इतनी निर्भयता से अपने मुकदमे की पैरवी किया करते थे, और इतनी लियाकत से कि बड़े बड़े वकील भी सरकारी गवाहों पर उनकी जिरह को सुनकर दंग रह जाते थे । अन्त में उनको फांसी की सजा हुई । इन्हीं दिनों १९२९ में कांग्रेस का सालाना इजलास लाहौर में हो रहा था । किसी ने गांधी जी से कहा कि भगतसिंह जैसे नौजवानों की हौसला अफ़जाई करने के लिए आप उन्हें मिलें । परन्तु महात्मा गांधी जी ने यह कह कर कि वह तशदद के हामी हैं, उनको मिलने से इन्कार कर दिया । भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी की सजा दी गई । जब भगतसिंह जी फांसी की कोठड़ी में बन्द थे तो किसी ने उनके सामने क्षमा मांगने का प्रस्ताव रखा। जिसको उन्होंने तिरस्कारपूर्वक अस्वीकार कर दिया । जिस दिन भी इस पार्टी की पेशी इस अदालत में होती थी तो यह पार्टी, आर्यसमाजी इन्कलाबी नौजवान पं० रामप्रसाद बिस्मिल की प्रसिद्ध कविता अदालत की कार्रवाई शुरू होने से पहले अदालत के कमरे में पढ़ा करते थे । जो निम्नलिखित है–

सर फ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है ।
देखना है जोर कितना बाजूए कातल में है ॥
राह रवे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में ।
लज्जते सहरा नवर्दी दूरए मंजिल में है ॥
यूं खड़ा मकतल में कातल कह रहा था बार बार ।
क्या तमन्नाए शहादत भी किसी के दिल में है ॥

वक्त आने पर बता देंगे तुझे ऐ आसमां ।
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है ॥
ऐ शहीदे मुल्को मिल्लत तेरे जजबों पर निसार ।
तेरी कुर्बानी की चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है ॥
अब न अगले बलबले हैं और न अरमानों की भीड़ ।
एक मिट जाने की हसरत बस दिले बिस्मिल में है ॥

इतनी बड़ी ताकतवर अंग्रेज हकूमत को इन नौजवानों को दिन के समय फांसी देने की हिम्मत न हुई, वह हकूमत जिसमें कभी सूरज गुरूब न होता था । उस हकूमत के कारिन्दों ने आर्यसमाज के ट्रेनिंग कालेज के विद्यार्थी भगतसिंह और उनके साथियों को रातों रात फांसी देकर, उनकी लाशें रात ही रात में लाहौर से फ़िरोजपुर लाकर दरिया सतलुज के किनारे दिन चढ़ने से पहले आग के सुपुर्द कर दीं ।

मौजा खटकर कलां जिला जालन्धर में सर्दार अर्जुनसिंह रहते थे। वे महात्मा मुन्शीराम जी जब जालन्धर में वकालत करते थे, उनके मुन्शी थे । और उनके सत्संग से इन पर भी आर्यसमाज का रंग चढ़ गया । उनके दो लड़के थे । सरदार किशनसिंह और सरदार अजीतसिंह । सरदार अजीतसिंह तो लाला लाजपतराय के साथी बन गये । और सन् १९०७ में उनके साथ ही मांडले जेल में नजरबन्द रहे और नजरबन्दी से रिहा होकर आए तो फिर विदेश चले गये । क्योंकि अंग्रेजी सरकार इनको फिर भी तंग करने के मंसूबे बना रही थी । और वह विदेश में रह कर भी मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए भरपूर यत्न करते थे । आजादी से थोड़ी देर पहले वापस आए थे । आखिर को १५ अगस्त १९४७ को जब देश आजाद होने की घोषणा हुई तो उन्होंने देहरादून में प्राण त्याग दिये और उन्होंने मरने से पहले देश को आजाद देख ही लिया ।

सरदार किशनसिंह जी के तीन लड़के थे । भगतसिंह इन सब से बड़े थे । आपका जन्म भी आर्य घराने में हुआ । आप का यज्ञोपवीत संस्कार भी वैदिक रीति से हुआ, और आपकी तालीम भी आर्यसमाज के स्कूल और कालेजों में हुई । जिन दिनों ये डी०ए०वी० कालेज में पढ़ते थे । भाई परमानन्द जी, श्री जयचन्द विद्यालंकार जी इतिहास के प्रोफ़ेसर और रिसर्च स्कॉलर थे । इन दोनों महानुभावों ने राजनीति और देश-सेवा के लिए इन को तैयार

करना शुरू कर दिया था। गुरुकुल कांगड़ी से स्नातक और पंजाब के बहादुर सपूत जो उन दिनों रावलपिण्डी लण्डा बाजार आर्यसमाज के पुरोहित थे के पास सरदार भगतसिंह और उस के साथियों ने आर्यसमाज मन्दिर में रहकर देशभक्ति और राजनीति की विशेष शिक्षा प्राप्त की। इस प्रकार सरदार भगतसिंह जो कुछ भी थे, वे सोलह आने आर्यसमाज के ट्रेनिंग कालेज से शिक्षा प्राप्त करके ही बन पाये थे। और एक बड़ी जत्थेबन्दी के लीडर बनकर देश की खातिर फाँसी के तख्तों पर चढ़ कर देश की शान को चार चांद लगा गए।

भगतसिंह का प्यारा गीत जो वह फांसी की कोठरी में गाया करते थे।

मेरा रंग दे नाम विच चोला।
मेरा रंग दे नाम विच चोला॥
जेहा जेहा रंग तूं भक्तां दा रंगया।
उहो जेहा रंग मैं वी तैथों मंगैया॥
रंग बड़ा अनमोला।
मेरा रंग दे नाम विच चोला॥
जेहा रंग दयानन्द रंगाया।
लेखराम जिस रंग नहाया॥
लाजपत राये जिस नूं अपनाया।
उही रंग मेरे मन भाया॥
रंग बड़ा अनमोला।
मेरा रंग दे नाम विच चोला॥

३. पं० रामप्रसाद बिस्मिल

पं० रामप्रसाद बिस्मिल यू०पी० के नौजवान थे। उन को जवानी में आर्यसमाज की लगन लग गई और इस ट्रेनिंग कालेज में शिक्षा प्राप्त कर देश के लिए बलिदान हो गये। एक बार उन के पिता जी ने जो पुराने विचार के थे। अपने सुपुत्र रामप्रसाद बिस्मिल के सामने यह प्रस्ताव रखा कि या तो तुम आर्यसमाज को छोड़ दो, वरना मेरे घर को छोड़ दो। तब नौजवान रामप्रसाद सिर्फ तीन कपड़ों में घर त्याग कर चला आया था। आर्यसमाज के लिए इनका प्रेम इसी एक घटना से स्पष्ट हो रहा है। तब इस नौजवान

ने एक इन्कलाबी जत्था बनाया और देश में इन्कलाब करने की खातर रुपया बटोरने के लिए रामप्रसाद के जत्थे ने काकोरी रेलवे स्टेशन पर रेलगाड़ी पर जा रहे सरकारी खजाने पर डाका डाला लेकिन गिरफ्तार हो गये । मुकदमा चला जो काकोरी केस के नाम से प्रसिद्ध है और उन को और उनके साथियों को फांसी की सजा दी गई। इन्हीं रामप्रसाद बिस्मिल की नजम सरदार भगतसिंह जी पढ़ा करते थे और यह नजम उन दिनों इतनी सर्वप्रिय हो गई थी कि हर कांग्रेस के जलसे और जलूसों में नौजवान बड़े जोश से पढ़ा करते थे। जब रामप्रसाद जी को फांसी की सजा हुई और फांसी की कोठरी में बन्द किया गया तो वहां भी वे सन्ध्या आदि अपना नित्य नियम पूरा करते थे, व्यायाम भी करते थे । एक दिन फांसी देने वाले जल्लाद ने पूछा–रामप्रसाद नौजवान हो, फांसी की सजा तुम को हो चुकी है परन्तु तुम्हारे चेहरे पर बल नहीं पड़ा । तुम्हारा कौन गुरु है । जिसने तुम को ऐसा विचित्र पाठ पढ़ाया है । तब रामप्रसाद बिस्मिल ने जवाब दिया कि जिस दिन फांसी के तख्ते पर मैं चढूंगा, उस दिन तुम को अपने गुरु का नाम बताऊंगा । वह दिन आ गया। बिस्मिल फांसी के तख्ते पर खड़ा हो गया । जल्लाद ने जो पास ही खड़ा था, फिर वही सवाल पूछा, तब बिस्मिल जी ने उस को कहा–अपना कान मेरी तर्फ़ करो उसने अपना कान जब बिस्मिल की तरफ किया, तब उसने फांसी की रस्सी खींचे जाने से एक मिनट पहले जल्लाद को बताया मेरा गुरु है–

बाल ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ।

४. **सोहनलाल पाठक** पट्टी जिला अमृतसर के रहने वाले थे, कट्टर आर्यसमाजी थे । पट्टी आर्यसमाज के मेम्बर थे । डी०ए०वी० हाई स्कूल में मास्टर भी रहे । सन् १९०८ में जब ला० हरदयाल जी एम०ए०, आई०सी०एस० का इम्तिहान दिये वगैर वापस हिन्दुस्तान आ गये तो सोहनलाल जी उनके पास आने जाने लग पड़े और उनकी आपस में मित्रता हो गई । इन्हीं दिनों इन की धर्मपत्नी का देहान्त हो गया । फिर ला० लाजपत राय जी ने दयानन्द ब्रह्मचारी आश्रम मुजंग में खोला । तब लाला जी ने पं० सोहनलाल जी को इस आश्रम में टीचर रख लिया । इतने में ला० हरदयाल जी देश से बाहर चले गये और पण्डित जी के मन में भी देश से बाहर जाकर देश की आजादी के लिए काम करने का विचार हुआ । तब पहले वह स्याम

गये, फिर वह अमरीका चले गये और वहां गदर पार्टी में शामिल हो गये। पहले महायुद्ध में गदर पार्टी ने भी वही काम किया, जो दूसरे महायुद्ध में सुभाषचन्द्र बोस की आजाद हिन्द फौज ने । इस वक्त तक ला० लाजपत राय जी भी अमरीका पहुंच चुके थे और अंग्रेजों के खिलाफ बाहर के देशों में खूब प्रचार किया । पण्डित सोहनलाल पाठक कहा करते थे कि हकूमत मांगने से नहीं मिलती । मांगने से तो भीख भी नहीं मिल सकती, जैसा कि कांग्रेस आजकल कर रही है । हकूमत सीधे हाथ कौन देने लगा है । हकूमत तो डण्डे के जोर से मिलेगी और जब तक हजारों नौजवान शहीद नहीं होते, तब तक हकूमत मिलनी कठिन है । फिर पण्डित जी को बर्मा गवर्नमेंट ने गिरफ्तार कर लिया और उनको फांसी की सजा दी गई । जब उन से पूछा गया कि आप की आखिरी ख्वाहिश क्या है तो उन्होंने कहा मेरे शरीर को दबाना मत जला देना । क्योंकि बर्मा में मृतक शरीर दबाये जाते थे । इस तरह सोहनलाल पाठक न सिर्फ खुद मुल्क के लिए शहीद हुए, बल्कि उन के संसर्ग में आने वाले कई और नौजवान भी देश को आजाद कराते कराते शहीद हो गये ।

५. इस तरह आर्यसमाज की गोदी में पले हुए सैकड़ों नौजवानों ने जेल की कड़ी यातनाएं सहीं । फांसी के रस्सों को चूमा, नौजवान **भाई बालमुकुन्द जी** फांसी पर लटकाए गए । **भाई परमानन्द जी** काले पानी की यातनाएं सहते रहे । महात्मा हंसराज जी के सुपुत्र **श्री बलराज जी** को पहले फांसी, फिर सात वर्ष कैद की सख्त सजा हुई । देश और विदेश से सैकड़ों आर्यसमाजियों ने देश को आजाद कराने के लिए अपना सब कुछ बलिदान कर दिया । यह थी आग जो महर्षि ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए भारतीयों के दिलों को लगा दी थी । महर्षि की शिक्षा पाकर जहां धर्म की बलिवेदी पर सैकड़ों बलिदान हो गये, वहां देश के हित के लिए भी कम कुर्बानियां नहीं दी गई थीं । पुस्तक का कलेवर बढ़ जाने के भय से संक्षिप्त ही लिखा है ।

उपरोक्त लेख के समर्थन में केवल एक ही उच्चकोटि के मुसलमान कांग्रेसी लीडर का लेख दिया जाना काफी है । अतः मौलाना हसरत मुहानी फ़रगी महल लखनऊ वाले फ़रमाते हैं–

''मैं देखता हूं कि कोई भी हिन्दू जब आर्यसमाज में आता है तो

उसमें बहुत विशेषता आ जाती है । उसके अन्दर उत्साह, देशभक्ति और कर्मशीलता और एक तरह की अजीब स्पिरिट काम करने लगती है ।

देश के कामों को ही लीजिये, जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने लगे थे ।

मैं खुशी के साथ कहता हूं कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ९० फीसदी आर्यसमाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे जबकि और सोसाइटियों के मुश्किल से २/३ फीसदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे । (महर्षि दयानन्द सरस्वती, पृष्ठ ३७७ से)

दयानन्द के वीर सैनिकों को देश, धर्म और जाति-सेवा की शमा पर परवानों की भांति हंस हंसकर बलिदान देते हुए देखकर किसी कवि ने ठीक ही तो कहा था-

ऐ शमा एहले बजम तो बैठे ही रह गये ।
जो बात कहने वाली थी परवाने कह गये ॥

१४६. शहीदों के पत्र

कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह है ।
रख दे कोई जरा सी, ख़ाके वतन कफ़न में ॥
मौत और जिन्दगी तो, दुनिया का है तमाशा ।
पैग़ाम कृष्ण का था, अर्जुन को बीच रन में ॥

काकोरी केस के वीरों ने फांसी पाने से पहले जो पत्र अपने घर वालों को लिखे उनको पढ़कर आप इन नौजवानों की देशभक्ति का थोड़ा सा अनुमान लगा सकेंगे । इसलिए वे नीचे दिए जाते हैं-

काकोरी केस के शहीद ठाकुर रोशनसिंह जी भी पक्के आर्यसमाजी थे । फांसी पाने तक रोजाना इलाहाबाद जेल में आप सन्ध्या और व्यायाम करते रहे । जिस रोज आप को फांसी के तख़्ते पर चढ़ाया जाना था, उस दिन भी आप सन्ध्या के बाद व्यायाम करने लगे, तब जेल के सन्तरी ने कहा-ठाकुर साहब अब इस कसरत और दण्ड बैठक का क्या फ़ायदा अभी तो आप को फांसी के तख्ते पर चढ़ना है । इस पर दयानन्द के वीर सैनिक ने हंस कर जवाब दिया हम अपने नियम को क्यों तोड़ें । जो काम जिस समय

होना चाहिए वह उस समय करना ही चाहिए । मौत अपना काम करे हम अपना काम करते चले जायेंगे । ये थे दयानन्द के वीर सैनिक जो फांसी के तख्तों पर इस तरह चढ़ गये जैसे डोली व्याह कर लाने वाला दूल्हा घोड़ी पर चढ़ता है ।

आजादी की जद्दोजहद में कुछ ऐसे देशप्रेमी भी हुए हैं जिन्होंने जेल की तंग वा तारीक कोठड़ियों से अपने रिश्तेदारों वा दोस्तों को निहायत दिलेराना जजबात उभारने वाले खत लिखे हैं जिनको पढ़ने से मुर्दा रगों में भी जिन्दगी का खून हरकत करने लगता है । इसी प्रकार के खतों में से चन्द ख़त शहीदान काकोरी के पढ़ कर देखिए ।

रामप्रसाद बिस्मिल का ख़त

हिन्दुस्तानी नेताओं को और मुसलमानों को एक होकर हम लोगों की याद मनानी चाहिए । सरकार ने अशफ़ाक उल्लाह ख़ां को रामप्रसाद का दाहिना हाथ माना है, अशफ़ाक उल्लाह कट्टर मुसलमान होकर सच्चे आर्यसमाजी बिस्मिल का इन्कलाबी रूप में साथ देकर अगर दाहिना हाथ हो सकते हैं तो क्या भारतवर्ष की आजादी के नाम पर हिन्दुस्तानी एक होकर वतन को आजाद नहीं करा सकते । परमात्मा ने मेरी पुकार सुन ली है, और मेरी ख़्वाहश पूरी दिखाई देती है, मैं तो अपने फ़र्ज में पूरा उतरा हूं । मैंने मुसलमानों में से एक नौजवान को निकाल कर भारतवासियों को दिखला दिया है, मेरा यह पहला तजरबा है जो कामयाब हुआ, अब देशवासियों से मेरी प्रार्थना है कि अगर वह हमारी मौत से जरा भी दुखी हैं तो एक हो जाएं।

दूसरा ख़त

१९ दिसम्बर ७.३० बजे इस शरीर को फ़ांसी पर लटका दिया जायेगा। यह सब कुछ भगवान् की मर्जी से हो रहा है, और उसी की लीला है । मेरी भगवान् से यही प्रार्थना है कि वह बार बार मुझे इस देश में जन्म दे कि देश की सेवा करता रहूं । देशवासियों से भी मेरी यही प्रार्थना है कि वे जो कुछ भी करें सब एक होकर करें और सब कुछ देश की भलाई के लिए हो । इस से सब का भला होगा । बस–

मरे बिस्मिल रोशन लाहरि अशफ़ाक अत्याचार से ।
होंगे पैदा सैकड़ों इनके खून की धार से ॥

अशफ़ाक उल्लाह ख़ां का ख़त

जनाब वालदा साहबा, मैं बखैरियत हूं, आप की खैराफ़ीयत का ख्वाहां हूं। कल फैसला सुनाया जायेगा। खुदा मुझे हिम्मत दे और सकूं अता फ़रमाए और आप सब को सबर। बीबी दुनिया सराए फ़ानी है, कौन हमेशा यहां रहा है। और कौन हमेशा यहां रहेगा। अज आदम ता ईंदम मौत वा जीस्त का सिलसिला चला जा रहा है और चलता जाएगा। कहां तक अरज किया जाए, मुझे अपनी सजा का कोई ग़म नहीं है, कोई रंज नहीं है, सजा दायमुल हबस हो या कोई और-मेरा ईमान है कि सब मिन्जानब अल्लाह होगी। "सरे तसलीममक है जो मिजाजे यार में आए" मुझे आप की जुदाई का दुख है, तकलीफ है, खुदा वाकफ़ है कि इस इतवार की मुलाकात के बाद मैं किसी पल आपको भूल न सका। आप के न उम्मीदी से भरे अलफाज भी फ़रामोश न कर सका, खैर जो मर्जी मौला मैं निहायत बदकिस्मत हूं कि आप की खिदमत करने का मौका आया तो आप के कदमों से दूर हो गया। खैर खुदा की मर्जी यही थी। आप सबर कीजिए और मेरे लिए दुआ कीजिए। आप को बहुत दुःख पहुंचा है खुदा रा मुझे माफ़ कर दीजिए, इससे मेरे दिल को तसकीन होगी। ज्यादा क्या लिखूं। (अशफ़ाक वारसी लखनऊ जेल)

ठाकुर रोशनसिंह का ख़त

इस सप्ताह के अन्दर अन्दर मुझे फांसी दी जाएगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह आप की मुहब्बत का बदला दे। आप मेरे लिए हरगिज रंज न करें। मौत मेरी खुशी का वाईस है। दुनिया में पैदा होकर मरना जरूरी है। दुनिया में बुरा फेल करके आदमी अपने को बदनाम न करे। और मरते समय ईश्वर को याद करे। यही दो बातें होनी चाहिएं और ईश्वर की कृपा से मेरे साथ ये दोनों बातें हैं। इसलिए मेरी मौत किसी भी तरह काबिले अफ़सोस नहीं। कई दिनों से मैं बाल बच्चों से अलग हूं। इन दिनों मुझे ईश्वर-भक्ति का काफी मौका मिला। मुझे खुशी है कि दुनिया की दुःखभरी यात्रा समाप्त करके अब आराम की जिन्दगी के लिए जा रहा हूं। हमारे शास्त्रों में लिखा है कि जो आदमी धर्मयुद्ध में प्राण देता है। उसकी वही गति होती है, जो जंगल में रह कर तपस्या करने वाले की।

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है रोशन ।
वरना कितने मरते और पैदा होते जाते हैं ॥

आपका–**रोशन** । आखरी नमस्ते ।

बाबू राजेन्द्रनाथ लाहरी का ख़त

मुझे इस सप्ताह के अन्दर ही अन्दर दुनिया से रिश्ता तोड़ लेना होगा परन्तु बजाहर हिन्दुस्तान के लोगों से मेरा जो रिश्ता हो गया है, वह कभी टूटने वाला नहीं । मैं अपने प्यारे वतन पर कुर्बान हो रहा हूं । फिर मेरे वतन के लोग मुझ से सम्बन्ध क्यों न रखेंगे । मैं अपने आप को अत्यन्त खुशकिस्मत समझता हूं कि भारत माता ने मेरा बलिदान कबूल किया और मुझे जामे शहादत पीने का मौका दिया । हिन्दुस्तान के हर वाशिन्दा को मेरी नमस्ते ।

आपका
लाहरी, गौण्डा जेल

बलिदान काण्ड समाप्त ।

***

१५. काण्ड

१४७. च्यवनप्राश का असली नुस्खा
(Secret of Rejuvenation)

ब्राह्मण ग्रन्थ और पुराणों में एक सुन्दर कथा आती है, जिसका सार यह है कि बुड्ढे, जीर्ण-शीर्ण च्यवन ऋषि को अश्वनीकुमारों ने फिर से युवा बना दिया। अश्विनीकुमार देवों के वैद्य थे। उन्हें वैद्य होने के कारण सोम-याग में भाग नहीं मिलता था। उन्हीं ने च्यवन से कहा–'यदि हम तुम्हें फिर से युवा बना दें तो हमें क्या दोगे ?' च्यवन ने कहा–'हम तुम्हें देवताओं के सोमयज्ञ में सोम का भाग दिलावेंगे।' अश्विनीकुमार प्रसन्न हुए। उन्होंने च्यवन को यौवन दिया और स्वयं सोमपान के अधिकारी हुए।

इस कथा का क्या अभिप्राय है ? अश्विनीकुमार कौन हैं ? च्यवन कौन है ? कैसे वे वृद्धावस्था को त्याग कर युवावस्था को प्राप्त कर सके? सोम क्या है और उसका पान करने से अश्विनीकुमारों का कल्याण क्यों हुआ? इन प्रश्नों का उचित समाधान यदि हम समझ लें, तो प्राचीन भारतवर्ष की वाजपेयविद्या या यौवन प्राप्ति के उपायों (Rejuvenation) के सम्बन्ध में हम बहुत कुछ जान सकेंगे।

अश्विनीकुमार

वेदों में अश्विनीकुमारों को देवताओं का वैद्य या देवभिषक् कहा गया है। यथा–

प्रत्यौहतामवश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः।

अथर्व० ७।५३।१

हे देवताओं के भिषक् अश्विनीकुमारो ! अपनी शक्ति के द्वारा मृत्यु को हम से दूर करो।

वे दिव्य वैद्य कौन से हैं, जो समस्त ब्रह्माण्ड की चिकित्सा करते हैं, जिनकी विद्यमानता में मृत्यु का आक्रमण नहीं हो पाता। इस प्रश्न का

उत्तर भी अगले मन्त्र में स्पष्ट कर दिया गया है–

संक्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम् ।
शतं जीव शरदो वर्धमानोऽग्निष्टे गोपा अधिपा वशिष्ठः ॥

अर्थात् 'हे प्राण और अपान ! तुम इस शरीर में बराबर संचरण करते रहो, शरीर को छोड़ कर मत जाओ, तुम दोनों जोड़ीदार सयुजौ) बनकर संयुक्त सखा की तरह रहो । हे मनुष्य ! तुम निरन्तर वर्धमान या वर्धिष्णु होते हुए सौ वर्षों तक जीवित रहो । वसिष्ठ अग्नि तुम्हारा रक्षक है ।'

मन्त्र में स्पष्ट ही अश्विनीकुमारों की व्याख्या करके बताया गया है कि प्राण और अपान ही सदा साथ रहने वाले अश्विनी हैं । अश्विनी की एक संज्ञा नासत्य है । नासिका में संचरण करने वाले श्वास-प्रश्वास या प्राणापान ही नासत्य हैं । जैसा कहा है–

नसोर्मे प्राणो अस्तु ।

प्राणापान नामक अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य क्यों हैं ? भारतीय विचारकों के अनुसार चिकित्सा-पद्धति तीन प्रकार की होती है ।

(१) चीर-फाड़ के द्वारा शल्यादि–आसुरी चिकित्सा ।
(२) काष्ठादि ओषधियों के द्वारा–मानुषी चिकित्सा ।
(३) प्राणायाम-योगादि के द्वारा–दैवी चिकित्सा ।

ग्रन्थियों की शल्य-क्रिया (Gland-terrapy) के द्वारा यौवन की प्राप्ति (Rejuvenation) आसुरी विधि है । काष्ठादि औषधियों की सहायता से शरीरस्थ रसों की जीर्णता दूर करके उनमें नवीन बल उत्पन्न करना अधिक उत्तम और स्थायी होता है, क्योंकि इसमें रोगी के मन का भी किसी हद तक संस्कार होता है । मन ही शरीर है, मन की शक्ति से शरीर का स्वास्थ्य और रसों की पवित्रता उत्पन्न होती है । क्रोध, चिन्ता आदि मानसिक व्याधियों के कारण ही शरीर में लगभग चालीस प्रकार के विष उत्पन्न होते हैं। उन विषों को दूर करके शरीर की नस नाड़ियों को निर्विष बनाना (Detoxination) मन के शान्त शिवात्मक संकल्पों (Healthy] peaceful auto-suggestions) तथा योग-विधि का काम है । प्राणायाम के द्वारा यह कार्य सर्वश्रेष्ठ रीति से सिद्ध होता है । नाड़ी शुद्धि और निर्विषता की प्राप्ति के लिए आसन और प्रांणायाम के समान गुणकारी दूसरा उपाय नहीं है । इसलिए प्राणविद्या की चिकित्सा-प्रणाली को दैवी माना गया है । वस्तुतः प्राण ही

अमृत है । जहां प्राण हैं, वहीं अमृत हैं । मर्त्य शरीर को अमर बनाने वाले प्राण ही हैं ।

प्राण एवामृता आमः, शरीरं मर्त्यम् ।

शा० १०।१।४।१

प्राणों के द्वारा यजमान अथवा प्राणिमात्र हम सब अपने आप को अजर-अमर बना रहे हैं । सनातन योगविधि जिस का यम ने नचिकेता को उपदेश दिया, प्राणविद्या ही है । इसी से आयुःसूत्र का संवर्धन तथा अजर, अमर, अरिष्ट (Ageless Dathleest Decayless) स्थिति प्राप्त होती है । वैदिक उपाख्यानों में सोम का और अमृत का घनिष्ठ सम्बन्ध है । सोम ही अमृत है । सोम भी प्राण और अमृत भी प्राण है । परन्तु यहां सोम विद्या के सम्बन्ध में अधिक न लिखकर प्रस्तुत उपाख्यान को ही स्पष्ट करना अभीष्ट है ।

च्यवन

शरीर की प्राणशक्ति (Vitality) का स्वास्थ्य बहुत कुछ आदान और विसर्ग की क्रिया (Assimilation and Elimination Process) की स्थापना पर निर्भर है । इसी को 'Metabolic rate' भी कहते हैं । वस्तुतः प्राणोत्पादिनी जीवन-शक्ति सब कुछ है । कभी यह वर्धिष्णु या वर्धमान रहती है, जैसे किशोरावस्था में । उस अवस्था को (Anabolic condition) कहते हैं । कभी यह शक्ति क्षयिष्णु (Catabolic) हो जाती है, छीजने लगती है जैसे बुढ़ापे में । तभी मृत्यु का आक्रमण होने लग जाता है । शरीरस्थ स्नायुः मज्जा, रस (Secretions) सभी पर वृद्धावस्था या जीर्णता का प्रभाव पड़ता है । शक्ति का आधार आधिभौतिक (Physiological) है । इस कारण शरीर की धातुएं जीर्ण या जरा-ग्रस्त होने लगती हैं । यदि हम इस क्षयिष्णु प्रवृत्ति को रोकना चाहें तो शरीरस्थ रस और धातुओं को स्वस्थ और निर्मल बनाना आवश्यक है । अस्तु, इस क्षयशील दशा का नाम ही च्यवनस्थिति है । इस स्थिति में शरीर का ह्रास होने लगता है । व्याधि, जरा, जीर्णता, मृत्यु सब च्यवन के ही रूप हैं ।

मनुष्य की शक्ति की संज्ञा वाज है, वाज को वीर्य या रेत भी कहा जाता है । वाज का पान करने वाले, जो कर्मकाण्डी थे, उन को ही वाजपेय कहा जाता था । शरीरस्थ रेतःशक्ति को शरीर में ही पचा लेना सफल वाजपेय है । उस जीवन-रस को क्षीण कर डालना वाज की हानि है । जिस देह में

से वाज रिस रहा हो, वह कभी पुष्ट नहीं हो सकती । वाज से शून्य व्यक्ति को पुनः वाज-सम्पन्न बनाना ही वाजीकरण-विधि है, जिसका वर्णन आयुर्वेद के वाजीकरण-तन्त्रों में आता है । जिस शरीर में वाज भर रहा हो, जहां ब्रह्मचर्य की धारणा निष्कलंक हो, उस का प्राण भरद्वाज कहलाता है । च्यवन प्राण का उल्टा भरद्वाज प्राण है । भरद्वाज प्राण वाज का भरण करने वाला अर्थात् वाजपेयी होता है । पुनः यौवन की प्राप्ति के लिए धातु और रसों की शुद्धि के लिए प्राकृतिक चिकित्सकों ने जो अनेक (Systems of nature-therapy) उपाय बताये हैं और जो अर्वाचीन काल के आयुर्विज्ञान के पुष्पित कमल के समान अत्यन्त आदरभाव से देखे जाते हैं, उन सब का समावेश प्राणविद्या या वाजपेयीविद्या में समझना चाहिए । भारतीय ऋषियों ने आयुष्य-संवर्धन और स्वास्थ्य-सम्पादन के प्रकृति-सिद्ध विधानों की ओर कुछ कम ध्यान नहीं दिया था । वस्तुतः उन्होंने इस विषय के जितने गम्भीर रहस्य जान लिये थे, उनका यथार्थ परिज्ञान हमारे समय के लिए बहुत ही श्रेयस्कर हो सकता है । शरीर के भीतर जो प्राण की गर्मी है, वही प्राणाग्नि (Metabolic heat) हम को नीरोग बनाती है । औषधियां तो उपचार मात्र हैं । शरीर की अत्यन्त अद्‌भुत और चमत्कारिणी शक्ति ही प्राकृतिक चिकित्सकों का विश्वसनीय शस्त्र है । इसी के द्वारा शरीर की रक्षा, आयुष्य की वृद्धि और रोगों की निवृत्ति होती है । इसी तनूपा (तनू-रक्षक) अग्नि को सम्बोधन करके हम इस संकल्प का पाठ करते हैं–

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि ।
आयुर्दा अग्नेऽसि आयुर्मे देहि ।
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि ।
अग्ने, यन्मे तन्वा ऊनं तन्म आपृण ॥

अर्थात्–हे अग्नि, तुम तनूपा हो, मेरे शरीर की रक्षा करो ।
हे अग्नि, तुम आयु को देने वाले हो, मुझे आयु दो ।
हे अग्नि, मेरे शरीर में जो कमी हो, उसे पूरा करो ।

यहां अग्नि का प्राण (Vitality) अर्थ कुछ हमारे मन की कल्पना नहीं है । उपनिषदों और ब्राह्मणों में अनेक बार अग्नि का प्राण अर्थ किया गया है । यथा–

प्राणो अमृतं तद् हि अग्ने रूपम् । शतपथ १०।२।६।१८

प्राणो वाऽग्निः । (श० २।२।२।१५)
तदग्निर्वै प्राणः । (४।२२।११)
प्राणो अग्निः । (श० ६।३।१।२१)
ते वा एते प्राणा एव यद् आवहनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचनाख्या अग्नयः । (श० २।२।२।१८)

इन का तात्पर्य यह है कि प्राण ही अग्नि है । यज्ञ में जो गार्हपत्य दक्षिणाग्नि और आहवनीय नामक तीन अग्नियों की स्थापना की जाती है, उनका का क्या अर्थ है ? इस सम्बन्ध में प्रश्न उपनिषद् में लिखा है–

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानः, व्यानोऽन्वाहार्यपचनः यद् गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः, यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती, समं नयतीति स समानः, मनो ह वाव यजमानः, इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरह ब्रह्म गमयति ।

अर्थात् इस शरीररूपी ब्रह्मनगरी में प्राणाग्नियां सुलगती रहती हैं (उस समय भी जब अन्य इन्द्रियादि देव सो जाते हैं) गार्हपत्य अग्नि अपान, अन्वाहार्यपचन या दक्षिणाग्नि व्यान और आहवनीय प्राण हैं । श्वासप्रश्वासरूप आहुतियों को साम्यावस्था में रखने वाला समान है । मन यजमान है । इष्टफल उदान है वह इस मन को नित्य ब्रह्म के समीप ले जाता रहता है ।

इस प्रकार विचारपूर्वक मनन करने से हमें प्राचीन यज्ञ सम्बन्धी परिभाषाओं के शाश्वत अर्थों का परिचय प्राप्त होता है । उनको जानकर हम प्राचीन भारतवर्ष के ज्ञान के अधिक सन्निकट पहुंच कर उसके नित्य मूल्य को पहचानने में समर्थ हो जाते हैं । च्यवन अश्विनीकुमार जैसी कथाओं के अर्थों को खोलने के लिए इन्हीं संशोधित परिभाषाओं का अवलम्बन आवश्यक है ।

अश्विनीकुमारों का सोम-पान

हमने ऊपर अश्विनी कुमारों का स्वरूप बताया, फिर च्यवन किसे कहते हैं, इसको स्पष्ट किया । अब प्रश्न शेष रहता है कि च्यवन ने जब अश्विनीकुमारों से यौवन मांगा, तब बदले में क्यों अश्विनीकुमारों ने यह शर्त रखी कि यदि तुम हमें यज्ञ में सोम-पान कराओ तो हम तुम्हें यौवन दे सकते हैं । इसको जानने के लिए सोम को समझना आवश्यक है । वीर्य रेत या शरीरस्थ रस का नाम ही सोम-रस है । केन्द्रीय नाड़ी-जाल (Central Nervous

System) औषधि वनस्पतियां हैं, जिन से मिल कर सुषुम्णा जाल या मेरुदण्ड-रूप वनस्पति (Arbor Vitae) अथवा वानस्पत्य यूप तैयार होता है। जिनमें सोम-रस भरा रहता है । नाड़ी-रस की शुद्धि ही स्वास्थ्य का लक्षण है । मस्तिष्क में भी यही रस भरा रहता है, जो नीचे सुषुम्णा नाड़ी की शाखा-प्रशाखाओं को सींचता है । इस रस पर ही मस्तिष्क की समस्त चेतना निर्भर है । इस रस (Cerebro-spinal fluid) के सम्बन्ध में अर्वाचीन शरीर शास्त्री (Physiologists) भी अनेक आश्चर्यजनक महत्त्व की बातें बताते हैं। मस्तिष्क को खींचकर शुद्ध और बलवान् बनाना इसी रस का कार्य है, यह सोम रस, रेत या वीर्यरूप से शरीर में संचित होता है। असंयम के कारण इसका शरीर से बाहर क्षय हो जाता है । जब तक प्राणापान-रूप अश्विनीकुमार इस सोम को पी सकते हैं, तब तक शरीर में जरा का आक्रमण नहीं होता। च्यवन की क्षीण शक्ति (Catabolic state of deplete energy) को फिर से ऊर्जित और बलिष्ठ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शरीर के सोमरस से उत्पन्न शक्ति शरीर में ही रहे अर्थात् प्राणापान उस सोम-रस का पान करें।

यह शरीर भी एक यज्ञ है । ब्राह्मण और उपनिषदों में बार-बार यह परिभाषा दुहराई गई है–

पुरुषो वै यज्ञः ।

इसके भीतर जो प्राकृतिक क्रियाएं होती हैं, उनका ही अनुकरण यज्ञ के कर्मकाण्ड में किया जाता है । शक्ति-संवर्धन के लिए सोम या रेत का ही शरीर में पाचन अनिवार्य है, इसी कारण अश्विनीकुमारों ने च्यवन से यह प्रतिज्ञा कराई कि हम तुम्हें यज्ञ में सोमपान का भाग अवश्य दिलायेंगे । च्यवन के तप से यह सम्भव हुआ उसी की महिमा से च्यवन की जीर्णता दूर हुई जो उचित प्रकार से सोम का पान करके मन और शरीर की स्वस्थता का सम्पादन करता रहता है, वही सदा अरिष्ट, अजर, अमर, रह सकता है । उसी के लिए यह कहा गया है–

प्रविशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥

अथर्व० ७।५।३।५

अर्थात् प्राणापान इसके शरीर में प्रविष्ट होते रहें, जैसे गोष्ठ में दो वृषभ हों । स्तोता की यह आयुरूप निधि अरिष्ट (अक्षय) रूप में बढ़ती

रहे । च्यवन के सदृश हम सब को भी दृढ़ संकल्प से कहना चाहिए–

पुनः प्राण पुनरात्मा न ऐतु पुनश्चक्षुः पुनरसुर्न ऐतु । वैश्वानरो नो अदब्धस्तनूपा अन्तस्तिष्ठाति दुरतानि विश्वा ॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन । त्वष्टा नोअत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो यद्विरिष्टम् ॥ अथर्व ६।५३।२,३

अर्थात् मेरे शरीर में प्राण, आत्मा, चक्षु और जीवन की पुनः प्रतिष्ठा हो । शरीर-रक्षक तनूपा अग्नि अधृष्य रहकर सब दुरितों को हटाता रहे । वर्चस्, प्राण रस और तनु के साथ हमारा मेल रहे । हमारे शरीर में जो जीर्णता का अंश (विरिष्ट (Decaying elements) हो, उसे त्वष्टा या शरीर के निर्माता प्राण धो डालें ।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी स्वयं वैदिक विधि अनुसार ब्रह्मचर्य पूर्वक प्राणायाम रूपी च्यवनप्राश औषध नित्य प्रति प्रयोग करके पूर्ण पुरुष बन गए और दूसरी सब सच्चाइयों की भांति इस अनुभूत सचाई को भी सारे संसार की भलाई के निमित्त अपने व्याख्यानों और लेखों में अत्यन्त उत्तमता से दरशाते रहे और सन्ध्या के मन्त्रों में प्राणायाम मन्त्र को स्थान देकर बहुत बड़ा उपकार कर गए । अब तो पश्चिमी देशों के विद्वान् भी इस ओर आकर्षित हो रहे हैं । और इस औषध का नाम Long breathing रखकर इस का अभ्यास कर रहे हैं । एक अमरीकन विद्वान् ने अपने निजी अनुभव को Young at sixty नामी पुस्तक में प्रकाशित कर च्यवन ऋषि की कथा का समर्थन कर दिया है । आओ महर्षि के बताए इस असल च्यवनप्राश का सेवन कर बुढ़ापे और कमजोरी को दूर कर युवावस्था को प्राप्त करके महर्षि की जय जयकार मनाएं। जिनकी कृपा से दूसरे अमूल्य रत्नों के साथ ही यह अमूल्य प्रयोग भी प्राप्त हुआ है ।

१५ काण्ड समाप्त ।

***

१६. काण्ड

अचम्भे की बातें

१. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि जिस नमक के कानून को महर्षि ने १८७५ में अन्यायपूर्ण घोषित किया था। १९२९ में सब से पहले गांधी जी ने भी उस को तोड़ने के लिए डाण्डी मार्च किया था। और सारे देश में इस कानून को सब ने तोड़ा था।

२. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि अंग्रेजो देश से निकल जाओ–की अपनी इच्छा महर्षि ने १८७२ में उस वक्त के Viceroy Lord Northbrook के सामने प्रकट की थी। उसी को १९४२ में Quit India नामा प्रस्ताव कांग्रेस ने स्वीकार किया था।

३. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि वर्तमान काल में सारे संसार में अब से पहले १९०३ में महर्षि के एक शिष्य ने हवाई जहाज बनाकर उड़ाया था। (देखो इसी पुस्तक का पृष्ठ ४५६)।

४. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०५ की बंगाल बगावत में आर्यसमाज का हाथ था जैसा कि फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक ने लिखा है–

'His Arya Samaj whether he wished it or not prepared the way in 1905 for the revolt of Bengal. He was one of the most ardent prophets of reconstruction and national organisation. I feel theat it was he who kept the vigil'.

भावार्थ–इसके आर्यसमाज ने सन् १९०५ में बंगाल की बगावत के लिए रास्ता साफ किया। वह यानि स्वामी दयानन्द पुनर्निर्माण का एक अत्यन्त उत्साही पैग़म्बर था।

५. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०४ जब कांग्रेस दो दलों में बट गई तो दोनों दलों के नेता महर्षि के ही शिष्य थे।

६. क्या यह अचम्भे की बात नहीं है कि १९०५ में कांग्रेस ने लाला

लाजपतराय और गोपालकृष्ण गोखले को भारत के हितों का प्रचार करने विलायत भेजा था और ये दोनों ही महर्षि जी के शिष्य थे ।

७. क्या यह अचम्भा नहीं है कि विधानसभा में कांग्रेसियों का बहुमत होते हुए और बापू व नेहरू की इच्छा न होते हुए भी हिन्दी भाषा देवनागरी अक्षरों में राष्ट्रभाषा स्वीकृत की गई ।

आठवां अचम्भा

जब अंग्रेजों के सर पर आर्यसमाज सवार हो गया था

१९०७ ई० में लाला लाजपतराय और शहीद सरदार भगतसिंह के चाचा श्री अजीतसिंह को बन्दी बना कर माण्डले ले जाया गया । उन दिनों आर्यसमाज अंग्रेजों के सर पर बुरी तरह सवार था । श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी उन दिनों की घटना सुनाया करते थे जिस से अंग्रेजों की उस समय की मानसिक दशा का ठीक रूप से पता चल जाता है । स्वामी जी कहा करते थे कि उन दिनों एक मुसलमान सैनिक ने अपने अंग्रेज आफिसर से किसी आवश्यक काम के लिए छुट्टी मांगी, अंग्रेज आफ़िसर ने छुट्टी देने से इन्कार कर दिया। फ़ौजी ने पुनः अपनी प्रार्थना को दोहराया । अंग्रेज आफ़िसर ने फिर भी इन्कार कर दिया । इस पर वह सिपाही बोला—साहब मुझे बहुत आवश्यक काम है आप छुट्टी स्वीकार करें या न करें मैं अवश्य चला जाऊंगा । इस पर अंग्रेज आफ़िसर ने कहा कि तुम आर्यसमाजी मालूम होते हो (क्योंकि उन दिनों अंग्रेजों के मस्तिष्क में यह बात घर कर चुकी थी कि आर्यसमाजियों के अतिरिक्त और कोई अंग्रेजों के सामने बोलने का साहस नहीं कर सकता।) इस पर फौजी कहने लगा, साहब मैं तो मुसलमान हूं तो अंग्रेज बोला वैल! तुम मुसलमान आर्यसमाजी हो ।

(९) महत्त्वपूर्ण अचम्भा

महर्षि की महानता का एक अनुपम उदाहरण जिस को आर्य कहलाने वालों में से भी ९९ प्रतिशत सज्जन नहीं जान पाये ।

अंग्रेजों की कूटनीति की तह तक महर्षि दयानन्द कितनी शीघ्रता से पहुंचते थे और कितनी जोरदार भाषा में उनका खण्डन करते थे । यह बात आप को निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगी । सन् १९५७ में आजादी की पहली लड़ाई जिसको अंग्रेज गदर का नाम देते थे, समाप्त हो

गई । और किन्हीं कारणों से वह सफल न हुई, इस पर भारतवासियों को शान्त करने के लिए अंग्रेजों ने एक गहरी चाल चली । जिस तरह जानवरों के पकड़ने के लिए शिकारी ऊपर जाल बिछाकर नीचे दाना बखेरते हैं, इसी तरह नवम्बर १८५८ में उस वक्त के गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस ने इलाहाबाद में एक दरबार आम किया, और उस में मलका विक्टोरिया की तरफ से वह घोषणा पढ़ कर सुनाई । जिसमें महारानी विक्टोरिया ने यह विश्वास दिलाया था **''कि उनके राज्य में किसी के भी धर्म में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जावेगा, अपने वा पराए का भेदभाव न बरता जावेगा, भारतीय प्रजा के प्रति माता पिता के समान कृपा, न्याय एवं दया दृष्टि से व्यवहार किया जावेगा । और अंग्रेजी राज्य को भारतीयों के लिए पूरी तरह सुखदायक बनाया जावेगा ।'**

और महर्षि जी ने सन् १८७५ में सत्यार्थप्रकाश बनाकर इस घोषणा के बखिये उधेड़ दिये, आप स्वराज्य महिमा शीर्षक में दिये गये महर्षि के शब्द पढ़िये जो इस पुस्तक के पृष्ठ १४९ पर लिखे हैं तो आप हैरान होंगे, कि महर्षि ने कितनी निर्भयता से मलका विक्टोरिया के राजकाल में, मलका के एक एक शब्द को लिखकर उसका कितना पुरजोर खण्डन किया है । क्या इससे भी बढ़ कर महाराज की नीति कुशलता, निर्भीकता और आत्मिक शक्ति का प्रमाण कहीं मिल सकता है । विदेशियों और विदेशी राज्य के प्रति उनकी घृणा उनके एक एक शब्द से फूट फूट कर जाहिर हो रही है । स्वराज्य महिमा के ये शब्द जो महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश (८) में लिखे हैं वह तो आप के से बहुत से सज्जनों ने कई बार पढ़े और सुने होंगे, परन्तु ये शब्द महर्षि जी ने किन विचारों की प्रतिक्रिया में लिखे थे, यह आप में से बहुत ही कम सज्जनों को पता लगा होगा । इन शब्दों के लिखने का महर्षि का प्रयोजन महारानी विक्टोरिया की घोषणा का पुरजोर खण्डन था, ताकि भोले भाले भारतीय अंग्रेजों के इस शब्दजाल में फंस कर अपने देश के प्रति कर्त्तव्य को भूल न जावें यह जानकारी होने पर निश्चय रूप से आप महर्षि की महानता को समझने में समर्थ हो सकेंगे ।

११. पचास करोड़ रुपये का मन्दिर

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी पुस्तक भ्रान्ति-निवारण में लिखा है कि ''मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेकर पूर्व मीमांसा

पर्यन्त अनुमान से ३००० ग्रन्थों के लगभग प्रामाणिक मानता हूं। अब यह विचारणीय विषय है कि जिस महापुरुष ने ३००० ग्रन्थ मानने योग्य चुने होंगे, उसने कितने हजार ग्रन्थ पढ़े और विचारे होंगे। ऐसा अनुमान सहज में ही हो सकता है। और अजमेर में जिन्होंने महर्षि का पुस्तकालय देखा है उनको पता लग सकता है कि तीस चालीस हजार ग्रन्थ इसमें रखे हैं। इतने ग्रन्थ पढ़ कर महर्षि जी ने लासानी ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की रचना की थी। इस ग्रन्थ को आदि से अन्त तक ग़ौर से पढ़ लेने वाला मनुष्य संसार भर के सब मजहब और सारी विचारधाराओं को अत्यन्त सरलता से समझ सकता है, और सभी के गुण दोष उसको प्रत्यक्ष हो जाते हैं। आप यह जान कर खुश होंगे कि महर्षि के इसी प्रयत्न के अनुकूल सकल संसार की रूहानियत की देखरेख करनें वाली संस्था Spiritual united Nations ने अमरीका में ५० करोड़ रुपया की लागत से एक ऐसा मन्दिर तैयार करने की योजना बनाई है। जिसमें हिन्दुइज्म, बुद्धइज्म, कनफ्यूशसइज्म, जोडाइज्म, (यहूदी मजहब), ईसाइयत और इस्लाम की सब पुस्तकें रखी जायेंगी और इस मन्दिर का नामकरण किया गया है–"समझने का मन्दिर"। इसके मुतल्लिक हिन्दुस्तान स्टैण्डर्ड अखबार ७।१०।६२ का निम्नलिखित उद्धरण है–

"Temple of understanding spiritual united Nations have planned to erect a temple at the cost of ten kror dollars in America, Where Hinduism, Buddism Confusiousism Judism, Christiantity and Islam will be lodged in one temple.

क्या यह मन्दिर सत्यार्थप्रकाश का ही मन्दिर सिद्ध नहीं होता। जिस एक पुस्तक को पढ़ लेने से सब मजाहब की एकदम समझ आ जाती है। निश्चय से सत्यार्थप्रकाश ही Temple of understanding है इसके सम्बन्ध में निम्नलिखित पंक्तियां पढ़ कर आप मेरे साथ पूर्ण रूप से सहमत हो जाएंगे।

महर्षि दयानन्द जी का एक उद्देश्य
(Mutual Understanding)

'सत्यार्थप्रकाश' भूमिका में ऋषि दयानन्द जी ने इस प्रकार अपने मुख्य उद्देश्य का वर्णन किया है।

"जिस से सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्यमतस्थ होवें। यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं, तथापि

जैसे इस देश के मत मतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर यथातथ्य प्रकाश करता हूं, वैसा ही दूसरे देशस्थ व मतोन्नति वालों के साथ भी बर्तता हूं, जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्तता हूं, वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्तना योग्य है ।"

"आजकल अनेक विद्वान् प्रत्येक मत में मौजूद हैं । यदि वे पक्षपात रहित होकर सर्वतन्त्र सिद्धान्तों (उच्च असूलों) को, अर्थात् जो बातें सब के अनूकूल सब में सत्य हैं, उनका ग्रहण करें और जो एक दूसरे के विरोधी बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रेम का व्यवहार करें और करायें तो जगत् का ठीक ठीक उपकार हो सकता है । क्योंकि विद्वानों के विरोध से मूर्खों में द्वेष-भाव बढ़ाने से भिन्न भिन्न प्रकार के दुःखों का बाहुल्य और सुखों का अभाव होता है ।"

ग्यारहवें समुल्लास की अनुभूमिका में फिर इस प्रकार स्वामी जी लिखते हैं–"यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ने हम सब को विरोधी जाल में फंसा रखा है । यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंसकर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जावें । इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्ति में लिखेंगे । सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करें ।"

पुनः तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में ऋषि जी ने लिखा है कि जो जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सब में एक से हैं, झगड़ा, झूठे विषयों में होता है ।

चौदहवें समुल्लास की अनुभूमिका में ये शब्द आते हैं । "यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वहीं बुराई सब को विदित होवे । न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों के दोष और गुणों को गुण जान कर गुणों को ग्रहण

कर और दोषों का त्याग करें करावें क्योंकि पक्षपात से क्या क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं । सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंग जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहि: है क्योंकि परस्पर हानि पहुंचाने से दूर होकर, प्रत्येक को लाभ पहुंचाना हमारा विशेष कार्य है ।"

ऋषि दयानन्द जी का मुख्य उद्देश्य है कि सब को परस्पर निकट लाना और मनुष्य मात्र का कल्याण करना । भेदभाव का परित्याग कर मनुष्यों में प्रेम और परस्पर सहानुभूति उत्पन्न करना इसलिए आर्यसमाज का छठवां नियम इस प्रकार निर्धारित करते हैं ।

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।"

फिर सातवें नियम में कहा गया है, "सब से प्रेमपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्ताव करना चाहिए ।"

अभी इस प्रकार के वायुमण्डल पैदा करने के लिए ऋषि दयानन्द जी ने प्रथम बल दिया है । इस बात पर तो सब मतान्तरों में मूल धार्मिक सिद्धान्तों में समानता है । अपने निश्चय वर्णन करने के पूर्व स्वामी जी ने कहा है कि "सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सामान्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिए उसको सनातन नित्य धर्म कहते हैं ।"

इस विचार को अधिक स्पष्ट करने के लिए ऋषि जी सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में इस प्रकार उल्लेख करते हैं– "देखो ! जिस बात में वे हजार ही ऐक्यमत के हों, वही वेदमत है और स्वीकार करना चाहिए। फिर उस सहस्रों की सभा में जिज्ञासु ने खड़े होकर कहा–'सुनिये सब लोगो! सत्य बोलने में धर्म है अथवा असत्य में ! सब ने एक स्वर में कहा कि सत्य कहने में धर्म और असत्य बोलने में अधर्म । उसी प्रकार विद्याध्ययन, ब्रह्मचर्य पालन, पूर्ण जवानी में विवाह करना, सत्संग, पुरुषार्थ और सत्य व्यवहार को धर्म कहा गया है ।

मनुष्य मात्र में एकता स्थापनार्थ यह बात सुविचारणीय है कि धर्म उन मुख्य सिद्धान्तों का नाम है, जो सर्व मतों में विद्यमान हों, और जिन्हें सब मनुष्यों की आत्मा मानती है । उन सिद्धान्तों को ईश्वर के अतिरिक्त

धृति, क्षमा, तप, चोरी का त्याग, शुद्धता, इन्द्रियनिग्रह विचार, प्रभु-परायणता आदि नामों से पुकारा जाता है । उन्हीं सिद्धान्तों को ऋषि पतञ्जलि ने यम और नियमों रूपी दो पञ्चकों में वर्णन किया है । आजकल पञ्चशील का नाम राजनीति में साधारणतः लिया जाता है । यह भी इन सिद्धान्तों पर ही निर्भर है ।

इस बात को सभी मान्य करेंगे । इसमें विचारों का अधिक मतभेद दिखाई नहीं देता परन्तु कठिनाई वहां पैदा होती है, जहां दन्तकथाएँ और माहात्म्य आते हैं । वे कथाएं भिन्न भिन्न मतों में विभिन्न प्रकार से वर्णित हैं इसलिए संसार में संघर्ष हो रहा है। इस संघर्ष को दूर करने के लिए आवश्यक है कि अपनी आलोचक दृष्टि को तीव्र बनायें परन्तु उस दृष्टि की तीव्रता को रखते हुए उस में से उदारताओं को दूर नहीं करना चाहिए । इस दृष्टिकोण का व्यापक विस्तार करने का ऋषि दयानन्द जी को वर्णन करने का समय प्राप्त नहीं हुआ परन्तु उन्होंने मत मतान्तरों की आलोचना करते, कुछ कुछ संकेत दिये हैं । यहूदियों की कुर्बानी को आर्यों के यज्ञ का अपभ्रंश करके दिखाया है । मुसलमानों के रोजों की चान्द्रायण व्रत से तुलना करते हैं । ऋषि जी के इन इशारों के आधार पर उनके अनुयायियों ने बाद में कई पुस्तकें लिख डाली हैं । उदाहरणार्थ मास्टर लक्ष्मण रामनगरी के वेद और कुरान नामक पुस्तक के कितने पृष्ठ प्रकाशित हुए हैं । जज गंगाप्रसाद जी ने अंग्रेजी में Fountain head of Religions पुस्तक लिखी है । जिस में आपने इस्लाम, ईसाइयों, पारसियों और बुद्ध धर्म आदि के सिद्धान्तों और विचारों को वेद की उपज सिद्ध किया है । पण्डित रघुनन्दन शर्मा ने वैदिक सम्पत्ति नामक एक सुन्दर ग्रन्थ में इसी विचारधारा को विकसित किया है न सिर्फ आर्यसमाज के लोगों ने इस क्षेत्र में अपना पग बढ़ाया है, परन्तु अन्यों पर भी ऋषि जी की समालोचना का अमिट प्रभाव पड़ा है । मुसलमानों ने नचरलियन और तावानयिन स्वर्ग नरक आदि और हूरों आदि के विचारों का नया रूप प्रदर्शित किया है । उमेद अली की पुस्तक और स्वर्गीय मौलाना अब्दुलकलाम आजाद के कुरान का अनुवाद भी इस बात के साक्षी हैं । नारायण आयर ने भारतवर्ष के नित्य नैमित्तिक इतिहास नामक पुस्तक में पौराणिक कथाओं को ज्ञान, धर्म और भक्ति के तीन काण्डों के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किया है । यथार्थवादियों में से कितने भागवत को नया रूप प्रदान करते हैं । ईसाइयों

ने भी वह रास्ता अपनाया है इस विचारधारा पर अधिक विचारपूर्वक ख्याल किया जायेगा । हजरत नूह की किश्ती की कथा मनु महाराज की मच्छी कमाई वाली कहानी के तुलनात्मक भाव में आती है । पारसियों के अहरमजी और अहरमन का ख्याल इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध से भेंट करते हैं । चतुर गुप्त और करामताल का-तबियन में परस्पर साम्यता दिखाई देती है । चौथा आसमान क्रियावस्था में ठहर सकता है । इस प्रकार सभी मतमतान्तरों की कथाओं के अन्तर्गत एकता दिखने में आयेगी और विरोध कम हो जायेगा।

मनुष्य मात्र में एकता स्थापित करने के लिए मौलिक नैतिक सिद्धान्तों को ही सच्चा धर्म मानना चाहिए । इसके पश्चात् किंवदन्तियों और देव देवताओं का तुलनात्मक वर्णन करना चाहिए । भेंट करने से विदित होगा कि पद्धति भिन्न है, किन्तु उसूल अभिन्न हैं । आत्मा एक है देह अनेक ।

इस प्रकार एकता स्थापित करने के पश्चात् भी कुछ भ्रम आदि रहेंगे। इन भ्रमों को मिटाने के लिए, उन के इतिहास का अभ्यास करना होगा । उनकी वास्तविकता को देखना होगा । जैसे जैसे वस्तु-स्थिति का पता लगाया जायेगा वैसे वैसे इन भ्रमों के जाल से छुटकारा प्राप्त होगा और सैद्धान्तिक एकता दृढ़ होगी ।

ऋषि दयानन्द का लक्ष्य प्रत्येक मनुष्य मात्र को संगठित करने का था न कि परस्पर द्वेष भाव बढ़ाने का । इसलिए उन्होंने तीन साधन प्रयोग में लाये हैं । प्रथम नैतिक सिद्धान्तों पर बल दिया है, दूसरा दन्तकथाओं की साम्यता का संकेत दिया है और तीसरा भ्रमों को दलील की बारूद से उड़ाने का प्रयत्न किया है ।

इसलिए ही तो मैंने कहा है कि सत्यार्थप्रकाश ही Tempole of Understanding सिद्ध होता है ।

अचम्भा काण्ड समाप्त ।

१७. महिमा-काण्ड

१. सत्यार्थप्रकाश की महिमा

"महर्षि दयानन्द जी के सभी ग्रन्थ राष्ट्रभाषा में हैं, जिस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे राष्ट्रभाषा के कट्टर पुजारी थे । उनका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" है । एक बार विरोधी भी इस ग्रन्थ को पढ़ ले तो वह ऋषि का भक्त बन जाता है । इस ग्रन्थ के सामने विरोधी टिक नहीं सकते हैं । इस में १४ समुल्लास हैं । प्रथम समुल्लास में ईश्वर नामों की व्याख्या और मंगलाचरण का वर्णन है, द्वितीय में शिक्षा, भूतप्रेतादि निषेध और जन्मपत्री समीक्षा, तृतीय में पठन-पाठन स्त्री शूद्र वेदाधिकार, चतुर्थ में विवाहकाल तथा गृहस्थाश्रम का पूर्ण वर्णन, पञ्चम में वानप्रस्थ और संन्यास, षष्ठ में राज-धर्म, सप्तम में ईश्वर, ईश्वरीय ज्ञान वेदोत्पत्ति, वेद विषयक विचार, अष्टम में सृष्टि की उत्पत्ति स्थलनिर्णय, नवम में विद्याऽविद्या, बन्ध-मोक्ष का वर्णन, दशम में आचारानाचार भक्ष्याभक्ष्य, एकादश में आचारानाचार, भक्ष्याभक्ष्य, एकादश में अवतार, मूर्तिपूजा, तीर्थ तथा समस्त सम्प्रदायों की आलोचना है। द्वादश में बौद्ध, जैन और नास्तिकों का, त्रयोदश में बाइबिल आलोचना और चतुर्दश में कुरान की आलोचना है ।

यह ग्रन्थ वैदिक धर्म का निचोड़ है । ऐसा निष्पक्ष ग्रन्थ आज तक किसी भाषा में नहीं लिखा गया है । पौराणिक पण्डितों ने इस पर लेखनी उठाई पर सब को मुंह की खानी पड़ी तथा यथा विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने "दयानन्द तिमिरभास्कर" लिखा, जिसका करारा उत्तर पं० तुलसीराम स्वामी ने "भास्करप्रकाश" के द्वारा दिया । पं० कालूराम शास्त्री ने "आर्यसमाज की मौत" लिखा, जिसका करारा उत्तर पं० मनसाराम वैदिक तोप ने 'पौराणिकपोल-प्रकाश' के द्वारा दिया । 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबन्ध लगाने के लिए सिन्ध सरकार, भोपाल सरकार ने आज्ञा निकाली पर आर्यसमाज के आगे उनको घुटने टेकने पड़े । १. बंगाली, २. उर्दू, ३. अंग्रेजी, ४. पंजाबी,

५. संस्कृत, ६. सिन्धी, ७. उड़िया, ८. कन्नड़ी, ९. तमिल, १०. तेलगू, ११. मलयालम, १२. मराठी, १३. गुजराती, १४. फ्रेंच, १५. जर्मन, १६. पश्तो, १७. ब्राह्मी और नेपाली भाषाओं में इस अमर ग्रन्थ का अनुवाद हो चुका है।

बड़े-बड़े दिग्गज विद्वानों ने 'सत्यार्थप्रकाश' को एक महान् तथा उपयोगी ग्रन्थ बतलाया है । यहां थोड़े से मत उन विद्वानों के दिये जाते हैं-

१. ''स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थों में सत्यार्थप्रकाश सर्वोत्तम है । उन्होंने इस पुस्तक में स्पष्ट रूप से बतलाया है कि मैं हिन्दुओं में कोई नया मत स्थापित करना नहीं चाहता ।'

२. ''स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त उनके सत्यार्थप्रकाश में सन्निवेष्टित हैं । यही सिद्धान्त वेदभाष्यभूमिका में हैं । स्वामी दयानन्द एक धार्मिक सुधारक थे ।' (सर वेलण्टायन चिरौल)

३. ''हिन्दू जाति की ठण्डी रगों में उष्ण रक्त का संचार करने वाला यह ग्रन्थ अमर रहे, यही मेरी कामना है । 'सत्यार्थप्रकाश' की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता ।'

(श्री विनायक दामोदर सातवलेकर जी)

४. ''.........ऋषि ने अपने देशवासियों तथा समस्त विश्व को 'सत्यार्थप्रकाश' के रूप में जो अविनश्वर वसीयत दी है, वह उसकी प्रकाण्ड प्रतिभा का प्रतीक है ।' (श्री श्यामप्रसाद जी मुखर्जी)

५. ''मैंने सत्यार्थप्रकाश को कम से कम १८ बार पढ़ा । जितनी बार मैं उसे पढ़ता हूं मुझे मन और आत्मा के लिए कुछ नवीन भोजन मिलता है । पुस्तक गूढ़ सच्चाइयों से भरी पड़ी है ।'

(स्व० पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम०ए०)

६. ''सत्यार्थप्रकाश' स्वामी दयानन्द का ज्ञान कोष है । इस में वैदिक धर्म का सर्वथा क्रियात्मक रूप वर्णित है । यह दक्षिण भारत में प्रचलित विभिन्न मतवादों और धार्मिक विश्वासों के कारण वहां अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा।'

(श्री ए० रंगास्वामी आयंगर एम०एल०ए० सम्पादक 'हिन्दु' ग स्वदेशमित्रन् मद्रास)

७. ''मैंने भारत में आकर सच्चे हिन्दू धर्म का परिचय सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से पाया है, क्योंकि मार्ग से भटकने वालों के लिए यह पथप्रदर्शक है ।' (पादरी सी०एफ० एण्ड्रयूज)

८. "मैंने सत्यार्थप्रकाश को पढ़ा है। मुझे इस में अपनी आत्मा के दर्शन होते हैं, मैं अनुभव करता हूं कि ऋषि दयानन्द के जीवन के साथ मेरा कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है।' (साधु टी०एल० वास्वानी)

९. "मैं अपनी जनता को महर्षि दयानन्द के महान् ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' पढ़ने का परामर्श दूंगा। यह उन्हें वेदों की महती और स्थायी सत्यता का ज्ञान देगा। उन्होंने स्त्रियों के अधिकारों का जैसा पक्ष ग्रहण किया है, वैसा प्रगतिशील समर्थन संसार में कहीं नहीं मिलेगा।

(श्रीसत्यमूर्ति बी०ए०, बी०एल०, एम०एल०ए० सेण्ट्रल)

१०. "........सत्यार्थप्रकाश केवल आर्यसमाजियों की ही पवित्र पुस्तक नहीं है, वरन् जिन का विश्वास वैदिक संस्कृति में है उन लाखों लोगों के लिए है।' (श्री एन०सी० चटर्जी बार-एट-ला कलकत्ता)

११. "जेल की दीवारों के पीछे एक वर्ष तक 'सत्यार्थप्रकाश' मेरा मित्र, प्रकाशदाता और जीवन बना रहा। 'सत्यार्थप्रकाश' में वेदों का तत्त्व है।' (श्री सी०एस० रंगा आयर एम०ए०)

१२. "इस महान् ग्रन्थ के अध्ययन से मेरी विचारधारा ही बदल गई है। सोई हुई जाति के स्वाभिमान को जागृत करने वाला यह ग्रन्थ अद्वितीय है।' (श्री हरदयाल जी एम०ए०, पी०-एच० डी)

१३. "सनातन धर्म का रहस्य समझने के लिए वेद और केवल वेद ही हमारा मार्ग-प्रदर्शन कर सकते हैं। सत्यार्थप्रकाश में वेदों का तत्त्व है। मैं खण्डन किए बिना कह सकता हूं कि सत्यार्थप्रकाश हमारी सभ्यता की कुंजी है।' (सर टी०बी० शेषगिरि आयर, रिटायर्ड जज मद्रास हाईकोर्ट)।

१४. "........स्वामी दयानन्द हमारे महर्षियों में से एक थे और उनका लिखा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' हमारे धर्म का एक महत्त्वपूर्ण शास्त्र है।'

(श्री सी० विजय राघवाचार्य एम०ए०)

१५. "सत्यार्थप्रकाश का ग्रन्थ सच्चे सनातन धर्म का सन्देश देने के साथ साथ अन्धश्रद्धा और पाखण्ड को दूर करता है। उसके पढ़ने से तर्कशक्ति का विकास होता है। मनुष्यमात्र के कल्याण की भावना से यह ग्रन्थ लिखा गया है।' (सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला)

१६. "........ऋषि दयानन्द ने अपने सत्यार्थप्रकाश में एक ओर तो युक्ति प्रमाणों से वैदिक सिद्धान्त की स्थापना की और विविध मत-मतान्तरों

की न्यायपूर्ण युक्तियुक्त समीक्षा भी की । सत्यार्थप्रकाश ने धार्मिक जगत् में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है । सत्यार्थप्रकाश संसार का दिग्दर्शक यन्त्र है ।'

(प्रो० रमेशचन्द्र बैनर्जी एम०ए०)

१७. "........सत्यार्थप्रकाश वेद के तत्त्वों का प्रकाशक है ।"

(डा० राधाकुमुद मुकर्जी एम०ए०)

महर्षि-महिमा

दयानन्द-भारतीय एकता का परिचायक

गौतम बुद्ध ने शुद्धोदन राजा के घर जन्म लेकर और जीवन के दुःख-क्लेश मोचन करने के अभिप्राय से गृहत्याग किया था और फल्गु नदी के तीर पर छः वर्ष तक ध्यानावस्थित रहकर उसके प्रभाव से बुद्धिलाभ किया था । पहले वाराणसी में और उसके पश्चात् उत्तर भारत में अनेक स्थानों में परिभ्रमण करके और निर्वाणतत्त्व को प्रचारित करके लखूआ मनुष्यों के लिए कल्याणपथ को उन्मुक्त किया था । और अन्त में कृष्णनगरी के पास एक आम्रकानन में देह-त्याग करके परम धाम प्राप्त किया था परन्तु बुद्ध ने विच्छिन्न भारत को एकता के सूत्र में बांधने के पक्ष में क्या कभी एक बात भी कही? हमें उत्तर में यही कहना पड़ता है कि नहीं ।

नम्बूद्रि ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर शङ्कराचार्य ने छोटी ही अवस्था में संन्यास ग्रहण कर लिया था । अलौकिक प्रतिभा से वे अल्पावस्था में ही अगाध विद्या के पारदर्शी हो गये थे । वेदान्त-सूत्र का अनुपम भाष्य रचकर वे संसार में अविनश्वर कीर्ति स्थापित कर गए हैं, भारत के बहुत से स्थानों में पर्यटन करके अपने सुशाणित तर्कास्त्र के प्रभाव से नाना दिग्देशीय पण्डित-मण्डली को पराभूत करके वेदान्त मत का प्राधान्य स्थापित कर गये हैं, सौ मनुष्य भी अपने जाने हुए विषय को एकत्र करके जिस कार्य के करने में असमर्थ हैं, शङ्कराचार्य उसे बत्तीस वर्ष की आयु में अकेले ही सम्पादित करके दिव्यधाम को प्रस्थान कर गये हैं । शङ्कराचार्य यह सब कुछ कर गये, परन्तु क्या उन्होंने विभक्त और विच्छिन्न भारत में ऐक्य स्थापन के लिए कोई यत्न किया ? उत्तर सिवाय नहीं के और कुछ नहीं हो सकता ।

बङ्गभूमि के प्रांचल भाग गौरव श्री गौराङ्गदेव नवद्वीप में आविर्भूत होकर बङ्गाल को भक्ति की तरङ्ग में निमग्न कर गये, नमाजपन और नामकीर्तन

के महात्म्य-विस्तार को चारों दिशाओं में प्रतिष्ठित कर गये । सङ्कीर्तन के पूत, पवित्र, पुण्यमय स्रोत को उन्मुक्त करके दीन-हीन मनुष्यों को स्वर्ग की ओर खींच ले गये, तन्त्रोक्त घृणित और जुगुप्सित आचार, विचार से सैकड़ों मनुष्यों की रक्षा करके देश का अशेष कल्याण कर गये । परन्तु क्या उन्होंने भारत में भारतीयता स्थापन करने के लिए कभी एक बात भी कही ? हमें कहना पड़ता है, एक भी नहीं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत में जितने भी आचार्य हुए हैं वे सब के सब इस विषय में चुप हैं । यह हो सकता है कि उनके लिए जो समग्र मानव मण्डली के दुःखहरण का कठोरतम व्रत धारण करते हैं देश विदेश अथवा जातिविशेष की उन्नति साधन करना क्षुद्र बात हो । यह भी हो सकता है कि जो अपनी अलौकिक ज्ञानचक्षु के आलोक से संसार को ही नहीं, विश्व भर को ही मिथ्या सिद्ध करके दिखा गये हैं । जो अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से सारे जगत् के अस्तित्व बोध को "सर्प और रज्जु" के उदाहरण के समान एक महाभ्रम बता गये हैं, उनके लिए किसी देश में ऐक्य स्थापन करना एक तुच्छ बात रही हो । यह ठीक ही है कि उनके लिए जो ईश्वर प्रेम में अहर्निश उन्मत्त रहते थे कि किसी देश विशेष की उन्नति एक गौण बात रही हो । हम यहां तक भी कह सकते हैं कि इन बातों का वास्तविक आध्यात्मिक महत्त्व न भी हो तथापि यह अवश्य मानना पड़ेगा कि ये सब बातें किसी न किसी अंश में आवश्यक हैं । यदि मनुष्य अपने घर में दाल, चावल, घी, तेल, मिरच, मसाला आदि का संग्रह करता है तो क्या दार्शनिक दृष्टि से वह कोई बड़ा काम करता है ? निस्सन्देह नहीं, परन्तु फिर भी ऐसा करना उसके लिए अत्यन्तावश्यक है, क्योंकि इन वस्तुओं के बिना उसकी देह रक्षा ही नहीं हो सकती । यदि कोई सुई के छिद्र में धागा पिरोकर वस्त्र सीता है वा अपने पुराने कपड़ों की मरम्मत करता है तो क्या ऐतिहासिक दृष्टि से यह बड़ा काम गिना जाता है ? कदापि नहीं, परन्तु इसका करना उसके लिए आवश्यक है । यदि मनुष्य अपने घर के चारों ओर के गढ़े भरने के लिए गोबर मिट्टी लाता है तो क्या राष्ट्रीय दृष्टि से इसे कोई महान् कार्य कहा जा सकता है ? गढ़ों में सर्पादि जन्तु आश्रय लेकर पास रहने वाले मनुष्यों का प्राणनाश तक कर सकते हैं । फलतः उपर्युक्त कार्य समूह महत्त्वहीन समझे जाते हैं, तथापि उन्हें करना ही पड़ेगा । यदि उनका सम्पादन न किया

जाएगा तो देह रक्षा के विषय में अनेक विघ्न उपस्थित होंगे, यहां तक कि असमय में शरीर के विनाश की भी सम्भावना हो सकती है। यह सभी स्वीकार करते हैं कि देह रक्षा, समस्त आशा, भरोसा उन्नति और आकांक्षा की मूल है। इसलिए यह कार्य समूह सामान्य और अगण्य हैं और यद्यपि राष्ट्रीय वा दार्शनिक दृष्टि से इसका कुछ मूल्य नहीं है तथापि उसका नियमित रूप से सम्पादन करना मनुष्य के लिए आवश्यक है।

इसी प्रकार देश में एकता स्थापन करना या जातीयता के संसाधन की चेष्टा करना भी आवश्यक है। जिस देश में एकता नहीं, परस्पर की प्रीति नहीं, सद्भाव और संवेदना का बन्धन नहीं, उस देश में जीवन-यात्रा का निर्वाह निरापद नहीं हो सकता। जिस जाति के अन्दर जातीयता नहीं, जो जाति भाषागत, सम्प्रदायगत, रीति नीतिगत, आदर्शगत और धर्मगत विभिन्नताओं से शतधा छिन्न भिन्न हो रही हो, उस जाति का सदस्य रहना अनेक अंशों में ऐहिक और पारमार्थिक उन्नति में अनेक प्रकार विघ्नकर ही होगा। यह बात कुछ सूक्ष्म है इसलिए हम उसे कुछ खोलकर कहना चाहते हैं।

बात यह है कि मनुष्य सामाजिक जीव है। वह अकेला रहकर सर्वतो-भावेन, निःसंग या सम्बन्ध रहित रहकर, किस से कुछ सहायता न लेकर, देहयात्रा का निर्वाह नहीं कर सकता और उन्नति के मार्ग में एक पग भी आगे नहीं रख सकता। एक मनुष्य की उन्नति अवनति और कल्याण अकल्याण का सम्बन्ध उसके पड़ोसियों , नगर निवासियों यहां तक कि समस्त स्वदेशवासी जन साधारण की उन्नति अवनति, कल्याण अकल्याण के साथ अविच्छिन्न रूप से है, यदि हमारे ग्राम, पथ, घाट आदि परिष्कृत और स्वच्छ न हों तो हम स्वास्थ्य भोग नहीं कर सकते। जैसे हम अपने शिक्षा-भवन को परिष्कृत रखना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, वैसे ही अपने ग्राम, पथ, घाट आदि को भी स्वच्छ और निर्मल रखना हमें अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। यदि हम अपने पुत्र को सत्स्वभाव सम्पन्न रखना चाहते हैं तो हमें अपने ग्राम-निवासियों को भी सच्चरित्र बनाने का यत्न करना पड़ेगा। यदि ऐसा न किया जाएगा तो ग्राम के बालक दुष्ट हो जाएंगे और उनके साथ मिलने जुलने से हमारे पुत्र के भी दुश्चरित्र हो जाने की सम्भावना होगी। यदि हम स्वयं साधु रहना चाहते हैं तो हमें अपने मोदी को भी साधु रखना होगा। कल्पना कीजिए

कि हम छुट्टी पाकर वा पेंशन लेकर यह संकल्प करके अपने घर आये हों कि जीवन का शेष काल आध्यात्मिक चर्चा में बिताएंगे । अब यदि हमारा मोदी कुत्सित भक्ष्य द्रव्य हमारे उदर में पहुंचाता है, हमारा ग्वाला अस्वच्छ पानी मिला हुआ दूध पिलाकर हमारे शरीर में रोग का संचार कर देता है तो हम आध्यात्मिक चर्चा वा भजन-साधन निरापद रूप से कैसे कर सकेंगे? बारम्बार रोगाक्रान्त रहने और अनेक प्रकार की घोरतर अशान्ति से पूर्ण जीवन व्यतीत करने से हम असमय में ही देह-त्याग करके परलोक सिधार जाएंगे, फिर कहां रहेगा हमारा भजन-साधन और कहां रहेगा आध्यात्मिक चर्चा का सङ्कल्प ? इस प्रकार का एक और भी दृष्टान्त दिया जा सकता है, जिससे यह प्रमाणित होगा कि जैसे राष्ट्रीय उन्नति समष्टिगत उन्नति पर निर्भर है वैसे ही समष्टिगत उन्नति व्यक्तिगत उन्नति पर स्थित है । हमारी उन्नति दस मनुष्यों की उन्नति के साथ सम्बद्ध है और हमारी अवनति भी दूसरे मनुष्यों की अवनति के साथ ग्रथित है, क्योंकि हम सामाजिक जीव हैं । अब हम समझते हैं कि इस बात को अधिक विस्तारपूर्वक बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि देशवासियों में देशप्रेम का बन्धन वा देश में जातीयता का संगठन होना अत्यन्तावश्यक है । मनुष्य जाति का इतिहास इस सत्य की स्पष्टाक्षरों में घोषणा करता है कि धन धान्य की उन्नति, शिल्प की उन्नति, साहित्य की उन्नति और अन्य सब प्रकार की उन्नति जातीय एकता, बल्कि यों कहना चाहिए, जातीय स्वाधीनता के बिना हो ही नहीं सकती । इसलिए स्थल विशेष के निष्कण्टक वा निरापद हुए बिना जीव को कैवल्यप्राप्ति वा परम पुरुषार्थ साधन की चेष्टा भी सफल नहीं हो सकती ।

आर्यजाति के इतिहास की क्रमपूर्वक आलोचना करने से ज्ञात होता है कि इस अपेक्षाकृत सामान्य परन्तु नितान्त आवश्यक विषय के सम्बन्ध में न तो वैदिक समय के आचार्य गण, न बुद्ध और बौद्ध युग के उपदेष्टा और न चैतन्य, नानक प्रभृति सन्त महाजनों में से एक के मुख से ही एक शब्द निकला, मनु, अत्रि, प्रभृति ऋषिगण स्मृतिकार भी अपनी स्मृतियों के किसी सूत्र में इस विषय पर किसी बात का वर्णन करके नहीं गये । मध्यवर्ती काल के पौराणिकगण भी इस विषय पर न आख्यान के रूप में और न उपदेश भाव से ही कोई उल्लेख कर गये हैं । अपेक्षाकृत आधुनिक समय के व्यवस्थापक और संग्रहकर्त्तागण भवदेवभट्ट, शूलपाणि, स्मार्त वृषोत्सर्गादि

श्राद्ध के विषय में विस्तार पूर्वक व्याख्या कर गए हैं, यहां तक कि छींक और छपकली आदि के शुभाशुभ फल के सम्बन्ध में भी व्याख्या दे गए हैं, परन्तु इस अत्यन्त प्रयोजनीय विषय के सम्बन्ध में एक पंक्ति भी लिखकर नहीं गये । यही भारत का दुर्दृश्य है, वही आर्यों का अमिट कलङ्क है, यही हमारी जाति की उन्नति के विषय में विघ्न है । ऐसा ज्ञात ही नहीं होता कि भारत में कभी किसी अंश में भी स्वदेशता वा स्वजातित्व का भाव रहा हो। इस देश के लोग कुलगत वा वर्णगत गौरव में ही व्यस्त रहते थे । हम अब तक कुलगौरव वा वर्णगौरव ही की बातों की भरमार करते आए हैं । जितना हम इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि तुम ब्राह्मण हो व क्षत्रिय, श्रोत्रिय हो वा स्मार्त्त, परमारों के वंशधर हो वा सीशोदियों के कुल में, इतना हम यह जानने के इच्छुक नहीं रहते कि तुम भारतवासी हो वा आर्य जाति के सदस्य हो । यही कारण है कि हमारे शास्त्र और संहिताएं कुल गाथाओं और ब्राह्मणादि वर्ण की कथाओं से परिपूर्ण हैं । सारांश यह है कि जाति की एकता वा जाति की उन्नति के विषय में भारतीय आचार्यगण जैसा मौन हैं, भारत की शास्त्र संहिताएं भी वैसा ही निर्वाक् हैं ।

यह देश का सौभाग्य था कि वर्तमान समय के आचार्य स्वामी दयानन्द ने हमारी युग-युगव्यापिनी नीरवता को भङ्ग करके चिरन्तनी उदासीनता को छिन्न भिन्न करके शास्त्र-संस्कार और धर्म-संस्कार के साथ साथ जातीय एकता की आवश्यकता को भी प्रतिपादित किया । उन्होंने कोपीनधारी संन्यासी होते हुए भी इस बात को सुस्पष्ट रूप से जान लिया था कि जब तक स्वदेशीजनों में बल नहीं बढ़ेगा, स्वदेश में जातीयता प्रतिष्ठित नहीं होगी, जाति के अन्दर एकता बन्धन दृढ़तर न होगा, तब तक धर्म-संस्कार, शास्त्र-संस्कार, देशोन्नति, सामाजिकोन्नति आदि कुछ भी न हो सकेगा । इसी कारण से जैसे वे समस्त भारत में एक शास्त्र अर्थात् वेदशास्त्र को स्थापित करने के लिए आजीवन संग्राम करते रहे, वैसे ही वेद-प्रतिपादित एक अद्वितीय परमेश्वर उपासना को प्रतिष्ठित करने के लिए भी मन, वचन, कर्म से चेष्टा करते रहे । उन्होंने जैसा प्रयास भारत के कुलगत, वर्णगत, सम्प्रदायगत शाखाप्रशाखा गत भेद को छिन्न भिन्न करके आर्य जाति के संगठन के निमित्त किया था, वैसा ही प्रबल परिश्रम उन्होंने इसके निमित्त भी किया था कि आर्यावर्त्त में आदि से अन्त तक एक भाषा प्रचलित हो जाए । वस्तुतः इसी उद्देश्य से उन्होंने

हिन्दी भाषा को आर्य भाषा अर्थात् समस्त आर्यावर्त्त में प्रचलित भाषा का नाम दिया था ।

बहुत दिन हुए जब कि प्रसिद्ध हण्टर (Hunter) साहब की अध्यक्षता में शिक्षा-कमीशन (Education commission) बैठा था तो उन्होंने उसके सामने हिन्दी का पक्ष स्थापित करने के पक्ष में साक्षी देने के लिए देश के उच्च पदारूढ़ और सम्भ्रान्त मनुष्यों को प्रोत्साहित किया था । इन सब बातों की आलोचना करने से स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि इस संन्यासी के हृदय में यह प्रबल इच्छा और प्रबल उत्साह था कि सारे भारतवर्ष में एक शास्त्र प्रतिष्ठित हो, एक देवता पूजित हो, एक जाति संगठित हो और एक भाषा प्रचलित हो । यही नहीं कि उनमें केवल ऐसी सद्इच्छा और उत्साह ही था, वरन् वह इस इच्छा और उत्साह को किसी अंश तक कार्य में परिणत करने में भी कृतकार्य हुए थे । अतएव स्वामी दयानन्द केवल संन्यासी ही नहीं थे, केवल वेद-व्याख्याता ही नहीं थे, केवल दिग्विजयी पण्डित ही नहीं थे, वह भारतीय एकता के स्थापनकर्ता भी थे, भारत की जातीयता के प्रतिष्ठाता भी थे । इसलिए भारत की आचार्य मण्डली में दयानन्द का स्थान विशिष्ट और अद्वितीय है । देवेन्द्र बाबू की भूमिका से सह आभार ।

श्रद्धाञ्जलियां

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

१. "स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है । वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है । इन दोनों की गोद में मैं पला । मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना, बोलना और कर्त्तव्य पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।"

देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी

२. "स्वामी दयानन्द उन रोशनी के मीनारों में से एक हैं, जो संसार को सत्य का मार्ग दिखाने के लिए आते हैं और भटकते लोगों को मार्ग दिखला कर चले जाते हैं ।"

३. वह दिव्य ज्ञान का महान् सैनिक, ईश्वरीय सृष्टि में एक योद्धा, मनुष्यों और संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का निर्भीक और शक्तिशाली विजेता था । उसके चिन्तन से मेरे सामने आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्तिशाली मूर्ति उपस्थित होती है । इन दो शब्दों का, जो कि हमारी धारणाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही मुझे दयानन्द की उपर्युक्त परिभाषा प्रतीत होती है.........उसके व्यक्तित्व की व्याख्या यूं की जा सकती है कि वह एक ऐसा मनुष्य था जिसकी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति, आंखों में दिव्य तेज और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके । **(श्री योगीराज अरविन्द)**

महात्मा गांधी

४. (स्वामी दयानन्द एक भारी विद्वान् तथा संशोधक थे ।) देश की आवश्यकता को देख कर अपने घर को त्याग दिया । ऐसे व्यक्ति का यदि कोई अपमान करेगा तो मैं उसे महापापी समझूंगा । मुझे आर्यसमाज बड़ा प्रिय है । यह बुद्धि के प्रयोग से काम करता है और उसका काम देश के लिए लाभकारी है ।

१. महर्षि दयानन्द हिन्दुस्तान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे । उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्तान पर बहुत अधिक पड़ा है ।''

२. छुआछूत का प्रबल प्रतिवाद निःसन्देह दयानन्द की हमें महान् देन है ।

माता कस्तूरबा

५. 'स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है इसलिए केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनिया के वे पूज्य हैं।'

श्री रैम्जे मैक्डौनल्ड (इंग्लैंड के स्वर्गीय प्रधानमन्त्री)

६. 'दयानन्द सैनिक मनोवृत्ति की धर्म परम्परा के अंग थे, उनके चरित्र में दृढ़ता, स्वतन्त्रता, प्रभावशालिता और सुधारप्रियता थी ।'

फ्रांस के सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्रीयुत रोमन रोलां

७. दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति, दृढ़ता और सिंह-पराक्रम फूंक दिया। उसकी ध्वनि वीरोचित शक्ति के साथ गूंज उठी। दयानन्द छुआछूत के अस्तित्व के अन्याय को सहन करने को तैयार न थे और उन के समान पददलित अधिकारों का पोषक आज तक कोई नहीं हुआ। दलित जातियों को समानता के आधार पर आर्यसमाज में प्रवेश दिया गया क्योंकि आर्य कोई उपजाति नहीं है।

भारत मे स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता और साहस से काम लिया। वे राष्ट्रीय संगठन और पुनर्निर्माण के उत्साही सूत्रधारों में से एक थे।

श्रीमती एनीबीसेण्ट

८. 'स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने 'हिन्दुस्तान हिन्दुस्थानियों के लिए' का नारा लगाया था। (Swami Dayanand was first to proclaim India for Indians.) आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएं हैं और उस महान् पुरुष के लिए मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।'

९. 'दयानन्द के व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र और अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।'

(Rev. C.F. Andrews)

सर सैयद अहमद खां

१०. 'स्वामी दयानन्द के अनुयायी उन्हें एक देवता के रूप में मानते हैं और वे वस्तुतः इस योग्य भी थे कि उन्हें इस रूप में देखा जाये। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की पूजा करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और हम उनका अत्यधिक आदर करते थे। वे ऐसे विद्वान् और श्रेष्ठ व्यक्ति थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे। उन की समानता का व्यक्ति इस समय सारे भारतवर्ष में कोई नहीं।'

स्वर्गीय लाला हरदयाल जी एम०ए०

११. 'न तो मैं आर्यसमाजी हूं और न मुझे मतमतान्तरों के झगड़ों का शौक है, लेकिन महर्षि स्वामी दयानन्द जी के काम को इतिहास और सामाजिक शास्त्र की दृष्टि से परखा जा सकता है। स्वामी दयानन्द जी एक बड़े सुधारक थे। उन्होंने भारतवर्ष और जाति के सुधार के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था।'

स्वर्गीय सरदार वल्लभ भाई पटेल

१२. 'यद्यपि मैं आर्यसमाज का कोई विशेष चिह्न नहीं लगाता तो भी मैं आर्य सज्जनों के समान ही स्वामी दयानन्द का भक्त हूं। हिन्दू समाज में जो त्रुटियां, कुरीतियां अज्ञान और भ्रम थे, उन सब के विरुद्ध स्वामी जी ने धर्मयुद्ध शुरू कर दिया था। अगर स्वामी जी न आते तो आज हिन्दू समाज का क्या हाल हुआ होता, इसकी कल्पना कीजिये।'

वीर सावरकर

१३. सचमुच स्वामी दयानन्द एक ऋषि, एक महान् सुधारक और एक सच्चे देशभक्त थे।

एम० ह्यूम (संस्थापक इण्डियन नेशनल कांग्रेस)

१४. 'सब को यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि स्वामी दयानन्द एक महान् और श्रेष्ठ व्यक्ति थे। अपने देश के लिए वे गौरव स्वरूप थे। सभी अनुभव करते हैं कि दयानन्द को खोकर भारत को बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ी।'

स्वर्गीय डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी

१५. भारतीय प्रगति के इतिहास के इस महान् आपत्तिकाल में कुछ महान् व्यक्ति प्रकट हुए जिन में दयानन्द सर्वोच्च थे, जिन्होंने देश को उत्कृष्ट नेतृत्व दिया। दयानन्द सरस्वती का मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण प्राचीनता लिये हुए था। धार्मिक सच्चाइयों के नाम पर चलने वाले खोखले कर्मकाण्ड, अर्थहीन रीतिरिवाजों और भ्रान्तियों में उनका अन्धविश्वास न था। वे भारतीय जनता के सब हाथों में वेद के लिए उपस्थित थे और अनेक जातियों

और मत-मतान्तरों में विभक्त हुए पथ-भ्रष्ट लोगों को उन्होंने एक नया सन्देश दिया और सामाजिक क्षेत्र में हर प्राणी को पवित्रतम भारतीय परम्परा के अनुकूल समानता का अधिकार दिया।

साधु टी०एल० वास्वानी

१६. 'मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में असक्त हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूं।

मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझ कर उन का आदर करता हूं। उन का जीवन राष्ट्रनिर्माण के लिए स्फूर्तिदायक, बलदायक और माननीय है।

दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अतः मैं राष्ट्रवीर समझ कर उनकी वन्दना करता हूं।

श्री ऐंड्र्यू जैक्सन डैविस

१७. 'प्राचीन आर्य धर्म की अपने पुरातन यथार्थ स्वरूप में संस्थापना यह थी उस भट्टी की आग 'जिसे आर्यसमाज' कहा जाता है और जो परमात्मा के दिव्य पुत्र दयानन्द सरस्वती के हृदय में प्रदीप्त थी।'

महर्षि जी के चरित्र की प्रशंसा भारतीय विद्वान् तो करते हैं पर विदेशियों ने भी उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा मुक्त-कण्ठ से की है। यथा—

१८. "सब वर्णनों से, जो स्वामी दयानन्द के विषय में मिलते हैं। उनमें वे असाधारण शारीरिक शक्ति सम्पन्न प्रभावशाली व्यक्ति और महान् संकल्पवान् पुरुष सिद्ध होते हैं। उनकी विद्वत्ता सर्वसम्मत थी।........."

(श्री एस० ई० स्टोक्स)

१९. "स्वामी दयानन्द निःसन्देह एक ऋषि था, सब पण्डितों ने उस पर पत्थर फैंके। उसने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह तुम्हारे राष्ट्र को पुनर्जीवन देने आया था।"

(प्रसिद्ध फ्रान्सीसी लेखक पाल रिचर्ड)

२०. "मेरी राय में स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगद्गुरु और सुधारक थे।" **(श्री फौक्सपिट जनरल सैक्रेटरी)**

२१. "महर्षि दयानन्द ने भारतवर्ष और संसारमात्र की जो सेवा की है, उसको मैं भली भांति समझता हूं । वे भारतवर्ष के सर्वोत्तम महापुरुषों में से एक थे ।" **(श्री जी० एस० अण्डेल)**

२२. "जिन सिद्धान्तों का स्वामी दयानन्द ने प्रचार किया है, वे कुछ नये नहीं हैं । वे उतने ही प्राचीन हैं, जितना कि हिमालय । वस्तुतः वे सच्चे अर्थों में हम को फिर से वास्तविक प्राकृतिक नियमों की ओर ले जाना चाहते हैं और समस्त प्रकार की धोखेबाजी, मक्कारी, असत्यता और बनावटी बातों का बहिष्कार करना सिखाते हैं । **(श्री मेजर टी० एफ० ओडोनल)**

२३. "स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के विषय में चाहे कोई मनुष्य कैसी ही राय-कायम कर ले, परन्तु यह सब को मान लेना पड़ेगा कि वे एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे ।" **(मि० ए० ओ ह्यूम)**

२४. "स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म सुधार का बड़ा कार्य किया और जहां तक समाज सुधार का सम्बन्ध है वे बड़े उदार-हृदय थे । उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किए, जिससे मालूम होता है कि वे संस्कृत से पूर्ण अभिज्ञ थे ।' **(प्रो० एफ० मैक्समूलर)**

महिमा काण्ड समाप्त ।

***

१८. काण्ड

१४८. दण्डी स्वामी विरजानन्द जी

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का जन्म संवत् १८३५ तदनुसार सन् १७७८ में पं० नारायणदत्त भारद्वाज गोत्री करतापुर जिला जालन्धर के नजदीक गंगापुर गांव निवासी के घर एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ, जन्म समय इनकी माता अपने पितृ गृह कस्बा नूरमहल जिला जालन्धर में थी, अतः इनका जन्म नूरमहल में हुआ था । ५ वर्ष की आयु में विद्यारम्भ हुआ । करीबन ७-८ वर्ष की आयु में शीतला से दोनों आंखें बन्द हो गईं । ११ वर्ष के हुए तो माता पिता का देहान्त हो गया। भाई और भावज के दुर्व्यवहार से १२ वर्ष की आयु में गंगापुर त्याग दिया, इस समय तक संस्कृत बोलने का कुछ अभ्यास हो चुका था । कुछ समय तक साधुओं के साथ फिरते रहे । ऋषिकेश पहुंच कर तीन वर्ष तक गंगा में खड़े होकर गायत्री जाप करते रहे, संवत् १८०४ में हरिद्वार में स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास लेकर विरजानन्द नाम रखाया, इन्हीं पूर्णानन्द से आर्ष ग्रन्थों में श्रद्धा उत्पन्न हुई । हरिद्वार से चलकर काशी पहुंचे, इस समय इनकी आयु २२ वर्ष की हो चुकी थी। काशी में १० वर्ष रहकर विद्या पढ़ते रहे, यहां इन्होंने व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, आयुर्वेद भी पढ़े । और संवत् १८६७ में काशी की पण्डित मण्डली के सदस्य बन गये, और प्रज्ञाचक्षु की उपाधि पाई । काशी से गया गये, वहां वेदान्त का अभ्यास किया । रास्ते में चोरों ने लूट लिया, फिर गंगा के किनारे किनारे विचरते कलकत्ता गये । और यहां इन्होंने नवीन न्याय, साहित्य आयुर्वेदादि का विशेष ज्ञान प्राप्त किया । कलकत्ता से फिर गंगा तट पर पैदल चलते हुए हरिद्वार वापस आ गये । फिर वह सोरों आकर रहने लगे । इस समय संवत् १८८० चल रहा था । संवत् १८८९ में विनय-सिंह जी अलवर नरेश सोरों आए और दण्डी जी से विद्या-अध्ययन की प्रतिज्ञा कर इनको अलवर ले गये । और वहां १८९२ तक रहे, फिर सोरों वापस

चले गये । संवत् १९०२ में सख्त बीमार हुए, स्वस्थ होने पर सोरों से मथुरा चले आए । और पहले एक मन्दिर में रहे पश्चात् सेठ केदारनाथ जी स्वामी जी को अपने घर ले गये । और अपने घर के स्वतन्त्र भाग में इन्हें आदर पूर्वक रखा ।

और फिर उसी जगह साढ़े बाईस वर्ष तक सुख पूर्वक रह कर संवत् १९२५ तदनुसार १४।९।१८६८ सोमवार को यह भौतिक शरीर त्याग दिया । १४।११।६० में स्वामी दयानन्द जी ने आकर विरजानन्द जी का द्वार खटखटाया और मार्च १८६३ को विद्या समाप्त कर समावर्तन संस्कार हुआ । इस समावर्तन संस्कार में गुरु ने जीवन-दान मांगा । और शिष्य ने तत्काल तथास्तु कह कर अपना शीश गुरु-चरणों में रख दिया । इस समावर्तन संस्कार ने संसार के कल्याण के लिए एक ऐसी ज्योति जगाई, जिस ज्योति ने अविद्या अन्धकार मिटा कर संसार को सत्य सनातन वैदिक मार्ग दिखलाया । जब विरजानन्द जी के देहान्त की खबर महर्षि दयानन्द को मिली तो उन्होंने कहा, आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया । अगर विरजानन्द न होते तो दयानन्द भी न होते, और अगर दयानन्द न होते तो विरजानन्द जी को कौन जानता । अपूर्व गुरु और अपूर्व शिष्य ।

आचार्य (भगवानदेव) स्वामी ओमानन्द

इसी आर्ष परम्परा की श्री दण्डी विरजानन्द जी की शिष्य परम्परा में उदात्त व्यक्तित्व के धनी श्री आचार्य भगवानदेव जी प्रसिद्ध हैं ।

हिन्दी सत्याग्रहियों की भरती का सब से अधिक काम आचार्य भगवान्देव जी ने किया । कहा जाता है कि जो दस हजार सत्याग्रही जेल में गए उनमें चार पांच सहस्र सत्याग्रही जिला रोहतक अथवा हरियाणा के थे । जो आचार्य जी की प्रेरणा से ही सत्याग्रह में सम्मिलित हुए थे । उनके प्रति इस श्रद्धा का कारण उनका त्याग और तपस्यामय जीवन है । आपका जन्म-स्थान नरेला है । सन् इकत्तीस में गांधी जी के विदेशी शिक्षा-बहिष्कार आन्दोलन के कारण आपने कालेज शिक्षा छोड़ दी । और लोकसेवा आरम्भ कर दी । आप १९३९ में गुरुकुल चित्तौड़गढ़ में संस्कृत की उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए गये । १९४१ के लगभग गुरुकुल दयानन्द वेद विद्यालय, गौतम नगर में महाभाष्य की शिक्षा प्राप्त कर १९४२ से गुरुकुल झज्झर के आचार्य

हैं। आप अपने माता-पिता के इकलौते लड़के हैं और बाल ब्रह्मचारी हैं। आपने अपनी सहस्त्रों की सम्पत्ति आर्यसमाज के अर्पण कर दी है। अपने तप और त्यागमय जीवन के कारण हरियाणा भर में आपकी पूजा होती है। श्री सिद्धान्ती जी के शब्दों में ये हरियाणा के नबी हैं। अब संन्यास लेकर स्वाामी ओमानन्द नाम से विख्यात हैं। हरियाणा आर्य प्रतिनिधि सभा एवम् आर्यों की शिरोमणि सार्वदेशिक सभा के आप प्रधान हैं।

१८ प्रश्नों का एक उत्तर

१. सबसे प्रथम पराधीनता के दुःख को किस ने अनुभव किया ?

२. सर्वप्रथम भारत के अतीत गौरव की स्मृति किसने दिलाई ?

३. फूट के विषैले फल की भयंकरता से बचने के लिए किस ने सब से पूर्व एकता की मधुमयी, सुनिश्चित चिकित्सा बतलाई ?

४. किसने सब से पहले भारतीयता की महत्ता तथा सर्वोत्कृष्टता के अकाट्य प्रमाण देकर भारत को जगाया ?

५. केवल भौतिकवाद से जगत् के कल्याण को असम्भव समझ कर विश्व के सुधार का आधार आध्यात्मिकता को इस युग में सब से पूर्व किस महात्मा ने घोषित किया ?

६. सब मनुष्यों के अधिकारों की समानता किसने घोषित की ?

७. स्त्रियों और शूद्रों के अधिकार किसने वापस दिलवाए ?

८. वेद मानव जाति मात्र के लिए हैं, यह किसने बताया ?

९. अनाथों एवं विधवाओं की करुण पुकार किसने सुनी ?

१०. देश की एकता व संगठन के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी किसने सुझाई?

११. नाना मत-मतान्तरों के कीचड़ में धसे भारतीयों को निकालने का सर्वप्रथम सफल प्रयास किसने किया।

१२. राजनीति से शून्य धर्म तथा धर्म से शून्य राजनीति का थोथापन किसने स्पष्ट दर्शाया ?

१३. स्वराज्य का नाद, भारतवर्ष अवश्य ही एक दिन स्वतन्त्र होगा और अंग्रेज अपने देश को लौट जाएगे, यह सब से पूर्व किस वीर ने गुंजाया?

१४. बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह की प्रचलित कुप्रथाओं

के विरुद्ध सब से पहले किसने आन्दोलन खड़ा किया ।

१५. सारे संसार में से कोई भी पण्डित मौलवी, पादरी, फिलोस्फर, पौलीटीशियन जिसके सामने दम न मार सका वह कौन महापुरुष था ।

१६. मल्का विक्टोरिया के राज्यकाल में मल्का विक्टोरिया के एलान का किस वीर पुरुष ने खण्डन किया ।

१७. अंग्रेजी न पढ़ कर भी सारे संसार के वैज्ञानिकों को किसने चुनौती दी ।

१८. गोरक्षा के लिए सब से पहले कौन यत्नवान् हुआ ?

इन सब का एक ही उत्तर है—**महर्षि दयानन्द सरस्वती ।**

***

पूर्ण पुरुष का अन्तिम आदेश

पराई आग में जलना पराई मौत मर जाना ।
कोई सीखे दयानन्द से मरीजों की दवा होना ॥

अजमेर नगर भिनाए की कोठी में ३० अक्तूबर १८८३ मंगलवार दीवाली की शाम के ६ बजे अपना अन्तिम श्वास छोड़ने से पहले अपने पास आए आर्यों को महर्षि जी ने निम्नलिखित तीन आदेश दिये थे–

१. ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो ।
२. मेरे पीछे खड़े हो जाओ ।
३. सब दरवाजे खोल दो ।

आओ हम सब महर्षि के इन आदेशों को मान देकर अपना जीवन कृतार्थ कर जायें । महर्षि तो सारी आयु इस पद के मूर्तिमान् ही बने रहे थे।

पुरुष के इस संसार के अन्दर केवल हैं दो काम ।
विश्व प्रेम को जीवन समझे, जीवन को संग्राम ॥

महर्षि के इस विचित्र जीवनचरित्र को पढ़ कर अनायास ही सब के मुंह से निकलेगा ।

देखा न कोई देवता प्यारे ऋषि की शान का ।
लाखों सहीं मुसीबतें और भला किया जहान का ॥

सब मिल कर बोलो **"जो बोले सो अभय"** ।

वैदिक धर्म की जय, महर्षि दयानन्द की जय

भारतमाता की जय, गौ माता की जय ।

हिन्दी भाषा की जय ।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

***

अनीता आर्ष प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

	पुस्तक	लेखक	मूल्य
१.	महर्षि दयानन्द के यजुर्वेदभाष्य में समाज का स्वरूप	आचार्य डॉ० सत्यव्रत राजेश	२००/-
२.	वैदिक सम्पत्ति	पं० रघुनन्दन शर्मा	१५०/-
३.	वैदिक पुष्पाञ्जलि	आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार	१५०/-
४.	वैदिक प्रार्थना--सौरभ	आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार	१२५/-
५.	वैदिक विनय	श्री अभयदेव विद्यालंकार	१००/-
६.	वैदिक उपदेशमाला	श्री अभयदेव विद्यालंकार	२०/-
७.	वैदिक ब्रह्मचर्य गीत	,, ,, ,,	३०/-
८.	पं० गुरुदत्त विद्यार्थी	डॉ० रामप्रकाश	५०/-
९.	यज्ञ-विमर्श	डॉ० रामप्रकाश	३०/-
१०.	चतुर्वेद शतक	स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती	२०/-
११.	तड़प वाले तड़पाती जिनकी कहानियाँ	प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	३०/-
१२.	त्यागवाद	स्वामी विद्यानन्द सरस्वती	१५/-
१३.	वैदिक वीर गर्जना	पं० रामनाथ वेदालंकार	२५/-
१४.	भारतीय साहित्य में विद्या का महत्त्व	ब्र० नन्दकिशोर	६/-
१५.	आर्य क्रान्तिकारी	ब्र० नन्दकिशोर	३/-
१६.	अष्टाध्यायी सूत्रपाठ (वार्तिक अष्टपाद सहित) अनुवृत्ति संस्कर्ता	श्री शंकरदेव पाठक	२०/-
१७.	ब्रह्मचर्य का वैज्ञानिक स्वरूप	डॉ० त्रिलोकचन्द	८/-
१८.	पं० देशबन्धु लेखावली	पं० देशबन्धु	६०/-
१९.	आर्यसमाज क्या है ?	पं० मनसाराम 'वैदिक तोप'	६/-
२०.	सत्यार्थप्रकाश (एक मूल्यांकन)	डॉ० सत्यव्रत 'राजेश'	२/-
२१.	स्वस्तिक चिह्न (ओ३म् का प्राचीनतम स्वरूप)	विरजानन्द दैवकरणि	५/-
२२.	मद्यनिषेध-शिक्षाशतकम्		१५/-
२३.	शतपथ-सुभाषित		१०/-
२४.	आनन्द शायरी बहार		१५/-
२५.	सामवेद-संहिता		३५/-
२६.	सत्यार्थप्रकाश (सर्वांगपूर्ण धर्मग्रन्थ)	डॉ० सत्यकेतु	५/-
२७.	वेदोपदेश	पं० राजाराम शास्त्री	३०/-
२८.	आध्यात्मिक उन्नति का सोपान-देवयज्ञ	अर्जुन देव स्नातक	५०/-